भगवत्-सन्देश



कृष्णकृपाश्रीमूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ

श्री श्रीगुरु-गौरांगौ जयतः

कृष्णद्वैपायन व्यास

कृत

भगवत्-सन्देश

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥
(पृष्ठ १३१)

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

द्वारा विरचित वैदिक-ग्रन्थ-रत्न—

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप
श्रीमद्भागवत (भगवत्-सन्देश) स्कन्ध १-१० (३०-खण्ड)
श्रीचैतन्यचरितामृत (१७ खण्ड)
भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत
श्री भक्तिरसामृतसिन्धु
श्री उपदेशामृत
श्रीईशोपनिषद्
अन्य लोकों की सुगम यात्रा
श्रीकृष्णभावनामृत : सर्वोत्तम योगपद्धति
लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण (३ खण्ड)
पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर
द्वन्द्वात्मक अध्यात्मवाद—पाश्चात्य दर्शन का वैदिक दृष्टिकोण (२ खण्ड)
देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत
प्रह्लाद महाराज की भागवत-शिक्षा
रसराज श्रीकृष्ण
जीवन का स्रोत जीवन
योग की पूर्णता
जन्म-मृत्यु से परे
श्रीकृष्ण की ओर
श्रीकृष्ण-भक्ति की अनुपम भेंट
गीतार गान (बंगाली)
राजविद्या
श्रीकृष्णभावनामृत की प्राप्ति
दिव्य ग्रन्थ बाँटिए
पुनरागमन—पुनर्जन्म का विज्ञान
भगवत्-दर्शन पत्रिका (मासिक)

अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखें—

अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ

हरे कृष्ण लैण्ड, गांधी ग्राम रोड, जुहू, बम्बई—४०००४९

भगवत्-सन्देश

पंचम स्कन्ध

"सृष्टि की प्रेरणा"

(भाग दो—अध्याय १४-२६)

मूल संस्कृत पाठ, हिन्दी शब्दार्थ,
हिन्दी अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य सहित—

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ

अनुवादक
डा० शिवगोपाल मिश्र

अनुवाद संपादक
वेदव्यास दास
श्रीनिवासाचार्य दास



भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

बम्बई * न्यूयार्क * लॉस एंजिल्स * लंदन * पेरिस * फ्रैंकफर्ट

इस ग्रन्थ की विषय वस्तु में रुचिवान पाठकों को अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ अपने निम्नलिखित भारतीय केन्द्रों से सम्पर्क तथा पत्र-व्यवहार करने के लिए आमन्त्रित करता है—

अंतर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ

१. इस्कॉन वृन्दावन; कृष्ण-बलराम मंदिर, भक्तिवेदान्त स्वामी मार्ग, रमणरेती, **वृन्दावन** (मथुरा, उत्तर प्रदेश)

२. इस्कॉन बंबई; हरे कृष्ण धाम, जुहू, **बम्बई**—४०००४९ (महाराष्ट्र)

३. इस्कॉन दिल्ली; एम-११९, ग्रेटर कैलाश १, **नई दिल्ली**—११००४८

४. इस्कॉन कलकत्ता; ३, एल्बर्ट रोड, **कलकत्ता**—७०००१७ (प० बंगाल)

५. इस्कॉन मद्रास; २३२, किलपक गार्डेन रोड, किलपक, **मद्रास**—६०००१०

६. इस्कॉन अहमदाबाद; ७, कैलास सोसायटी, आश्रम रोड, **अहमदाबाद**—३८०००९

७. इस्कॉन हैदराबाद; नमपल्ली स्टेशन रोड, **हैदराबाद**—५००००१ (आ. प्र.)

८. इस्कॉन बंगलोर; ३४/ए, ९-बी क्रॉस, कॉर्ड रोड के पश्चिम में, राजाजी नगर, दूसरी गली, **बंगलोर**—५६००१०

९. इस्कॉन गौहाटी; पोस्ट बॉक्स १२७, **गौहाटी**—७८१००१ (आसाम)

१०. इस्कॉन सूरत; श्री श्रीराधाकृष्ण मंदिर, जहांगीरपुरा, रैंडर रोड, **सूरत**, (गुजरात)

११. इस्कॉन बड़ौदा; १६, बड़ौदा मंदिर, हरे कृष्ण धाम, १८, सुजाता सोसायटी, गोत्री रोड, **बड़ौदा**—३९०००७ (गुजरात)

१२. इस्कॉन चंडीगढ़; हरे कृष्ण धाम, दक्षिण मार्ग, सेक्टर नं० ३६-बी, **चंडीगढ़** (पंजाब)

१३. इस्कॉन मायापुर; मायापुर चंद्रोदय मंदिर, **श्रीमायापुर धाम**, नदिया (प. बं.)

१४. इस्कॉन भुवनेश्वर; पोस्ट बॉक्स १७३, नैशनल हाइवे नं० ५, नुआपल्ली, **भुवनेश्वर**—७५१००१ (उड़ीसा)

१५. इस्कॉन मणिपुर; तिडिम रोड, शंघाई प्रो, **इम्फाल**—७९५००१ (मणिपुर)

१६. इस्कॉन त्रिवेन्द्रम; स्थानु भवन, विक्रनपुरम हिल, कुरवनकोनम, **त्रिवेन्द्रम**—६९५००३ (केरल)

१७. इस्कॉन सिलचर; महाप्रभु कॉलनी, मलूग्राम, **सिलचर**—७८८००२ (आसाम)

१८. इस्कॉन तिरूपति; शंखभृतदास, ३७-बी, टाईप टी. टी. डी. क्वार्टर्स विनायक नगर, के. टी. रोड, **तिरूपति**

१९. इस्कॉन नेपाल; श्री कुंज, कमलडी, **काठमाण्डु**, (नेपाल)

प्रथम हिन्दी संस्करण, जून १९८३—५,२०० प्रतियाँ

प्रकाशक : भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, बम्बई—४०००४९

मुद्रक : अशोक मुद्रण गृह, [illegible] —२११००१

लेखक-परिचय

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का जन्म १८९६ ई० में भारत के कलकत्ता नगर में हुआ था। अपने गुरु महाराज श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी से १९२२ में कलकत्ता में उनकी प्रथम भेंट हुई। एक सुप्रसिद्ध धर्म तत्त्ववेत्ता, अनुपम प्रचारक, विद्वान्-भक्त, आचार्य एवं चौसठ गौड़ीय मठों के संस्थापक श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को ये सुशिक्षित नवयुवक प्रिय लगे और उन्होंने वैदिक ज्ञान के प्रचार के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने की इनको प्रेरणा दी। श्रील प्रभुपाद उनके छात्र बने और ग्यारह वर्ष बाद (१९३३ ई.) प्रयाग (इलाहाबाद) में विधिवत् उनके दीक्षा-प्राप्त शिष्य हो गये।

अपनी प्रथम भेंट, १९२२ ई० में ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अँग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करें। आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद ने श्रीमद्भगवद्गीता पर एक टीका लिखी, गौड़ीय मठ के कार्य में सहयोग दिया तथा १९४४ ई० में बिना किसी की सहायता के एक अँग्रेजी पाक्षिक पत्रिका आरम्भ की, जिसका सम्पादन, पाण्डुलिपि का टङ्कण और मुद्रित सामग्री के प्रूफ शोधन का सारा कार्य वे स्वयं करते थे। उन्होंने एक-एक प्रति निःशुल्क बाँटकर भी इसके प्रकाशन को वर्तमान रखने के लिए संघर्ष किया। एक बार आरम्भ होकर फिर यह पत्रिका कभी बन्द नहीं हुई; अब यह उनके शिष्यों द्वारा पश्चिमी देशों में भी चलाई जा रही है।

श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एवं भक्ति की महत्ता पहचान कर "गौड़ीय वैष्णव समाज" ने १९४७ ई० में उन्हें **भक्तिवेदान्त** की उपाधि से सम्मानित किया। १९५० ई० में चौवन वर्ष की अवस्था में श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लिया और चार वर्ष बाद वानप्रस्थ ले लिया जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिए अधिक समय दे सकें। श्रील प्रभुपाद ने तदनन्तर श्रीवृन्दावन धाम की यात्रा की, जहाँ वे बड़ी ही सात्विक परिस्थितियों में मध्यकालीन ऐतिहासिक श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में रहे। वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे। १९५९ ई० में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में ही श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण ग्रन्थ का आरम्भ किया था। वह ग्रन्थ था अठारह हजार श्लोक संख्या के श्रीमद्भागवत पुराण का अनेक खण्डों में अँग्रेजी में अनुवाद और व्याख्या। वहीं उन्होंने "अन्य लोकों की सुगम यात्रा" नामक पुस्तिका भी लिखी थी।

श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद १९६५ ई० में अपने गुरुदेव का धर्मानुष्ठान पूरा करने के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका गये। अन्ततः श्रील प्रभुपाद ने भारतवर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद, टीकाएँ एवं संक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप में साठ से अधिक ग्रन्थ रत्न प्रस्तुत किये।

१९६५ ई० में जब श्रील प्रभुपाद एक मालवाहक जलयान द्वारा प्रथम बार न्यूयॉर्क नगर में आये तो उनके पास एक पैसा भी नहीं था। इसके पश्चात् कठिनाई भरे

लगभग एक वर्ष के बाद जुलाई १९६६ ई० में उन्होंने "अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ" की स्थापना की। १४ नवम्बर १९७७ ई० को, कृष्ण-बलराम मन्दिर, श्रीवृन्दावन धाम में अप्रकट होने से पूर्व तक श्रील प्रभुपाद ने अपने कुशल मार्ग निर्देशन के कारण इस संघ को विश्वभर में सौ से अधिक मन्दिरों के रूप में आश्रमों, विद्यालयों, संस्थाओं और कृषि-समुदायों का बृहद् संगठन बना दिया।

१९६५ ई० में श्रील प्रभुपाद ने प्रयोग के रूप में, वैदिक समाज के आधार पर पश्चिमी वर्जीनिया की पहाड़ियों में एक नव-वृन्दावन की स्थापना की। तीन हजार एकड़ से भी अधिक के इस समृद्ध नव-वृन्दावन के कृषि-क्षेत्र से प्रोत्साहित होकर उनके शिष्यों ने संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य देशों में भी ऐसे अनेक समुदायों की स्थापना की।

१९७२ ई० में श्रील प्रभुपाद ने डल्लास, टेक्सस में गुरुकुल विद्यालय की स्थापना द्वारा पश्चिमी देशों में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की वैदिक प्रणाली का सूत्रपात किया। तब से, उनके निर्देशन के अनुसार श्रील प्रभुपाद के शिष्यों ने सम्पूर्ण विश्व में दस से अधिक गुरुकुल खोले हैं। श्रीवृन्दावन धाम का भक्तिवेदान्त स्वामी गुरुकुल इनमें सर्वप्रमुख है।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम-मायापुर, पश्चिम बंगाल में एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण की प्रेरणा दी है। यहीं पर वैदिक साहित्य के अध्ययनार्थ सुनियोजित संस्थान की योजना है, जो अगले दस वर्ष तक पूर्ण हो जायेगा। इसी प्रकार श्रीवृन्दावन धाम में भव्य कृष्ण-बलराम मन्दिर और अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि भवन का निर्माण हुआ है। ये वे केन्द्र हैं जहाँ पाश्चात्य लोग वैदिक संस्कृति का मूल रूप से प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। बम्बई में भी श्री राधारासबिहारीजी मन्दिर के रूप में एक विशाल सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक केन्द्र का विकास हो चुका है। इसके अतिरिक्त भारत में बारह अन्य महत्वपूर्ण स्थानों में हरे कृष्ण मन्दिर खोलने की योजना कार्याधीन है।

किन्तु, श्रील प्रभुपाद का सबसे बड़ा योगदान उनके ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ विद्वानों द्वारा अपनी प्रमाणिकता, गम्भीरता और स्पष्टता के कारण अत्यन्त मान्य हैं और अनेक महाविद्यालयों में उच्चस्तरीय पाठ्य ग्रन्थों के रूप में प्रयुक्त हैं। श्रील प्रभुपाद की रचनाएँ अट्ठाईस भाषाओं में अनूदित हैं। १९७२ ई० में केवल श्रील प्रभुपाद के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए स्थापित भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशक हो गया है। इस ट्रस्ट का एक अत्यधिक आकर्षक प्रकाशन श्रील प्रभुपाद द्वारा केवल अठारह मास में पूर्ण की गई उनकी एक अभिनव कृति है जो बंगाली धार्मिक महाग्रन्थ श्रीचैतन्यचरितामृत का सत्रह खण्डों में अनुवाद और टीका है।

बारह वर्षों में, अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न करते हुए परिव्राजक (व्याख्यान-पर्यटक) के रूप में श्रील प्रभुपाद ने विश्व के छहों महाद्वीपों की चौदह परिक्रमाएँ कीं। इतने व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी श्रील प्रभुपाद की उर्वरा लेखनी अविरत चलती रहती थी। उनकी रचनाएँ वैदिक दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के एक यथार्थ पुस्तकालय का निर्माण करती हैं।

विषय-सूची

अध्याय उन्नीस

अध्याय बीस

अध्याय इक्कीस

अध्याय बाईस

आमुख

हमें मानव समाज की वर्तमान आवश्यकता का ज्ञान होना चाहिए। लेकिन यह आवश्यकता है क्या ? अब मानव समाज किसी देश-विशेष या जाति-विशेष की भौगोलिक सीमाओं से बँधा हुआ नहीं है। यह मध्ययुग की अपेक्षा अधिक व्यापक है और अब एक राज्य अथवा एक मानव समाज की सार्वभौम प्रवृत्ति परलक्षित होती है। श्रीमद्भागवत के अनुसार आध्यात्मिक साम्यवाद के आदर्श समग्र मानव समाज की एकरूपता पर, अथवा कहना चाहें तो जीवात्माओं की समग्र शक्ति पर आधारित हैं। महान विचारक इसे सफल आदर्शवाद बनाने के लिए उत्सुक हैं। श्रीमद्भागवत द्वारा मानव समाज की इस आवश्यकता की पूर्ति हो सकेगी। अतः इसका शुभारम्भ वेदान्त दर्शन के इस सूत्र, **जन्माद्यस्य यतः** से होता है, जिससे सामान्य हित के आदर्श की स्थापना हो सके।

इस समय मानव समाज विस्मृति के अन्धकार में नहीं है। इसने सम्पूर्ण विश्व में भौतिक सुविधाओं, शिक्षा तथा आर्थिक विकास के क्षेत्र में तीव्र प्रगति की है। किन्तु इस समाज के विराट वपु (शरीर) में कहीं न कहीं कुछ टीस है, जिससे छोटी-छोटी बातों पर व्यापक रूप से झगड़े हो रहे हैं। अतः ऐसे दिशाबोध की आवश्यकता है जिससे सामान्य हित के लिए मानवता, शान्ति, मैत्री तथा समृद्धि के क्षेत्रों में एक हो सके। श्रीमद्भागवत से इस आवश्यकता की पूर्ति होगी क्योंकि यह समग्र मानव समाज के पुनर्आध्यात्मिकीकरण के लिए एक सांस्कृतिक भेंट है।

श्रीमद्भागवत का पठन-पाठन विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में भी होना चाहिए, क्योंकि महान छात्र-भक्त प्रह्लाद महाराज ने समाज के आसुरी स्वरूप को बदलने के लिए भागवत में (७.६.१) इसकी संस्तुति की है—

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥

मानव समाज में जो विषमता व्याप्त है उसका मूल कारण ईश्वरविहीन सभ्यता में नियमों का अभाव है। ईश्वर एक है, जो सर्वशक्तिमान है, जिससे प्रत्येक वस्तु का उद्भव होता है और उसी से सब का पालन होता है और उसी में सब का निलय होता है। भौतिक विज्ञान ने सृष्टि के परम स्रोत की खोज के लिए जो उपाय किये हैं वे अपर्याप्त हैं, किन्तु तथ्य यही है कि प्रत्येक वस्तु का परम स्रोत एक ही है। इस परम स्रोत की अत्यन्त सुन्दर एवं आधिकारिक व्याख्या भागवत अथवा श्रीमद्भागवत में हुई है।

श्रीमद्भागवत न केवल प्रत्येक वस्तु के मूल स्रोत को जानने, अपितु ईश्वर से अपने सम्बन्ध को जानने और इस परम ज्ञान के आधार पर मानव समाज की पूर्णता

के प्रति अपने कर्तव्य को पहचानने का दिव्य विज्ञान है। यह संस्कृत भाषा की ओजवान पठनीय सामग्री है जिसका विस्तृत अंग्रेजी अनुवाद किया जा रहा है, जिसके सतर्क पठन मात्र से ईश्वर को भलीभाँति जाना जा सकेगा, यहाँ तक कि इसका पाठक नास्तिकों द्वारा किये जाने वाले प्रहारों से अपनी रक्षा करने के लिए पूर्ण योग्य बन सकेगा। इसके अतिरिक्त, पाठक दूसरों को भी मूर्त तत्त्व के रूप में ईश्वर को स्वीकार कराने में सक्षम हो सकेगा।

श्रीमद्भागवत का शुभारम्भ मूल स्रोत की परिभाषा से होता है। यह श्रील व्यासदेव द्वारा रचे वेदान्त सूत्र का प्रामाणिक भाष्य है, जो क्रमशः नौ स्कन्धों में विकसित होकर भगवत्-साक्षात्कार की सर्वोच्च अवस्था तक पहुँचाने वाला है। दिव्य ज्ञान की इस महान कृति के अनुशीलन के हेतु मनुष्य में जिस एकमात्र योग्यता की आवश्यकता है वह यह कि सावधानी के साथ एक-एक पग आगे बढ़ा जाय, पढ़ने में कूद-फाँद न मचाई जाय। इसके अध्यायों को एक-एक करके पढ़ा जाय। पठन-सामग्री को इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि पहले मूल संस्कृत पाठ है, फिर शब्दार्थ, अनुवाद और तब तात्पर्य दिया गया है, जिससे कि जब कोई प्रथम नौ स्कंधों का वाचन समाप्त कर ले तो वह निश्चय ही भगवत्-साक्षात्कार कर लेता है।

इसका दशम स्कन्ध प्रथम नौ स्कन्धों से भिन्न है क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं से है। जब तक प्रथम नौ स्कन्धों को पढ़ नहीं लिया जाता तब तक दशम स्कन्ध के प्रभावों को ग्रहण नहीं किया जा सकता। यह ग्रंथ बारह स्कंधों में पूरा हुआ है, इनमें से प्रत्येक स्कंध अपने आप में स्वतन्त्र है, किन्तु सबों के लिए उत्तम होगा कि क्रमशः एक के पश्चात् दूसरे अध्याय को विराम दे दे कर पढ़ें।

श्रीमद्भागवत को प्रस्तुत करते हुए मैं अपनी न्यूनताओं को स्वीकार करता हूँ, किन्तु फिर भी मुझे विश्वास है कि श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित कथन के आधार पर विचारक तथा समाज के नायक इसका स्वागत करेंगे।

तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥
(भागवत १.५.११)

"इसके विपरीत, वह साहित्य जो अनन्त भगवान् के नाम, यश, रूप, तथा लीलाओं की दिव्य महिमा के वर्णनों से परिपूर्ण है, ऐसी दिव्य रचना है जो कुमार्गगामी सभ्यता के अपवित्र जीवन में क्रान्ति लाने के उद्देश्य से की गई है। ऐसा दिव्य साहित्य भले ही अनियमित रूप से प्रणीत हो, किन्तु पवित्र एवं साधुजनों के द्वारा सुना, गाया और स्वीकार किया जाता है।"

ॐ तत् सत्

ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी

भूमिका

"यह भागवत पुराण सूर्य के समान प्रकाशमान है और इसका उदय भगवान् श्रीकृष्ण के धर्म, ज्ञान आदि के सहित अपने धाम को प्रयाण करने के तुरन्त बाद ही हुआ। जिन व्यक्तियों ने कलियुग में अविद्या के घोर अन्धकार में अपनी दृष्टि खो दी है उन्हें इस पुराण से प्रकाश मिलेगा।" [श्रीमद्भागवत १.३.४३]

भारत का कालातीत ज्ञान प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों अर्थात् वेदों में व्यक्त हुआ है जो मानव ज्ञान के समस्त क्षेत्रों को स्पर्श करने वाला है। प्रारम्भ में इसका संरक्षण मौखिक परम्परा द्वारा होता रहा, किन्तु पाँच हजार वर्ष पूर्व, "भगवान् के साहित्यिक अवतार" श्रील व्यासदेव ने सर्वप्रथम वेदों को लिखित रूप प्रदान किया। वेदों के संकलन के पश्चात् उन्होंने उनके सारांश को **वेदान्त सूत्र** के रूप में प्रस्तुत किया। श्रीमद्भागवत व्यासदेव द्वारा ही विरचित उनके वेदान्त सूत्रों का भाष्य (टीका) है। इसका प्रणयन उन्होंने अपने आध्यात्मिक जीवन की परिपक्व अवस्था में अपने गुरु नारद मुनि के निर्देशन में किया था। वैदिक वाङ्मय रूपी वृक्ष का परिपक्व फल कहा जाने वाला यह श्रीमद्भागवत वैदिक साहित्य का सर्वाधिक पूर्ण प्रामाणिक भाष्य है।

श्रीमद्भागवत की रचना कर लेने के बाद व्यासजी ने अपने पुत्र मुनि शुकदेव गोस्वामी को इसके सार भाग को हृदयंगम कराया। तत्पश्चात् शुकदेव गोस्वामी ने सम्पूर्ण भागवत महाराज परीक्षित को हस्तिनापुर (दिल्ली के निकट) में गंगातट पर मुनियों की एक सभा में सुनाया। महाराज परीक्षित चक्रवर्ती सम्राट और महान राजर्षि थे। उन्हें जब सूचित किया गया कि एक सप्ताह के भीतर उनकी मृत्यु हो जायेगी, तो उन्होंने अपना सारा साम्राज्य त्याग दिया और वे गंगा नदी के तट पर आमरण व्रत करने तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए चले गये। भागवत का शुभारम्भ सम्राट परीक्षित द्वारा शुकदेव गोस्वामी से पूछे गये गम्भीर प्रश्न से प्रारम्भ होता है—

> "आप महान संतों तथा भक्तों के गुरु हैं। अतः मैं आपसे समस्त मनुष्यों और विशेष रूप से मरणासन्न मनुष्यों के लिए सिद्धि-मार्ग दिखलाने की याचना करता हूँ। कृपया मुझे बतायें कि मनुष्य के श्रवण, कीर्तन, स्मरण और आराधन का विषय क्या होना चाहिए और उसे क्या नहीं करना चाहिए? कृपया यह सब विधि-निषेध मुझे समझाइए।"

महाराज परीक्षित द्वारा पूछे गये इस प्रश्न तथा अनेक अन्य प्रश्नों का जो आत्मा की प्रकृति से लेकर ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के विषय तक सम्बन्ध रखते हैं, श्रीशुकदेव गोस्वामी ने जो उत्तर दिया उसे साधु-सभा सात दिनों तक मन्त्रमुग्ध होकर सुनती रही। फिर राजा की मृत्यु हो गई। जब गंगातट पर शुकदेव गोस्वामी श्रीमद्भागवत सुना रहे थे तो परम साधु सूत गोस्वामी वहाँ उपस्थित थे, जिन्होंने उसी कथा को नैमिषारण्य में पुनः एक साधु गोष्ठी में कह सुनाया। ये सभी ऋषिगण वहाँ पर

दीर्घकालीन यज्ञ-सत्रों का अनुष्ठान करने के उद्देश्य से एकत्र हुए थे और वे सभी कलियुग के आने के कारण, दुष्प्रभावों को शमन करने तथा जनसामान्य की कल्याण भावना से पूरित थे। जब इन ऋषियों ने प्रार्थना की कि सूत गोस्वामी वैदिक ज्ञान का सार कह सुनाएँ तो उन्होंने अपनी स्मरण शक्ति से श्रीमद्भागवत के अठारहों हजार श्लोक सुना दिये।

श्रीमद्भागवत का पाठक वस्तुतः महाराज परीक्षित द्वारा पूछे गये प्रश्नों का शुकदेव गोस्वामी द्वारा दिया गया उत्तर जिस रूप में सुनता है वे सूत गोस्वामी के मुख से निकले हैं। कहीं कहीं ये नैमिषारण्य में एकत्र साधुओं के प्रतिनिधि शौनक ऋषि द्वारा पूछे गये प्रश्नों का भी उत्तर देते हैं। इस प्रकार एकसाथ दो प्रकार के संवाद चलते रहते हैं—एक गंगातट पर महाराज परीक्षित तथा शुकदेव गोस्वामी के मध्य और दूसरा नैमिषारण्य में सूत गोस्वामी तथा शौनक ऋषि के मध्य का संवाद। यही नहीं, बीच-बीच में शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित को उपदेश देते हुए ऐतिहासिक घटनाओं का भी वर्णन करते चलते हैं। वे उन लम्बे-लम्बे दार्शनिक तर्कों का विवरण भी प्रस्तुत करते हैं जो मैत्रेय मुनि तथा उनके शिष्य विदुर के बीच हुए। भागवत की इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ लेने पर संवादों में जो मिश्रण हुआ है तथा घटनाओं के जो जो स्रोत हैं उन्हें सरलता से समझा जा सकता है। चूंकि मूलपाठ में तिथिक्रम नहीं, वरन् दार्शनिक वाङ्मय ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, अतः श्रीमद्भागवत की विषयवस्तु के प्रति सजग रहने की आवश्यकता है जिससे इसके गम्भीर सन्देश को पूरी तरह हृदयंगम किया जा सके।

यह ध्यान देने की बात है कि भागवत के समस्त खंडों को आदि से अन्त तक क्रमानुसार पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। इस संस्करण के अनुवादक ने भागवत की तुलना मिश्री से की है---चाहे जहाँ से इसका रसास्वाद करें सर्वत्र समान मिठास और स्वाद मिलेगा।

भागवत का यह संस्करण इसका पहला पूर्ण अंग्रेजी अनुवाद है जिसमें मूलपाठ के साथ इसकी विस्तृत टीका है जो अंग्रेजी भाषी जनता के लिए सर्वसुलभ बनाया गया है। यह विश्व के सर्वाधिक प्रसिद्ध भारतीय धर्म तथा दर्शन के उपदेशक कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्रील ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के पाण्डित्यपूर्ण एवं भक्तिमय प्रयास का परिणाम है। उनके संस्कृत पाण्डित्य और वैदिक संस्कृति के साथ ही आधुनिक जीवन-पद्धति से घनिष्ट परिचय के फलस्वरूप इस महत्वपूर्ण वरेण्य साहित्य का भव्य भाष्य पाश्चात्य जगत के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

पाठकों को यह कृति अनेक कारणों से महत्वपूर्ण लगेगी। जो लोग भारतीय संस्कृति के मूल से परिचित होना चाहते हैं उनके लिए यह प्रत्येक पक्ष पर विस्तृत सूचना का आगार सिद्ध होगी। तुलनात्मक दर्शन तथा धर्म के विद्यार्थियों के लिए भागवत, भारतीय आध्यात्मिक धरोहर के अर्थ समझने में भेदक दृष्टि प्रदान करने वाला है। समाज-विज्ञानियों तथा नृतत्वशास्त्रियों के लिए भागवत शान्त एवं वैज्ञानिक ढंग से सुनियोजित वैदिक संस्कृति की व्यावहारिक कार्यपद्धति को प्रकट करने वाला

है, जिसके प्रतिष्ठानों का एकीकरण अत्यन्त विकसित चिन्मय सार्वभौम दृष्टिकोण के आधार पर हुआ था। साहित्य के रसिकों को भागवत श्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ प्रतीत होगा। मनोविज्ञान के छात्रों को इससे चेतना, मानव आचरण तथा आत्मस्वरूप के दार्शनिक अध्ययन की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकेगी। अन्त में, जो आत्म-प्रकाश की खोज करने वाले हैं उनके लिए भागवत एक सरल व्यावहारिक पथप्रदर्शक का काम देगा जो आत्मज्ञान तथा परम सत्य का साक्षात्कार करायेगा। **भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट** द्वारा प्रस्तुत किया गया अनेक खण्डों में समाप्य समग्र मूलपाठ दीर्घकाल तक आधुनिक मानव के बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान बनाये रखेगा।

—प्रकाशक

चौदहवाँ अध्याय

भवाटवी का वर्णन

इस अध्याय में भवाटवी (भौतिक अस्तित्त्व के वन) का अर्थ स्पष्ट किया गया है। कभी-कभी वणिकजन अनेक दुर्लभ वस्तुओं का संग्रह करके लाभसहित नगर में बेचने के लिए वन (अटवी) में प्रवेश करते हैं, किन्तु वन मार्ग सदैव ही संकटों से पूर्ण है। जब शुद्ध जीव प्रभु की सेवा त्याग कर भौतिक जगत् का भोग करना चाहता है तो श्रीकृष्ण उसे इस भौतिक जगत् में प्रवेश करने का अवसर प्रदान करते हैं। **प्रेम विवर्त** में कहा गया है—**कृष्ण बहिर्मुख हना भोग वांछा करे।** इसी कारण शुद्ध जीवात्मा भौतिक जगत् में आता है। प्रकृति के तीनों गुणों के प्रभाव में आकर जीवात्मा विभिन्न योनियों में देह धारण करता है। कभी वह स्वर्ग लोक में देवता बनता है तो कभी मर्त्य लोकों में नगण्य प्राणी का रूप धारण करता है। इस सम्बन्ध में श्रील नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं—**नाना योनि सदा फिरे**—जीवात्मा अनेक योनियों में भ्रमण करता है। **कदर्य भक्षण करे**—उसे घृणित वस्तुएँ खानी और भोगनी पड़ती हैं। सर्वदयामय वैष्णव की शरण के बिना बद्ध जीव माया के चंगुल से नहीं छूट पाता। जैसा कि भगवद्गीता में कहा गया है (**मन:षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति**) जीवात्मा अपने मन तथा पंच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा भौतिक जीवन प्रारम्भ करता है और इन्हीं के बल पर वह अपने अस्तित्त्व के लिए इस भौतिक जगत् में संघर्ष करता है। इन इन्द्रियों की तुलना वन में रहने वाले धूर्तों तथा ठगों से की गई है। वे मनुष्य का आत्म-ज्ञान हर कर उसे अज्ञानता के जाल में डाल देते हैं। इस तरह इन्द्रियाँ धूर्तों तथा ठगों के तुल्य हैं जो उसके चिन्मय ज्ञान को लूट लेती हैं। और सारे कुटुम्बी, पत्नी तथा सन्तानें वन के भयानक पशुओं के तुल्य हैं। इन भयानक पशुओं का कार्य ही है मनुष्यों का मांस भक्षण करना। जीवात्मा इन शृगालों तथा लोमड़ियों (पत्नी तथा सन्तान स्वरूप) को अपने ऊपर आक्रमण करने देता है और इस प्रकार उसका अप्राकृत जीवन समाप्त हो जाता है। भौतिक जीवन के वन में प्रत्येक प्राणी मच्छरों की भाँति विद्वेषी है और मूषक तो निरन्तर उत्पात ही मचाते रहते हैं। इस भौतिक जगत् में प्रत्येक प्राणी अनेक अप्रिय परिस्थितियों में जा पहुँचता है और ईर्ष्यालु व्यक्तियों तथा उत्पाती पशुओं से घिरा रहता है। फलस्वरूप जीवात्मा इनसे सतत लूटा जाता है और अन्य जीवात्माओं द्वारा दंशित होता रहता है। इतने

व्यवधानों के वाद भी वह गृहस्थाश्रम को नहीं छोड़ना चाहता। भविष्य में सुखी रहने के प्रयास में कर्म करता रहता है। इस प्रकार वह कर्मफलों में अधिकाधिक फँसता जाता है और कुकृत्य करने के लिए वाध्य होता है। उसके प्रत्यक्ष साक्षी होते हैं—दिन में सूर्य तथा रात्रि में चन्द्रमा। देवता भी देखने वाले हैं, किन्तु बद्ध जीव सोचता है कि इन्द्रियतृप्ति के उसके सारे प्रयासों को कोई नहीं देख पा रहा। अतः जव भी वह पकड़ा जाता है तो कुछ काल के लिए सब कुछ परित्याग कर देता है, किन्तु देह से अत्यधिक आसक्ति रहने के कारण सिद्धि प्राप्त करने के पूर्व ही उसका यह त्याग समाप्त हो जाता है।

इस भौतिक जगत् में अनेक ईर्ष्यालु व्यक्ति हैं। कर लगाने वाले राज्य की तुलना उलूक से की जा सकती है। झंकार करते अदृश्य झींगुर प्रकृति के दूत बनकर बद्धजीव को सताते हैं, किन्तु उसकी बुद्धि कुसंग के कारण भ्रष्ट हो जाती है। भौतिक अस्तित्व की वाधाओं से मुक्ति पाने के प्रयास में वद्धजीव नामधारी योगियों, साधुओं तथा अवतारियों के चंगुल में पड़ जाता है वे जादू तो दिखा सकते हैं, किन्तु भक्ति को नहीं समझ पाते। कभी-कभी वद्धजीव अपना सारा धन खो देने के कारण अपने कुटुम्बीजनों से रुष्ट हो जाता है। इस भौतिक जगत् में बद्धजीव को रंचमात्र भी सुख नहीं है, किन्तु वह जन्म-जन्मातर तक इसी की कामना करता है। राज्य कर्मचारी नरभक्षी असुरों की तरह हैं जो राज्य के संरक्षण के लिए प्रचुर कर लगाते हैं। कठोर श्रम करने वाला बद्धजीव इन करों से अत्यन्त दुःखी रहता है।

कर्मों का मार्ग दुर्लंध्य पर्वतों से होकर जाता है। बद्धजीव कभी-कभी इन पर्वतों को लाँघना तो चाहता है, किन्तु वह कभी सफल नहीं हो पाता। फलतः वह अधिक संतप्त एवं निराश हो उठता है। भौतिक रूप से तथा आर्थिक रूप से संत्रस्त होकर बद्धजीव वृथा ही अपने परिवार को प्रताड़ित करता रहता है। भौतिक दृष्टि से चार प्रमुख आवश्यकताएँ होती हैं, जिनमें से नींद की तुलना अजगर से की गई है। नींद आने पर बद्धजीव अपने मूल अस्तित्व को पूरी तरह भूल जाता है और भौतिक जीवन की यातनाओं का अनुभव नहीं हो पाता। कभी-कभी धन की आवश्यकता होने पर वद्ध जीव चोरी और ठगी करता है, भले ही वह आध्यात्मिक उन्नति के लिए ऊपर-ऊपर भक्तों की संगति क्यों न करे। उसका एकमात्र व्यापार माया के चंगुल से छूटना रहता है, किन्तु सही निर्देश के अभाव में वह अधिकाधिक उलझता जाता है। यह भौतिक जगत् मात्र उलझन है और सुख, दुःख, राग, द्वेष तथा शत्रुता जैसी यातनाओं से युक्त है। तात्पर्य है कि यह यातना एवं दुःख से परिपूर्ण है। जब व्यक्ति पत्नी में आसक्ति और कामाचार तथा संसर्ग में लिप्त रहने के कारण ज्ञान खो देता है तो उसकी समग्र चेतना दूषित हो जाती है। वह केवल स्त्री-संग की बातें सोचता रहता है। काल, सर्प के समान प्रत्येक प्राणी का प्राण लेने वाला है चाहे वह ब्रह्मा हों या तुच्छ चींटी। कभी-कभी बद्ध जीव काल से वचना चाहता है तो वह किसी नकली मुक्तिदाता की शरण लेता है जो दुर्दैववश स्वयं की रक्षा नहीं कर

सकता। तो फिर वह दूसरों की कैसे रक्षा कर सकता है ? ऐसे नकली मुक्तिदाता योग्य ब्राह्मणों तथा वैदिक साधनों से प्राप्त प्रामाणिक ज्ञान की परवाह नहीं करते। वे व्यभिचार में लिप्त रहते हैं और विधवाओं तक को संभोग करने की छूट देने के पक्षपाती हैं। इस प्रकार वे वन के वानरों के तुल्य हैं। श्रील शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित् को विस्तार पूर्वक भौतिक वन (भवाटवी) तथा इसके दुर्गम पथ के विषय में समझाते हैं।

स होवाच

य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहार-विनिर्मितविविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादिसंसारानुभवस्य द्वार-भूतेनषडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्यापतित ईश्वरस्य भगवतो विष्णोर्वशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मानुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्तत्तापोपशमनीं हरिगुरुचरणारविन्दमधुकरानुपदवीम वरुन्धे ॥ १ ॥

सः=स्वरूपसिद्ध भक्त (श्रीशुकदेव गोस्वामी); **ह**=निस्संदेह; **उवाच**=कहा; **सः**=वह (बद्ध-आत्मा); **एषः**=यह; **देहात्म-मानिनाम्**=अज्ञानवश देह को अपना मानने वाले व्यक्तियों का; **सत्त्वादि**=सत्त्व, रज तथा तम के; **गुण**=गुणों के द्वारा; **विशेष**=विशेष; **विकल्पित**=अज्ञानवश कल्पित; **कुशल**=कभी-कभी अनुकूल कर्मों द्वारा; **अकुशल**=कभी-कभी प्रतिकूल कर्मों के द्वारा; **समवहार**=दोनों के मिश्रण द्वारा समवहार से; **विनिर्मित**=प्राप्त; **विविध**=नाना प्रकार; **देह-आवलिभिः**=देहों की शृंखला के द्वारा; **वियोगसंयोगादि**=एक प्रकार के देह का त्याग (वियोग) तथा अन्य की स्वीकृति (संयोग) द्वारा; **अनादिसंसारअनुभवस्य**=देहान्तर की अनादि प्रक्रिया की प्रतीति का; **द्वारभूतेन**=द्वारों के रूप में विद्यमान होकर; **षट्-इन्द्रियवर्गेण**=इन छः इन्द्रियों (मन तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियों—आँख, कान, जीभ, नाक तथा त्वचा) द्वारा; **तस्मिन्**=उस पर; **दुर्ग-अध्ववत्**=दुर्लंघ्य पथ की भाँति; **असुगमे**=पार करने में अगम न होने से; **अध्वनि**=वन के पथ पर; **आपतितः**=पड़कर; **ईश्वरस्थ**=नियन्ता का; **भगवतः**=श्रीभगवान्; **विष्णोः**=भगवान् विष्णु; **वश-वर्तिन्या**=वश में रहकर कर्म करते हुए; **मायया**=माया द्वारा; **जीवलोकः**=बद्ध जीवात्मा; **अयम्**=यह; **यथा**=जैसे; **वणिक**=व्यापारी, बनिया; **सार्थः**=

उद्देश्य सहित, सोद्देश्य; **अर्थपर:**=धन में आसक्त; **स्वदेह-निष्पादित**=अपने देह से किया गया; **कर्म**=कार्यों का फल; **अनुभव:**=जो अनुभव करता है; **श्मशान-वत् अशिवतमायाम्**=अशुभ श्मशान भूमि के सदृश; **संसार-अटव्यां**=भौतिक जीवन के वन में; **गत:**=प्रवेश करने पर; **न**=नहीं; **अद्यअपि**=अब तक; **विफल**=असफल; **बहु-प्रतियोग**=अनेक विघ्नों तथा दु:खों से पूर्ण; **इह:**=इस भौतिक जगत् में जिनके कार्य; **तत्-ताप-उपशमनीम्**=भौतिक जीवन रूपी वन के दु:खों को शान्त करने वाला; **हरि-गुरु-चरण-अरविन्द**=प्रभु तथा भक्तों के चरणारविन्द में; **मधुकर अनुपदवीम्**=भ्रमर सदृश अनुरक्त भक्तों के अनुगमन का पथ; **अवरुन्धे**=प्राप्त।

अनुवाद

राजा परीक्षित् ने जब श्रीशुकदेव गोस्वामी से भौतिक वन का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कहा तो उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया—हे राजन्! वणिक की रुचि सदैव धन उपार्जन के प्रति रहती है। कभी-कभी वह लकड़ी तथा मिट्टी जैसी कुछ अल्प मूल्य की वस्तुएँ प्राप्त करने और उन्हें ले जाकर नगर में अच्छे मूल्य में विक्रय करने की आकांक्षा से वन में प्रवेश करता है। इसी प्रकार बद्धजीव लोभवश कुछ भौतिक सुख लाभ करने की इच्छा से इस भौतिक जगत् में प्रवेश करता है। धीरे-धीरे वह वन के सघन भाग में प्रवेश करता है। इस भौतिक जगत् में प्रवेश करके शुद्ध जीव सांसारिकता में जो भगवान् विष्णु के नियन्त्रण में उनकी बहिरंगा शक्ति (माया) है, बँध जाता है। इस प्रकार जीवात्मा बहिरंगा शक्ति (माया) के वशीभूत हो जाता है। स्वतन्त्र होने तथा वन में भटकने के कारण वह भगवान् की सेवा में सदैव तत्पर रहने वाले भक्तों का संग प्राप्त नहीं कर पाता। एक बार देहात्मबुद्धि के कारण वह माया के वशीभूत होकर एक के पश्चात् एक अनेक प्रकार के शरीर धारण करता है और भौतिक गुणों (सत्त्व, रज् तथा तम्) के द्वारा प्रेरित होकर कर्म में प्रवृत्त होता है। इस प्रकार बद्धजीव कभी स्वर्ग लोक तो कभी भूलोक और कभी पाताल लोक तथा निम्न योनियों में प्रवेश करता है। इस प्रकार अनेक देहों के कारण वह निरन्तर कष्ट सहन करता है। ये कष्ट तथा पीड़ाएँ कभी-कभी मिश्रित रहती हैं। कभी ये असह्य होती हैं तो कभी नहीं। ये शारीरिक दशाएँ बद्ध जीव को अनुभूति के कारण प्राप्त होती हैं। वह अपने मन तथा पंचेन्द्रियों का उपयोग ज्ञान-प्राप्ति के लिए करता है और इन्हीं से विभिन्न देह तथा विभिन्न दशाएँ प्राप्त होती हैं। जीव को बहिरंगा शक्ति, माया के नियन्त्रण में आकर इन इन्द्रियों का उपभोग करके दु:ख उठाना पड़ता है। वह वास्तव में छुटकारा पाने की खोज में रहता है, किन्तु सामान्यत: वह भटकता है, यद्यपि कभी-कभी अत्यन्त कठिनाई के पश्चात् उसे छुटकारा मिल जाता है। इस प्रकार अस्तित्व के लिए संघर्षशील रहने के कारण भगवान् विष्णु के चरणारविन्दों में भ्रमरों के समान अनुरक्त भक्तों की शरण नहीं मिल पाती है।

तात्पर्य

इस श्लोक में सबसे महत्त्वपूर्ण सूचना है, **हरि-गुरु-चरण-अरविन्द-मधुकर-अनुपदवीम्**—इस भौतिक जगत् में बद्धजीव स्व-कर्मवश भटकते रहते हैं और कभी-कभी अत्यन्त कठिनाई से इससे छूट पाते हैं। तात्पर्य यह है कि जीव कभी सुखी नहीं रहता। वह अपने अस्तित्त्व के लिए निरन्तर संघर्ष करता है। वास्तव में उसका एक मात्र प्रयोजन गुरु की शरण में जाकर उन्हीं के माध्यम से श्रीभगवान् के चरणारविन्द को स्वीकार करना है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—**गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज**। इस भौतिक जगत्रूपी वनों या नगरों में अस्तित्त्व के लिए संघर्ष करने वाले प्राणी वास्तव में सुखी नहीं हैं। वे मात्र विविध पीड़ाओं एवं इच्छाओं का भोग कर रहे हैं, सामान्यतः ऐसी पीड़ाएँ जो अशुभ हैं। वे इन दुःखों से मुक्ति पाना चाहते हैं, किन्तु अज्ञानवश ऐसा नहीं कर पाते। उनके लिए तो वेदों में कहा गया है—**तद् विज्ञानार्थं स गुरुम् एवाभि-गच्छेत्** जब अस्तित्त्व के लिए संघर्ष में इस भौतिक जगत्रूपी वन में जीव खो जाता है तो उसका प्रथम कार्य होता है ऐसा प्रामाणिक गुरु खोज निकालना जो श्रीभगवान् के चरण कमलों में निरन्तर अनुरक्त रहता है। तात्पर्य यह कि यदि वह अस्तित्त्व के लिए संघर्ष से छुटकारे का इच्छुक होता है तो उसे चाहिए कि वह प्रामाणिक गुरु खोजे और उसके चरण कमल में रहकर शिक्षा प्राप्त करे। इस प्रकार वह इस संघर्ष से बाहर निकल सकता है।

यहाँ भौतिक जगत् की तुलना वन से की गयी है। अतः यह तर्क किया जा सकता है कि कलियुग में आधुनिक सभ्यता मुख्यतः नगरों में ही स्थित है। किन्तु एक बड़ा नगर विशाल वन के तुल्य है। सच तो यह है कि नगर का जीवन वन में रहने की अपेक्षा अधिक घातक है। यदि कोई व्यक्ति बिना किसी मित्र और आश्रय के किसी नगर में प्रवेश करता है तो उसके लिए उस नगर में आश्रय पाना और निवास करना वन में रहने से भी अधिक कठिन है। इस पृथ्वी पर अनेक बड़े-बड़े नगर हैं और जहाँ भी दृष्टि जाती है अहर्निश जीवन संघर्ष छिड़ा दिखता है। लोग ७०-८० मील की गति से मोटर कारों में इधर-उधर दौड़ते रहते हैं, जो जीवन संघर्ष का दृश्य उपस्थित करता है। उन्हें भोर में शीघ्र उठकर मोटर में द्रुतगति से यात्रा करनी होती है। इससे सतत दुर्घटना का भय बना रहता है और काफी सावधानी बरतनी पड़ती है। अपने वाहन में रहकर भी मनुष्य अनेकानेक दुश्चिन्ताओं से घिरा रहता है तथा उसका संघर्ष कदापि मंगलमय नहीं होता। मनुष्य के अतिरिक्त बिल्लियाँ तथा कुत्ते जैसी योनियाँ भी अपने अस्तित्त्व के लिए अहर्निश कठिन संघर्ष करती हैं; इस प्रकार जीवन संघर्ष चलता रहता है और यह बद्ध जीव एक स्थिति से दूसरी स्थिति को प्राप्त होता है। अल्पकाल के लिए वह शिशु रहता है तत्पश्चात् वह बालक में बदल जाता है। बालक से युवा और युवा से पुरुष और फिर वृद्धावस्था

को प्राप्त होता है। अन्त में जब यह शरीर कार्य करने में अक्षम हो जाता है तो इसे अन्य योनियाँ स्वीकार करनी पड़ती हैं। शरीर का त्याग मृत्यु कहलाती है और दूसरे शरीर को ग्रहण करना ही जन्म है। मानव शरीर धारण करने का यही लाभ है कि वह प्रामाणिक गुरु प्राप्त करके उनके माध्यम से श्रीभगवान् को प्राप्त करे। यह श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन मानव समाज के सदस्यों को, जो मूर्ख प्रचारकों की वाक्य रचना द्वारा मार्ग से भ्रमित किये जाते हैं, अवसर प्रदान करने के लिए चलाया गया है। कोई भी प्राणी अस्तित्व के इस जीवन संघर्ष से, जो कष्टों से परिपूर्ण है, तब तक छुटकारा नहीं पा सकता जब तक कि वह श्रीभगवान् के शुद्ध भक्त की शरण न ले। एक स्थिति से दूसरी में भौतिक प्रयास तो बदलते हैं, किन्तु वास्तव में किसी को इस जीवन संघर्ष से छुटकारा नहीं मिल पाता। इसका एकमात्र उपाय प्रामाणिक गुरु के चरण कमल और उनके द्वारा श्रीभगवान् के चरण कमलों की प्राप्ति है।

यस्यामु ह वा एते षडिन्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते। तद्यथा पुरुषस्य धनं यत्किञ्चिद्धर्मौपयिकं बहुकृच्छ्राधिगतं साक्षात्परमपुरुषाराधनलक्षणो योऽसौ धर्मस्तं तु साम्पराय उदाहरन्ति। तद्धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणा-स्वादनावघ्राणसङ्कल्पव्यवसायगृहग्राम्योपभोगेन कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य विलुम्पन्ति ॥ २ ॥

यस्याम्=जिसमें; **उ ह**=निश्चय ही; **वा**=अथवा; **एते**=ये सब; **षट्-इन्द्रिय-नामानः**=जो छः इन्द्रियाँ (मन तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) कहलाती हैं; **कर्मणा**=अपने कर्म के द्वारा; **दस्यवः**=दस्यु (लूटेरे); **एव**=निश्चय ही; **ते**=वे; **तत्**=वह; **यथा**=जिस प्रकार; **पुरुषस्य**=व्यक्ति का; **धनम्**=धन; **यत्**=जो भी; **किंचित्**=थोड़ा; **धर्म-औपयिकम्**=धार्मिक सिद्धान्तों का साधन; **बहु-कृच्छ्र-अधिगतम्**=अतीव श्रम से उपार्जित; **साक्षात्**=प्रत्यक्ष; **परम-पुरुष-आराधन-लक्षणः**=यज्ञ इत्यादि के द्वारा भगवान् की पूजा करना जिनके लक्षण हैं; **यः**=जो; **असौ**=वह; **धर्मः**=धार्मिक सिद्धान्त (मर्यादा); **तम्**=वह; **तु**=किन्तु; **साम्पराय**=मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा के लाभार्थ; **उदाहरन्ति**=बुद्धिमान घोषित करते हैं; **तत् धर्म्यम्**=धार्मिक (वर्णाश्रम धर्म के पालन से सम्बन्धित); **धनम्**=धन; **दर्शन**=दर्शन द्वारा; **स्पर्शन्**=स्पर्श द्वारा; **श्रवण**=श्रवण द्वारा; **आस्वादन**=स्वाद के दारा; **अवघ्राण**=सूँघकर; **संकल्प**=निश्चय द्वारा; **व्यवसाय**=निष्कर्ष रूप में; **गृह**=घर में; **ग्राम्य-उपभोगेन**=भौतिक उपभोग द्वारा; **कुनाथस्य**=भ्रमित बद्ध जीवात्मा का; **अजित-आत्मनः**=जिसने अपने पर विजय प्राप्त नहीं की; **यथा**=जैसे; **सार्थस्य**=इन्द्रियों की तृप्ति में रुचि रखने वाले जीवात्मा का; **विलुम्पन्ति**=लूट लेते हैं।

अनुवाद

संसाररूपी वन में अनियन्त्रित इन्द्रियाँ दस्युओं के समान हैं। बद्ध जीव श्रीकृष्ण-भावनामृत के विकास के लिए कुछ धन अर्जित कर सकता है, किन्तु दुर्भाग्यवश अनियन्त्रित इन्द्रियाँ अपनी तुष्टि के लिए इस धन को लूट लेती हैं। इन्द्रियाँ दस्यु हैं, क्योंकि वे जीव को दर्शन, घ्राण, आस्वाद, स्पर्श, श्रवण, संकल्प-विकल्प तथा कामना में अपना धन व्यय करने के लिए बाध्य करती हैं। इस प्रकार बद्ध जीव अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने के लिए बाध्य हो जाता है जिससे उसका सारा धन व्यय हो जाता है। यद्यपि यह धन यथार्थतः धार्मिक कृत्यों के सम्पादन हेतु अर्जित हुआ रहता है, किन्तु दस्यु-इन्द्रियाँ इसका हरण कर लेती हैं।

तात्पय

पूर्वजन्मार्जिता विद्या पूर्वजन्मार्जितं धनं अग्रे धावति धावति। वर्णाश्रम धर्म के नियमों का पालन करने पर मनुष्य को भौतिक जगत् में उच्चतर पद प्राप्त होता है। वह धनी, विद्वान्, सुन्दर या उच्चकुलीन हो सकता है। जिस किसी व्यक्ति के पास ये सम्पत्तियाँ होती हैं उसे यह समझना चाहिए कि ये श्रीकृष्णभावनामृत के विकास के निमित्त हैं। दुर्भाग्यवश मार्ग से भ्रमित व्यक्ति अपने उच्च पद का उपयोग इन्द्रियतृप्ति के लिए करता है। फलतः अनियन्त्रित इन्द्रियों को लुटेरों की संज्ञा दी जाती है। धार्मिक कृत्यों को करने से मनुष्य को जो उच्च स्थान प्राप्त होता है, वह लुटेरी इन्द्रियों द्वारा विनष्ट कर दिया जाता है। वर्णाश्रम धर्म के अन्तर्गत धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करते हुए मनुष्य को सुविधाजनक पद प्राप्त होता है। वह अपनी सम्पत्ति का उपयोग सरलतापूर्वक श्रीकृष्णभावनामृत के विकास में कर सकता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि इस भौतिक जगत में जो धन तथा अवसर प्राप्त हुआ है उसे इन्द्रियतृप्ति में व्यर्थ न किया जाय। वे श्रीकृष्णभावनामृत की उन्नति के लिए हैं। यह श्रीकृष्णभावनामृत अभियान एक सुनिश्चित विधि के द्वारा व्यक्तियों को मन तथा पंच ज्ञानेन्द्रियों पर संयम करना सिखाता है। मनुष्य को चाहिए कि वह थोड़ी तपस्या करे और भक्ति के नियमित जीवन के अतिरिक्त अन्य किसी बात पर धन को व्यय न करे। इन्द्रियाँ चाहती हैं कि सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ देखी जायें फलतः मन्दिर में श्री-विग्रह के सज्जा पर धन व्यय किया जाय। इसी प्रकार जिह्वा (जीभ) केवल उसी भोजन का आस्वादन करे जिसे श्रीमूर्ति को समर्पित किया गया हो। नाक का उपयोग श्रीविग्रह को समर्पित पुष्पों को सूँघने में तथा कानों का उपयोग हरे कृष्ण मन्त्र के कीर्तन को सुनने में किया जा सकता है। इस विधि से इन्द्रियों का नियमन एवं सदुपयोग श्रीकृष्णभावनामृत के विकास में किया जा सकता है। इस प्रकार अपने उत्तम पद को सांसारिक इन्द्रियतृप्ति—यथा अवैध यौन सम्बन्ध, मांस भक्षण, मादक द्रव्यों के सेवन तथा जुआ के लिए विनष्ट नहीं होने

देना चाहिए। इस भौतिक जगत् में मोटर कार चलाकर, रात्रि-क्लबों में समय नष्ट कर या जलपान गृह में घृणित भोजन का स्वाद लेकर मनुष्य अपने वैभवशाली पद को खो देता है। इस प्रकार लुटेरी इन्द्रियाँ बद्धजीव द्वारा अत्यन्त श्रम से संचित सम्पत्ति को लूट लेती हैं।

अथ च यत्र कौटुम्बिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृकसृगाला एवानिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुम्बिन उरणकवत्संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपि हरन्ति ॥ ३ ॥

अथ=इस प्रकार; **च**=भी; **यत्र**=जिसमें; **कौटुम्बिकाः**=कुटुम्बी जन; **दारा-अपत्य-आदयः**=स्त्री तथा सन्तान से प्रारम्भ करके; **नाम्ना**=केवल नाम के द्वारा; **कर्मणा**=अपने आचरण के द्वारा; **वृक्-शृगालाः**=भेड़िया तथा शृगाल; **एव**=निश्चित रूप से; **अनिच्छतः**=ऐसा मनुष्य जो अपने धन को व्यय करने का अनिच्छुक है; **अपि**=निश्चय ही; **कदर्यस्य**=अत्यन्त कृपण प्राणी, कंजूस; **कुटुम्बिनः**=परिवार के प्राणियों से घिरा हुआ; **उरणक-वत्**=मेमने की भाँति; **संरक्ष्यमाणम्**=यद्यपि सुरक्षित है; **मिषतः**=जो देख रहा है; **अपि**=भी, ही; **हरन्ति**=बलपूर्वक छीन लेते हैं।

अनुवाद

हे राजन्! इस भौतिक जगत् में स्त्री-पुत्रादि नाम से जाने वाले कुटुम्बी जन वास्तव में भेड़ियों तथा शृगालों की भाँति व्यवहार करते हैं। चरवाहा अपनी भेड़ों की रक्षा यथाशक्ति करना चाहता है, किन्तु भेड़िये तथा लोमड़ियाँ उन्हें बलपूर्वक उठा ले जाती हैं। इसी प्रकार यद्यपि कंजूस सतर्कतापूर्वक अपने धन की चौकसी रखना चाहता है, किन्तु उसके पारिवारिक प्राणी उसकी समस्त सम्पत्तियों को उसके जागरुक रहते हुए भी बलपूर्वक छीन लेते हैं।

तात्पर्य

हिन्दी के किसी कवि ने कहा है—**दिन की डकिनी रात की बघिनी पालक पालक लहु चूसे।** पत्नी दिन में जादूगरिनी के तुल्य और रात्रि में बाघिन की तरह होती है। उसका एकमात्र कार्य होता है दिन-रात अपने पति के खून को चूसना। दिन भर गृहस्थी के खर्चों में पति द्वारा खून-पसीना एक करके अर्जित धन चला जाता है। रात्रि में, यौन सुख के कारण, पति वीर्य रूप में अपना रक्तपात करता है। इस प्रकार वह अपनी पत्नी द्वारा अहर्निश चूसा जाता है। इसी प्रकार बच्चे भी भेड़िये, शृगाल तथा लोमड़ियों के तुल्य हैं। जिस प्रकार भेड़िये, शृगाल व लोमड़ियाँ चरवाहे

के सतर्क रहने पर भी मेमनों को उठा ले जाते हैं, उसी प्रकार बच्चे भी पिता का धन ले लेते हैं, यद्यपि इस धन की देख-रेख पिता ही करता है। इस प्रकार कुटुम्बीजन भले ही पत्नी तथा सन्तान कहलाते हों, किन्तु वास्तव में वे हैं लुटेरे ही।

यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवावपनकाले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवत्येवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन्न हि कर्माण्युत्सीदन्ति यदयं कामकरण्ड एष आवसथः ॥ ४ ॥

यथा=जिस प्रकार; **हि**=निश्चय ही; **अनुवत्सरम्**=प्रत्येक वर्ष; **कृष्यमाणम्**=जोती जाने पर; **अपि**=यद्यपि; **अदग्ध-बीजम्**=बिना जले हुए बीज; **क्षेत्रम्**=खेत; **पुनः**=फिर; **एव**=निश्चय ही; **आवपन-काले**=बीजों को बोते समय; **गुल्म**=झाड़ियों से; **तृण**=घास-फूस से; **वीरुद्भिः**=लताओं से; **गह्वरम् इव**=कुंज तुल्य; **भवति**=हो जाता है; **एवम्**=इस प्रकार; **एव**=निश्चय ही; **गृह-आश्रमः**=पारिवारिक जीवन, गृहस्थाश्रम; **कर्मक्षेत्रम्**=कार्य रूप खेत, कर्मभूमि; **यस्मिन्**=जिसमें; **न**=नहीं; **हि**=निश्चय ही; **कर्माणि उदसीदन्ति**=सकाम कर्म विलुप्त हो जाते हैं; **यत**=अतः; **अयम्**=यह; **काम-करण्डः**=फलवती इच्छाएँ; **एषः**=यह; **आवसथः**=आवास, निकेत।

अनुवाद

कृषक प्रतिवर्ष अपने अनाज के खेत को जोतकर सभी घास फूस निकालता रहता है तो भी उनके बीज खेत में पड़े रहते हैं और पूरी तरह न जल पाने के कारण खेत में बोये गये पौधों के साथ पुनः उग आते हैं। घास फूस को जोतकर उलट देने पर भी वे सघन रूप से ऊपर निकल आते हैं। इसी प्रकार गृहस्थाश्रम एक कर्मक्षेत्र है। जब तक गृहस्थाश्रम भोगने की कामना पूरी तरह भस्म नहीं कर दी जाती, तब तक पुनः पुनः वह उदय होती रहती है। पात्र में बन्द कपूर को हटा लेने पर भी पात्र से सुगन्ध नहीं जाती। उसी तरह जब तक कामनाओं के बीज विनष्ट नहीं कर दिये जाते, तब तक सकाम कर्म का उच्छेद नहीं होता।

तात्पर्य

जब तक प्राणिमात्र की कामनाएँ श्रीभगवान् की सेवा में पूर्णतः समर्पित नहीं कर दी जातीं तब तक संन्यास लेने के बाद भी गृहस्थाश्रम की इच्छा बनी रहती है। कभी-कभी हमारे समाज 'इस्कॉन' में कोई व्यक्ति भावावेश में आकर संन्यास ग्रहण करता है, किन्तु उसकी कामना पूर्णतया विनष्ट नहीं हुई रहती हैं, अतः अपनी प्रतिष्ठा तथा अपने नाम को लज्जित करके भी वह पुनः गृहस्थाश्रम में चला आता है। ये

उत्कट कामनाएँ तभी पूर्णतया क्षार हो सकती हैं जब कोई प्रभु की सेवाभक्ति में पूर्णतः संलग्न हो जाय।

तत्रगतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुन्ततस्करमूषकादिभिरुपरुध्यमानबहिःप्राणः क्वचित् परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्यविद्याकामकर्मभिरुपरक्तमनसानुपपन्नार्थं नरलोकं गन्धर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥ ५ ॥

तत्र=उस गृहस्थ जीवन तक; **गतः**=जाकर; **दंश**=डाँस; **मशक**=मच्छर; **सम**=तुल्य; **अपसदैः**=निम्न वर्ग के; **मनुजैः**=मनुष्यों द्वारा; **शलभ**=पतंगा, टिड्डी; **शकुन्त**=एक बड़ा शिकारी पक्षी; **तस्कर**=चोर; **मूषक-आदिभिः**=चूहों इत्यादि के द्वारा; **उपरुध्यमान**=सताया जाकर; **बहिः-प्राणः**=वाह्य प्राणवायु, जो धन आदि के रूप में होती है; **क्वचित्**=कभी; **परिवर्तमानः**=भ्रमण करते हुए; **अस्मिन्**=इसमें; **अध्वनि**=भौतिक अस्तित्त्व का मार्ग; **अविद्या-काम**=अज्ञान तथा लोभ से; **कर्मभिः**=एवं सकाम कर्मों के द्वारा; **उपरक्त-मनसा**=मन के प्रभावित हो जाने के कारण; **अनुपपन्न-अर्थम्**=जिसमें वांछित फल कभी प्राप्त नहीं हो पाते; **नरलोकम्**=यह भौतिक जगत्; **गंधर्व-नगरम्**=गंधर्वों की पुरी, हवाई महल; **उपपन्नम्**=विद्यमान; **इति**=ऐसा मानते हुए; **मिथ्या-दृष्टिः**=जिसको दृष्टि दोष हो; **अनुपश्यति**=देखता है।

अनुवाद

सांसारिक सम्पत्ति एवं सम्बन्धियों में आसक्त गृहस्थाश्रम में बद्ध जीव को कभी डाँस तथा मच्छर, तो कभी टिड्डी; शिकारी पक्षी व चूहे सताते हैं। फिर भी वह भौतिक अस्तित्त्व के पथ पर चलता रहता है। अविद्या के कारण वह लोभी बन जाता है और सकाम कर्म में लग जाता है। चूँकि उसका मन इन कार्यकलापों में रमा रहता है इसलिए उसे यह भौतिक जगत् नित्य लगता है, यद्यपि यह गंधर्व-नगर (हवाई महल) की भाँति अनित्य है।

तात्पर्य

नरोत्तम दास ठाकुर का गीत है—

अहंकारे मत्त हना, निताइ पद पासरिया
असत्येरे सत्य करि मानि।

भगवान् नित्यानन्द के चरणारविन्दों को विस्मरण करने और सांसारिक धन-वैभव

के कारण फूले रहने से वह इस झूठे क्षणिक भौतिक जगत् को वास्तविक मान बैठता है। यही भव रोग है। यह जीवात्मा चिरन्तन और आनन्दपूर्ण है, किन्तु दुखी भौतिक अवस्थाओं के बावजूद वह अज्ञानवश इस भौतिक जगत् को ही वास्तविक मान बैठता है।

तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान् विषयानुपधावति पानभोजनव्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥ ६ ॥

तत्र = वहाँ (इस गंधर्व नगर में); **च** = भी; **क्वचित** = कभी-कभी; **आतप-उदक-निभान** = मरुस्थल में मृगतृष्णा-जल के समान; **विषयान्** = इन्द्रिय सुख की वस्तुओं के; **उपधावति** = के पीछे दौड़ता है; **पान** = पीने के लिए; **भोजन** = खाने के लिए; **व्यवाय** = विषयी जीवन के लिए; **आदि** = इत्यादि; **व्यसन** = लत से; **लोलुपः** = विषयी।

अनुवाद

बद्ध जीव कभी-कभी इस गंधर्वपुरी में खाता-पीता और स्त्री-प्रसंग करता है। अत्यधिक लगाव के कारण इन्द्रिय सुखों के पीछे वह उसी प्रकार दौड़ता है जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा के पीछे हिरण।

तात्पर्य

दो प्रकार के जगत् हैं—वैकुंठ जगत् और भौतिक जगत्। भौतिक जगत् मृग-मरीचिका के तुल्य असत्य है। मरुस्थल में पशु यह सोचते हैं कि उन्हें जल दिखाई पड़ रहा है, किन्तु वह वास्तव में जल नहीं होता। इसी प्रकार जो पशुवृत्ति वाले हैं वे भौतिक जीवन के मरुस्थल के भीतर ही शान्ति ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। विभिन्न शास्त्रों में यह बारम्बार कहा गया है कि इस भौतिक संसार में कोई इन्द्रिय सुख नहीं है। पुनश्च यदि हम सुख के बिना रहना स्वीकार कर लें तो भी हमें ऐसा नहीं करने दिया जाता। **भगवद्गीता** में भगवान् श्रीकृष्ण का वचन है कि यह भौतिक संसार न केवल दुःखों से पूर्ण (**दुःखालयम्**) है वरन् क्षणिक (**अशाश्वत**) भी है। यदि हम दुःखों के बीच रहना भी चाहें तो प्रकृति हमें ऐसा नहीं करने देगी। यह हमें अपने शरीर (देह) को बदलकर दुखमय स्थिति में प्रविष्ट करने के लिए बाध्य कर देगी।

क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥ ७ ॥

क्वचित्=कभी; **च**=भी; **अशेष**=अनन्त सीमाहीन; **दोष**=दुर्गुणों का; **निषदनम्**=स्रोत; **पुरीष**=मल का; **विशेषम्**=विशिष्ट प्रकार के; **तत्-वर्ण-गुण**= रजोगुण के से रंग वाला (अरुण); **निर्मित-मतिः**=जिसका मन उसी में रमा रहता है; **सुवर्ण**=स्वर्ण; **उपादित्सति**=प्राप्त करने की कामना करता है; **अग्नि-काम**= अग्नि के लिए इच्छा; **कातरः**=दुःखी; **इव**=सदृश; **उल्मुक-पिशाचम्**=स्फुरदीप्ति (कच्छ प्रकाश), जिसे कभी भूत (अगिया बेताल) मान लिया जाता है।

अनुवाद

कभी-कभी जीवात्मा स्वर्ण के नाम से अभिज्ञात पीले मल की वांछा करके उसको पाने के लिए दौड़ता है। यह स्वर्ण भौतिक वैभव एवं ईर्ष्या का साधन है और इसके कारण जीवात्मा अवैध यौन-सम्बन्ध, द्यूत, मांसाहार, तथा मादक द्रव्यों के सेवन में तत्पर होने में समर्थ होता है। रजोगुणी व्यक्ति स्वर्ण के रंग से उसी प्रकार आकृष्ट होते हैं जिस प्रकार वन में जाड़े से ठिठुरता मनुष्य दलदल में दिखने वाले प्रकाश को अग्नि समझ बैठता है।

तात्पर्य

परीक्षित् महाराज ने कलियुग को अपने राज्य को छोड़कर तुरन्त चले जाने तथा चार स्थानों में रहने के लिए कहा—वेश्यालय, मदिरालय, वधशाला तथा द्यूत गृह। किन्तु कलियुग ने इनमें से किसी एक ऐसे स्थान के लिए प्रार्थना की जिसमें ये चारों सम्मिलित हों। तव महाराज परीक्षित् ने ऐसा स्थान दिया जहाँ स्वर्ण संचित होता है। स्वर्ण में पाप के चारों तत्त्व पाये जाते हैं, फलतः परमार्थ जीवन में जहाँ तक सम्भव हो स्वर्ण से बचना चाहिए। जहाँ स्वर्ण रहेगा वहाँ अवैध यौनाचार, मांसाहार, द्यूतक्रीड़ा तथा मादक द्रव्य सेवन ये चारों रहेंगे। चूँकि पश्चिमी जगत् के लोगों के पास प्रचुर स्वर्ण है, अतः वे इन चारों पापों के शिकार होते हैं। स्वर्ण का रंग अत्यन्त चमकोला होने से सांसारिक प्राणी इसके पीले रंग से अत्यधिक आकर्षित होते हैं। किन्तु यह स्वर्ण वास्तव में एक प्रकार का मल ही है। जिस व्यक्ति का यकृत खराब हो जाता है उसका मल पीला होता है। इस मल का रंग सांसारिक प्राणी को वैसा ही आकर्षक लगता है जैसे गर्मी चाहने वाले व्यक्ति को कच्छ प्रकाश।

अथ कदाचिन्निवासपानीयद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभिनिवेश एतस्यां संसाराटव्यामितस्ततः परिधावति ॥ ८ ॥

अथ=इस प्रकार; **कदाचित्**=कभी-कभी; **निवास**=वासस्थान; **पानीय**= जल; **द्रविण**=धन; **आदि**=इत्यादि; **अनेक**=विविध प्रकार के; **आत्म-उपजीवन**

=जो देह तथा आत्मा को एक साथ रखने के लिए आवश्यक समझे जाते हैं; **अभिनिवेशः**=पूर्णतया लीन; **एतस्याम्**=इसमें; **संसार-अटव्याम्**=विशाल वन के सदृश यह भौतिक जगत्; **इतः ततः**=इधर-उधर; **परिधावति**=चारों ओर दौड़-धूप करता है।

अनुवाद

कभी-कभी यह बद्ध जीव रहने के लिए वासस्थान खोजने एवं अपने शरीर की रक्षा के लिए जल तथा धन प्राप्त करने में लगा रहता है। इन नाना प्रकार की आवश्यकताओं को जुटाने में संलग्न रहने के कारण वह सब कुछ भूल जाता है और भौतिक अस्तित्त्व के जंगल में निरन्तर इधर-उधर दौड़-धूप करता रहता है।

तात्पर्य

जैसा कि इसके पूर्व कहा जा चुका है। निर्धन वणिक जंगल में इसलिए जाता है कि वहाँ उसे सस्ती वस्तुएँ मिल सकेंगी जिन्हें लाकर वह नगर में लाभ सहित बेचेगा। किन्तु वह अपनी देह तथा आत्मा को तुष्ट रखने में इतना लीन हो जाता है कि उसे कृष्ण से अपने पूर्व सम्बन्ध का स्मरण ही नहीं रह जाता और वह मात्र शारीरिक सुख-सुविधाओं की खोज करता है। इस प्रकार जीवात्मा की एकमात्र व्यस्तता भौतिक क्रियाकलापों में रहती है। जीवन के उद्देश्य को न जानते हुए भौतिकवादी निरन्तर भौतिकता के पीछे दौड़ता है। प्रचुर आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कर लेने पर भी जीवन के उद्देश्य को न समझने के कारण उसकी कृत्रिम आवश्यकताओं में वृद्धि होती जाती हैं और वह अधिकाधिक उलझता जाता है। भौतिकवादी को प्रकृति के रहन-सहन का मर्म ज्ञात नहीं होता। भगवद्गीता (३.२७) में पुष्टि की गई है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

"सम्पूर्ण कर्म वास्तव में प्रकृति के गुणों द्वारा सम्पादित होते हैं, परन्तु गुणों से उत्पन्न अहंकार से मोहित जीवात्मा अपने को इनका कर्ता मान बैठता है।" लोभ के कारण जीवात्मा अपने मन में यह धारणा बना लेता है कि इसका भोग करना चाहिए। इस प्रकार वह फँस कर विभिन्न देहों में प्रवेश करता है और कष्ट पाता है।

क्वचिच्च वात्यौपम्यया प्रमदयाऽऽरोहमारोपितस्तत्कालरजसा रजनीभूत इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षोऽपि दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न विजानाति ॥ ९ ॥

क्वचित् = कभी; **च** = भी; **वात्या-औपम्यया** = ववण्डर के सदृश; **प्रमदया** = सुन्दर स्त्री, रमणी; **आरोहम्-आरोपितः** = इन्द्रिय सुख के लिए अंक में बिठाई गई; **तत्काल-रजसा** = तत्क्षण रागान्ध; **रजनी-भूतः** = रात्रि का अन्धकार; **इव** = सदृश; **असाधु-मर्यादः** = सत्पुरुषों के समुचित आदर से रहित; **रजः-वल-अक्षः** = आँखों में रजो गुण की धूल पड़ने से अंध; **अपि** = भी; **दिक्-देवताः** = दिशाओं के देवता, यथा—सूर्य तथा चन्द्र; **अतिरजः-वल-मतिः** = आसक्ति से पराजित बुद्धि; **न विजानाति** = नहीं जान पाता (कि चारों दिशाओं के देवता उसके अविवेकी यौनाचार को देखते हैं)।

अनुवाद

कभी-कभी यह बद्ध आत्मा धूल के बवण्डर से अन्धे के समान स्त्री की सुन्दरता को देखता है। इस प्रकार से अन्धा होकर वह सुन्दर स्त्री की गोद में जा बैठता है, उस समय उसके बिवेक पर भोगेक्षा विजय पाती है। इस प्रकार वह वासना से प्रायः अन्धा हो जाता है और वह काम-जीवन के समस्त नियमों का उल्लंघन करने लगता है। उसे यह ज्ञान ही नहीं रह जाता कि उसके इस उल्लंघन को अनेक देवता देख रहे हैं। इस प्रकार वह भवितव्य दण्ड को देखे बिना अर्धरात्रि में अवैध यौन सुख का आनन्द लेता है।

तात्पर्य

भगवद्गीता (७.११) में कहा गया है—**धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।**
यौनाचार की अनुमति केवल सन्तान उत्पन्न करने के लिए दी जाती है, विषयसुख
के लिए नहीं। वंश, समाज तथा विश्व के कल्याण हेतु उत्तम सन्तान उत्पन्न करने
के लिए ही स्त्री-प्रसंग करना चाहिए अन्यथा वह धार्मिक जीवन के नियमों एवं
प्रतिबन्धों के विपरीत है। भौतिकवादी मनुष्य को विश्वास नहीं होता कि प्रकृति की
प्रत्येक वस्तु नियमित है और वह यह नहीं समझ पाता कि यदि वह कोई त्रुटि करता
है तो विविध देवता उसके साक्षी स्वरूप रहते हैं। प्राणी अवैध यौनाचार का आनन्द
लेता है और कामान्ध होने के कारण वह सोचता है कि उसे कोई देख नहीं सकता,
किन्तु श्रीभगवान् के गण इसे अच्छी तरह देखते रहते हैं। फलस्वरूप वह प्राणी
अनेक प्रकार से दण्डित होता है। इस कलियुग में अवैध यौन-सम्पर्क के कारण अनेक
गर्भ रह जाते हैं और कभी-कभी तो गर्भपात भी कराये जाते हैं। इन पापमय कर्मों
के साक्षी हैं श्रीभगवान् के गण। जो पुरुष तथा स्त्री ऐसी स्थिति उत्पन्न करते हैं,
उन्हें भविष्य में प्रकृति के कठोर से कठोर नियमों के अनुसार दण्डित किया जाता है
(दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया)। अवैध कामाचार कभी भी क्षमा नहीं
किया जा सकता और वे जो इस कुकृत्य में लिप्त रहते हैं, उन्हें जन्म-जन्मान्तर तक
दण्डित किया जाता है। भगवद्गीता (१६.२०) में इसकी पुष्टि की गई है—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनिजन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥

"हे अर्जुन ! जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त होकर वे मूढ़ मुझको कभी प्राप्त नहीं होते और फिर उससे भी परम अधम गति में गिरते हैं ।"

श्रीभगवान् किसी को भी सांसारिक नियमों के विरुद्ध कर्म करने की अनुमति नहीं देते फलतः अवैध कामाचार जन्म-जन्मान्तर तक दण्डित है। अवैध प्रसंग से गर्भाधान होता है और इन अवांछित गर्भाधानों के फलस्वरूप गर्भपात कराया जाता है। जो इन पापों में लिप्त होता है वह अगले जन्म में भी इसी प्रकार दण्डित होता है। इस तरह मनुष्य अगले जन्म में अपनी माता के गर्भ में प्रविष्ट होते हैं और उसी प्रकार से वध कर दिये जाते हैं। श्रीकृष्णभावनामृत के दिव्य पद पर रहकर इनसे छुटकारा पाया जा सकता है। इस तरह मनुष्य पापपूर्ण कर्म नहीं करता। लोभी कामनाओं के कारण अवैध स्त्री-प्रसंग सबसे बड़ा पाप है। जब कोई रजोगुण से युक्त होता है तो उसे जन्म-जन्मान्तर तक दुःख भोगना पड़ता है।

क्वचित्सकृदवगतविषयवैतथ्यः स्वयं पराभिध्यानेन विभ्रंशितस्मृतिस्तयैव मरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति ॥१०॥

क्वचित् = कभी; **सकृत्** = एकबार; **अवगत-विषय-वैतथ्यः** = इन्द्रियतृप्ति पाने की निरर्थकता से सचेष्ट रहकर; **स्वयम्** = स्वतः; **पर-अभिध्यानेन** = स्वयं की देहात्म बुद्धि से; **विभ्रंशित** = विनष्ट; **स्मृतिः** = जिसका स्मरण; **तया** = उसके द्वारा; **एव** = निश्चय ही; **मरीचि-तोय** = मृगतृष्णा का जल; **प्रायान्** = के सदृश; **तान्** = उन इन्द्रियों को; **एव** = निश्चय ही; **अभिधावति** = के पीछे दौड़ता है ।

अनुवाद

कभी बद्ध जीव स्वतः सांसारिक विषयों का मिथ्यात्व स्वीकार कर लेता है तो कभी वह भौतिक सुखों को दुःखपूर्ण मानता है। फिर भी अपनी उत्कट देहात्म-बुद्धि के कारण उसकी स्मृति विनष्ट हो जाती है और वह पुनः पुनः भौतिक सुखों के पीछे वैसे ही दौड़ता फिरता है जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा के लिए मृग ।

तात्पर्य

भौतिक जीवन का मुख्य रोग है देहात्मक-बुद्धि। भौतिक कर्म में बारम्बार भ्रमित होकर बद्ध जीव अल्प काल के लिए भौतिक सुखों को नश्वर मान लेता है,

किन्तु वह पुनः वैसा ही करने लगता है। भक्तों की संगति से मनुष्य भौतिक नश्वरता के प्रति आश्वस्त हो जाता है, किन्तु वह अपने कार्यकलापों को त्यागता नहीं, यद्यपि वह श्रीभगवान् के धाम में लौट जाने का अत्यन्त इच्छुक रहता है। ऐसी परिस्थितियों में घट-घट वासी श्रीभगवान् ऐसे भक्त की समस्त भौतिक सम्पत्ति को दयापूर्वक ले लेते हैं। जैसा कि श्रीमद्भागवत में कहा गया है—**यस्याहम् अनुग्रहणामि हरिष्ये तद् धनं शनैः** (१०.८८.८) श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिस भक्त पर उनकी कृपा होती है और वे देखते हैं कि वह सांसारिक विषयों में अत्यधिक लिप्त है तो वे उसका सर्वस्व ले लेते हैं। सब कुछ ले लिए जाने पर भक्त अपने को पराश्रित और समाज में मित्रता एवं प्यार से वंचित अनुभव करता है। अतः वह श्रीभगवान् के चरण कमलों में पूर्णरूपेण अर्पित हो जाता है। यह श्रीभगवान् द्वारा ऐसे भक्त पर विशेष कृपा है जो उत्कट देहात्मबुद्धि के कारण अपने को पूरी तरह समर्पित नहीं कर पाता। चैतन्यचरितामृत (मध्य २२.३६) में कहा गया है—**आमि-विज्ञ एइ मूर्खे 'विषय' केने दिव।** भगवान् अपने भक्त को जान लेते हैं। जो श्रीभगवान् की सेवा में तत्पर होने में संकोच करता है उसे इसका ज्ञान नहीं रह पाता कि, वह अपना सांसारिक जीवन फिर से प्रारम्भ करे या नहीं। बारम्बार प्रयास करने और विफल होने पर अन्त में वह भगवान् के चरणों में आत्मसमर्पण कर देता है और सुख प्राप्त करते हुए वह अपने समस्त भौतिक व्यस्तताओं को भूल जाता है।

क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुल-निर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥११॥

क्वचित् = कभी-कभी; **उलूक** = उल्लू का; **झिल्ली** = झींगुर; **स्वनवत्** = असह्य ध्वनियों की तरह; **अति-परुष** = अत्यन्त कर्णकटु; **रभस** = धैर्य से; **आटोपं** = घर्षण; **प्रत्यक्षम्** = प्रत्यक्ष, प्रकटतः; **परोक्षम्** = अप्रत्यक्ष; **वा** = या; **रिपु** = शत्रुओं का; **राजकुल** = शासक समुदाय का; **निर्भर्त्सितेन** = ताड़ना या दण्डदान से; **अति-व्यथित** = अत्यन्त दुःखी; **कर्ण-मूल-हृदयः** = जिसके कान तथा हृदय।

अनुवाद

कभी-कभी बद्धजीव अपने शत्रुओं तथा राज्य-कर्मचारियों की प्रताड़ना से अत्यन्त दुखित रहता है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कटु वचन कहते रहते हैं। उस समय उसके हृदय (मन) तथा कान अतीव व्यथित एवं विषादपूर्ण हो जाते हैं। ऐसी प्रताड़ना की तुलना उलूकों तथा झींगुरों की झंकार से की जा सकती है।

तात्पर्य

इस भौतिक संसार में कई प्रकार के शत्रु हैं। राज्य ऐसे व्यक्तियों को, जो आयकर नहीं देते, प्रताड़ित करता है। इस प्रकार की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आलोचना उसे दुःखी बना देती है और कभी-कभी बद्धजीव ऐसे प्रताड़ना पर प्रतिक्रिया व्यक्त करना चाहता है, किन्तु दुर्भाग्यवश वह कुछ भी कर पाने की स्थिति में नहीं होता।

स यदा दुग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुण्डाद्यपुण्यद्रुमलताविषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान् जीवन्मृतान् स्वयं जीवन्म्रियमाण उपधावति ॥१२॥

सः=वह बद्ध आत्मा; **यदा**=जब; **दुग्ध**=(थकित) रिक्त; **पूर्व**=पहले का; **सुकृतः**=अच्छे कर्म; **तदा**=उस समय; **कारस्कर-काकतुण्ड-आदि**=कारस्कर, काकतुण्ड आदि नामधारी; **अपुण्य-द्रुम-लता**=अपवित्र वृक्ष तथा लताएँ; **विष-उद-पान-वत**=विषैले जल से युक्त कुँओं के समान; **उभय-अर्थ-शून्य**=जो न तो इस जन्म में न अगले जन्म में सुख दे सकता है; **द्रविणान्**=सम्पत्तिवान; **जीवित्-मृतान्**=जीवित होकर भी जो मृतक तुल्य हैं; **स्वयम्**=वह स्वतः; **जीवत्**=सजीव; **म्रियमाणः**=मरा हुआ, मृत; **उपधावति**=सांसारिक लाभ के लिए निकट आता है।

अनुवाद

पूर्व जन्मों में पवित्र कर्मों के कारण बद्ध-आत्मा को इस जीवन में भौतिक सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, किन्तु उनके समाप्त हो जाने पर वह जो जीवित ही मृत के समान हैं, ऐसे धनी कृपण मनुष्यों का सहारा लेता है। जो न तो इस जीवन में न ही अगले जीवन में उसके सहायक होते हैं। ऐसे लोग अपवित्र वृक्षों, लताओं और विषैले कुओं के सदृश हैं।

तात्पर्य

पूर्व जन्म के पुण्यकर्मों के द्वारा अर्जित धन तथा वैभव का दुरुपयोग इन्द्रिय-तृप्ति के लिए नहीं करना चाहिए। इन्द्रिय-तृप्ति के लिए उनका उपभोग विष-वृक्ष के फलों का आस्वाद जैसा होता है। ऐसे कर्मों से बद्धजीव न तो इस जन्म में न ही अगले जन्म में किसी प्रकार लाभान्वित होता है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को प्रामाणिक गुरु के निर्देशन में प्रभु के चरणों में अर्पित कर देता है तो उसे इस जन्म में तथा अगले जन्म में सुख-लाभ होगा। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह "वर्जित सेव" का आस्वादन करता है, जिससे वह स्वर्ग से वंचित रह जाता है। इसीलिए श्रीकृष्ण ने उपदेश दिया है कि मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी सम्पत्ति उन्हें समर्पित कर दे—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

"हे कुन्तीपुत्र ! तू जो भी कर्म करता है, जो कुछ भी हवन करता है, जो कुछ दान करता है और जो तपस्या करता है, वह सब मेरे अर्पण कर।" (गीता ९.२७)। यदि व्यक्ति कृष्ण-भक्त है तो पूर्व पुण्य कर्मों के द्वारा प्राप्त सांसारिक धन तथा वैभव का सदुपयोग अपने इस जन्म तथा अगले जन्म को लाभ पहुँचाने के लिए कर सकता है। उसे अपनी आवश्यकता से अधिक धन नहीं रखना चाहिए और यदि उसके पास आवश्यकता से अधिक धन हो तो उसे चाहिए कि वह इस अतिरिक्त धन को भगवान् की सेवा में अर्पित कर दे। इससे बद्ध-जीवात्मा, यह संसार तथा श्रीकृष्ण प्रसन्न होंगे और यही इस जीवन का उद्देश्य है।

एकदासत्प्रसङ्गान्निकृतमतिर्व्युदकस्रोतः स्खलनवदुभयतोऽपि दुःखदं पाखण्डमभियाति ॥१३॥

एकदा=कभी-कभी; **असत्-प्रसंगात्**=अभक्तों के संसर्ग से जो वैदिक नियमों के विरुद्ध हैं और अनेक धार्मिक सम्प्रदायों को जन्म देते हैं; **निकृत-मतिः**=जिनकी बुद्धि निम्न स्तर तक पहुँच चुकी होती है कि वे श्रीभगवान् के अस्तित्त्व को नकारते हैं; **व्युदक-स्रोतः**=प्रचुर जल से रहित नदियों में; **स्खलन-वत्**=कूदने के समान; **उभयतः**=दोनों ओर से; **अपि**=यद्यपि; **दुःखदम्**=दुखदायी; **पाखण्डम्**=निरीश्वर-वादी मार्ग, पाखण्ड; **अभियाति**=अनुसरण करता है।

अनुवाद

कभी-कभी इस संसारारण्य में अपने कष्टों से मुक्ति पाने के लिए बद्धजीव पाखण्डियों के सस्ते आशीर्वाद प्राप्त करता है। उनके सम्पर्क से उसकी मति भ्रष्ट हो जाती है। यह उथली नदी में कूदने के समान है। इसका परिणाम यही होता है कि उसका सिर फूटता है। इस प्रकार वह गर्मी शान्त करने में समर्थ नहीं होता तथा दोनों ओर से उसी की हानि होती है। यह पथभ्रष्ट बद्धजीव तथाकथित साधुओं एवं स्वामियों की भी शरण में जाता है जो वेदविरुद्ध उपदेश देते हैं। किन्तु इनसे उसे न तो वर्तमान में और न भविष्य में ही लाभ प्राप्त होता है।

तात्पर्य

आत्म-साक्षात्कार के लिए धूर्तों ने अपने मार्ग बना रखे हैं। तुच्छ स्वार्थलाभ के लिए इन कपटी संन्यासियों और योगियों से सस्ते आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए

बद्धजीव उनकी शरण में जाता है, किन्तु उसे न तो ईश्वर और न ही भौतिक लाभ प्राप्त होता है। इस युग में ऐसे अनेक वंचक हैं जो जादू-तिलिस्म दिखा कर ठगते हैं। वे अपने सेवकों को चमत्कृत करने के लिए सोना तक बनाते हैं और उनके सेवक उन्हें ईश्वर मान लेते हैं। कलियुग में इस प्रकार की ठगी का बोलबाला है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने सच्चे गुरु का वर्णन इस प्रकार किया है—

संसार-दावानल-लीढ-लोक-त्राणाय कारुण्य-घनाघनत्वम्।
प्राप्तस्य कल्याण-गुणार्णवस्य वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

मनुष्य को चाहिए कि वह ऐसे गुरु की शरण में जाय जो इस भौतिक जगत् की ज्वलिताग्नि को शमित कर दे। किन्तु मनुष्य चाहते हैं कि वे ठगे जायें अतः वे जादू दिखाने वाले योगियों और स्वामियों के पास जाते हैं, किन्तु इससे भौतिक जीवन के कष्टों में कमी नहीं आती। यदि सोना बना सकना ही ईश्वर बनने की कसौटी हो तो वे इस सम्पूर्ण विश्व के नियन्ता श्रीकृष्ण की शरण में क्यों नहीं जाते जहाँ अनन्त स्वर्णराशि है? जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सोने का रंग स्फुर-दीप्ति या पीत मल के तुल्य है, अतः सोना बनाने वाले गुरुओं के चंगुल में न आकर जड़भरत जैसे भक्त की तरह शरण में जाना चाहिए। जड़भरत ने रहुगण महाराज को ऐसी शिक्षा दी कि वे देहात्मबुद्धि से मुक्त हो गये। झूठे गुरु की शरण में जाकर कोई कभी प्रसन्न नहीं रह सकता। श्रीमद्भागवतम् (११.३.२१) में जिस प्रकार के गुरु का वर्णन है, उसे ही स्वीकारना चाहिए। **तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्**—जीवन में सर्वोच्च लाभ के लिए वास्तविक गुरु की शरण में जाना चाहिए। ऐसे गुरु का वर्णन इस प्रकार है—**शाब्दे परे च निष्णातम्**। ऐसा गुरु न तो सोना बनाता है, न ही बातें बनाता है। वह वैदिक ज्ञान से ओतप्रोत होता है (**वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः**)। वह सांसारिक मलिना से सर्वथा मुक्त होता है और श्रीकृष्ण की सेवा में पूर्णतः समर्पित होता है। यदि ऐसे गुरु के चरणकमल की धूलि प्राप्त हो सके तो जीवन सफल हो जाता है। अन्यथा वह इस जीवन में और इसके पश्चात् भी भ्रमित होता रहता है।

यदा तु परबाधयान्ध आत्मने नोपनमति तदा हि पितृपुत्रबर्हिष्मतः पितृपुत्रान् वा स खलु भक्षयति ॥१४॥

यदा=जब; **तु**=किन्तु (दुर्भाग्यवश); **पर-बाधया**=अन्य सबों का शोषण करते हुए भी; **अन्धः**=अन्धा; **आत्मने**=अपने स्वयं के; **न उपनमति**=हिस्से में नहीं आता; **तदा**=तब; **हि**=निश्चय रूप से; **पितृ-पुत्र**=पिता या पुत्रों का; **बर्हिष्मतः**=तृणावत् तुच्छ; **पितृ-पुत्रान्**=पिता अथवा पुत्रों; **वा**=अथवा; **सः**=वह (बद्ध जीव); **खलु**=निस्सन्देह; **भक्षयति**=कष्ट पहुँचाता है।

अनुवाद

अन्यों का शोषण करते रहने पर भी जब बद्धजीव इस भौतिक संसार में अपना निर्वाह नहीं कर पाता तो वह अपने पिता या पुत्र का शोषण करता है और उसकी सम्पत्ति हर लेता है भले ही वे तृण-प्राय ही क्यों न हों। यदि वह पिता, पुत्र या सम्बन्धी की सम्पत्ति प्राप्त नहीं कर पाता तो वह उन्हें सभी प्रकार के कष्ट देने के लिए उद्यत हो उठता है।

तात्पर्य

एक बार हमने सचमुच एक मनुष्य को अपनी पुत्री के आभूषण चुराते हुए देखा है। एक अँग्रेजी कहावत है, "स्वार्थ अन्धा होता है।" जब बद्ध जीव को किसी वस्तु की आवश्यकता होती है तो वह अपने सम्बन्धियों के साथ अपने रिश्ते को भूल जाता है और अपने पिता अथवा पुत्र तक का शोषण करता है। श्रीमद्भागवतम् से हमें यह भी सूचना प्राप्त होती है कि इस कलियुग में एक सम्बन्धी अपने दूसरे सम्बन्धी को एक कौड़ी के लिए मार डालेगा। बिना भक्ति के समस्त प्राणी पतन के गर्त की ओर बढ़ते जायेंगे और एक से एक घृणित कर्म करेंगे।

क्वचिदासाद्य गृहं दाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कं शोकाग्निना दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥१५॥

क्वचित् = कभी-कभी; **आसाद्य** = अनुभव करके; **गृहम्** = गृहस्थाश्रम; **दाव-वत्** = दावाग्नि तुल्य; **प्रिय-अर्थ-विधुरम्** = किसी लाभप्रद प्रयोजन के बिना; **असुख-उदर्कम्** = अधिकाधिक दुःख ही प्रतिफलित होता है; **शोक-अग्निना** = शोक की अग्नि से; **दह्यमानः** = सन्तप्त होकर; **भृशम्** = अत्यधिक; **निर्वेदम्** = निराशा; **उपगच्छति** = प्राप्त करता है।

अनुवाद

इस संसार में गृहस्थाश्रम दावाग्नि के तुल्य है। इसमें तनिक भी सुख नहीं है और मनुष्य क्रमशः अधिकाधिक दुःख में उलझता जाता है। पारिवारिक जीवन में चिरन्तन सुख के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं होतीं। गृहस्थाश्रम में रहने पर बद्धजीव पश्चात्ताप की अग्नि में संतप्त रोता रहता है। कभी वह अपने को अभागा मानता है, तो कभी वह यह कहता है कि पूर्व जीवन में शुभ कर्म न करने के कारण ही कष्ट का भागी बन रहा है।

तात्पर्य

गुरुवाष्टक में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का गान है—

संसार-दावानल-लीढ-लोक-
त्राणाय कारुण्य-घनाघनत्वम्

यह सांसारिक जीवन दावानल के सदृश है। जंगल की यह अग्नि किसी के लगाये बिना ही लगती है। इसी प्रकार इस संसार में सभी सुखी रहना चाहते हैं किन्तु इससे भौतिक जीवन के कष्टों की वृद्धि ही होती है। जब कभी कोई मनुष्य इस भौतिक जगत् की अग्नि में फँस जाता है तो वह अपने को धिक्कारता है, किन्तु देहात्म-बोध के कारण चंगुल से निकल नहीं पाता और अधिकाधिक कष्ट भोगता है।

क्वचित्कालविषमितराजकुलरक्षसापहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥१६॥

क्वचित् = कभी-कभी; **काल-विष-मित** = काल के द्वारा कुटिल किया गया; **राजकुल** = राज्य कर्मचारी; **रक्षसा** = राक्षसों के द्वारा; **अपहृत** = हर लिये जाने पर; **प्रियतम्** = सर्वाधिक प्रिय; **धन** = सम्पत्ति के रूप में; **असुः** = जिसकी प्राणवायु; **प्रमृतकः** = मृत; **इव** = सदृश, तुल्य; **विगत-जीव-लक्षणः** = जीवन के समस्त लक्षणों से शून्य; **आस्ते** = रह जाता है।

अनुवाद

राज्यकर्मचारी सदैव नरभक्षी राक्षसों के सदृश होते हैं। ये राज्यकर्मचारी कभी-कभी बद्धजीव से रुष्ट होकर उसकी सारी संचित सम्पत्ति को ले लेते हैं। इस प्रकार अपने जीवन भर की संचित पूँजी को खोकर बद्धजीव हतोत्साहित हो जाता है। निस्सन्देह यह उसके प्राणान्त के समान है।

तात्पर्य

राज-कुल-रक्षसा शब्द अत्यन्त सटीक है। श्रीमद्भागवतम् की रचना पाँच हजार वर्ष पूर्व हुई थी, फिर भी राज्यकर्मचारियों को नरभक्षक अथवा राक्षस की संज्ञा प्रदान की गई है। यदि राज्यकर्मचारी किसी व्यक्ति के विरुद्ध हो जाते हैं तो जीवन भर की संचित पूँजी से उसे हाथ धोना पड़ता है। वास्तविकता तो यह है कि कोई भी व्यक्ति आयकर नहीं देना चाहता—यहाँ तक कि राज्यकर्मचारी भी कतराते हैं—किन्तु प्रतिकूल समय उपस्थित होने पर बलपूर्वक आयकर वसूल कर लिया जाता है और करदाता हाथ मलता रह जाता है।

कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपिता महाद्यसत्सदिति स्वप्ननिर्वृतिलक्षणमनुभवति ॥१७॥

कदाचित् = कभी-कभी; **मनोरथ-उपगत** = मन में कल्पना द्वारा प्राप्त; **पितृ** = पिता; **पिता-मह-आदि** = अथवा बाबा तथा अन्य; **असत्** = बहुत पूर्व मृत होने पर भी (और यह न जानते हुए कि जीव चला गया है; **सत्** = पिता या पितामह पुनः पधारते हैं; **इति** = ऐसा सोचकर; **स्वप्न-निर्वृति-लक्षणम्** = स्वप्न सुख के समान; **अनुभवति** = (जीव) अनुभव करता है ।

अनुवाद

कभी-कभी बद्धजीव यह कल्पना करने लगता है कि उसके पिता या बाबा अपने पुत्र या पौत्र के रूप में इस संसार में पुनः आते हैं । इस प्रकार उन्हें स्वप्न का सा सुख अनुभव होता है और कभी-कभी बद्धजीव को ऐसी मानसिक कल्पनाओं में सुख मिलता है ।

तात्पर्य

श्रीभगवान् के वास्तविक अस्तित्त्व से अनभिज्ञ रहने के कारण बद्धजीव नाना प्रकार की कल्पनाएँ करता रहता है । सकाम कर्म के वशीभूत होकर वह अपने सम्बन्धियों, पिता, पुत्र तथा पितामहजनों की संगति में उसी प्रकार लिप्त रहता है जिस प्रकार भँवर में तिनके एकत्र हो जाते हैं । ये तिनके क्षण भर में बिखर जाते हैं और उनका पारस्परिक सम्पर्क टूट जाता है । जीवात्मा क्षणिक रूप से अनेक बद्धजीवों के साथ रहता है । ये जीव कुटुम्बियों के रूप में एकत्र होते हैं और इनमें इतनी उत्कट वत्सलता होती है कि पिता या पितामह के दिवंगत हो जाने पर भी उन्हें यह सोचकर सुखानुभूति होती है कि वे रूप बदल कर परिवार में लौट आते हैं । कभी-कभी ऐसा हो भी सकता है, किन्तु बद्धजीव ऐसी कपोलकल्पनाओं में सदैव डूबता उतराता रहता है ।

क्वचिद् गृहाश्रमकर्मचोदनातिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोकव्यसनकर्षितमनाः कण्टकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥१८॥

क्वचित् = कभी-कभी; **गृह-आश्रम** = गृहस्थ जीवन; **कर्म-चोदन** = सकाम कर्म का पालन; **अति-भार-गिरिम्** = ऊँची पहाड़ी; **आरुरुक्षमाणः** = चढ़ने की इच्छा लेकर; **लोक** = भौतिक (संसार); **व्यसन** = लत; **कर्षित-मनाः** = आकर्षित मन वाले; **कण्टक-शर्करा-क्षेत्रम्** = काँटे तथा कंकड़ों से आच्छादित खेत; **प्रविशन्** = घुसने पर; **इव** = सदृश; **सीदति** = पश्चात्ताप करता है ।

अनुवाद

गृहस्थाश्रम में नाना प्रकार के यज्ञ तथा कर्मकाण्ड (विशेष रूप से विवाह यज्ञ और यज्ञोपवित संस्कार) करने होते हैं। ये सभी गृहस्थ के कर्तव्य हैं। ये अत्यन्त विस्तृत होते हैं और इनको सम्पन्न करना कष्टकारक होता है। इनकी उपमा एक बड़ी पहाड़ी से दी जाती है जिसे सांसारिक कर्मों में संलग्न होने पर लाँघना ही पड़ता है। जो व्यक्ति इन अनुष्ठानों पर विजय प्राप्त करना चाहता है उसे पहाड़ी में चढ़ते समय काँटों तथा कंकड़ों के चुभने से होने वाली पीड़ा का-सा अनुभव करना होता है। इस प्रकार बद्धजीव को अनन्त यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।

तात्पर्य

समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए अनेक सामाजिक कृत्य करने पड़ते हैं। विभिन्न देशों तथा समाजों में नाना प्रकार के उत्सव तथा अनुष्ठान होते हैं। भारत देश में यह मान्यता है कि पिता अपनी संतानों का विवाह करे। ऐसा कर लेने पर परिवार के प्रति उसका उत्तरदायित्व पूरा हो जाता है। आजकल विवाह तय करना अत्यन्त कष्टसाध्य हो गया है। इस समय न तो कोई ठीक से यज्ञ अनुष्ठान कर सकता है, न ही अपने पुत्र-पुत्रियों के विवाहोत्सवों का व्यय वहन कर सकता है। फलतः जब गृहस्थों को ये सामाजिक कृत्य करने होते हैं, तो वे अत्यन्त संतप्त होते हैं। किन्तु भौतिक लगाव इतना प्रगाढ़ होता है कि इतने कष्टों के बाद भी वह उन्हें छोड़ नहीं पाता। अतः प्रह्लाद महाराज का उपदेश है (भागवत ७.५.५)—

हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत।

तथाकथित सुखमय पारिवारिक स्थिति की तुलना खेत के अन्धे कूप से की गई है। यदि तृणाच्छादित अंधकूप में कोई गिर पड़े तो रक्षा के लिए चीत्कार करने पर भी उसे जीवन से हाथ धोना पड़ता है। इसीलिए पहुँचे हुए आत्मज्ञानी, गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की संस्तुति नहीं करते। अच्छा यही होता है कि ब्रह्मचर्य-आश्रम में संयम पालन करने का दृढ़ निश्चय करके आजीवन ब्रह्मचारी रहे जिससे गृहस्थाश्रम के भौतिक जीवन के कंटकों का अनुभव न हो सके। गृहस्थाश्रम में रहकर इष्टमित्रों के निमन्त्रण स्वीकार करने पड़ते हैं और अनुष्ठानों का पालन करना होता है ऐसा करने से प्राणी इनका दास बन जाता है भले ही इन्हें करते रहने के लिए उसके पास पर्याप्त साधनों का अभाव ही क्यों न हो। गृहस्थाश्रम शैली बनाये रखने के लिए धनार्जन हेतु अत्यधिक श्रम करना पड़ता है। इस प्रकार वह सांसारिक जीवन में फँस कर काँटों के चुभने के जैसा अनुभव करता रहता है।

क्वचिच्च दुःसहेन कायाभ्यन्तरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटुम्बाय क्रुध्यति ॥१९॥

क्वचित् च=और कभी-कभी; **दुःसहेन**=असह्य; **काय-अभ्यन्तर-वह्निना**= शरीर के अन्तर्गत क्षुधा तथा पिपासा की अग्नि के कारण; **गृहीत-सारः**=धैर्य चुकने पर; **स्व-कुटुम्बाय**=अपने ही कुटुम्बी जनों पर; **क्रुध्यति**=क्रुद्ध होता है, नाराज होता है।

अनुवाद

कभी-कभी शारीरिक भूख और प्यास से त्रस्त बद्धजीव इतना विचलित हो जाता है कि उसका धैर्य टूट जाता है और वह अपने ही प्रिय पुत्रों, पुत्रियों तथा पत्नी पर रुष्ट हो जाता है। इस प्रकार निष्ठुर होने पर उसकी यातना और भी बढ़ जाती है।

तात्पर्य

श्रील विद्यापति ठाकुर का गीत है—

तातल सैकते वारि-बिन्दु-सम
सुत-मित-रमणि-समाजे।

कुटुम्ब-जीवन के सुख की तुलना मरु में जल विन्दु से की गई है। कोई भी प्राणी कुटुम्ब-जीवन में सुखी नहीं रह सकता। वैदिक सभ्यता के अनुसार कोई चाहकर भी कुटुम्ब-जीवन के उत्तरदायित्वों से मुकर नहीं सकता, किन्तु आजकल प्रत्येक व्यक्ति तलाक के द्वारा पारिवारिक जीवन का परित्याग कर रहा है। इसका कारण परिवार की दयनीय व्यवस्था है। कभी-कभी धनाभाव के कारण मनुष्य अपने प्यारे पुत्रों, पुत्रियों तथा पत्नी के प्रति कठोर बन जाता है। यह सांसारिक जीवन की दावाग्नि का अंगस्वरूप है।

स एव पुनर्निद्राजगरगृहीतोऽन्धे तमसि मग्नः शून्यारण्य इव शेते नान्यत्किञ्चन वेद शव इवापविद्धः ॥२०॥

सः=वह बद्धजीव; **एव**=निश्चय ही; **पुनः**=फिर से; **निद्रा-अजगर**=गहरी नींद रूपी अजगर; **गृहीतः**=भक्षण किये जाने पर; **अन्धे**=घनान्धकार में; **तमसि**=अज्ञान में; **मग्नः**=लिप्त; **शून्य-अरण्ये**=वीरान वन में; **इव**=के समान; **शेते**=लेट जाता है; **न**=नहीं; **अन्यत**=अन्य; **किंचन**=कुछ भी; **वेद**=जानता है; **शवः**=मृत शरीर; **इव**=सदृश; **अपविद्धः**=फेंका हुआ।

अनुवाद

शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित् से आगे कहते हैं—प्रिय राजन ! निद्रा अजगर के समान है। जो मनुष्य जीवन-वन में विचरण करते रहते हैं उन्हें निद्रा-अजगर अवश्य ही निगल जाता है। इस अजगर द्वारा डसे जाने के कारण वे अज्ञान-अंधकार में खोये रहते हैं। वे सुदूर बन में मृत शरीर की भाँति फेंक दिये जाते हैं। इस प्रकार बद्धजीव को यह पता नहीं चल पाता कि जीवन में क्या हो रहा है।

तात्पर्य

सांसारिक जीवन का अर्थ है आहार, निद्रा मैथुन तथा आत्मरक्षा (भय) में सतत तल्लीन रहना। इनमें से निद्रा सबसे भयानक है। सो जाने पर मनुष्य पूर्णतया भूल जाता है कि जीवन का लक्ष्य क्या है और उसे क्या करना है। आत्म-साक्षात्कार के लिए यह आवश्यक है कि यथासम्भव निद्रा से बचा जाय, वृन्दावन के गोस्वामी तनिक भी नहीं सोते थे। निस्सन्देह वे थोड़ा सोते थे, क्योंकि शरीर के लिए निद्रा आवश्यक है, किन्तु दो घंटे से अधिक नहीं सोते थे, और कभी-कभी तो नहीं ही सोते थे। वे सदैव आत्म-साक्षात्कार में तत्पर रहते थे। **निद्राहार-विहारकादि-विजितौ।** गोस्वामियों के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए हमें भी निद्रा, आहार, मैथुन तथा आत्मरक्षा में कमी लानी चाहिए।

कदाचिद्भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदन्दशूकैरलब्धनिद्राक्षणो व्यथित-हृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोऽन्धकूपेऽन्धवत्पतति ॥२१॥

कदाचित् = कभी-कभी; **भग्न-मान-दंष्ट्रः** = गर्व रूपी दाँत टूटे हैं जिसके; **दुर्जन-दंद-शूकैः**; = सर्प तुल्य दुष्ट पुरुषों की ईर्ष्या के कारण; **अलब्ध-निद्रा-क्षणः** = जिसे सोने का सुअवसर प्राप्त नहीं हो पाता; **व्यथित-हृदयेन** = विक्षुब्ध मन से; **अनुक्षीय-माण** = क्रमशः ह्रास होते हुए; **विज्ञानः** = जिसका अन्तर्बोध; **अंध-कूपे** = अंधे कूएँ में; **अन्धवत्** = छलावे की तरह; **पतति** = गिर पड़ता है।

अनुवाद

कभी-कभी भौतिक जगत् रूपी वन में बद्धजीव सर्पों तथा अन्य जन्तुओं जैसे ईर्ष्यालु शत्रुओं के द्वारा दंशित होता रहता है। शत्रु के छलवश बद्धजीव अपने प्रतिष्ठित पद से च्युत हो जाता है। चिन्ताकुल होने से उसे ठीक से नींद नहीं आती। इस प्रकार वह अधिकाधिक दुखी होता जाता है और क्रमशः अपना ज्ञान तथा चेतना खो बैठता है। उसकी दशा उस अन्धे पुरुष के समान हो जाती है जो अज्ञान के अन्धकूप में गिर गया हो।

क्वहिं स्म चित्काममधुलवान् विचिन्वन् यदा परदारपरद्रव्याण्यवरुन्धानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ॥२२॥

क्वहि स्म चित्=कभी-कभी; **काम-मधु-लवान्**=इन्द्रिय सुख (विषय) के लघु मधुकणों के सदृश; **विचिन्वन्**=ढूँढ़ते हुए; **यदा**=जब; **पर-दारा**=परायी स्त्री; **पर-द्रव्याणि**=परायी सम्पत्ति; **अवरुन्धानः**=अपनी सम्पत्ति मानकर; **राज्ञा**=राजा के द्वारा; **स्वामिभिः-वा**=अथवा स्त्री के पति वा सम्बन्धियों द्वारा; **निहतः**=बुरी तरह पिट कर; **पतति**=गिर पड़ता है; **अपारे**=अपार, अछोर; **निरये**=नारकोय जीवन (बलात्कार, अपहरण अथवा पराया धन चुराने जैसे कार्यो के लिए राजा द्वारा प्रदत्त कैद)।

अनुवाद

कभी-कभी बद्धजीव विषय से प्राप्त होने वाले क्षणिक सुख की ओर आकर्षित होता है। फलस्वरूप वह अवैध यौन सम्पर्क में रत होता है अथवा पराये धन को चुराता है। ऐसी अवस्था में वह राजा द्वारा बन्दी बना लिया जाता है। या फिर उस स्त्री का पति या उसका रक्षक उसे दण्डित करता है। इस प्रकार किंचित् सांसारिक तुष्टि हेतु वह नर्क में जा पड़ता है और बला कार, अपहरण, चोरी तथा इसी प्रकार के कार्यों के लिए कारागार में डाल दिया जाता है।

तात्पर्य

इस भौतिक जीवन में अवैध यौन सम्पर्क, द्यूत, क्रीड़ा, मादकद्रव्य सेवन तथा मांसाहार में लिप्त होने पर बद्धजीव अत्यन्त विषम परिस्थितियों में फँस जाता हैं। मांसाहार तथा मादक द्रव्य सेवन से इन्द्रियाँ अधिकाधिक उत्तेजित होती रहती हैं। और बद्धजीव कामिनी के चंगुल में पड़ जाता है। कामिनी को धन चाहिए और धन प्राप्त करने के लिए पुरुष को माँगना, उधार लेना या फिर चोरी करना पड़ता है। सचमुच ही उसे जघन्य कर्म करने पड़ते हैं जिससे उसे इस जन्म में तथा अगले जन्म में कष्ट भोगना पड़ता है। फलतः जो आत्म-साक्षात्कार के इच्छुक हैं, उन्हें चाहिए कि वे अवैध यौन सम्पर्क का परित्याग कर दें। अनेक भक्तजन अवैध यौन सम्पर्क से पतित हो जाते हैं। सम्भव है कि वे चोरी करने लगें और अत्यन्त सम्मानित विरक्त जीवन से भ्रष्ट हो जायँ। फिर जीविकोपार्जन के लिए उन्हें तुच्छ सेवाएँ करनी पड़ती हैं और वे भिक्षुक बन जाते हैं। इसलिए शास्त्रों का कथन है—**यन् मैथुनादि-गृहमेधि-सुखं हि तुच्छम्**—कि सांसारिकता यौनाचार पर आश्रित है चाहे वह वैध हो या अवैध। यौनाचार गृहस्थों के लिए भी संकटों से पूर्ण है। चाहे यौनाचार का प्रमाणपत्र हो अथवा नहीं; इसमें अनेक कष्ट होते हैं। **बहु-दुःख-भावक**—यौनाचार

में लिप्त होने पर न जाने कितनी विपदाएँ उत्पन्न होती हैं। भौतिक जीवन में उसे दुःख ही दुःख मिलता है। जिस प्रकार पुरुष अपनी सम्पत्ति का समुचित उपभोग नहीं कर पाता उसी प्रकार सांसारिक प्राणी मानव रूप का दुरुपयोग करता है। उसे वह आत्मोन्नति के लिए सदुपयोग न करके इन्द्रियतृप्ति के लिए शरीर का उपयोग करता है। इसीलिए वह कृपण कहलाता है।

अथ च तस्मादुभयथापि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपनमुदाहरन्ति ॥२३॥

अथ=अब; **च**=और; **तस्मात्**=इस कारण; **उभयथा अपि**=इस जन्म में तथा अगले जन्म में; **हि**=निस्सन्देह; **कर्म**=सकाम कर्म; **अस्मिन्**=इन्द्रिय सुख के इस मार्ग पर; **आत्मनः**=जीवात्मा का; **संसार**=भौतिक जीवन का; **आवपनम्**=सेवन-भूमि अथवा स्रोत; **उदाहरन्ति**=वेदों का वचन है।

अनुवाद

इसीलिए पण्डित तथा ज्ञानी कर्म के भौतिक (प्रवृत्ति) मार्ग की निन्दा करते हैं, क्योंकि इस जन्म में तथा अगले जन्म में सांसारिक दुःखों का आदि स्रोत तथा उसको पल्लवित करने की आधार भूमि वही है।

तात्पर्य

जीवन का मूल्य न समझने के कारण कर्मीजन ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर लेते हैं, जिसके कारण उन्हें इस जन्म में तथा अगले जन्म में दुःख भोगना पड़ता है। दुर्भाग्यवश कर्मीजन विषय वासनाओं में दृढ़ता से लिप्त रहते हैं और वे इस जन्म में या अगले जन्म में भौतिक जीवन की दीन दशा का अनुमान नहीं लगा सकते। इसीलिए वेदों का उपदेश है कि मनुष्य को चाहिए कि आत्म-चेतना को जाग्रत करे और अपने सम्पूर्ण कर्मों को श्रीभगवान् का अनुग्रह प्राप्त करने में लगाएँ। भगवद्गीता (९.२७) में श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

"इसलिए हे कुन्तीपुत्र ! तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान करता है और जो तपस्या करता है, वह सब मेरे अर्पण कर।"

अपने कर्मों के फलों का सदुपयोग विषयभोग के लिए न करके श्रीभगवान् के सन्देश के लिए होना चाहिए। श्रीभगवान् ने जीवनोद्देश्य के सम्बन्ध की सारी बातें भगवद्गीता में कही हैं और उसके अन्त में उन्हीं के आश्रय में जाने की माँग की है।

मनुष्य सामान्यतः इस माँग को पसन्द नहीं करते, किन्तु जो अनेक जन्मों तक आध्यात्मिक जीवन का अनुशीलन करता है, वह अन्ततः श्रीभगवान् के चरणारविन्द में समर्पित हो जाता है—**बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।**

मुक्तस्ततो यदि बन्धाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः ॥२४॥

मुक्तः=मुक्ति प्राप्त; **ततः**=उससे; **यदि**=यदि; **बन्धात्**=राज्य कारावास से या स्त्री-रक्षक द्वारा प्रताड़ित होने पर; **देवदत्तः**=देवदत्त नामक व्यक्ति; **उपाच्छिनत्ति**=उसका धन छीन लेता है; **तस्मात्**=देवदत्त से; **अपि**=पुनः; **विष्णुमित्रः**=विष्णुमित्र नामक व्यक्ति; **इति**=इस प्रकार; **अनवस्थितिः**=धन एक स्थान पर न रहकर एक हाथ से दूसरे के हाथ में चला जाता है ।

अनुवाद

यह बद्धजीव पराये धन को चुराकर या ठग कर किसी तरह से अपने पास रखता है और दण्ड से बच जाता है । तब देवदत्त नामक एक अन्य व्यक्ति इस धन को उससे ठग लेता है । इसी प्रकार विष्णुमित्र नामक एक तीसरा व्यक्ति यह धन देवदत्त से छीन लेता है । यह धन किसी भी दशा में एक स्थान पर टिकता नहीं है। यह एक हाथ से दूसरे हाथ में जाता रहता है । अन्त में इसका कोई उपभोग नहीं कर पाता और यह श्रीभगवान् की सम्पत्ति बन जाता है ।

तात्पर्य

धन तो सौभाग्य की देवी लक्ष्मी से आता है और लक्ष्मीजी स्वयं भगवान् श्रीनारायण की सम्पत्ति हैं । लक्ष्मी, नारायण को छोड़कर कहीं भी स्थिर नहीं रहती । इसीलिए उनका एक नाम चंचला है । जब तक वे अपने पति नारायण के संग नहीं होतीं, वे शान्तिपूर्वक नहीं रह पातीं । उदाहरणार्थ, भौतिकवादी रावण लक्ष्मी को हर ले गया । रावण ने भगवान् राम की पत्नी सीता का अपहरण किया । परिणाम यह हुआ कि रावण का समस्त परिवार, वैभव तथा साम्राज्य विनष्ट हो गया और सौभाग्य की देवी सीताजी उसके चंगुल से मुक्त होकर भगवान् श्रीराम से पुनः मिल गईं । इस प्रकार समस्त धन, वैभव तथा ऐश्वर्य श्रीकृष्ण का है । भगवद्गीता (५.२९) में कहा भी है—**भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।** "श्रीभगवान् समस्त यज्ञों तथा तपों के भोक्ता हैं और सभी लोकों के सर्वोच्च स्वामी हैं ।"

मूर्ख संसारी पुरुष धन संग्रह करते हैं और अन्य चोरों से चुराते हैं, किन्तु वे उसे अपने पास रख नहीं पाते । प्रत्येक दशा में इसको व्यय होना है । एक व्यक्ति

दूसरे को ठगता है और दूसरा किसी अन्य को। अतः लक्ष्मी को वश में रखने की श्रेष्ठ विधि है कि उसे नारायण की बगल में रहने दिया जाय। श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही उद्देश्य है। हम नारायण (श्रीकृष्ण) सहित लक्ष्मी (राधारानी) की पूजा करते हैं। हम विभिन्न साधनों से धन संग्रह करते हैं, किन्तु वह धन किसी व्यक्ति का न होकर राधाजी तथा श्रीकृष्ण (लक्ष्मी-नारायण) का होता है। यदि यह धन लक्ष्मी-नारायण की सेवा में लगाया जाता है तो भक्त स्वतः ही वैभवपूर्ण जीवन बिताता है। किन्तु यदि कोई लक्ष्मी का उपभोग रावण की तरह करना चाहता है तो आध्यात्मिक नियमों के द्वारा वह पराजित होगा और जो कुछ उसके अधिकार में है वह छीन लिया जायगा। अन्त में मृत्यु सब कुछ अपने साथ ले जायेगी और मृत्यु ही श्रीकृष्ण का प्रतिनिधिस्वरूप है।

क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तचिन्तया विषण्ण आस्ते ॥२५॥

क्वचित् = कभी-कभी; **च** = भी; **शीत-वात-आदि** = ठंड तथा झंझा आदि; **अनेक** = कई; **अधिदैविक** = देवों द्वारा उत्पन्न, दैविक; **भौतिक** = अधिभौतिक, अन्य जीवों द्वारा उत्पन्न; **आत्मीयानाम्** = अध्यात्मिक, देह तथा मन द्वारा उत्पन्न; **दशानाम्** = कष्टपूर्ण दशाएँ; **प्रतिनिवारणे** = निवारण करने में; **अकल्पः** = अशक्य; **दुरन्त** = अत्यन्त कठोर; **चिन्तया** = चिन्ता के कारण; **विषण्णः** = दुःखी; **आस्ते** = रहता है।

अनुवाद

सांसारिक अस्तित्व के तापत्रय से अपनी रक्षा न कर सकने के कारण बद्धजीव अत्यन्त दुःखी रहता है और शोकपूर्ण जीवन बिताता है। ये तीन प्रकार के ताप हैं—देवताओं द्वारा दिये जाने वाला मानसिक ताप, (यथा, हिमानी हवा तथा चिलचिलाती धूप), अन्य जीवात्माओं द्वारा प्रदत्त ताप तथा मन एवं देह से उत्पन्न होने वाला ताप।

तात्पर्य

तथाकथित सुखी संसारी प्राणी को निरन्तर तीन प्रकार के ताप सहने पड़ते हैं जिन्हें अधिदैविक, अध्यात्मिक तथा अधिभौतिक कहते हैं। वास्तव में इन तीनों तापों का निवारण किसी के वश का नहीं है। ये तीनों एक साथ किसी एक समय आक्रमण कर सकते हैं अथवा यह भी हो सकता है कि इनमें से कोई एक ताप न सताये और अन्य रहें। इस प्रकार जीवात्मा निरन्तर चिन्ता से पूर्ण रहता है और उसे भय बना रहता है कि किसी न किसी ओर से ताप आ सकते हैं। बद्धजीव

इन तापों में से कम से कम एक से अवश्य विचलित होता रहता है। उससे छुटकारा नहीं मिल पाता।

क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किञ्चिद्धनमन्येभ्यो वा काकिणिकामात्रमप्यपहरन् यत्किञ्चिद्वा विद्वेषमेति वित्तशाठ्यात् ॥२६॥

क्वचित्=कभी-कभी; **मिथः**=परस्पर; **व्यवहरन्**=व्यवहार करते हुए; **यत् किंचित्**=जो कुछ भी थोड़ा सा; **धनम्**=धन; **अन्येभ्यः**=अन्यों से; **वा**=या; **काकिणिका-मात्रम्**=अत्यल्प धन (बीस कौड़ी); **अपि**=निश्चय ही; **अपहरन्**=ठग कर ले लेने पर; **यत् किंचित**=जो कुछ भी अल्प मात्रा; **वा**=या; **विद्वेषम् एति**=वैर उत्पन्न करता है; **वित्त शाठ्यात्**=ठगने के फलस्वरूप।

अनुवाद

जहाँ तक लेन-देन के व्यवहार का सम्बन्ध है, यदि कोई मनुष्य किसी दूसरे का एक कौड़ी या इससे भी कम धन ठग लेता है तो वे परस्पर शत्रु बन जाते हैं।

तात्पर्य

यह संसार दावानल कहलाता है। दो व्यक्तियों के बीच सामान्य लेन-देन में भी ठगी होती है, क्योंकि बद्धजीव चार प्रकार से दोषी है—वह भ्रम में है, वह त्रुटियाँ करता है, उसका ज्ञान अपूर्ण है और उसमें ठगने की जन्मजात प्रवृत्ति पाई जाती है। जब तक सांसारिक बन्धनों से छुटकारा नहीं होता, ये चारों दोष बने रहते हैं। फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति में ठगने की प्रवृत्ति होती है जिसे वह व्यापार या रुपयों के लेन-देन में प्रयुक्त करता है। भले ही दो मित्र शान्तिपूर्वक एक साथ रह रहे हों, किन्तु जब उनमें लेन-देन होता है तो ठगी-प्रवृत्ति के कारण वे एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं। एक दार्शनिक किसी अर्थशास्त्री को धोखेबाज कह सकता है और एक अर्थशास्त्री किसी दार्शनिक को, जब वह धन के सम्पर्क में आता है तो, उसे वंचक (धोखेबाज, ठग) कह सकता है। प्रत्येक स्थिति में भौतिक जीवन की यही स्थिति है। कोई कितना भी दर्शन प्रदर्शित करे, किन्तु जब उसे धन की आवश्यकता होती है तो वह ठग वन जाता है। इस भौतिक संसार में तथाकथित वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा अर्थशास्त्री किसी न किसी रूप में ठग हैं। वैज्ञानिक इस-लिए ठग कहे जा सकते हैं, क्योंकि विज्ञान के नाम पर वे अनेक मिथ्या बातें कहते हैं। वे चन्द्रमा पर जाने की योजना बनाकर जनता से अपने प्रयोगों के लिए विशाल धनराशि ठग लेते हैं। वे कोई लाभप्रद कार्य नहीं कर सकते। जब तक उपर्युक्त चार मूलभूत दोषों से मुक्त दिव्य प्राणी न मिल जायें तब तक किसी के उपदेश को

नहीं मानना चाहिए। सर्वोत्तम विधि तो यह है कि श्रीकृष्ण या उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि से ही उपदेश ग्रहण किया जाय।

अध्वन्यमुष्मिन्निम उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्माद-शोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्यावमानक्षुत्पिपासाधिव्याधिजन्मजरामरणादयः ॥२७॥

अध्वनि=भौतिक जीवन के पथ पर; **अमुष्मिन्**=उस पर; **इमे**=ये सब; **उपसर्गाः**=शाश्वत कठिनाइयाँ; **तथा**=और; **सुख**=तथाकथित सुख; **दुःख**=कष्ट; **राग**=आसक्ति; **द्वेष**=घृणा; **भय**=डर; **अभिमान**=झूठा गर्व; **प्रमाद**=भ्रम; **उन्माद**=पागलपन; **शोक**=शोक; **मोह**=मोह; **लोभ**=लालच; **मात्सर्य**=विद्वेष; **ईर्ष्य**=दुश्मनी, वैर; **अवमान**=अनादर; **क्षुत**=क्षुधा; **पिपासा**=प्यास; **आधि**=आपदाएँ; **व्याधि**=रोग; **जन्म**=जीव धारण करना; **जरा**=बुढ़ापा; **मरण**=मृत्यु; **आदयः**=इत्यादि।

अनुवाद

इस भौतिक जगत् में अनेकानेक कठिनाइयाँ आती हैं और ये सभी दुर्लंघ्य हैं। इनके अतिरिक्त सुख, दुःख, राग, द्वेष, भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मत्सर, ईर्ष्या, अनादर, क्षुधा, पिपासा, आधि, व्याधि, जन्म, जरा, मरण से उत्पन्न होने वाली बाधाएँ आती हैं। ये सभी मिलकर संसारी बद्धजीव को दुःख के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे पातीं।

तात्पर्य

इस ससार में बद्धजीव इन सभी परिस्थितियों को इन्द्रियतृप्ति के लिए स्वीकार करता है। यद्यपि व्यक्ति अपने को महान् वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ तथा समाजशास्त्री घोषित करते रहते हैं, किन्तु वे वास्तव में हैं वे शठ। इसीलिए भगवद्गीता (७.१५) में इन्हें मूढ़ तथा नराधम कहा गया है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृताज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

"माया द्वारा हरे हुए ज्ञान वाले, आसुरी स्वभाव को धारण किये हुए, मनुष्यों में अधम और पाप को करने वाले मूढ़ मेरी शरण नहीं लेते।"

भगवद्गीता में इन सभी सांसारिक प्राणियों को उनकी मूर्खता के कारण नराधम कहा गया है। उनको मनुष्य जीवन इसलिए प्राप्त हुआ है कि वे सांसारिक बन्धन से मुक्त हों, किन्तु वे ऐसा न करके दुःखद परिस्थितियों में फँसे रहते हैं, इसीलिए वे मनुष्यों में नराधम हैं। प्रश्न यह है कि क्या वैज्ञानिक, दार्शनिक,

अर्थशास्त्री तथा गणितज्ञ भी नराधम हैं ? श्रीभगवान् का उत्तर है कि वे नराधम हैं, क्योंकि उन्हें वास्तविक ज्ञान नहीं है । वे अपनी झूठी प्रतिष्ठा और पद पर गर्व करते हैं । वास्तविकता तो यह है कि वे इस भौतिक अवस्था से उद्धार पाने, जीवन को उदात्त तथा ज्ञानमय बनाने की कोई विधि नहीं जानते । फलस्वरूप वे तथाकथित सुख की खोज में शक्ति तथा समय का अपव्यय करते हैं । ये असुरों के लक्षण हैं । भगवद्गीता में कहा गया है कि जब किसी में ये आसुरी गुण रहते हैं तो वह मूढ़ बन जाता है । इसके कारण वह श्रीभगवान् से द्वेष करने लगता है, फलतः वह असुरों के वंश में बारम्बार जन्म धारण करता है और एक आसुरी देह से दूसरी में देहान्तर करता है । इस प्रकार वह श्रीकृष्ण से अपने सम्बन्ध को भूल कर जन्म-जन्मान्तर तक नराधम बना रहता है ।

क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढः प्रस्कन्नविवेकविज्ञानो यद्विहारगृहारम्भा-
कुलहृदयस्तदाश्रयावसक्तसुतदुहितृकलत्रभाषितावलोकविचेष्टितापहृतहृदय
आत्मानमजितात्मापारेऽन्धे तमसि प्रहिणोति ॥२८॥

क्वापि=कहीं भी; **देव-मायया**=देवमाया के वश में होकर; **स्त्रिया**=सखी या पत्नी के रूप में; **भुज-लता**=वन की कोमल लताओं के सदृश सुन्दर बाहुओं के द्वारा; **उपगूढः**=अत्यधिक व्याकुल होकर; **प्रस्कन्न**=खोया हुआ; **विवेक**=सत् असत् का ज्ञान; **विज्ञानः**=विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान; **यत्-विहार**=पत्नी सुख के लिए; **गृह-आरम्भ** =घर की तलाश करने में; **आकुल-हृदय**=व्याकुल चित्त होकर; **तत्**=उस घर की; **आश्रय-अवसक्त**=जो शरण में आये हुए हैं; **सुत**=पुत्रों का; **दुहितृ**=पुत्रियों का; **कलत्र**=पत्नी का; **भाषित-अवलोक**=उनके सम्भाषणों तथा बाँकी चितवनों से; **विचेष्टित**=कार्यों से, चेष्टाओं से; **अपहृत-हृदयः**=जिसका हृदय हर लिया गया है, संज्ञा शून्य; **आत्मनाम्**=स्वयं; **अजित्**=अवश; **आत्मा**=जिसका स्व; **अपारे**=अनन्त; **अन्धे**=घनान्धकार में; **तमसि**=नारकीय जीवन; **प्रहिणोति**= बिखेर देता है ।

अनुवाद

कभी-कभी बद्धजीव प्रमादवश मूर्तिमान माया (अपनी पत्नी या प्रेयसी) से आकर्षित होकर स्त्री द्वारा आलिंगित होने के लिए व्याकुल हो उठता है । इस प्रकार वह अपनी बुद्धि तथा जीवन-उद्देश्य के ज्ञान को खो देता है । उस समय वह आध्यात्मिक अनुशीलन का प्रयास न करके अपनी पत्नी या प्रेयसी से अत्यधिक अनुरक्त हो जाता है और उसके लिए उपयुक्त गृह आदि का प्रयत्न करता है, फिर वह इस घरबार में अत्यधिक व्यस्त हो जाता है और अपनी पत्नी की चितवन, चेष्टाएँ तथा बच्चों की बोली का दास बन जाता है । इस प्रकार वह श्रीकृष्णभावनामृत से वंचित होकर लौकिक अस्तित्व के गहन अन्धकार में गिर जाता है ।

तात्पर्य

जब बद्धजीव को अपनी प्राणोपम पत्नी का आलिंगन प्राप्त होता है तो वह श्रीकृष्णभावनामृत के विषय में सब कुछ भूल जाता है। वह अपनी पत्नी से जितना ही अनुरक्त होता है, पारिवारिक जीवन में उतना ही उलझता जाता है। एक बंगाली कवि, श्रीबंकिम चन्द्र का कथन है कि प्रेमी की दृष्टि में उसकी प्रेमिका अत्यन्त सुन्दर होती है, भले ही वह कुरूप क्यों न हो। यह आकर्षण "देवमाया" कहलाता है। पुरुष और स्त्री का यह आकर्षण बन्धन का कारण है। वास्तव में ये दोनों "परा प्रकृति" से सम्बन्धित हैं, किन्तु दोनों ही "प्रकृति" (स्त्री) हैं। किन्तु दोनों ही परस्पर आनन्द लेना चाहते हैं, इसलिए कभी-कभी वे पुरुष (नर) कहलाते हैं। सत्य तो यह है कि इनमें से कोई भी पुरुष नहीं है, किन्तु ऊपर-ऊपर से इन्हें पुरुष कहा जाता है। ज्योंही स्त्री तथा पुरुष का संयोग हो जाता है उनका लगाव घर-बार, खेत, मित्रता तथा धन से हो जाता है। इस तरह वे दोनों भौतिक अस्तित्व के जाल में पड़ जाते हैं। **भुजलता उपगूढ** शब्द का अर्थ है, "लताओं के सदृश सुन्दर भुजाओं द्वारा आलिंगित होकर" और यह बताता है कि किस प्रकार बद्धजीव इस भौतिक जगत् में बँध जाता है। विवाहित जीवन के फलस्वरूप उसके पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न होते हैं—ये ही परिणाम हैं। भौतिक अस्तित्व की यही राह है।

कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात्परमाण्वादिद्विपरार्धापवर्गकालोपलक्षणात्परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तम्बादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रनिजायुधं साक्षाद्भगवन्तं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखण्डदेवताः कङ्कगृध्रबकवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः साङ्केत्येनाभिधत्ते ॥२६॥

कदाचित्=कभी-कभी; **ईश्वरस्य**=ईश्वर का; **भगवतः**=श्रीभगवान् का; **विष्णोः**=भगवान् विष्णु का; **चक्रात्**=चक्र से; **परमाणु-आदि**=सूक्ष्म परमाणुओं के काल से प्रारम्भ करके; **द्विपरार्ध**=ब्रह्मा के जीवन की अवधि; **अपवर्ग**=अन्त; **काल**=समय का; **उपलक्षणात्**=लक्षणों से; **परिवर्तितेन**=चक्कर लगाता हुआ; **वयसा**=आयुओं के क्रमानुसार; **रंहसा**=तेजी से; **हर्तः**=हरण करके; **आ-ब्रह्म**=ब्रह्माजी से लेकर; **तृण-स्तम्ब-आदीनाम्**=क्षुद्रातिक्षुद्र तृण पर्यन्त; **भूतानाम्**=समस्त जीवात्माओं का; **अनिमिषतः**=अपलक, निरन्तर; **मिषताम्**=जीवात्माओं की आँखों के सामने (फिर भी वे रोक नहीं सकते); **वित्रस्त-हृदयः**=मन में डर कर; **तम्**=उस (ईश्वर) को; **एव**=निश्चय ही; **ईश्वरम्**=श्रीभगवान्; **काल-चक्र-निज-आयुधम्**=काल चक्र ही जिसका साक्षात आयुध है; **साक्षात्**=प्रत्यक्षतः; **भगवन्तम्**=

श्रीभगवान्; **यज्ञ पुरुषम्**=जो सभी प्रकार के यज्ञों को स्वीकार करता है, यज्ञ पुरुष; **अनादृत्य**=अनादर करके, परवाह किये बिना; **पाखंड-देवताः**=ईश्वर के पाखण्डी अवतार (मानवकल्पित भगवान् या देवता); **कंक**=बाज; **गृद्ध**=गीध; **बक**=बगुला; **अट-प्रायाः**=कौवों के सदृश; **आर्य-समय-परिहृताः**=आर्यों के द्वारा स्वीकृत प्रमाणिक वैदिक शास्त्रों से तिरस्कृत होकर; **सांकेत्येन**=कपोलकल्पित अप्रमाणिक शास्त्रों द्वारा; **अभिधत्ते**=पूजा योग्य स्वीकार कर लेता है ।

अनुवाद

श्रीकृष्ण द्वारा प्रयुक्त निज आयुध, हरिचक्र कहलाता है । यह चक्र कालचक्र है । यह परमाणुओं से लेकर ब्रह्मा की मृत्युपर्यन्त प्रसारित है और यह समस्त कर्मों को नियन्त्रित करने वाला है । यह निरन्तर घूमता रहता है और ब्रह्माजी से लेकर क्षुद्रातिक्षुद्र तृण तक सभी जीवात्माओं का संहार करता है । इस प्रकार प्राणी बाल्यपन से यौवन तथा प्रौढ़ अवस्था को प्राप्त करते हुए जीवन के अन्त तक पहुँच जाता है । काल के इस चक्र को रोक पाना असम्भव है । श्रीभगवान् का निज आयुध होने के कारण यह अत्यन्त कठोर है । कभी-कभी बद्धजीव मृत्यु को निकट आया जानकर ऐसे व्यक्ति की पूजा करने लगता है जो उसे आसन्न संकट से उबार सके । वह ऐसे श्रीभगवान् की परवाह नहीं करता जिनका आयुध अथक काल है । उल्टे वह अप्रामाणिक शास्त्रों में वर्णित मानव कल्पित देवताओं की शरण में जाता है । ऐसे देवता बाज, गीध, बगुले तथा कौवे के तुल्य हैं । वैदिक शास्त्रों में इनका वर्णन नहीं मिलता । पास खड़ी मृत्यु शेर के आक्रमण की तरह है, जिससे न तो गीध, बाज, कौवे और न ही बगुले बचा सकते हैं । जो पुरुष ऐसे अप्रामाणिक मानव निर्मित देवताओं की शरण में जाता है उसे मृत्यु के चंगुल से नहीं छुड़ाया जा सकता ।

तात्पर्य

कहा गया है—**हरिं बिना मृतिमं न तरन्ति** । बिना हरि की कृपा के कोई भी मृत्यु के क्रूर हाथों से बच नहीं सकता । भगवद्गीता का कथन है—**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते**—जो भी अपने को पूर्णतया श्रीकृष्ण को समर्पित कर देता है उसे वे भौतिक प्रकृति (दैवी शक्ति) के क्रूर चंगुल से बचा लेते हैं । किन्तु कभी-कभी बद्धजीव मानवकृत भगवान्, देवताओं, अवतारियों या कपटी स्वामियों अथवा योगियों की शरण में जाना चाहता है । ये सभी ठग अपने आप को धर्मों के नियमों का पालक बताते हैं और इस कलियुग में यह अत्यन्त प्रचलित है । ऐसे अनेक पाखण्डी होते हैं जो अपने को अवतार बताते हैं और मूर्ख लोग उनके सेवक बन जाते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण अपने पीछे श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता नामक दो ग्रन्थ छोड़ गये हैं । धूर्त लोग इन शास्त्रीय ग्रन्थों का उल्लेख न करके मानवकृत

ग्रन्थों की शरण लेते हैं और श्रीकृष्ण से स्पर्धा करते हैं। मानव समाज में आध्यात्मिक भावना को आगे बढ़ाते समय यही सबसे बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। श्रीकृष्ण-भावनामृत आन्दोलन मनुष्यों को श्रीकृष्णभावना के पथ में लाने का भरसक प्रयत्न कर रहा है, किन्तु पाखण्डियों तथा नास्तिकों की संख्या इतनी अधिक है कि कभी-कभी समझ में नहीं आता कि इस आन्दोलन को किस प्रकार आगे बढ़ाया जाय। हम किसी भी दशा में तथाकथित अवतारों, देवताओं, ठगों तथा वंचकों की अप्रमाणिक विधियों को स्वीकार नहीं कर सकते, जिन्हें यहाँ पर कौवों, गृद्धों, बाजों तथा बगुलों के रूप में बताया गया है।

यदा पाखण्डिभिरात्मवञ्चितैस्तैरुरु वञ्चितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शील-मुपनयनादिश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेन भगवतो यज्ञपुरुषस्याराधनमेव तदरोचयन् शूद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो यस्य मिथुनीभावः कुटुम्बभरणं यथा वानरजाते ॥३०॥

यदा=जब; **पाखण्डिभिः**=पाखण्डियों (नास्तिकों) द्वारा; **आत्म-वंचितैः**=स्वयं को ठगने वाले; **तैः**=उनके द्वारा; **उरु**=अधिकाधिक; **वंचितः**=ठगे जाकर; **ब्रह्म-कुलम्**=वैदिक संस्कृति के पालक एकमात्र ब्राह्मणजन; **समावसन्**=आत्मिक उन्नति के लिए उनके बीच निवास करते हुए; **तेषाम्**=उनके (ब्राह्मणों के); **शीलम्**=शील, अच्छा आचरण; **उपनयन-आदि**=उपनयन संस्कार से प्रारम्भ करके अर्थात् बद्धजीव को ब्राह्मण बनने की शिक्षा देते हुए; **श्रौत**=वैदिक नियमों के अनुसार, वेद विधि से; **स्मार्त**=वेदों से प्राप्त प्रामाणिक उपदेशों के अनुसार; **कर्म-अनुष्ठानेन**=कर्मों के पालन द्वारा; **भगवतः**=श्रीभगवान्; **यज्ञ-पुरुषस्य**=जो वैदिक यज्ञों द्वारा पूजित है; **आराधनम्**=उस ईश्वर की पूजा; **एव**=निश्चयपूर्वक; **तत अरोचयन्**=चरित्रहीन व्यक्तियों द्वारा कठिनाई से सम्पन्न होने के कारण उसमें आनन्द प्राप्त न कर सकने से, अरुचिकर लगने के कारण; **शूद्र-कुलम्**=शूद्रों का कुल (समाज); **भजते**=की ओर उन्मुख होता है; **निगम-आचारे**=वैदिक रीतियों के अनुसार आचरण करने में; **अशुद्धितः**=अशुद्ध; **यस्य**=जिसका; **मिथुनीभावः**=मैथुन सुख अथवा सांसारिक जीवन; **कुटुम्बभरणम्**=परिवार का पालन-पोषण; **यथा**=सदृश; **वानरजातेः**=वानर कुल के, वानर की सन्तानों की।

अनुवाद

ऐसे छद्म-स्वामी, योगी तथा अवतारी जो श्रीभगवान् में विश्वास नहीं करते, पाखण्डी कहलाते हैं। वे स्वयं पतित होते हैं और ठगे जाते हैं, क्योंकि वे आध्यात्मिक

उन्नति का मार्ग नहीं जानते, अतः उनके पास जो भी जाता है वही ठगा जाता है। इस प्रकार से ठगे जाने पर वह कभी-कभी वैदिक नियमों के असली उपासकों (ब्राह्मणों अथवा श्रीकृष्णभावनामृत वालों) की शरण में जाता है, जो सबों को वेदोक्त आचार से श्रीभगवान् की उपासना करना बताते हैं। किन्तु इन रीतियों का पालन न कर सकने के कारण ये धूर्त पुनः पतित होते हैं और शूद्रों की शरण लेते हैं जो विषयभोग में मग्न रहने में पटु हैं। वानर जैसे पशुओं में मैथुन अत्यन्त प्रकट रहता है और ऐसे मैथुन-प्रेमी व्यक्तियों को वानर की सन्तान कहा जा सकता है।

तात्पर्य

जलचर से पशु स्तर तक विकास की प्रक्रिया पूरी करके जीवात्मा मनुष्य रूप को प्राप्त होती है। विकास प्रक्रिया में तीनों गुण कार्यशील रहते हैं। जो प्राणी सत्व-गुण के द्वारा मनुष्य रूप प्राप्त करते हैं वे अपने पूर्व पशु अवतार में गाय थे। जो रजोगुण के द्वारा मनुष्य रूप प्राप्त करते हैं वे पूर्व जन्म में सिंह और जो तमोगुण के कारण मनुष्य रूप धारण करते हैं वे पूर्व जन्म में बन्दर थे। यहाँ हमें यह सूचना प्राप्त होती है कि जो केवल विषयभोग में रुचि रखते हैं वे वास्तव में वानरों से अच्छे नहीं हैं। वानर इन्द्रिय सुख भोगने में पटु होते हैं। कभी-कभी उनकी यौन-ग्रन्थियाँ निकालकर मनुष्यों में लगा दी जाती हैं जिससे वे बुढ़ापे में भी यौन-सुख प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार आधुनिक सभ्यता ने प्रगति की है। भारत से अनेक बन्दरों को पकड़ कर यूरोप भेजा गया जहाँ उनकी यौन-ग्रन्थियाँ निकालकर बूढ़े मनुष्यों में लगा दी गईं। वास्तविक रूप में जो वानर की सन्तान हैं वे यौन-व्यापार द्वारा अपने विलासी परिवारों का विस्तार करते हैं। वेदों में भी कुछ ऐसे संस्कार हैं जिनके द्वारा यौन-उन्नति करके उच्च लोकों में पहुँचा जा सकता है जहाँ देवता इन्द्रिय सुख में प्रवृत्त रहते हैं। देवताओं की भी मैथुन के प्रति प्रवृत्ति रहती है, क्योंकि सांसारिक सुख का मूल सिद्धान्त यही है।

सर्वप्रथम जब बद्धजीव सांसारिक कष्टों से मुक्ति पाने के उद्देश्य से नामधारी स्वामियों, योगियों तथा अवतारियों की शरण में जाता है तो वह उनके द्वारा ठगा जाता है। किन्तु जब उनसे उसकी तुष्टि नहीं होती तो वह भक्तों तथा विशुद्ध ब्राह्मणों के पास जाता है जो सांसारिक बन्धनों से मुक्ति के लिए उसे ऊपर उठाते हैं। किन्तु अविवेकी बद्धजीव मैथुन, मादक द्रव्य सेवन, द्यूत-क्रीड़ा तथा मांसाहार को वर्जित करने वाले नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन नहीं कर पाता। इस प्रकार वह पतित हो जाता है और ऐसे मनुष्यों की शरण में जाता है जो वानरतुल्य हैं। श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन में ऐसे वानर-शिष्य विधि-विधानों का दृढ़ता से पालन न कर सकने के कारण पतित हो जाते हैं और मैथुन आश्रित समाज बनाने का प्रयास करते हैं। यह इसका प्रमाण है कि मनुष्य वानरों की सन्तान हैं जैसा कि डार्विन ने पुष्टि की है। इस श्लोक में इसीलिए स्पष्ट कथन है—**यथा वानर जातेः**।

तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विरहन्नतिकृपणबुद्धिरन्योन्यमुख-निरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव विस्मृतकालावधिः ॥३१॥

तत्र अपि=उस अवस्था में (वानरों की संतति मनुष्यों के समाज में); **निरवरोधः**=बिना रोकटोक के; **स्वैरेण**=स्वच्छन्दता पूर्वक, जीवन के लक्ष्य को ध्यान में न रखकर; **विहरन्**=वानरों की भाँति भोग करते हुए; **अति-कृपण-बुद्धिः**=ठीक से प्रयोग न करने के कारण मन्द-बुद्धि; **अन्योन्य**=परस्पर, एक दूसरे का; **मुख-निरीक्षण-आदिना**=मुखों को देखकर (जब पुरुष किसी स्त्री के सुन्दर मुख को देखता है अथवा कोई स्त्री किसी पुरुष के सुगढ़ शरीर को देखती है तो वे एक दूसरे की आकांक्षा करते हैं;) **ग्राम्य-कर्मणा**=इन्द्रियतुष्टि के लिए कर्म करके; **एव**=एकमात्र; **विस्मृत**=भूला हुआ; **काल-अवधिः**=सीमित जीवन-काल (जिसके बाद उसका आवागमन, पतन या उत्कर्ष हो सकता है।)

अनुवाद

इस प्रकार वानरों की सन्तानें एक दूसरे से घुलती-मिलती हैं और सामान्य रूप से शूद्र कहलाती हैं। मुक्त भाव से वे जीवन का उद्देश्य समझे बिना स्वच्छन्द-विहार करते हैं। वे एक दूसरे के मुख को देखकर ही मुग्ध होते रहते हैं, क्योंकि इससे इन्द्रिय-तुष्टि होती रहती है। वे निरन्तर सांसारिक कर्म में लगे रहते हैं, जिसे "ग्राम्य-कर्म" कहते हैं और भौतिक लाभ के लिए कठिन श्रम करते हैं। इस प्रकार वे भूल जाते हैं कि उनकी लघु जीवन-अवधि समाप्त हो जायेगी और वे आवागमन के चक्र में गिर जायेंगे।

तात्पर्य

भौतिकवादी मनुष्यों को यदाकदा "शूद्र" या उनकी वानर जैसी बुद्धि के कारण वानरों की सन्तान कहा जाता है। उन्हें इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं रहती कि आवागमन चक्र किस प्रकार घटित होता है, न ही उन्हें यह जानने की कोई उत्सुकता रहती है कि उनके इस लघुजीवन के बाद क्या होगा। यह शूद्रों की प्रवृत्ति है। यह श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन, जो श्रीचैतन्य महाप्रभु का सन्देश है, शूद्रों को ब्राह्मणों के पद तक ऊपर उठाने के लिए प्रयत्नशील है, जिससे वे जीवन के वास्तविक उद्देश्य को जान सकें। दुर्भाग्यवश इन्द्रिय सुख में लिप्त रहने के कारण, भौतिकवादी इस आन्दोलन की गम्भीरतापूर्वक सहायता नहीं कर रहे। उलटे, वे इसे कुचलने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार बानरों का कार्य ही ब्राह्मणों के कर्मों में विघ्न पहुँचाना है। ये वानरों की सन्तानें यह भूल जाती हैं कि उन्हें मरना है। उन्हें अपने वैज्ञानिक ज्ञान एवं भौतिक संस्कृति का अत्यधिक गर्व है। "ग्राम्य-कर्मणा" शब्द से

दैहिक सुखों की उन्नति के निमित्त सम्पन्न कार्य सूचित होता है । इस समय समस्त मानव समाज आर्थिक दशाओं एवं दैहिक सुखों को बढ़ाने में संलग्न है । लोग यह जानने के तनिक भी इच्छुक नहीं हैं कि मृत्यु के पश्चात् क्या होगा और न ही वे आत्मा के देहान्तर में ही विश्वास करते हैं । विकासवाद का अध्ययन करके ही यह जाना जा सकता है कि मानव जीवन ऐसा संधिस्थल है जहाँ उन्नति या अवनति का पथ ग्रहण किया जा सकता है । जैसा कि भगवद्गीता (९.२५) में कहा गया है—

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानियान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

"देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं; पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं; भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं ।"

हमें इसी जीवन में अगले जन्म के लिए तैयारी करनी होती है । जो रजोगुणी हैं वे स्वर्गलोक जाना चाहते हैं । कुछ, अनजाने ही निम्न पशु योनियों में गिरा दिये जाते हैं । जो सत्त्व-गुणी हैं वे भक्ति में लगे रहते हैं और इसके बाद वे भगवत्-धाम को वापस जाते हैं (**यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्**) । यही मनुष्य जीवन का वास्तविक प्रयोजन है । श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन बुद्धिमान् पुरुषों को भक्ति के मंच पर लाने का प्रयास कर रहा है । सांसारिक जीवन में श्रेष्ठतर स्थान प्राप्त करने के प्रयास में समय न गँवाकर मनुष्य को चाहिए कि वह केवल श्रीभगवान् के धाम में वापस पहुँचने के लिए प्रयास करे । इससे सभी समस्याएँ हल हो जायेंगी । जैसा कि श्रीमद्भागवतम् (१.२.१७) में कहा गया है—

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥

"भगवान् श्रीकृष्ण जो प्रत्येक के हृदय में विद्यमान परमात्मा हैं, तथा अपने अनन्य-भक्तों के सुहृद हैं । जो उनके कथामृत का आस्वादन करते हैं, उन भक्तों के हृदय से प्राकृत-सुख भोगों की वासनाओं को समाप्त कर देते हैं । जब वे उनके नामों एवं कथाओं का श्रवण एवं उच्चारण करते हैं तो उनका जीवन पुण्यमय एवं पावन हो उठता है ।"

इसके लिए मनुष्य को विधि-विधान का पालन करना, ब्राह्मण की तरह कर्म करना; हरे कृष्ण मंत्र का संकीर्तन करना और भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवतम् का पारायण करना होता है । इस प्रकार वह तमो तथा रजो गुणों से अपने को शुद्ध कर लेता है और इन गुणों के मोह से छूटकर पूर्ण मानसिक शान्ति प्राप्त करता है ।

इस तरह कोई भी श्रीभगवान् तथा उनसे अपने सम्बन्ध को समझ सकता है और उच्चतम सिद्धि को प्राप्त कर सकता है (**सिद्धि परमां गताः**)।

क्वचिद् द्रुमवदैहिकार्थेषु गृहेषु रंस्यन् यथा वानरः सुतदारवत्सलो व्यवायक्षणः ॥३२॥

क्वचित्=यदा-कदा; **द्रुम-वत्**=वृक्ष के सदृश (जिस प्रकार वानर एक वृक्ष से दूसरे में कूदकर जाता है वैसे ही बद्धजीव एक से दूसरे देह में देहान्तर करता रहता है; **ऐहिक-अर्थेषु**=मात्र उत्तम सांसारिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए; **गृहेषु**=घरों (देहों) में; **रंस्यन्**=सुख अनुभव करते हुए (एक देह से दूसरे में, या तो पशु, मानव या दैव जीवन में); **यथा**=के सदृश; **वानरः**=बन्दर; **सुत-दारा-वत्सलः**=सन्तान तथा पत्नी के लिए अत्यन्त प्रिय; **व्यवाय-क्षणः**=जिसका समय विषय सुख में बीतता है।

अनुवाद

जिस प्रकार वानरगण एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदते रहते हैं, उसी प्रकार बद्धजीव एक देह से दूसरे में जाता रहता है। जब कोई शिकारी वानर को बन्दी बना लेता है तो वह छूटकर निकल नहीं पाता। उसी प्रकार यह बद्धजीव क्षणिक इन्द्रिय तृप्ति में फंसकर भिन्न-भिन्न प्रकार के देहों से आसक्त होकर गृहस्थ जीवन में बद्ध हो जाता है। गृहस्थ जीवन में बद्धजीव को क्षणिक इन्द्रिय सुख प्राप्त होता है और इस प्रकार वह सांसारिक चंगुल से निकलने में सर्वथा असमर्थ हो जाता है।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवतम् (११.९.२९) में कहा गया है—**विषयः खलु सर्वतः स्यात्।** किसी भी जीवरूप में आहार, निद्रा, मैथुन तथा भय—ये दैहिक आवश्यकताएँ प्राप्त हैं। यहाँ यह बताया गया है कि वानर मैथुन के प्रति सर्वाधिक आकृष्ट होता है। प्रत्येक वानर के कम से कम दो दर्जन पत्नियाँ रहती हैं और वह बन्दरियों को पकड़ने के लिए एक वृक्ष से दूसरे पर कूदता रहता है और अविलम्ब संभोग में जुट जाता है। इस प्रकार वानर का व्यापार है एक वृक्ष से दूसरे में कूदकर अपनी पत्नियों के साथ यौनाचार का आनन्द लेना। बद्धजीव भी यही कर रहा है। वह एक देह से दूसरे में देहान्तर करके मैथुनरत रहता है। इस प्रकार वह यह भूल जाता है कि भौतिक वन्धन से किस प्रकार मुक्त हुआ जाय। कभी-कभी शिकारो बन्दरों को पकड़ कर डाक्टरों को बेच देता है जो इसको ग्रन्थियों को निकालकर दूसरे वानरों में लगाता है। यह सब धन्धा आर्थिक विकास और विकसित यौन जीवन के नाम पर चलाया जा रहा है।

एवमध्यन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकन्दरप्राये ॥३३॥

एवम् = इस प्रकार; **अध्वनि** = इन्द्रियतुष्टि के पथ पर; **अवरुन्धानः** = अवरुद्ध होने पर (फँस जाने पर) वह जीवन के वास्तविक लक्ष्य को भूल जाता है; **मृत्यु-गज-भयात्** = मृत्यु रूपी हाथी के डर से; **तमसि** = अंधकार में; **गिरि-कन्दर-प्राये** = पर्वत की गहन गुफाओं के सदृश।

अनुवाद

इस भौतिक जगत् में बद्धजीव श्रीभगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को भूलकर तथा श्रीकृष्णभावनामृत की परवाह किये बिना अनेकानेक दुष्कर्मों एवं पापों में प्रवृत्त होने लगता है। तब उसे ताप-त्रय से पीड़ित होना पड़ता है और वह मृत्यु रूपी हाथी के भय से पर्वत की गुफा के घनान्धकार में जा गिरता है।

तात्पर्य

प्रत्येक प्राणी मृत्यु से भयभीत है और वह चाहे जितना ही ऐश्वर्यवान् व्यक्ति क्यों न हो जाय, रोग तथा बुढ़ापा आने पर उसे मृत्यु का संदेश स्वीकार करना पड़ता है। तब बद्धजीव अत्यन्त दुखी (खिन्न) होकर मृत्यु के संदेश को ग्रहण करता है। उसके इस भय की तुलना गहन गिरिगह्वर में प्रवेश करने से और मृत्यु की तुलना हाथी से की गई है।

क्वचिच्छीतवाता द्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुःखानां प्रति-निवारणेऽकल्पो दुरन्तविषयविषण्ण आस्ते ॥३४॥

क्वचित = कभी-कभी; **शीत-वात-आदि** = ठंड अथवा तेज हवा इत्यादि; **अनेक** = कई, अनेक प्रकार के; **दैविक** = देवताओं द्वारा अथवा हमारे वश से परे शक्तियों द्वारा दिए जाने वाली; **भौतिक** = अन्य जीवात्माओं द्वारा दिए जाने वाली; **आत्मीयानाम्** = बद्धजीव तथा मन द्वारा दिए जाने वाले; **दुःखानाम्** = दुःखसमूह के; **प्रतिनिवारणे** = निवृत्त करने में; **अकल्पः** = अशक्त; **दुरन्त** = दुर्लंध्य; **विषय** = इन्द्रियतुष्टि, वासना; **विषण्णः** = दुखी, खिन्न; **आस्ते** = रहता है।

अनुवाद

बद्धजीव को अनेक दैहिक कष्ट सहन करने पड़ते हैं, यथा—अत्यधिक ठंड तथा तेज हवा। वह अन्य जीवात्माओं के कार्यकलापों तथा प्राकृतिक प्रकोपों के कारण भी कष्ट उठाता है। जब वह इनका सामना करने में अक्षम होकर दयनीय अवस्था

में रहता है तो स्वभावत: वह अत्यन्त खिन्न हो उठता है, क्योंकि वह सांसारिक सुविधाओं का भोग करना चाहता है।

क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किञ्चिद्धनमुपयाति वित्तशाठ्येन ॥३५॥

क्वचित् = कभी-कभी या कहीं भी; **मिथः व्यवहरन्** = परस्पर क्रयविक्रय आदि व्यापार करने पर; **यत्** = जो भी; **किंचित्** = रंच भर; **धनम्** = सम्पत्ति; **उपयाति** = प्राप्त करता है; **वित्त-शाठ्येन** = किसी की सम्पत्ति को ठग करके।

अनुवाद

कभी-कभी बद्धजीव परस्पर धन विनिमय करते हैं, किन्तु कालान्तर में ठगी के कारण उनमें शत्रुता उत्पन्न हो जाती है। भले ही रंचमात्र लाभ हो, बद्धजीव परस्पर मित्र न रहकर एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं।

तात्पर्य

जैसा कि श्रीमद्भागवतम् (५.५.८) में कथित है—

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः।
अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति॥

वानर तुल्य बद्धजीव पहले मैथुन में आसक्त होता है और वास्तविक संभोग हो जाने पर वह और अधिक लिप्त हो जाता है। तब उसे कुछ भौतिक सुखों की आवश्यकता होती है—यथा निवास स्थान, भोजन, मित्र, सम्पत्ति इत्यादि। इन्हें प्राप्त करने के लिए उसे दूसरों को ठगना पड़ता है और इससे उसके अभिन्न मित्रों से भी शत्रुता हो जाती है। कभी कभी यह शत्रुता बद्धजीव तथा उसके पिता या गुरु के बीच ठन जाती है। जब तक कोई विधि-विधान में दृढ़ नहीं रहता भले ही वह श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन का सदस्य क्यों न हो, दुष्टता करता रहता है। फलत; हम अपने शिष्यों को विधि-नियमों के उपदेश देते हैं, अन्यथा शिष्यों में विरोध होने पर मानवता के उत्थान के लिए किया जाने वाला यह महत्त्वपूर्ण आन्दोलन अवरुद्ध हो जायेगा। अत: जो इस श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए इच्छुक हैं उन्हें इसे स्मरण रखना चाहिए और विधि-नियमों का कठोरता से पालन करना चाहिए, जिससे उनके मन विचलित न हों।

क्वचित्क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रतिलब्धमनोरथोपगता-दानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जनादभिलभते ॥३६॥

क्वचित् = कभी-कभी; **क्षीण-धनः** = पर्याप्त धन न होने पर; **शय्या-आसन-अशन-आदि** = सोने, बैठने अथवा भोजन के लिए स्थान; **उपभोग** = सांसारिक सुख का; **विहीनः** = वंचित होकर; **यावत्** = जब तक; **अप्रतिलब्ध** = उपलब्ध न होने पर; **मनोरथ** = अभिलाषा से; **उपगत** = प्राप्त; **आदाने** = अनैतिक साधनों से हड़पने में; **अवसितमतिः** = संकल्प; **ततः** = उसके कारण; **ततः** = उससे; **अवमान-आदीनि** = अपमान तथा दंड; **जनात्** = सामान्यजन से; **अभिलभते** = प्राप्त करता है।

अनुवाद

कभी-कभी धनाभाव के कारण बद्धजीव को पर्याप्त स्थान प्राप्त करने में कठिनाई होती है। कभी तो उसे बैठने तक के लिए स्थान प्राप्त नहीं हो पाता, न ही उसे अन्य आवश्यक वस्तुएँ ही प्राप्त होती हैं। अन्य शब्दों में, वह अभाव का अनुभव करता है और नैतिक साधनों से इन आवश्यकताओं को न प्राप्त कर पाने के कारण वह अनैतिक ढंग से दूसरों के धन का अपहरण करता है। जब उसे वांछित वस्तुएँ प्राप्त नहीं हो पातीं और वह दूसरों से अपमान ही प्राप्त करता है तो वह अत्यन्त खिन्न हो उठता है।

तात्पर्य

ऐसा कहा गया है कि आवश्यकता नियम नहीं पहचानती। जब बद्धजीव को जीवन निर्वाह के लिए धन की आवश्यकता आ पड़ती है तो वह कोई न कोई साधन अपनाता है चाहे वह भीख माँगे, उधार ले अथवा चोरी करे, किन्तु ये वस्तुएँ प्राप्त नहीं होतीं, उल्टे उसका अपमान और उपहास किया जाता है। जब तक अच्छी तरह संगठित न रहा जाय, अनुचित साधनों से धन संग्रह नहीं किया जा सकता। यदि वह धन संग्रह कर ले तो भी वह राजा या जनता की प्रताड़ना तथा अपमान से नहीं बच सकता। ऐसे अनेक प्रसंग हैं जब महत्त्वपूर्ण व्यक्ति गबन करते पकड़े गये हैं और उन्हें जेल में रखा गया है। भले ही कोई जेल के दंड से बच जाय, किन्तु वह श्रीभगवान् द्वारा दंडित होने से नहीं बच सकता। इसका उल्लेख भगवद्गीता (७.१४) में हुआ है—**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया**। प्रकृति अत्यन्त क्रूर है। वह किसी को भी क्षमा नहीं करती। जब मनुष्य प्रकृति की अवहेलना करते हैं तो वे सभी प्रकार के पाप कर्म करते हैं, जिसके फलस्वरूप उन्हें कष्ट उठाना पड़ता है।

एवं वित्तव्यतिषङ्गविवृद्धवैरानुबन्धोऽपि पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथा-पवहति ॥३७॥

एवम्=इस प्रकार; **वित्त-व्यतिषंग**=आर्थिक लेनदेन के कारण; **विवृद्ध**=बढ़ा हुआ; **वैर-अनुबन्धः**=वैर भाव; **अपि**=यद्यपि; **पूर्व-वासनया**=पूर्व अशुभ कर्मों के परिणामस्वरूप; **मिथः**=परस्पर; **उद्वहति**=पुत्रों तथा पुत्रियों के विवाह के कारण बँध जाते हैं; **अथ**=इसके पश्चात्; **अपवहति**=सम्बन्ध विच्छेद कर देते हैं अथवा तलाक दे देते हैं।

अनुवाद

अपनी इच्छाओं की बारम्बार पूर्ति के लिए मनुष्य परस्पर शत्रु होकर कभी-कभी विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। दुर्भाग्यवश ये विवाह दीर्घस्थायी नहीं होते और ऐसे लोग तलाक या अन्य कारणों से पुनः विलग हो जाते हैं।

तात्पर्य

जैसा पहले कहा जा चुका है प्रत्येक बद्धजीव में छलने की प्रवृत्ति होती है, यहाँ तक की विवाह में भी। इस भौतिक जगत् में सर्वत्र ही एक बद्धजीव दूसरे से ईर्ष्या करता है। मनुष्य कुछ काल तक भले ही परस्पर मित्र बने रहें, किन्तु अन्ततः वे शत्रु बन जाते हैं और धन के लिए लड़ते हैं। कभी-कभी वे विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं, किन्तु बाद में वे तलाक या अन्य साधनों से विलग हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि ऐसा ऐक्य कभी स्थायी नहीं रहता। छलने की प्रवृत्ति के कारण दोनों पक्ष सदैव ईर्ष्यालु बने रहते हैं। यहाँ तक कि श्रीकृष्णभावनामृत में भी भौतिक प्रवृत्तियों की प्रधानता के कारण पृथकत्व और शत्रुता उत्पन्न हो जाती है।

एतस्मिन् संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यत्र यस्तमु ह वावेतरस्तत्र विसृज्य जातंजातमुपादाय शोचन्मुह्यन् बिभ्यद्विवदन् क्रन्दन् संहृष्यन् गायन्नह्यमानः साधुवर्जितो नैवावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पारमुपदिशन्ति ॥३८॥

एतस्मिन्=इस; **संसार**=दुखमय (संसार); **अध्वनि**=पथ पर; **नाना**=अनेक; **क्लेश**=कष्ट; **उपसर्ग**=भौतिक अस्तित्त्व की आपत्तियों द्वारा; **बाधितः**=क्षुब्ध; **आपन्न**=कभी-कभी प्राप्त करके; **विपन्नः**=कभी खोकर; **यत्र**=जिसमें; **यः**=कौन; **तम्**=उसको; **उ ह वाव**=अथवा; **इतरः**=अन्य कोई; **तत्र**=वहाँ; **विसृज्य**=छोड़ कर; **जातम् जातम्**=नवजात; **उपादाय**=स्वीकार करके; **शोचन्**=शोक करते हुए; **मुह्यन्**=मोह ग्रस्त होकर; **बिभ्यत्**=डरते हुए; **विवदन**=कभी-कभी तेज चीखते हुए; **क्रन्दन**=कभी-कभी रोते हुए; **संहृष्यन्**=कभी-कभी प्रसन्न होते हुए;

गायन्=गाते हुए; **नह्यमानः**=बाँधे जाकर; **साधु-वर्जितः**=सन्त पुरुषों से दूर रहकर; **न**=नहीं; **एव**=निश्चय ही; **आवर्तते**=प्राप्त करता है; **अद्य अपि**=अब भी; **यतः**=जिससे; **आरब्धः**=आरम्भ किया हुआ; **एषः**=इस; **नर-लोक**=भौतिक जगत् का; **स-अर्थः**=आत्मकेन्द्रित (स्वार्थी) जीवात्माएँ; **यम्**=जिनको (श्रीभगवान्); **अध्वनः**=भौतिक अस्तित्त्व के पथ का; **पारम्**=उस पार; **उपदिशान्तिः**=ज्ञानीजन इंगित करते हैं।

अनुवाद

इस भौतिक जगत् का मार्ग क्लेशमय है और बद्धजीव को अनेक कष्ट विचलित करते रहते हैं। कभी वह हारता है तो कभी जीतता है। प्रत्येक दशा में यह मार्ग विघ्नों से परिपूर्ण है। कभी बद्धजीव अपने पिता से मृत्यु होने या अन्य कारणों से विलग हो जाता है तो वह उसे छोड़कर क्रमशः अन्यों से, यथा अपनी सन्तान से आसक्त हो जाता है। इस प्रकार बद्धजीव कभी-कभी भ्रमित और कभी भयभीत होता है तथा क्रन्दन करता है। कभी वह अपने परिवार का भरण करते हुए प्रसन्न होता है तो कभी अत्यधिक प्रसन्न होकर गाने लगता है। इस तरह वह अनन्त काल से श्रीभगवान् के विछोह को भूलकर अपने में बँधता जाता है। उसे भौतिक अस्तित्त्व के भयानक पथ पर चलना तो पड़ता है, किन्तु वह इस पथ पर तनिक भी सुखी नहीं होता। स्वरूप-सिद्ध मनुष्य इस भयानक पथ से छूटने के निमित्त श्रीभगवान् की शरण ग्रहण करते हैं। भक्तिमार्ग को स्वीकार किये बिना कोई भी भौतिक अस्तित्त्व के चंगुल से नहीं निकल पाता। तात्पर्य यह कि इस भौतिक जीवन से कोई भी प्रसन्न नहीं है। उसे श्रीकृष्णभावनामृत का आश्रय अवश्य ग्रहण करना चाहिए।

तात्पय

भौतिकवादी जीवन शैली का सम्यक् विश्लेषण करने पर कोई भी ज्ञानी पुरुष समझ सकता है कि इस संसार में तनिक भी सुख नहीं है। किन्तु अनन्त काल से संकटपूर्ण मार्ग पर चलते रहने और सन्तजनों से अपने को विलग रखने के कारण बद्धजीव मोहवश इस भौतिक जगत् का आनन्द लेना चाहता है। कभी-कभी बहिरंगा शक्ति तथाकथित सुख का अवसर प्रदान करती है, किन्तु भौतिक प्रकृति बद्धजीव को निरन्तर प्रताड़ित करती रहती है। इसीलिए कहा गया है **दण्ड्यजने राजा येन नदिते चुबाय** (चैतन्यचरितामृत मध्य २०.११८)। भौतिकवादी जीवन का अर्थ है सतत दुःख, किन्तु जब दो अन्तरालों के बीच सुख प्रकट होता है तो हम उसे स्वीकार कर लेते हैं। कभी-कभी दोषी व्यक्ति को बार-बार पानी में डुबोया जाता है और फिर बाहर निकाला जाता है। यह सब दण्ड देने के उद्देश्य से किया जाता है, किन्तु जब उसे जल से बाहर निकाला जाता है तो उसे कुछ विश्राम का अनुभव

होता है। बद्धजीव की ऐसी स्थिति है। अतः सभी शास्त्रों का उपदेश है कि भक्तों तथा साधुओं का सत्संग किया जाय।

साधुसंग, सधुसंग—सर्वशास्त्रे कय
लवमात्र साधुसंगे सर्वसिद्धि हय
(चैतन्य चरितामृत, मध्य २२.५४)

भक्तों के लव-मात्र सत्संग से ही बद्धजीव इस दुःखमय भौतिक जगत् से उबर सकता है। श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन प्रत्येक व्यक्ति को सन्तजनों के साथ सत्संग का अवसर प्रदान करता है। इसलिए श्रीकृष्णभावनामृत समाज के सभी सदस्यों को पूर्ण साधु होना चाहिए जिससे पतित बद्धजीवों को अवसर मिल सके। यही सर्वश्रेष्ठ मानव-कल्याणकारी कार्य है।

यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुन्धते यन्न्यस्तदण्डा मुनय उपशमशीला उपरतात्मानः समवगच्छन्ति ॥३६॥

यत् = जो; **इदम्** = श्रीभगवान् के यह परमधाम; **योग-अनुशासनम्** = केवल भक्ति के द्वारा प्राप्तव्य; **न** = नहीं; **वा** = अथवा; **एतत्** = मुक्ति का यह पथ; **अवरुन्धते** = प्राप्त करते हैं; **यत्** = अतः; **न्यस्त-दण्डाः** = ऐसे पुरुष जिन्होंने दूसरों से ईर्ष्या करना छोड़ दिया है; **मुनयः** = मुनि अथवा सन्त जन; **उपशमशीलाः** = जो इस समय अत्यन्त शान्तिमय अस्तित्व को प्राप्त हैं; **उपरत-आत्मानः** = जिन्होंने मन तथा इन्द्रियों को वश में कर लिया है; **समवगच्छन्ति** = सरलता से प्राप्त करते हैं।

अनुवाद

समस्त जीवात्माओं के मित्र मुनिजन संयतात्मा होते हैं, उन्होंने अपनी इन्द्रियों एवं मन को वश में कर लिया है और उन्हें मुक्ति पथ, जो श्रीभगवान् तक पहुँचने का मार्ग है, सरलतापूर्वक प्राप्त होता है। क्लेशमय भौतिक परिस्थितियों में संलग्न रहने तथा हतभाग्य होने के कारण भौतिकवादी व्यक्ति मुनिजनों की संगति नहीं कर पाता।

तात्पर्य

महामुनि जड़भरत ने क्लेशमय दशा तथा उससे बचने के साधन—इन दोनों का वर्णन किया है। इससे बचने का एकमात्र उपाय है भक्तों की संगति और यह संगति अत्यन्त सुगम है। यद्यपि भाग्यहीन व्यक्तियों को भी यह सुअवसर प्राप्त होता है, किन्तु दुर्भाग्यवश वे शुद्ध भक्तों की शरण में नहीं जा पाते, अतः वे लगातार कष्ट

भोगते रहते हैं। श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन इस बात पर वल देता है कि प्रत्येक प्राणी "हरे कृष्ण महामन्त्र" का जप करके इस पथ का अनुसरण करे। श्रीकृष्णभावनामृत के उपदेशक द्वार-द्वार जाकर लोगों को यह बताते हैं कि भौतिक जीवन के कष्टों से किस प्रकार छुटकारा पाया जा सकता है। जैसा कि श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है—**गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज**—श्रीकृष्ण तथा गुरु महाराज की कृपा से ही भक्ति के वीज प्राप्त हो सकते हैं। तनिक भी बुद्धिमान् होने पर श्रीकृष्णभावनामृत का सेवन किया जा सकता है और इस प्रकार भौतिक जीवन के दु:खों से छुटकारा पाया जा सकता है।

यदपि दिग्भिजयिनो यज्विनो ये वै राजर्षयः किं तु परं मृधे
शयीरन्नस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबन्धायां विसृज्य स्वयमुपसंहृताः ॥४०॥

यत्-अपि=यद्यपि; **दिक्-इभ-जयिनः**=जो सभी दिशाओं में विजयी होते हैं, चक्रवर्ती, दिग्विजयी; **यज्विनः**=बड़े-बड़े यज्ञों के करने में पटु; **ये**=जो सभी; **वै**=निस्सन्देह; **राज-ऋषयः**=अत्यन्त महान् सन्त राजा, राजर्षि; **किम् तु**=किन्तु; **परम्**=केवल यह पृथ्वी; **मृधे**=युद्ध में; **शयीरन्**=लेटे हुए; **अस्याम्**=इस (पृथ्वी) पर; **एव**=निश्चय ही; **मम**=मेरा; **इयम्**=यह; **इति**=उस प्रकार से विचार करने पर; **कृत**=जिस पर सृष्टि की जाती है; **वैर-अनुबन्धायाम्**=अन्यों से शत्रुता का भाव; **विसृत्य**=त्याग कर; **स्वयम्**=अपना जीवन; **उपसंहृताः**=मारे हुए।

अनुवाद

ऐसे अनेक साधु प्रकृति वाले महान् राजर्षि हो चुके हैं जो यज्ञ अनुष्ठान में अत्यन्त प्रवीण तथा अन्य राज्यों को जीतने में परम कुशल थे, किन्तु इतनी शक्ति होने पर भी श्रीभगवान् की प्रेम सेवा नहीं कर पाये, क्योंकि वे महान् राजा इस मिथ्या बोध, "मैं देह-स्वरूप हूँ ओर यह मेरी सम्पत्ति है" को नहीं जीत पाये। इस प्रकार उन्होंने प्रतिद्वन्द्वी राजाओं से केवल शत्रुता मोल ली, उनसे युद्ध किया और जीवन के वास्तविक लक्ष्य को पूरा किये बिना दिवंगत हुए।

तात्पर्य

बद्धजीव का वास्तविक जीवन-उद्देश्य श्रीभगवान् के साथ विस्मृत सम्बन्ध की पुर्नस्थापना तथा देह त्याग के पश्चात् श्रीकृष्णभावनामृत को पुनरुज्जीवित करने में समर्थ होने के लिए भक्ति में संलग्न होना है। इसके लिए उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या अन्य किसी रूप में अपनी वृत्ति छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। किसी भी स्थिति में अपना नियत कर्तव्य करते हुए केवल श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि स्वरूप

भक्तों के सत्संग से श्रीकृष्णभावनामृत का विकास सम्भव है, क्योंकि वे ही इस विज्ञान की शिक्षा दे सकते हैं। दुःख की बात है कि बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ एवं नेता इस भौतिक जगत् में केवल शत्रुता उत्पन्न करते हैं। उनकी रुचि आध्यात्मिक उन्नति की ओर नहीं होती। सामान्य व्यक्ति के लिए भौतिक उन्नति अत्यन्त मोहक होती है, किन्तु अन्ततः उसे परास्त होना पड़ता है, क्योंकि वह स्वयं को भौतिक देह और इससे सम्बद्ध प्रत्येक वस्तु को अपनी सम्पत्ति मान बैठता है। यही अविद्या है। वास्तव में उसका अपना कुछ भी नहीं होता, यहाँ तक कि यह देह भी नहीं। अपने कर्म के फलस्वरूप कोई विशेष देह प्राप्त होती है और यदि वह इस देह का उपयोग श्रीभगवान् को प्रसन्न करने में नहीं करता तो उसके सारे कार्य निष्फल हो जाते हैं। जीवन के वास्तविक उद्देश्य का उल्लेख श्रीमद्भागवतम् (१.२.१३) में हुआ है—

अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः।
स्वनुतिष्ठस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम्॥

वस्तुतः इसका कोई महत्त्व नहीं है कि मनुष्य कौन-सा कार्य करता है। यदि वह श्रीभगवान् को केवल सन्तुष्ट कर सकता है तो उसका जीवन सफल है।

कर्मवल्लीमवलम्ब्य तत आपदः कथञ्चिन्नरकाद्विमुक्तः पुनरप्येवं संसाराध्वनि वर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरि गतोऽपि ॥४१॥

कर्म-वल्लीम्=सकाम कर्मों की लता; **अवलम्ब्य**=के सहारे; **ततः**=उससे; **आपदः**=घातक या क्लेशपूर्ण स्थिति; **कथञ्चित्**=किसी न किसी प्रकार से; **नरकात्**=जीवन की नारकीय दशा से; **विमुक्तः**=मुक्त होकर; **पुनः अपि**=फिर से; **एवम्**=इस प्रकार; **संसार-अध्वनि**=भौतिक अस्तित्त्व के मार्ग पर; **वर्तमानः**=वर्तमान, समुपस्थित; **नर-लोक-स-अर्थम्**=स्वार्थमय कर्मों का क्षेत्र; **उपयाति**=प्रवेश करता है; **एवम्**=इस प्रकार; **उपरि**=ऊपर (उच्चलोकों में); **गतः अपि**=(ऊपर) उठाये जाने पर भी।

अनुवाद

सकाम कर्म रूपी लता की शरण स्वीकार कर लेने पर बद्धजीव अपने पवित्र कार्यों के फलस्वरूप स्वर्गलोक को प्राप्त हो सकता है और इस तरह नारकीय स्थिति से उसे मुक्ति मिल सकती है, किन्तु वह दुर्भाग्यवश वहाँ रह नहीं पाता। अपने पवित्र कार्यों का फल भोगने के बाद उसे निम्न लोकों पर लौटना पड़ता है। इस प्रकार वह निरन्तर ऊपर और नीचे आता-जाता रहता है।

तात्पर्य

इस प्रसंग में श्रीचैतन्य महाप्रभु का कथन है—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव ।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज ॥

(चैतन्यचरितामृत मध्य १९.१५१)

सृष्टि से लेकर प्रलय पर्यन्त लाखों वर्षों तक भ्रमण करते रहने पर भी किसी को भौतिक-अस्तित्व के पथ से तब तक छुटकारा नहीं मिल पाता, जब तक उसे किसी विशुद्ध भक्त के चरणाविन्द में शरण नहीं प्राप्त हो जाती। जिस प्रकार एक वानर वट वृक्ष की एक शाखा का आश्रय पाकर आनन्द का अनुभव करता है, उसी प्रकार यह बद्धजीव अपने जीवन के असली अर्थ को जाने बिना सकाम कर्म रूपी **कर्मकाण्ड** का आश्रय लेता है। कभी-कभी वह इन कार्यों के द्वारा स्वर्ग तक पहुँच जाता है, तो कभी वह फिर से पृथ्वी पर नीचे आ जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इसका वर्णन "**ब्रह्माण्ड भ्रमिते**" कह कर किया है। किन्तु यदि श्रीकृष्ण की कृपा से कोई भाग्यवान्, गुरु की शरण प्राप्त करता है तो उसे श्रीभगवान् की भक्ति करने की विधि का पता चल जाता है। इस प्रकार वह इस भौतिक जगत् के आवागमन-चक्र से छूटने की युक्ति जान पाता है। इसलिए वेदों का यह आदेश है कि गुरु महाराज की शरण में आना चाहिए। वेदों की घोषणा है—**तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्** (मुंडकोपनिषद्—१.२.१२)। इसी प्रकार भगवद्गीता (४.३४) में श्रीभगवान् का उपदेश है—

तद्विद्धि प्राणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

"सद्गुरु के शरणागत होकर दण्डवत् प्रणाम, विनम्र जिज्ञासा और निष्कपट भाव से उनकी सेवा करके उस तत्त्व को जान। वे तत्त्व को जानने वाले आत्मज्ञानी महापुरुष, तेरे लिए ज्ञान का उपदेश करेंगे।"

श्रीमद्भागवतम् (११.३.२१) में इसी प्रकार का उपदेश है—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥

"सच्चा सुख प्राप्त करने के आकांक्षी व्यक्ति को चाहिए कि वह प्रामाणिक गुरु की खोज करे और दीक्षा के द्वारा उसकी शरण प्राप्त करे। उसके गुरु में यह विशिष्टता होनी चाहिए कि उसने धर्मग्रन्थों के सार को सावधानीपूर्वक अनुभव कर लिया हो

और अन्य लोगों को भी इसकी प्रतीति करा सके। ऐसे महान् पुरुष, जिन्होंने समस्त भौतिक विचारों को त्याग कर श्रीभगवान् की शरण प्राप्त कर ली है, प्रामाणिक गुरु माने जाने चाहिए।" इसी प्रकार एक महान् वैष्णव श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का उपदेश है—**यस्य प्रसादाद् भगवत प्रसादः**—"गुरु की कृपा से श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त होती है।" श्रीचैतन्य महाप्रभु ने भी यही उपदेश दिया था (**गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज**)। यह परम आवश्यक है। मनुष्य को चाहिए कि वह श्रीकृष्णभावनामृत तक आये, अतः वह शुद्ध भक्त की शरण में आये। इस प्रकार से भवबन्धन से छुटकारा पाया जा सकता है।

तस्येदमुपगायन्ति—

आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसापि महात्मनः।
नानुवर्त्मार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ॥४२॥

तस्य=जड़भरत का; **इदम्**=यह यश-गान; **उपगायन्ति**=गाते हैं; **आर्षभस्य**=ऋषभदेव के पुत्र का; **इह**=यहाँ; **राज-ऋषेः**=महान् ऋषितुल्य राजा का; **मनसा-अपि**=मन से भी; **महा-आत्मनः**=महात्मा जड़भरत का; **न**=नहीं; **अनुवर्त्म-अर्हति**=पथ का अनुसरण करने में समर्थ; **नृपः**=राजा; **मक्षिका**=मक्खी; **इव**=सदृश; **गरुत्मतः**=श्रीभगवान् के वाहन, गरुड़ का।

अनुवाद

जड़भरत के उपदेशों का सार सुना चुकने के पश्चात् श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—प्रिय राजा परीक्षित्! जड़भरत द्वारा निर्दिष्ट पथ श्रीभगवान् के वाहन गरुड़ द्वारा अनुगमन किये गये पथ के तुल्य है और सामान्य राजागण मक्खियों के समान हैं। मक्खियाँ गरुड़ की बराबरी नहीं कर सकतीं। आज तक बड़े-बड़े राजाओं तथा विजयी नेताओं में से किसी ने भी भक्ति पथ का अनुसरण, मानसिक रूप से भी नहीं किया।

तात्पर्य

भगवद्गीता (७.३) में श्रीकृष्ण कहते हैं—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

"सहस्रों मनुष्यों में से कोई एक संसिद्धि के लिए प्रयत्नशील होता है और उन सिद्धि प्राप्त करने वालों में से कोई दुर्लभ मनुष्य ही मुझे तत्त्व से जान पाता है।" भक्ति

का मार्ग अनेक शत्रुओं पर विजय पाने वाले राजाओं के लिए भी अत्यन्त कठिन है। भले ही ये राजा युद्ध भूमि में विजयी रहे हों, किन्तु वे देहात्मबुद्धि पर विजय प्राप्त नहीं कर सके। ऐसे अनेक नेता, स्वामी, योगी तथा नामधारी अवतारी पुरुष हैं जो बौद्धिक चिन्तन में लगे रहते हैं और अपने को पूर्ण पुरुष के रूप में विज्ञापित करते रहते हैं, किन्तु अन्ततः वे सफल नहीं होते। निस्सन्देह भक्तिमार्ग का अनुगमन अत्यन्त कठिन है, किन्तु यदि कोई महाजनों के पथ का अनुसरण करना चाहता है तो वह अत्यन्त सरल हो जाता है। इस युग में श्रीचैतन्य महाप्रभु का पथ उपलब्ध है, जिनका आविर्भाव पतित आत्माओं के कल्याण के लिए हुआ। यह पथ इतना सरल एवं सुगम है कि कोई भी श्रीभगवान् का नाम-जप करके इसे ग्रहण कर सकता है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

हमें सन्तोष है कि इस श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन द्वारा इस पथ का उद्घाटन किया जा रहा है, क्योंकि अनेक योरोपीय तथा अमेरिकी युवक तथा युवतियाँ इस दर्शन को गम्भीरता से ग्रहण करके क्रमशः पूर्णता प्राप्त कर रहे हैं।

यो दुस्त्यजान्दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः।
जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ॥४३॥

यः=वही जड़भरत जो पहले महाराज ऋषभदेव के पुत्र महाराज भरत थे; **दुस्त्यजान**=त्याग पाना अत्यन्त कठिन होता है; **दार-सुतान्**=पत्नी तथा सन्तान अथवा अत्यन्त वैभवपूर्ण गृहस्थ जीवन; **सुहृत्**=मित्र तथा शुभ चिन्तक; **राज्यम्**=विश्वव्यापी साम्राज्य; **हृदि-स्पृशः**=अन्तरतम में स्थित; **जहौ**=परित्याग कर दिया; **युवा-एव**=तरुण होते हुए; **मलवत्**=विष्टा के सदृश; **उत्तम-श्लोक-लालसः**=उत्तम श्लोक श्रीभगवान् की सेवा करने के लिए लालायित।

अनुवाद

महाराज भरत ने अपनी युवावस्था में ही सब कुछ परित्याग कर दिया, क्योंकि वे उत्तम श्लोक श्रीभगवान् की सेवा करना चाहते थे। उन्होंने अपनी सुन्दर पत्नी, अपनी सन्तान, प्रिय मित्र तथा अपने विशाल साम्राज्य का परित्याग कर दिया। यद्यपि इन वस्तुओं को छोड़ पाना अत्यन्त कठिन होता है, किन्तु जड़भरत ने उनको विष्ठा के समान त्याग दिया। ऐसी थी उनकी महानता!

तात्पर्य

ईश्वर का नाम श्रीकृष्ण है, क्योंकि वे इतने आकर्षक हैं कि उनके लिए शुद्ध भक्त इस भौतिक जगत् की प्रत्येक वस्तु का परित्याग कर सकता है। महाराज भरत एक आदर्श राजा, उपदेशक तथा चक्रवर्ती सम्राट् थे। उनके पास समस्त सांसारिक वैभव था, किन्तु श्रीकृष्ण इतने आकर्षक हैं कि उन्होंने महाराज भरत को अपना भौतिक ऐश्वर्य त्याग करवा कर अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। तो भी न जाने किस प्रकार जड़भरत एक मृग के प्रति वत्सल हो उठे और अगले जन्म में उन्हें पदच्युत होकर मृग देह धारण करना पड़ा। किन्तु उन पर श्रीकृष्ण की महती कृपा थी, जिसके कारण वे अपने पद को विस्मृत नहीं कर पाये और यह समझते रहे कि किस कारण उनका पतन हुआ है। फलतः अगले जन्म में अपनी शक्ति का अपव्यय न करने के कारण महाराज भरत जड़भरत नाम से एक बहरे तथा गूँगे व्यक्ति के रूप में उत्पन्न हुए। इस प्रकार से वे अपनी भक्ति में केन्द्रित हो सके। हमें महान् राजा भरत से यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि श्रीकृष्णभावनामृत सेवन करने में किस प्रकार सतर्क रहा जाय। इस समय थोड़ी सी लापरवाही करने से हमारी भक्ति में बाधा पड़ सकती है। किन्तु श्रीभगवान् को सर्मपित सेवा नष्ट नहीं होती, **स्वल्प-मप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्** (गीता २.४०)। श्रद्धापूर्वक सर्मपित किंचित भक्ति शाश्वत धन है। श्रीमद्भागवतम् (१.५.१७) में उल्लेख है—

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्-
भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः॥

यदि किसी तरह कोई व्यक्ति श्रीकृष्ण के प्रति आकृष्ट हो जाता है तो भक्ति में वह जो कुछ भी करता है वह शाश्वत धन होता है। यदि अपरिपक्वता अथवा दुःसंग के कारण पतित होता भी है तो उसकी भक्ति सम्पदा नष्ट नहीं होती। इसके अनेक उदाहरण हैं, यथा—अजामिल, महाराज भरत तथा अन्य। यह श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन प्रत्येक व्यक्ति को भक्ति में तत्पर होने का अवसर प्रदान करता है, भले ही वह अल्प समय के लिए क्यों न हो। इस प्रकार थोड़ी सी सेवा से आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहन मिलता है, जिससे जीवन को सफल बनाया जा सकता है।

इस श्लोक में श्रीभगवान् को उत्तमश्लोक कहा गया है। उत्तम का अर्थ है "सर्वश्रेष्ठ" तथा श्लोक का अर्थ है—यश, ख्याति; श्रीकृष्ण छः प्रकार के ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं, जिनमें यश भी एक है। **ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।** श्रीकृष्ण के यश का अब भी विस्तार हो रहा है। हम इस श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन को आगे बढ़ाकर

श्रीकृष्ण की कीर्ति को फैला रहे हैं। कुरुक्षेत्र युद्ध के पाँच सहस्र वर्ष बाद भी श्रीकृष्ण का यश विश्वभर में फैल रहा है। विश्व के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन के कारण इस समय तक श्रीकृष्ण का नाम अवश्य सुना होगा। ऐसे व्यक्ति जो इस आन्दोलन को दबा देना चाहते हैं वे भी किसी न किसी रूप में "हरे कृष्ण" का जप कर रहे हैं। उनका कहना कि हरे कृष्ण अनुयायियों को प्रताड़ित करना चाहिए। ऐसे मूर्ख इस आन्दोलन के वास्तविक महत्त्व को नहीं पहचानते। इसकी आलोचना से उन्हें हरे कृष्ण उच्चारण करने का अवसर प्राप्त होता है और यही इस आन्दोलन की विजय है।

यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनाथदारान्
प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम्।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्-
सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥४४॥

यः = जो; **दुस्त्यजान** = जिनका परित्याग कर पाना अत्यन्त कठिन है, दुस्त्यज; **क्षिति** = पृथ्वी; **सुत** = सन्तति, पुत्रादि; **स्व-जन-अर्थ-दारान्** = कुटुम्बी, धन तथा सुन्दर पत्नी के; **प्रार्थ्याम्** = लालायित; **श्रियम्** = लक्ष्मी की; **सुरवरैः** = श्रेष्ठ देवताओं द्वारा; **स-दय-अवलोकाम्** = जिसकी दयादृष्टि; **न** = नहीं; **ऐच्छत्** = इच्छा की; **नृपः** = राजा ने; **तत्-उचितम्** = यह उनके लिए उचित है (था); **महताम्** = महात्माओं, महानुभावों का; **मधु-द्वित्** = मधु नामक असुर को मारने वाले, श्रीकृष्ण, मधुसूदन; **सेवा-अनुरक्त** = सेवा में अनुरक्त; **मनसाम्** = जिन मनस्वियों का; **अभवः-अपि** = मोक्ष पद भी; **फल्गुः** = तुच्छ।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी कहते हैं—राजन्! भरत महाराज के कार्य आश्चर्यजनक हैं। उन्होंने अपनी प्रत्येक वस्तु का परित्याग कर दिया जो अन्यों के लिए दुष्कर है। उन्होंने अपना साम्राज्य, पत्नी तथा परिवार त्याग दिया। उनका वैभव इतना प्रभूत था कि देवताओं को भी ईर्ष्या होती थी, किन्तु उसका भी उन्होंने परित्याग कर दिया। उनके समान महान् पुरुष के लिए महान् भक्त होना सर्वथा उपयुक्त था। वे प्रत्येक वस्तु का इसलिए परित्याग कर सके, क्योंकि वे भगवान् श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, ऐश्वर्य, यश, ज्ञान, शक्ति तथा त्याग के प्रति अत्यन्त अनुरक्त थे। श्रीकृष्ण इतने आकर्षक हैं कि उनके लिए समस्त इष्ट वस्तुओं का परित्याग किया जा सकता है। जिनके चित्त श्रीभगवान् की सेवा के प्रति आकृष्ट हैं, वे मुक्ति को भी तुच्छ मानते हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक से श्रीकृष्ण के सर्व-आकर्षण की पुष्टि की है। महाराज भरत श्रीकृष्ण के प्रति इतने आकर्षित थे कि उन्होंने अपना समस्त सांसारिक वैभव त्याग दिया, जबकि सामान्य भौतिकवादी (संसारी) पुरुष ऐसे वैभव के द्वारा आकर्षित होते हैं।

अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्-
जनस्य मोहोऽयमहं ममेति।

(भागवत ५.५.८)

"हर प्राणी अपनी देह, घर, सम्पत्ति, सन्तान, सम्बन्धीजन तथा ऐश्वर्य के प्रति अनुरक्त होता है। इस प्रकार जीवन के प्रति मोह बढ़ता जाता है और वह, "यह मैं हूँ और यह मेरा है" के रूप में सोचता है। भौतिक वस्तुओं के प्रति आकर्षण मोहजनित है। भौतिक वस्तुओं के प्रति आकर्षित होने में कोई लाभ नहीं, क्योंकि इनसे बद्धजीव इधर-उधर भटकता है। उसी का जीवन सफल है जो श्रीकृष्ण की शक्ति, सुन्दरता एवं लीलाओं से आकर्षित होकर उन्हीं में मग्न हो जाता है जैसा कि श्रीमद्भागवतम् के दशम स्कन्ध में उल्लेख है। मायावादी श्रीभगवान् के साथ तदाकार होना चाहते हैं, किन्तु श्रीकृष्ण तदाकार होने की इच्छा से कहीं अधिक आकर्षक हैं। "अभव:" शब्द का अर्थ है—इस भौतिक जगत् में पुन: जन्म न लेना। भक्त को इसकी परवाह नहीं रहती कि उसका पुनर्जन्म होगा या नहीं। वह प्रत्येक दशा में श्रीभगवान् की सेवा मात्र से सन्तुष्ट रहता है। यही वास्तविक मुक्ति है।

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।
निखिलास्वप्य अवस्थासु जीवन्मुक्त: स उच्यते॥

"जो मनसावाचाकर्मणा श्रीकृष्ण की सेवा करता है वह इस भौतिक संसार में रह कर भी जीवन-मुक्त है।" (भक्तिरसामृतसिन्धु १.२.१८७)। जो व्यक्ति श्रीकृष्ण की निरन्तर सेवा का इच्छुक है वह अन्य व्यक्तियों को यह विश्वास दिलाने में रुचि रखता है कि श्रीभगवान् की उपस्थिति है और श्रीभगवान् ही श्रीकृष्ण हैं। यही उसकी अभिलाषा है। उसे इसकी परवाह नहीं कि वह स्वर्ग में है या नर्क में। यही "उत्तमश्लोक लालसा" कहलाती है।

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय
योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय।
नारायणाय हरये नम इत्युदारं
हास्यन्मृगत्वमपि य: समुदाजहार॥४५॥

यज्ञाय = समस्त यज्ञों का फल भोगने वाले श्रीभगवान् को; **धर्म-पतये** = धार्मिक विधानों के स्वामी को; **विधि-नैपुणाय** = उसे जो निपुणता से विधि-विधान पालन करने के लिए भक्तों को ज्ञान प्रदान करता है; **योगाय** = साक्षात योग को; **सांख्य-शिरसे** = सांख्य दर्शन का उपदेश देने वाले; **प्रकृति-ईश्वराय** = ब्रह्माण्ड के परम नियन्ता को; **नारायणाय** = असंख्य जीवात्माओं के आश्रय (नर = जीवात्माएँ तथा अयन = आश्रय, शरण) को; **हरये** = हरि स्वरूप श्रीभगवान् को; **नमः** = सादर नमस्कार; **इति** = इस प्रकार; **उदारम्** = उच्च स्वर से; **हास्यन्** = हँसते हुए; **मृगत्वम् अपि** = मृग की देह धारण किये रहने पर भी; **यः** = जो; **समुदाजहार** = जप करता रहा।

अनुवाद

मृग देह धारण करने पर भी महाराज भरत ने श्रीभगवान् को विस्मृत नहीं किया, अतः जब वे मृग देह छोड़ने लगे तो उच्च स्वर से निम्नलिखित प्रार्थना की, "श्रीभगवान् साक्षात् यज्ञ पुरुष हैं। वे अनुष्ठानों का फल देने वाले हैं। वे धर्म रक्षक, योगस्वरूप, सर्वज्ञानस्रोत (सांख्य के प्रतिपाद्य), सम्पूर्ण सृष्टि के नियामक तथा प्रत्येक जीवात्मा में स्थित परमात्मा हैं। वे सुन्दर तथा आकर्षक हैं। मैं उनको नमस्कार करके यह देह त्याग रहा हूँ और आशा करता हूँ कि उनकी दिव्य सेवा में अहर्निश संलग्न रहूँगा।" यह कह कर महाराज भरत ने अपना शरीर त्याग दिया।

तात्पर्य

समस्त वेद कर्म, ज्ञान तथा योग को भली-भाँति समझाने के निमित्त हैं। हम आत्मसाक्षात्कार के चाहे जिस स्वरूप को स्वीकार करें, हमारा परम लक्ष्य तो श्रीभगवान् रहते हैं, जो नारायण हैं। सभी जीवात्माएँ भक्ति के द्वारा उनसे नित्य जुड़ी हुई हैं। जैसा कि श्रीमद्भागवतम् में कहा गया है—**अन्ते नारायणस्मृतिः**—मृत्यु के समय नारायण का स्मरण ही जीवन की सिद्धि है। यद्यपि महाराज भरत को मृग देह स्वीकार करनी पड़ी, किन्तु वे मृत्यु के समय नारायण का स्मरण कर सके। फलस्वरूप उनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में पूर्ण भक्त के रूप में हुआ। इससे भगवद्गीता (६.४१) के इस कथन—**शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते**—की पुष्टि होती है, "जो आत्मसाक्षात्कार के पथ से भ्रष्ट हो जाता है वह ब्राह्मणों अथवा सदाचारी धनवानों के घर में जन्म लेता है।" यद्यपि महाराज भरत का जन्म राज-कुल में हुआ था, किन्तु असावधान रहने के कारण उन्हें मृग-रूप में जन्म लेना पड़ा। किन्तु मृग देह धारण करने पर वे अत्यन्त सचेष्ट रहे जिससे उनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में जड़भरत के रूप में हुआ। इस जन्म में वे आजीवन कृष्णभक्त रहे और प्रत्यक्ष रूप से श्रीकृष्ण भक्ति के सन्देश का पहला उपदेश महाराज रहूगण से प्रारम्भ किया। इस प्रसंग में "योगाय" शब्द अत्यन्त सार्थक है। जैसा

कि श्रील मध्वाचार्य ने बताया है, "अष्टांग योग" का प्रयोजन श्रीभगवान् के साथ अपने को जोड़ना है। इसका लक्ष्य भौतिक सिद्धियों का प्रदर्शन नहीं है।

य इदं भागवतसभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वानुशृणोत्याख्यास्यत्यभिनन्दति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न काञ्चन परत इति ॥४६॥

यः=जो कोई; **इदम्**=यह; **भागवत**=सामान्य भक्तों के द्वारा; **समाजित**=अत्यधिक पूजित; **अवदात**=शुद्ध; **गुण**=जिसके गुण; **कर्मणाः**=तथा कर्म; **राज-ऋषेः**=राजर्षि; **भरतस्य**=भरत महाराज का; **अनुचरितम्**=चरित्र, कथा; **स्वस्ति-अयनम्**=कल्याण का धाम; **आयुष्यम्**=जीवन-अवधि (आयु) को बढ़ाने वाला; **धन्यम्**=धन को बढ़ाने वाला; **यशस्यम्**=यश प्रदान करने वाला; **स्वर्ग्य**=स्वर्ग लोक की प्राप्ति कराने वाला (जो कर्मियों का लक्ष्य है); **अपवर्ग्यम्**=इस भौतिक जगत् से मुक्ति प्रदान करके ईश्वर में तदाकार होने में सहायक (जो ज्ञानियों का लक्ष्य है); **वा**=अथवा; **अनुशृणोति**=भक्तिपथ का अनुसरण करते हुए सदैव सुनता रहता है; **आख्यास्यति**=परोपकारार्थ वर्णन करता है; **अभिनन्दति**=भक्तों तथा भगवान् के गुणों का गान करता है; **च**=तथा; **सर्वाः**=समस्त; **एव**=निश्चय ही; **आशिषः**=आशीर्वाद; **आत्मनः**=स्वयं के लिए; **आशास्ते**=प्राप्त करता है; **न**=नहीं; **कांचन**=कुछ भी; **परतः**=अन्य किसी से; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

श्रवण तथा कीर्तन के अनुरागी भक्त नियमित रूप से भरत महाराज के गुणों की विवेचना तथा उनके कर्मों की प्रशंसा करते हैं। यदि कोई विनीत भाव से कल्याण के धाम महाराज भरत के विषय में श्रवण तथा कीर्तन करता है तो उसकी आयु तथा सांसारिक वैभव में वृद्धि होती है। वह अत्यन्त प्रसिद्ध हो सकता है और वह सरलता से स्वर्ग अथवा श्रीभगवान् में एकाकार होकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है। महाराज भरत के कर्मों के श्रवण, कीर्तन तथा स्तवन मात्र से मनोवांछित फल मिलता है। इस प्रकार मनुष्य की समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक आकांक्षाओं की पूर्ति होती है। इन वस्तुओं के लिए और कुछ माँगने की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि महाराज भरत के जीवन के अध्ययन मात्र से सभी वांछित वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं।

तात्पर्य

इस चौदहवें अध्याय में "भवाटवी" का सारांश दिया गया है। भवाटवी शब्द

का अर्थ है भौतिकता का पथ। वणिक् है वह प्राणी जो इन्द्रियतृप्ति के लिए धन उपार्जन के प्रयत्न में भौतिक अस्तित्त्व के अरण्य में आता है। आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा तथा मन ये छह इन्द्रियाँ छह लुटेरे हैं। ज्ञान अधम नेता है। ज्ञान तो कृष्णभक्ति के निमित्त है, किन्तु भौतिक अस्तित्त्व के कारण हम अपना सारा ज्ञान भौतिक सुविधाएँ जुटाने में लगा देते हैं। प्रत्येक वस्तु भगवान् श्रीकृष्ण की है, किन्तु मन तथा इन्द्रियों के भ्रष्ट हो जाने से हम श्रीभगवान् की सम्पत्ति को लूट-लूट कर अपनी इन्द्रियों को तृप्त करते रहते हैं। वन के शृगाल तथा बाघ हमारे कुटुम्बीजन हैं ओर झाड़ियाँ तथा लताएँ हमारी भौतिक वासनाएँ हैं। गिरिगह्वर हमारा सुखमय आवास और सर्प तथा मच्छर हमारे शत्रु हैं। चूहे, जंगली पशु तथा गृद्ध विभिन्न प्रकार के चोर हैं जो हमारे धन का अपहरण करते रहते हैं। हमारे देह तथा घर का मायाजाल "गन्धर्वपुर" है। स्वर्ण तथा उसकी चमक मायाजाल है। भौतिक आवास तथा सम्पत्ति हमारे भौतिक सुख के घटक हैं। स्त्री के लिए (प्रमद) आकर्षण ही बवण्डर और विषय-सुख ही अंधड़ है। देवता विभिन्न दिशाओं के नियामक हैं तथा हमारी अनुपस्थिति में शत्रु द्वारा उच्चरित कर्कश शब्द ही मानों झींगुर हैं। हमारे मुँह पर बुराई करने वाला व्यक्ति उलूक है तथा अशुभ वृक्ष ही अशुभ लोग हैं। जलहीन नदी उन पाखण्डियों की प्रतिनिधि है जो हमें इस लोक तथा परलोक में कष्ट देते हैं। मांसाहारी असुर राज्य कर्मचारी हैं और चुभने वाले काँटे भौतिक जीवन की बाधातुल्य हैं। व्यभिचार का अनुभूत स्वाद परस्त्री सम्भोग की लालसा है। मक्खियाँ पति, श्वसुर, सास आदि स्त्रीजाति के संरक्षक हैं। लता सामान्यतः प्रमदास्वरूप है। सिंह कालचक्र हैं। बगुले, कौवे तथा गिद्ध नामधारी देवता, छद्म स्वामी, योगी तथा अवतारी हैं। ये जिस किसी को राहत दिलाने में असमर्थ हैं। हंस विशुद्ध ब्राह्मण हैं एवं वानर उन असंयत शूद्रों के तुल्य हैं जो खाने, सोने, मैथुन तथा आत्मरक्षा में व्यस्त रहते हैं। हमारे घर वानरों के रहने वाले वृक्षों के तुल्य हैं तथा हाथी परम मृत्यु है। इस प्रकार इस अध्याय में भौतिक अस्तित्त्व के सभी घटकों का वर्णन मिलता है।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चमस्कन्धे भरतोपाख्याने पारोक्ष्यविवरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, "भवाटवी का वर्णन" शीर्षक नामक चौदहवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त भाष्य समाप्त हुआ।

पन्द्रहवाँ अध्याय

प्रियव्रत के पूर्वजों का यश वर्णन

इस अध्याय में भरत महाराज तथा अन्य अनेक राजाओं के पूर्वजों का वर्णन किया गया है। महाराज भरत के पुत्र का नाम सुमति था। उसने ऋषभदेव द्वारा प्रदर्शित मुक्ति-पथ का अनुसरण किया। कुछ लोग धोखे से सुमति को भगवान् बुद्ध का साक्षात् अवतार मानते हैं। सुमति का पुत्र देवताजित् था और उसका पुत्र देवद्युम्न हुआ। देवद्युम्न का पुत्र परमेष्ठी और उसका पुत्र प्रतीह था। प्रतीह भगवान् विष्णु का परम भक्त था जिसके तीन पुत्र हुए, जिनके नाम थे—प्रतिहर्ता, प्रस्तोता तथा उद्गाता। प्रतिहर्ता के अज तथा भूमा दो पुत्र हुए। भूमा का पुत्र उद्गीथ तथा उद्गीथ का पुत्र प्रस्ताव था। प्रस्ताव का पुत्र विभु और विभु का पुत्र पृथुषेण हुआ जिसका पुत्र नक्त था। नक्त की पत्नी द्रुति से गय का जन्म हुआ जो अत्यन्त विख्यात एवं महात्मा राजा था। वास्तव में राजा गय भगवान् विष्णु के अंश-अवतार थे और विष्णु के प्रति अपनी परम भक्ति के कारण उन्हें महापुरुष की उपाधि प्राप्त हुई थी। राजा गय के चित्ररथ, सुमति तथा अवरोधन नामक तीन पुत्र थे। चित्ररथ का पुत्र सम्राट नामक महान् राजा हुआ। उसका पुत्र मरीचि था जिसका पुत्र बिन्दु हुआ। बिन्दु का पुत्र मधु और मधु का पुत्र वीरव्रत था। वीरव्रत के दो पुत्र हुए—मंथु तथा प्रमंथु। मंथु का पुत्र भौवन था, भौवन का पुत्र त्वष्टा और त्वष्टा का पुत्र विरज, जिसने पूरे वंश को उजागर किया। विरज के एक सौ पुत्र तथा एक पुत्री थी। पुत्रों में से सतजीत नाम का पुत्र अत्यन्त विख्यात हुआ।

श्रीशुक उवाच

भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित्पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥ १ ॥

श्रीशुकः उवाच =श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा; **भरतस्य** =भरत महाराज का; **आत्मजः**—पुत्र; **सुमतिः नाम अभिहितः** =जिसका नाम सुमति था; **यम्** =

जिसको; **उ ह वाव** = निस्सन्देह; **केचित्** = कोई; **पाखण्डिन:** = वैदिक ज्ञान विहीन, पाखंडी जन; **ऋषभ-पदवीम्** = राजा ऋषभदेव के मार्ग का; **अनुवर्तमानम्** = अनुसरण करते हुए; **च** = तथा; **अनार्या:** = वैदिक नियमों का कठोरता से पालन न करने वाले, अनार्य; **अवेद-समाम्नाताम्** = जिनका वेदों में उल्लेख नहीं है; **देवताम्** = भगवान् बुद्ध या बौद्ध विग्रह के समान; **स्व-मनीषया** = अपनी बौद्धिक कल्पना से; **पापीयस्या** = अत्यन्त पापमय; **कलौ** = इस कलियुग में; **कल्पयिष्यन्ति** = कल्पना करेंगे ।

अनुवाद

श्रील शुकदेव गोस्वामी कहते हैं—महाराज भरत के पुत्र सुमति ने ऋषभदेव के मार्ग का अनुसरण किया, किन्तु कुछ पाखंडी उन्हें साक्षात् भगवान् बुद्ध मान लेंगे । वस्तुतः इन पाखंडी और दुश्चरित्र लोगों ने वैदिक नियमों का पालन काल्पनिक तथा अप्रसिद्ध ढंग से अपने कर्मों की पुष्टि के लिए किया । इस प्रकार इन पापात्माओं ने सुमति को भगवान् बुद्धदेव के रूप में स्वीकार किया और इस मत का प्रवर्तन किया कि प्रत्येक व्यक्ति को सुमति के नियमों का पालन करना चाहिए । इस प्रकार अपनी कोरी कल्पना के कारण वे रास्ते से भटक गये ।

तात्पर्य

जो आर्य हैं वे वैदिक नियमों का कठोरता से पालन करते हैं, किन्तु इस कलियुग में **आर्य समाज** नामक एक संस्था का जन्म हुआ है जो वैदिक परम्परा से अनभिज्ञ है । इसके नेता प्रामाणिक आचार्यों की निन्दा करके अपने आपको वैदिक नियमों का असली पालक मानते हैं । वैदिक नियमों का पालन न करने वाले ऐसे आचार्य इस समय आर्य-समाज या "जैन" कहलाते हैं । वे वैदिक नियमों का पालन तो करते ही नहीं, भगवान् बुद्ध से भी उनका कोई सम्बन्ध नहीं है । सुमति के आचरण के अनुकरण पर वे अपने को ऋषभदेव की संततियाँ घोषित करते हैं । वैष्णव जन इनकी संगति से दूर रहते हैं, क्योंकि ये वेद-पथ से सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं । भगवद्गीता (१५.१५) में श्रीकृष्ण का वचन है, **वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य:**—"वेदों का वास्तविक प्रयोजन मुझे जान लेना है ।" यही सम्पूर्ण वैदिक शास्त्रों का आदेश है । जो भगवान् श्रीकृष्ण की महानता से परिचित नहीं हैं उसे आर्य नहीं माना जा सकता । भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार भगवान् बुद्ध ने **भागवत धर्म** के दर्शन के प्रचार की विशिष्ट विधि अपनाई थी । वे प्राय: नितान्त पाखंडियों (नास्तिकों) को उपदेश देते थे । नास्तिकों को किसी ईश्वर की आवश्यकता नहीं, अतः भगवान् बुद्ध का कथन था कि ईश्वर नहीं है । उन्होंने अपने अनुयायियों के लाभ के लिए उपदेश देने की विधि अपनाई । उन्होंने छद्म रूप में उपदेश दिया कि ईश्वर का अस्तित्त्व नहीं है । तो भी वे स्वयं ईश्वर के अवतार थे ।

तस्माद् वृद्धसेनायां देवताजिन्नाम पुत्रोऽभवत् ॥ २ ॥

तस्मात्=सुमति से; **वृद्ध-सेनायाम्**=उसकी पत्नी वृद्धसेना के गर्भ से; **देवताजित्-नाम**=देवताजित् नामक; **पुत्रः**=पुत्र; **अभवत्**=उत्पन्न हुआ ।

अनुवाद

सुमति की पत्नी वृद्धसेना के गर्भ से देवताजित् नामक पुत्र का जन्म हुआ ।

अथासुर्यां तत्तनयो देवद्युम्नस्ततो धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥ ३ ॥

अथ=तत्पश्चात्; **आसुर्याम्**=उसकी पत्नी आसुरी के गर्भ से; **तत्-तनयः**=देवताजित् का एक पुत्र; **देवद्युम्नः**=देवद्युम्न नाम का; **ततः**=देवद्युम्न से; **धेनुमत्याम्**=देवद्युम्न की पत्नी धेनुमती के गर्भ से; **सुतः**=एक पुत्र; **परमेष्ठी**=परमेष्ठी नामक; **तस्य**=परमेष्ठी की; **सुवर्चलायाम्**=पत्नी सुवर्चला के गर्भ से; **प्रतीहः**=प्रतीह नाम का पुत्र; **उपजातः**=उत्पन्न हुआ ।

अनुवाद

तत्पश्चात् देवताजित् की पत्नी आसुरी के गर्भ से देवद्युम्न नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । देवद्युम्न की पत्नी धेनुमती के गर्भ से परमेष्ठी नामक पुत्र का और परमेष्ठी की पत्नी सुवर्चला के गर्भ से प्रतीह का जन्म हुआ ।

य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनुसस्मार ॥ ४ ॥

यः=जिसने (राजा प्रतीह ने); **आत्म-विद्याम् आख्याय**=आत्मसाक्षात्कार के सम्बन्ध में अनेक लोगों को शिक्षा देने के पश्चात्; **स्वयम्**=स्वतः; **संशुद्धः**=आत्मसाक्षात्कार में अतीव समुन्नत एवं परिशुद्ध; **महा-पुरुषम्**=श्रीभगवान् को; **अनुसस्मार**=भलीभाँति समझा और निरन्तर स्मरण किया ।

अनुवाद

राजा प्रतीह ने स्वयं आत्मसाक्षात्कार के सिद्धान्तों का प्रसार किया । इस प्रकार शुद्ध होकर वे भगवान् श्रीविष्णु के महान् भक्त बन गये और प्रत्यक्षतः उनका साक्षात्कार किया ।

तात्पर्य

अनुसस्मार शब्द अत्यन्त सार्थक है। भगवद्भावना न तो काल्पनिक है, न ही मनगढ़न्त। विशुद्ध एवं महान् भक्त भगवान् का यथानुरूप साक्षात्कार करता है। महाराज प्रतीह ने ऐसा ही किया। भगवान् विष्णु का साक्षात्कार कर लेने के बाद उन्होंने आत्मसाक्षात्कार का प्रचार किया और स्वयं उपदेशक बन गये। सच्चा उपदेशक कभी छाद्मिक नहीं होता; पहले उसे भगवान् विष्णु का उसी रूप में साक्षात्कार करना होता है। भगवद्गीता (४.३४) में पुष्टि की गई है—**उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः**—"जिसने सत्य को देखा है वही ज्ञान प्रदान कर सकता है।" **तत्त्वदर्शी** शब्द से ऐसे व्यक्ति का बोध होता है, जिसने सम्यक् रीति से श्रीभगवान् का साक्षात्कार प्राप्त किया हो। ऐसा पुरुष ही गुरु हो सकता है और सारे विश्व में वैष्णव दर्शन की स्थापना कर सकता है। राजा प्रतीह प्रामाणिक उपदेशकों एवं गुरु के आदर्श स्वरूप हैं।

प्रतीहात्सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाः सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानावजनिषाताम् ॥ ५ ॥

प्रतिहात् = राजा प्रतीह से; **सुवर्चलायाम्** = उसकी पत्नी सुवर्चला के गर्भ से; **प्रतिहर्तृ-आदयः त्रयः** = प्रतिहर्ता, प्रस्तोता तथा उद्गाता नाम के तीन पुत्र; **आसन्** = उत्पन्न हुए; **इज्या-कोविदाः** = वेदों के अनुष्ठानों में अत्यन्त दक्ष; **सूनवः** = तीनों पुत्र; **प्रतिहर्तुः** = प्रतिहर्ता से; **स्तुत्याम्** = उसकी पत्नी स्तुती के गर्भ से; **अज-भूमानौ** = अज तथा भूमा नाम के दो पुत्र; **अजनिषाताम्** = आविर्भूत हुए।

अनुवाद

प्रतीह की पत्नी सुवर्चला के गर्भ से प्रतिहर्ता, प्रस्तोता तथा उद्गाता नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ये तीनों पुत्र वैदिक अनुष्ठानों में अत्यन्त दक्ष थे। प्रतिहर्ता की भार्या स्तुती के गर्भ से अज तथा भूमा नामक दो पुत्रों का जन्म हुआ।

भूम्न ऋषिकुल्यायामुद्गीथस्ततः प्रस्तावो देवकुल्यायां प्रस्तावान्नियुत्सायां हृदयज आसीद्विभुर्विभो रत्यां च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्ताद् द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद् रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलाऽऽत्मवत्त्वादिलक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥ ६ ॥

भूम्नः = राजा भूमा से; **ऋषि-कुल्यायाम्** = उसकी पत्नी ऋषिकुल्या के गर्भ से; **उद्गीथः** = उद्गीथ नामक पुत्र; **ततः** = फिर राजा उद्गीथ से; **प्रस्तावः** = प्रस्ताव नामक पुत्र; **देवकुल्यायाम्** = उसकी पत्नी देवकुल्या से; **प्रस्तावात्** = राजा प्रस्ताव से; **नियुत्सायाम्** = नियुत्सा नाम वाली उसकी पत्नी से; **हृदयजः** = पुत्र; **आसीत** = उत्पन्न हुआ; **विभुः** = विभु नामक; **विभोः** = राजा विभु से; **रत्याम्** = उसकी पत्नी रती से; **च** = भी; **पृथु-षेणः** = पृथुषेण नाम का; **तस्मात्** = उससे (पृथुषेण से); **नक्तः** = नक्त नामक पुत्र; **आकूत्याम्** = उसकी पत्नी आकूती से; **जज्ञे** = जन्म लिया; **नक्तात्** = नक्त राजा से; **द्रुति-पुत्रः** = द्रुति का पुत्र; **गयः** = गय नामक राजा; **राज-ऋषि-प्रवरः** = राजर्षियों में अत्यन्त सम्मान्य; **उदार-श्रवाः** = अत्यन्त पवित्र राजा के रूप में विख्यात; **अजायत** = उत्पन्न हुआ; **साक्षात् भगवतः** = साक्षात् श्रीभगवान्; **विष्णोः** = भगवान् विष्णु का; **जगत्-रिरक्षिषया** = समस्त संसार की रक्षा के हेतु; **गृहीत** = गर्भ में वास किया; **सत्त्वस्य** = शुद्ध सत्त्व गुण का; **कला-आत्म-वत्त्व-आदि** = भगवान् के साक्षात् अवतार के रूप में; **लक्षणेन** = लक्षणों से; **महा-पुरुषताम्** = मानव समाज के नायक होने का मुख्य गुण (सम्पूर्ण जीवित प्राणियों के नायक भगवान् विष्णु के सदृश); **प्राप्तः** = प्राप्त किया।

अनुवाद

राजा भूमा की पत्नी ऋषिकुल्या के गर्भ से उद्गीथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उद्गीथ की पत्नी देवकुल्या से प्रस्ताव नामक पुत्र ने जन्म लिया और प्रस्ताव को अपनी पत्नी वियुत्सा से विभु नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। विभु की पत्नी रती के गर्भ से प्रिथुसेन और प्रिथुसेन की पत्नी आकूती के गर्भ से नक्त नामक पुत्र ने जन्म लिया। नक्त की पत्नी द्रुति हुई, जिसके गर्भ से गय नामक महान् राजा उत्पन्न हुआ। गय अत्यन्त विख्यात एवं पवित्र था, वह राजर्षियों में सर्वश्रेष्ठ था। भगवान् विष्णु तथा उनके सभी प्रकाश विश्व की रक्षा के लिए हैं और वे सदैव दिव्य सत्त्वगुण में, जिसे विशुद्ध सत्त्व कहते हैं, विद्यमान् रहते हैं। भगवान् विष्णु के साक्षात् अंश होने के कारण राजा गय भी विशुद्ध-सत्त्व में आसीन थे। इस कारण महाराज गय दिव्य ज्ञान से युक्त थे और इसीलिए वे महापुरुष कहलाए।

तात्पर्य

इस श्लोक से ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् के अनेक अवतार हैं। इनमें से कुछ तो भगवान् विष्णु के प्रकाश के विभिन्न अंश हैं, तो कुछ साक्षात् प्रकाश हैं। श्रीभगवान् का प्रत्यक्ष अवतार **अंश** या **स्वांश** कहलाता है जब कि अंश के अवतार को **कला** कहते हैं। कलाओं के अन्तर्गत **विभिन्नांश जीव** अथवा जीवात्माएँ होती हैं। इनकी गणना **जीव-तत्त्वों** में की जाती है। भगवान् विष्णु से प्रत्यक्ष प्राप्त होने

वाली जीवात्माएँ **विष्णुतत्त्व** कहलाती हैं और कभी-कभी इन्हें ही महापुरुष कहा जाता है। श्रीकृष्ण का दूसरा नाम महापुरुष है और कभी-कभी भक्त को **महापौरुषिक** कहा जाता है।

स वै स्वधर्मेण प्रजापालन पोषणप्रीणनोपलालनानुशासनलक्षणेनेज्यादिना च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मनार्पितपरमार्थलक्षणेन ब्रह्मविच्चरणानुसेवयाऽऽपादितभगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः परिभाविता-विशुद्ध मपिरुपरतानात्म्य आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमान एवावनिमजूगुपत् ॥ ७ ॥

सः=वह राजा गय; **वै**=निश्चय ही; **स्व-धर्मेण**=अपने कर्तव्य के द्वारा; **प्रजा-पालन**=प्रजा का पालन करने; **पोषण**=प्रजा का भरण करने; **प्रीणन**=सभी तरह से उसे सुखी बनाने; **उपलालन**=उसे पुत्र की भाँति रखने; **अनुशासन**=कभी-कभी त्रुटियों के लिए दण्डित करने; **लक्षणेन**=राजा के लक्षणों से; **इज्या-आदिना** =वेदोक्त विधि से यज्ञ सम्पन्न करके; **च**=भी; **भगवति**=श्रीभगवान्, विष्णु; **महा-पुरुषे**=समस्त जीवात्माओं में प्रमुख; **पर-अवरे**=भगवान् ब्रह्मा से लेकर अकिंचन चींटी तक समस्त जीवात्माओं का स्रोत; **ब्रह्मणि**=परब्रह्म श्रीभगवान् वासुदेव में; **सर्व-आत्मना**=सभी प्रकार से; **अर्पित**=समर्पित शरणागत; **परम-अर्थ-लक्षणेन**=चिन्मय लक्षणों से; **ब्रह्म-वित्**=स्वरूप-सिद्ध सन्त भक्तों के; **चरण-अनुसेवया** =चरणारविन्दों की सेवा करके; **आपादित**=प्राप्त किया; **भगवत्-भक्ति-योगेन**= भगवान् की भक्ति के अभ्यास से; **च**=भी; **अभीक्ष्णशः**=अनवरत,सतत्; **परिभाविता** =संतृप्त; **अतिशुद्ध-मतिः**=जिसकी विशुद्ध चेतना (ऐसी पूर्ण चेतना कि शरीर तथा मन आत्मा से पृथक है।); **उपरत-अनात्मेय**=जिसमें भौतिक वस्तुओं की पहचान रुक जाती है; **आत्मनि**=अपने में; **स्वयम्**=स्वयं; **उपलभ्यमान**=साक्षात्कार होते हुए; **ब्रह्म-आत्म-अनुभवः**=अपनी स्थिति का परब्रह्म के रूप में दर्शन; **अपि**= यद्यपि; **निरभिमानः**=अभिमान रहित, झूठी बड़ाई के बिना; **एव**=इस प्रकार; **अवनिम**=सम्पूर्ण संसार; **अजूगुपत्**=वैदिक विधियों के अनुसार कठोरता से शासन किया।

अनुवाद

राजा गय ने अपनी प्रजा को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की जिससे अवांछित तत्त्वों के द्वारा उनकी सम्पत्ति को किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे। उन्होंने इसका भी ध्यान रखा कि प्रजा को पर्याप्त भोजन प्राप्त हो (यही "पोषण" है)। कभी-कभी प्रजा को संतुष्ट करने के लिए वह दान देते थे (यह "प्रीणान" कहलाता है)। कभी-कभी वे

प्रजा को सभा में बुलाते और मृदु वचनों से संतुष्ट करते (यह "उपलालन" कहलाता है)। वे उन्हें उच्चकोटि के नागरिक बनाने की शिक्षा देते (यह "अनुशासन" है)। राजा गय में इस प्रकार की विलक्षणताएँ थीं। इन सबके अतिरिक्त राजा गय गृहस्थ थे और वे गृहस्थ जीवन के सभी नियमों का कठोरता से पालन करते थे। वे यज्ञ करते थे तथा श्रीभगवान् के एकनिष्ठ भक्त थे। वे महापुरुष कहे जाते थे, क्योंकि राजा के रूप में वे प्रजा को सभी सुख सुविधाएँ प्रदान करने वाले और गृहस्थ के रूप में सभी कर्तव्यों का पालन करने वाले थे। फलस्वरूप वे अन्त में श्रीभगवान् के परम भक्त हुए। भक्त के रूप में वे सभी भक्तों का आदर करने और भगवान् की सेवा करने को उद्यत रहते थे। यह भक्तियोग की प्रक्रिया है। इन दिव्य कर्मों के कारण राजा गय देहात्मबोध से सदैव मुक्त रहे। वे ब्रह्मसाक्षात्कार में लीन रहने के कारण सदैव प्रसन्न रहते थे। उन्हें भौतिक पश्चात्ताप का अनुभव नहीं करना पड़ा। सभी प्रकार से पूर्ण होने पर भी वे न तो गर्व करते थे, न ही राज्य करने के इच्छुक थे।

तात्पर्य

भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है कि दो प्रकार के प्रयोजनों से वे धरती पर अवतरित होते हैं—साधु पुरुषों का उद्धार तथा असुरों का नाश (**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्**)। राजा श्रीभगवान् का प्रतिनिधि होता है, इसीलिए उसे कभी-कभी **नरदेव** अर्थात् मनुष्यों का स्वामी कहते हैं। वैदिक आज्ञाओं के अनुसार संसार में उसकी ईश्वर तुल्य पूजा की जाती है। श्रीभगवान् के प्रतिनिधि होने के नाते राजा का यह परम कर्तव्य होता था कि वह प्रजा की भलीभाँति रक्षा करे जिससे प्रजा को भोजन तथा सुरक्षा की चिन्ता न रहे और वह प्रसन्न रहे। राजा प्रजा के हित में सभी कुछ करता था और इन सब के लिए वह उन पर कर लगाता था। यदि कोई राजा या राज्य अतिरिक्त कर लगाता है तो वह प्रजा के पापों का भागी होता है। कलियुग के प्रभाव से एकाधिकार (राजतन्त्र) समाप्त हो गया है। रामायण से पता चलता है कि विभीषण ने राजा रामचन्द्र के साथ मैत्री स्थापित हो जाने के बाद वचन दिया था कि यदि वह दैववश या इच्छा से मित्रता भंग करे तो कलियुग में वह **ब्राह्मण** या राजा बने। जैसा कि विभीषण ने संकेत किया है, इस युग में ब्राह्मण तथा राजा दोनों ही दयनीय स्थिति को प्राप्त हैं। सच तो यह है कि इस युग में न तो कोई राजा है, न ब्राह्मण और उनके न होने से सम्पूर्ण विश्व अव्यवस्थित है और सदैव संकटग्रस्त रहता है। वर्तमान मानदण्ड के अनुसार महाराज गय विष्णु के सच्चे प्रतिनिधि थे, इसीलिए वे महापुरुष कहलाए।

तस्येमां गाथां पाण्डवेय पुराविद उपगायन्ति ॥ ८ ॥

तस्य=राजा गय का; **इमाम्**=ये; **गाथाम्**=स्तुतिपरक पद्य; **पाण्डवेय**=हे महाराज परीक्षित्; **पुरा-विदः**=पुराणों की ऐतिहासिक घटनाओं के ज्ञाता; **उपगायन्ति**=गाते हैं।

अनुवाद

हे राजा परीक्षित् ! पुराणों को जानने वाले विद्वान् राजा गय की स्तुति निम्नलिखित श्लोकों से करते हैं।

तात्पर्य

वर्तमान शासकों के लिए अच्छे राजाओं के ऐतिहासिक प्रसंग आदर्श उपस्थित करने वाले हैं। विश्व पर शासन करने वालों को चाहिए कि वे राजा गय, राजा युधिष्ठिर तथा पृथु से शिक्षा ग्रहण करें और प्रजा पर इस प्रकार शासन करें जिससे वह सुखी रहे। आजकल की सरकारें किसी प्रकार का सांस्कृतिक, धार्मिक, समाजिक या राजनीतिक सुधार किये बिना ही कर वसूल करती हैं। वेदों के अनुसार इसकी अनुमति नहीं है।

गयं नृपः कः प्रतियाति कर्मभि-
र्यज्वाभिमानी बहुविद्धर्मगोप्ता।
समागतश्रीः सदसस्पतिः सतां
सत्सेवकोऽन्यो भगवत्कलामृते ॥ ९ ॥

गयम्=गय; **नृपः**=राजा; **कः**=कौन; **प्रतियाति**=तुलनीय है; **कर्मभिः**=कर्मों के कारण; **यज्वा**=जिसने समस्त यज्ञ किये; **अभिमानी**=सारे विश्व में अत्यधिक सम्मानित; **बहु-वित्**=वैदिक शास्त्रों से भली-भाँति भिज्ञ; **धर्म-गोप्ता**=प्रत्येक व्यक्ति के कार्यों का संरक्षक; **समागत-श्रीः**=सभी प्रकार के वैभव से युक्त; **सदसः-पतिः-सताम्**=महान् व्यक्तियों की सभा का अध्यक्ष; **सत्सेवकः**=भक्तों का सेवक; **अन्यः**=अन्य कोई; **भगवत्कलाम्**=श्रीभगवान् की कला (अवतार); **ऋते**=के अतिरिक्त।

अनुवाद

महान् राजा गय सभी प्रकार के वैदिक अनुष्ठान किया करते थे। वे अत्यन्त बुद्धिमान् और वैदिक शास्त्रों के अध्ययन में दक्ष थे। उन्होंने धार्मिक नियमों की रक्षा की और वे समस्त वैभव से युक्त थे। वे सज्जनों के नायक और भक्तों के सेवक थे। वे श्रीभगवान् के सच्चे अर्थों में सर्वथा समर्थ अंश (कला) थे। अतः महान् अनुष्ठानों (यज्ञ) को सम्पन्न करने में उनकी तुलना कौन कर सकता है ?

यमभ्यषिञ्चन् परया मुदा सतीः
सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्भिः।
यस्य प्रजानां दुदुहे धराऽऽशिषो
निराशिषो गुणवत्सस्नुतोधाः ॥१०॥

यम् = जिसको; **अभ्यषिञ्चन्** = अभिषेक करती थीं; **परया** = अत्यन्त (परम); **मुदा** = सन्तोष से; **सती:** = अपने पतियों के प्रति भक्तिभाव रखने वाली तथा पतिव्रता स्त्रियाँ; **सत्य** = सच्चे; **आशिष:** = आशीर्वाद; **दक्षकन्या:** = राजा दक्ष की पुत्रियाँ; **सरिद्भि:** = पवित्र जल के द्वारा; **यस्य** = जिसकी; **प्रजानाम्** = प्रजा का; **दुदुहे** = पूरा किया; **धरा** = पृथ्वी; **अशिष:** = समस्त कामनाओं का; **निराशिष:** = यद्यपि स्वयं कामनारहित होकर; **गुण-वत्सस्नुत-उधा:** = प्रजा पर राज्य करने वाले गय के गुणों को देखकर गो रूप पृथ्वी के थन से दुग्ध की धारा निकल आई।

अनुवाद

महाराज गय का महाराज दक्ष की श्रद्धा, मैत्री तथा दया जैसी पतिव्रता तथा सत्यनिष्ट कन्याएँ पवित्र जल से अभिषेक करती थीं। वे सभी महाराज गय से परम सन्तुष्ट थीं। पृथ्वी स्वयं गौ रूप में प्रकट हुई और महाराज गय के उत्तम गुणों को देखकर दुग्ध स्रवण करने लगी, मानों गाय ने अपने वत्स को देखा हो। तात्पर्य यह कि महाराज गय पृथ्वी के समस्त साधनों से लाभ उठा करके अपनी प्रजा की आकांक्षाओं को पूरा करते थे। फिर भी वे निस्पृह थे।

तात्पर्य

महाराज गय द्वारा शासित पृथ्वी की तुलना गऊ से और जिन सद्गुणों के कारण वे प्रजा पर शासन करते थे उनकी तुलना बछड़े से की गई है। बछड़े के रहने पर गाय दूध देती है, उसी प्रकार यह पृथ्वी अर्थात् गाय महाराज गय की आकांक्षाओं को पूर्ण करने वाली थी, क्योंकि वे अपनी प्रजा के लाभार्थ पृथ्वी के समस्त साधनों का उपयोग करने में समर्थ थे। ऐसा इसलिए सम्भव हो सका क्योंकि दक्ष की सच्चरित्र कन्याओं ने पवित्र जल से उनका अभिषेक किया था। जब तक कोई राजा या शासक उच्चाधिकारियों द्वारा आशीर्वाद प्राप्त नहीं करता तब तक वह सन्तोषजनक रीति से प्रजा पर शासन नहीं कर सकता। शासक के सद्गुणों से ही प्रजा प्रसन्न होती है और योग्य बनती है।

छन्दांस्यकामस्य च यस्य कामान्
दुदूहुराजह्रुरथो बलिं नृपाः ।
प्रत्यञ्चिता युधि धर्मेण विप्रा
यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य ॥११॥

छन्दांसि=वेदों के समस्त अंग; **अकामस्य**=निष्काम; **च**=भी; **यस्य**=जिसकी; **कामान्**=समस्त इच्छाएँ; **दुदूहुः**=प्रदान किया; **आजह्रुः**=अर्पित किया; **अथो**=इस प्रकार; **बलिम्**=भेंट, बलि; **नृपाः**=सभी राजा; **प्रत्यञ्चिताः**=उसके विपक्ष में युद्ध करने से सन्तुष्ट होकर; **युधि**=युद्ध में; **धर्मेण**=धार्मिक नियमों से; **विप्राः**=समस्त ब्राह्मण; **यदा**=जब; **आशिषम्**=आशीर्वादों का; **षष्ठम् अंशम्**=छठा अंश; **परेत्य**=अगले जन्म में ।

अनुवाद

यद्यपि महाराज गय में इन्द्रियतृप्ति के लिए किसी प्रकार की व्यक्तिगत इच्छा नहीं थी, किन्तु वैदिक अनुष्ठानों को पूरा करने के कारण उनकी सम्पूर्ण इच्छाओं की पूर्ति होती रहती थी । जिन राजाओं से महाराज गय को युद्ध करना पड़ता, वे धर्मयुद्ध करने के लिए विवश हो जाते । वे महाराज गय के युद्ध से परम सन्तुष्ट होकर उन्हें सभी प्रकार की भेंटें प्रदान करते थे । इसी प्रकार से उनके राज्य के समस्त ब्राह्मण उनके मुक्त दान से परम सन्तुष्ट रहते थे । फलस्वरूप ब्राह्मणों ने राजा गय को अगले जन्म में प्राप्त होने वाले अपने पुण्य कर्मों का छठा अंश सहर्ष प्रदान किया था ।

तात्पर्य

क्षत्रिय होने के नाते महाराज गय को अपना राज्य स्थिर रखने के लिए कभी-कभी अधीनस्थ राजाओं से युद्ध करना पड़ता था । किन्तु अधीनस्थ राजा कभी भी असन्तुष्ट नहीं हुए, क्योंकि वे जानते थे कि महाराज गय धार्मिक नियमों के लिए लड़ते थे । फलतः वे उनकी अधीनता स्वीकार करके उन्हें नाना प्रकार की भेंटे अर्पित करते रहते थे । इसी प्रकार वैदिक अनुष्ठानों में रत ब्राह्मणजन भी राजा से अत्यन्त सन्तुष्ट रहते थे, यहाँ तक कि वे सहर्ष अपने पुण्य कर्मों का छठा अंश उनके अगले जन्म के लाभार्थ प्रदान करने के लिए राजी हो गये । इस तरह ब्राह्मण तथा क्षत्रिय सभी महाराज गय के शासन से अत्यन्त सन्तुष्ट थे । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि महाराज गय ने क्षत्रिय राजाओं को अपने युद्ध से तथा ब्राह्मणों को अपने दान से सन्तुष्ट कर रखा था । वैश्य भी राजा के दयालु वचनों तथा प्रेमपूर्ण व्यवहार से प्रसन्न रहते थे । शूद्र उनके सतत यज्ञों से प्रचुर भोजन तथा दान प्राप्त

करके सन्तुष्ट थे। इस प्रकार महाराज गय अपनी समस्त प्रजा को अत्यधिक सन्तुष्ट रखते थे। जब ब्राह्मणों एवं साधुओं का सम्मान किया जाता है तो वे सम्मान और सेवा करने वालों को अपने पुण्य कर्मों का एक अंश सहर्ष प्रदान कर देते हैं। अतः जैसा कि भगवद्गीता (४.३४) में कहा गया है—**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया**—मनुष्य को चाहिए कि वह सद्गुरु के शरणागत होकर दण्डवत् प्रणाम, विनम्र जिज्ञासा और निष्कपट भाव से उसकी सेवा करे।

यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा
मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे।
श्रद्धाविशुद्धाचलभक्तियोग-
समर्पितेज्याफलमाजहार ॥१२॥

यस्य=जिसका (राजा गय का); **अध्वरे**=अपने विभिन्न यज्ञों में; **भगवान्**=श्रीभगवान्, परम-ईश्वर; **अध्वर-आत्मा**=समस्त यज्ञों के परम भोक्ता, यज्ञ पुरुष; **मघोनि**=(जब) राजा इन्द्र; **माद्यति**=मदान्ध हो जाता है; **उरु**=अत्यधिक; **सोम-पीथे**=मादक सोमरस का पान करते हुए; **श्रद्धा**=भक्ति से; **विशुद्ध**=शुद्ध किया हुआ; **अचल**=(एवं) स्थिर; **भक्ति-योग**=भक्ति के द्वारा; **समर्पित**=चढ़ाया गया, अर्पित; **इज्या**=पूजन का; **फलम्**=फल, परिणाम; **आजहार**=स्वयं स्वीकार किया।

अनुवाद

महाराज गय के यज्ञों में सोम नामक मादक द्रव्य का अत्यधिक प्रयोग होता था। इनमें राजा इन्द्र आया करते और सोमरस की प्रचुर मात्रा पीकर मदान्ध हो जाते थे। भगवान् श्रीविष्णु (यज्ञ पुरुष) भी आये और यज्ञ क्षेत्र में विशुद्ध भक्तिपूर्वक समर्पित किये गये यज्ञफल को स्वयं स्वीकार किया था।

तात्पर्य

महाराज गय इतने सिद्ध थे कि वैकुण्ठवासी राजा इन्द्र के अधीन सभी देवता उनसे सन्तुष्ट रहते थे। भगवान् विष्णु स्वयं यज्ञ क्षेत्र में द्रव्य ग्रहण करने के लिए आते थे। महाराज गय को अनिच्छित ही देवताओं तथा श्रीभगवान् के आशीर्वाद प्राप्त थे।

यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यङ्-
मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिञ्चात् ।

प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः
प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्गयस्य ॥१३॥

यत्-प्रीणनात् = श्रीभगवान् के प्रसन्न होने से; **बर्हिषि** = यज्ञ क्षेत्र में; **देव-तिर्यक्** = देवता तथा निम्न पशु; **मनुष्य** = मानव समाज; **वीरुत्** = पादप तथा वृक्ष; **तृणम्** = घास; **आ-विरिञ्चात्** = भगवान् ब्रह्मा तक; **प्रीयेत** = सन्तुष्ट हो जाता है; **सद्यः** = तुरन्त; **सः** = श्रीभगवान्; **ह** = निश्चय ही; **विश्व-जीवः** = समस्त संसार के जीवात्माओं का पालन करने वाला; **प्रीतः** = यद्यपि सहज तुष्ट हैं; **स्वयम्** = साक्षात्; **प्रीतिम्** = सन्तोष; **अगात्** = प्राप्त हुआ; **गयस्य** = महाराज गय का।

अनुवाद

जब श्रीभगवान् किसी व्यक्ति के कर्मों से प्रसन्न होते हैं तो ब्रह्मा से लेकर समस्त देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, लताएँ, तृण तथा अन्य समस्त जीवात्माएँ स्वतः प्रसन्न हो जाती हैं। श्रीभगवान् सबों के परमात्मा हैं और वे स्वभाव से परम प्रसन्न रहने वाले हैं। तो भी वे महाराज गय के यज्ञ क्षेत्र में आये और कहा, "मैं परम प्रसन्न हूँ।"

तात्पर्य

यहाँ यह स्पष्ट कहा गया है कि केवल श्रीभगवान् को प्रसन्न कर लेने पर देवता तथा अन्य समस्त जीवात्माएँ बिना किसी भेदभाव के प्रसन्न हो जाती हैं। वृक्ष की जड़ों को सींचने से सभी शाखाएँ, पत्तियाँ तथा फूल हरे-भरे रहते हैं। यद्यपि श्रीभगवान् आत्म-तुष्ट रहने वाले हैं, किन्तु महाराज गय के आचरण से परम प्रसन्न होकर वे उनके यज्ञ क्षेत्र में आये और कहा, "मैं पूर्ण सन्तुष्ट हूँ"। भला महाराज गय की समता कौन कर सकता है?

गयाद्गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति त्रयः पुत्रा बभूवुश्चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट तत उत्कलायां मरीचिर्मरीचे ॥१४॥
बिन्दुमत्यां बिन्दुमानुदपद्यत तस्मात्सरघायां मधुर्नामाभवन्मधोः सुमनसि वीरव्रतस्ततो भोजायां मन्थुप्रमन्थू जज्ञाते मन्थोः सत्यायां भौवनस्ततो दूषणायां त्वष्टाजनिष्ट त्वष्टुर्विरोचनायां विरजो विरजस्य शतजित्प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम् ॥१५॥

गयात् = महाराज गय से; **गयन्त्याम्** = उनकी पत्नी गयन्ती के; **चित्र-रथः** = चित्ररथ नामक; **सुगतिः** = सुगति नामक; **अवरोधनः** = अवरोधन नाम; **इति** = इस प्रकार; **त्रयः** = तीन; **पुत्राः** = पुत्र; **बभूवुः** = उत्पन्न हुए; **चित्र रथात्** = चित्ररथ से; **ऊर्णायाम्** = ऊर्णा के गर्भ से; **सम्राट्** = सम्राट् नामक पुत्र; **अजनिष्ट** = उत्पन्न हुए; **ततः** = उससे; **उत्कलायाम्** = उत्कला नामक पत्नी से; **मरीचिः** = मरीचि; **मरीचेः** = मरीचि से; **बिन्दु-मत्याम्** = उसकी पत्नी बिन्दुमती के गर्भ से; **बिन्दुम्** = बिन्दु नाम का पुत्र; **अनुपद्यत** = उत्पन्न हुआ; **तस्मात्** = उससे; **सरघायाम्** = सरघा नाम की पत्नी के गर्भ से; **मधुः** = मधु; **नाम** = नामक; **अभवत्** = जन्म लिया; **मधोः** = मधु से; **सुमनसि** = उसकी पत्नी सुमना के गर्भ से; **वीरव्रतः** = वीरव्रत नामक पुत्र; **ततः** = वीरव्रत से; **भोजायाम्** = उसकी पत्नी भोजा से; **मन्थु-प्रमन्थु** = मन्थु तथा प्रमन्थु नाम के दो पुत्र; **जज्ञाते** = उत्पन्न हुए; **मन्थोः** = मन्थु से; **सत्यायाम्** = उसकी पत्नी सत्या से; **भौवनः** = भौवन नामक पुत्र; **ततः** = उससे; **दूषणायाम्** = उसकी पत्नी दूषणा के गर्भ से; **त्वष्टा** = त्वष्टा नाम का एक पुत्र; **अजनिष्ट** = उत्पन्न हुआ; **त्वष्टुः** = त्वष्टा से; **विरोचनायाम्** = उसकी पत्नी विरोचना के; **विरजः** = विरज नाम का एक पुत्र; **विरजस्य** = राजा विरज का; **शतजित्-प्रवरम्** = (जिनमें) शतजित सर्वोपरि था; **पुत्र-शतम्** = एक सौ पुत्र; **कन्या** = एक पुत्री; **च** = भी; **विषूच्याम्** = उसकी पत्नी विषूची के; **किल** = निश्चय ही; **जातम्** = जन्म लिया।

अनुवाद

गयन्ती के गर्भ से महाराज गय के तीन पुत्र हुए जिनके नाम थे—चित्ररथ, सुगति तथा अवरोधन। चित्ररथ की पत्नी ऊर्णा से सम्राट् नाम का पुत्र प्राप्त हुआ। सम्राट् की पत्नी का नाम उत्कला था जिसके गर्भ से सम्राट् को मरीचि नामक पुत्र का लाभ हुआ। मरीचि की पत्नी बिन्दुमती से बिन्दु नामक पुत्र हुआ। बिन्दु की पत्नी सरघा के गर्भ से मधु नामक एक पुत्र ने जन्म लिया। मधु की पत्नी सुमना से वीरव्रत और वीरव्रत की पत्नी भोजा से मन्थु तथा प्रमन्थु नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। मन्थु की पत्नी सत्या से भौवन नाम का पुत्र और भौवन की पत्नी दूषणा से त्वष्टा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। त्वष्टा की पत्नी विरोचना से विरज नाम का पुत्र हुआ और उसकी पत्नी विषूची के गर्भ से एक सौ पुत्र तथा एक पुत्री उत्पन्न हुई। इन सभी पुत्रों में शतजित् नाम का पुत्र सर्वोपरि था।

तत्रायं श्लोकः—

प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः।
अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥१६॥

तत्र=उस प्रसंग में; **अयम् श्लोक:**=यह प्रसिद्ध श्लोक है; **प्रैयव्रतम्**=राजा प्रियव्रत से चलने वाली; **वंशम्**=वंश; **इमम्**=यह; **विरज:**=राजा विरज; **चरम-उद्भव:**=एक सौ पुत्रों (जिनमें शतजित् सर्वोपरि था) का स्रोत; **अकरोत**=अलंकृत किया; **अति-अलम्**=अत्यधिक; **कीर्त्या**=अपनी कीर्ति से; **विष्णु:**=भगवान् विष्णु, श्रीभगवान्; **सुर-गणम्**=देवता गण; **यथा**=जिस प्रकार।

अनुवाद

राजा विरज के सम्बन्ध में यह श्लोक प्रसिद्ध है। (जिसका अर्थ है) "अपने उच्च गुणों तथा व्यापक कीर्ति के कारण राजा विरज उसी प्रकार प्रियव्रत राजा के वंश के मणि हैं जिस प्रकार भगवान् विष्णु अपनी अप्राकृत शक्ति द्वारा देवताओं को विभूषित करते और उन्हें आशीष देते हैं।"

तात्पय

पुष्पित वृक्ष अपने सुगन्धित फूलों के कारण उद्यान में अच्छी ख्याति अर्जित करता है। इसी प्रकार यदि किसी वंश में कोई प्रसिद्ध व्यक्ति होता है तो उसकी उपमा वन के सुगन्धित पुष्प से दी जाती है। उसके कारण पूरा वंश इतिहास प्रसिद्ध हो सकता है। चूँकि श्रीकृष्ण ने यदु वंश में जन्म धारण किया, अत: यदु वंश तथा यादव लोग सर्वदा के लिए विख्यात हो गये। राजा विरज के प्रकट होने से महाराज प्रियव्रत का वंश सदा से प्रसिद्ध रहा है।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्याय: ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, "प्रियव्रत के पूर्वजों का यश वर्णन" शीर्षक नामक पन्द्रहवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त भाष्य समाप्त हुआ।

सोलहवाँ अध्याय

जम्बूद्वीप का वर्णन

महाराज प्रियव्रत तथा उनके पूर्वजों के चरित्र का वर्णन करते हुए शुकदेव गोस्वामी ने मेरु पर्वत तथा भूमण्डल नामक लोक का भी वर्णन किया। भूमण्डल कमल पुष्प के सदृश है और इसके सातों द्वीपों की तुलना कमल के कोश (आवर्त) से की जाती है। जम्बूद्वीप नामक स्थान इस कोश के मध्य में स्थित है। जम्बूद्वीप में सुमेरु नामक एक पर्वत है जो ठोस स्वर्ण का बना है। इस पर्वत की ऊँचाई ८४,००० योजन है जिसमें से १६,००० योजन पृथ्वी के भीतर है। इसकी चौड़ाई श्रृंग पर ३२,००० योजन और गिरिपाद पर १६,००० योजन आँकी जाती है (एक योजन लगभग आठ मील के बराबर होता है)। पर्वतों का राजा सुमेरु पृथ्वी ग्रह का आधार है।

इलावृत-वर्ष के दक्षिण में हिमवान्, हेमकूट तथा निषध नामक पर्वत हैं और उत्तर में नील, श्वेत तथा श्रृंग पर्वत हैं। इसी प्रकार पूर्व तथा पश्चिम दिशा में माल्यवान् तथा गंधमादन नामक दो विशाल पर्वत हैं। सुमेरु पर्वत के परितः मंदर, मेरुमंदर, सुपार्श्व तथा कुमुद नामक चार पर्वत हैं। इनमें से प्रत्येक पर्वत १०,००० योजन लम्बा तथा १०,००० योजन ऊँचा है। इन चारों पर्वतों पर १,१०० योजन ऊँचे वृक्ष हैं। इनमें एक आम का, एक जामुन का, एक कदम्ब का और एक बरगद का वृक्ष है। इसमें अनेक सरोवर भी हैं जो दुग्ध, मधु, इक्षुरस तथा जल से पूर्ण हैं। ये सरोवर समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। साथ ही इसमें नंदन, चित्ररथ, वैभ्राजक तथा सर्वतोभद्र नामक उद्यान भी हैं। सुपार्श्व पर्वत के पार्श्व में एक कदम्ब वृक्ष है जिसके कोटर से मधु की धारा प्रवाहित हो रही है। कुमुद पर्वत पर शतवलश नामक एक वटवक्ष है जिसके मूल से दूध दही तथा अन्य वांछित पदार्थों की नदियाँ बहती हैं। कमल-नाल के सदृश सुमेरु पर्वत की बीस पर्वत श्रेणियाँ, यथा कुरंग, कुरर, कुसुम्भ; वैकंक तथा त्रिकूट घेरे हुए हैं। सुमेरु के पूर्व जठर तथा देवकूट, पश्चिम में पवन तथा पारियात्र; दक्षिण में कैलाश तथा करवीर और उत्तर में त्रिश्रृंग तथा मकर पर्वत स्थित हैं। ये आठों पर्वत लगभग १८,००० योजन लम्बे, २,००० योजन चौड़े तथा २,००० योजन ऊँचे हैं। सुमेरु पर्वत के श्रृंग पर ब्रह्मपुरी है जो ब्रह्माजी का आवास है। इसकी चारों भुजाएँ १०,००० योजन लम्बी हैं। ब्रह्मपुरी

को घेरे हुए इंद्रराज तथा सात अन्य देवताओं की पुरियाँ हैं। ये सब पुरियाँ ब्रह्मपुरी के चौथाई आकार की हैं।

राजोवाच

उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥ १ ॥

राजा उवाच = महाराज परीक्षित् बोले; **उक्तः** = पहले ही कहा जा चुका है; **त्वया** = आपके द्वारा; **भू-मण्डल** = भूमण्डल नामक लोक; **आयाम-विशेषः** = त्रिज्या की विशेष लम्बाई; **यावत्** = जब तक; **आदित्यः** = सूर्य; **तपति** = तपता है, दीप्तिमान है; **यत्र** = जहाँ भी; **च** = भी; **असौ** = वह; **ज्योतिषाम्** = ज्योतिर्पिंडों का; **गणैः** = समूह के साथ; **चन्द्रमा** = चन्द्रमा; **वा** = या; **सह** = साथ; **दृश्यते** = देखा जाता है।

अनुवाद

राजा परीक्षित् ने शुकदेव गोस्वामी से कहा, "हे ब्राह्मण! आपने मुझे पहले ही बता दिया है कि भूमण्डल की त्रिज्या वहाँ तक विस्तृत है जहाँ तक सूर्य का प्रकाश और उष्मा पहुँचती है तथा चन्द्रमा और अन्य नक्षत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में इसका उल्लेख है कि भूमण्डल नामक लोक वहाँ तक विस्तीर्ण है जहाँ तक सूर्य का प्रकाश पहुँचता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार सूर्य का प्रकाश ९,३०,००,००० मील दूरी तय करके पृथ्वी तक पहुँचता है। यदि हम इस आधार पर गणना करें तो भूमण्डल की त्रिज्या ९,३०,००,००० मील हुई। गायत्री मंत्र में हम **ॐ भूर् भुवः स्वः** का जप करते हैं। इसमें **भूर्** शब्द भूमण्डल का द्योतक है। **तत् सवितुर् वरेण्यम्** सूर्य का प्रकाश समस्त भूमण्डल में फैलता है। अतः सूर्य पूजनीय हैं। तारे, जिनको नक्षत्र कहा जाता है, अन्य प्रकार के सूर्य नहीं हैं, जैसा कि आधुनिक वैज्ञानिक मानते हैं। भगवद्गीता (१०.२१) से हमें विदित होता कि ये नक्षत्र चन्द्रमा के ही समान हैं (**नक्षत्राणां अहं शशी**)। चन्द्रमा की ही भाँति नक्षत्र भी सूर्य प्रकाश को परावर्तित करते हैं। ग्रहों की स्थिति के सम्बन्ध में आज जितना भी ज्ञान प्राप्त है उससे भी अधिक हमें श्रीमद्भागवत द्वारा पहले से आकाश तथा विभिन्न ग्रहों के विषय में ज्ञात था। शुकदेव गोस्वामी ने ग्रहों की स्थिति के सम्बन्ध में जो व्याख्या की है उससे यही सूचित होता है कि उनसे भी पहले अत्यन्त दीर्घकाल से तत्सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त था। वैदिक काल के ऋषियों को विभिन्न लोकों की स्थिति अज्ञात न थी।

तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्त सिन्धव उपक्लृप्ता यत एतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन् खलु सूचित एतदेवाखिलमहं मानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञासामि ॥ २ ॥

तत्र अपि=उस भू-मण्डल में; **प्रियव्रत-रथ-चरण-परिखातैः**=सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करते समय प्रियव्रत महाराज के रथ के पहियों से निर्मित गड्ढों के द्वारा; **सप्तभिः**=सात; **सप्त**=सात; **सिन्धवः**=समुद्र; **उपक्लृप्ताः**=प्रभूत; **यतः**=जिसके कारण; **एतस्याः**=इस भूमण्डल का; **सप्त-द्वीप**=सातों द्वीपों का; **विशेष-विकल्पः**=संरचना शैली; **त्वया**=आपके द्वारा; **भगवन्**=हे महामुनि; **खलु**=निश्चय ही; **सूचितः**=वर्णित; **एतत**=यह; **एव**=निस्सन्देह; **अखिलम्**=सम्पूर्ण प्रजा; **अहम्**=मैं; **मानतः**=माप की दृष्टि से; **लक्षणतः**=(तथा) लक्षणों से; **च**=भी; **सर्वम्**=प्रत्येक वस्तु; **विजिज्ञासामि**=जानने की इच्छा करता हूँ।

अनुवाद

हे भगवन्! महाराज प्रियव्रत के रथ के चक्रायमाण पहियों से सात गड्ढे बने, जिससे सात समुद्रों की उत्पत्ति हुई। इन सात समुद्रों के ही कारण भूमण्डल सात द्वीपों में विभक्त है। आपने इनकी माप, नाम तथा विशिष्टताओं का अत्यन्त सामान्य वर्णन मात्र किया है। मुझे विस्तार से इनके सम्बन्ध में जानने की इच्छा है। कृपया मेरी कामना पूर्ण करें।

भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद् गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥ ३ ॥

भगवतः=श्रीभगवान्; **गुण-मये**=त्रिगुण युक्त वाह्यस्वरूपों में; **स्थूल-रूपे**=स्थूल रूप; **आवेशितं**=प्रविष्ट; **मनः**=मन; **हि**=निश्चित रूप से; **अगुणे**=दिव्य, इन्द्रियातीत; **अपि**=यद्यपि; **सूक्ष्मतमे**=हृद्देश में अपने लघुतर रूप में परमात्मा; **आत्म-ज्योतिषि**=जो ब्रह्म तेज से पूर्ण है; **परे**=परम; **ब्रह्मणि**=आत्मस्वरूप; **भगवति**=श्रीभगवान्; **वासुदेव-आख्ये**=भगवान् वासुदेव के नाम से विख्यात; **क्षमम्**=उपयुक्त; **आवेशितुम्**=आत्मसात्; **तत्**=वह; **उ ह**=निस्सन्देह; **एतत**=यह;

गुरो=हे गुरुदेव; **अर्हसि अनुवर्णयितुम्**=कृपया विस्तारपूर्वक कहें; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

जब मन प्रकृति के गुणों से निर्मित श्रीभगवान् के वाह्यरूप—स्थूल विश्व रूप पर स्थिर हो जाता है तो उसे विशुद्ध सत् की स्थिति प्राप्त होती है। उस दिव्य स्थिति में ही श्रीभगवान् वासुदेव को जो अपने सूक्ष्मरूप में स्वत: प्रकाशित और गुणातीत हैं, जाना जा सकता है। हे प्रभो! विस्तार से वर्णन करें कि वह रूप जो सारे विश्व में व्याप्त है किस प्रकार देखा जाता है।

तात्पर्य

महाराज परीक्षित् को उनके गुरु शुकदेव गोस्वामी ने पहले ही यह उपदेश दे रखा था कि वह श्रीभगवान् के विराट् रूप का मनन करे, अत: उन्होंने गुरु के उपदेश का पालन करते हुए उसी रूप का चिन्तन किया। विराट् रूप निश्चय ही सांसारिक है, किन्तु प्रत्येक वस्तु श्रीभगवान् का प्रकाश (विस्तार) है, अत: कुछ भी सांसारिक नहीं है। फलत: महाराज परीक्षित् का मन आत्मचेतना से संतृप्त था। श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है—

प्रापंचिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुन:।
मुमुक्षुभि: परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥

प्रत्येक वस्तु, यहाँ तक कि भौतिक वस्तु भी श्रीभगवान् से सम्बन्धित है, फलत: प्रत्येक वस्तु को श्रीभगवान् की सेवा में समर्पित कर देना चाहिए। श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है—

हरि-सेवाय याहा हय अनुकूल।
विषय बलिया ताहार त्यागे हय भूल॥

"मनुष्य को चाहिए कि श्रीभगवान् से सम्बद्ध किसी भी वस्तु को यह सोचकर न त्याग दे कि यह भौतिक है अथवा इन्द्रियसुख के हेतु है।" यहाँ तक कि शुद्ध हो जाने पर इन्द्रियाँ भी चिन्मय हो जाती हैं। जब महाराज परीक्षित् श्रीभगवान् के विराट रूप का चिन्तन कर रहे थे तो उनका मन निश्चित रूप से दिव्य धरातल पर था। अत: वे ब्रह्माण्ड के विषय में विस्तृत जानकारी की इच्छा न रखने पर भी श्रीभगवान् की पृष्ठभूमि में उसका चिन्तन कर रहे थे। इसीलिए ऐसा भौगोलिक ज्ञान भौतिक न होकर दिव्य था। श्रीमद्भागवतम् में अन्यत्र (१.५.२०) नारद मुनि कहते हैं, **इदं हि विश्वं भगवान् इवेतर:**—यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही श्रीभगवान् है, भले ही यह उनसे

भिन्न प्रतीत हो। अतः भले ही परीक्षित् महाराज को इस ब्रह्माण्ड के भौगोलिक ज्ञान की आवश्यकता न रही हो, किन्तु वह ज्ञान चिन्मय तथा दिव्य था, क्योंकि वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को श्रीभगवान् की शक्ति का विस्तार मान रहे थे।

हम भी अपने उपदेश कार्य के लिए प्रचुर धन एवं सम्पत्ति का उपयोग करते हैं और अनेकानेक पुस्तकों का क्रय-विक्रय करते हैं। किन्तु चूँकि ये व्यापार कृष्णभावनामृत आन्दोलन से सम्बन्धित होते हैं, अतः इन्हें कभी भी भौतिक नहीं मानना चाहिए। यदि कोई ऐसे प्रबन्ध में व्यस्त रहता है तो इसका यह अर्थ नहीं होगा कि वह कृष्णभक्ति से परे है। यदि कोई प्रतिदिन नियमित रूप से सोलह माला महामन्त्र का जप करता है तो श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचार के लिए भौतिक जगत् से उसका सम्पर्क श्रीकृष्णभावना के आध्यात्मिक अनुशीलन से किसी प्रकार भिन्न नहीं कहा जा सकता।

न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वाधिगन्तुमलं विबुधायुषापि पुरषस्तस्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूप मानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥ ४ ॥

ऋषि उवाच=श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; **न**=नहीं; **वै**=निस्सन्देह; **महाराज**=हे महान् राजा; **भगवतः**=श्रीभगवान् का; **माया-गुण-विभूतेः**=माया के गुणों का रूपान्तर; **काष्ठम्**=अन्त, इति; **मनसा**=मनसे; **वचसा**=वचन से; **वा**=अथवा; **अधिगन्तुम्**=भलीभाँति समझने के लिए; **अलम्**=समर्थ; **विबुधा-आयुषा**=ब्रह्मा के समान आयु वाला; **अपि**=भी; **पुरुषः**=व्यक्ति; **तस्मात्**=अतः; **प्राधान्येन**=प्रमुख स्थानों के सामान्य विवरण से; **एव**=निश्चित रूप से; **भू-गोलक-विशेषम्**=भूलोक का विशिष्ट वर्णन; **नाम-रूप**=नाम तथा स्वरूप; **मान**=परिमाण, माप; **लक्षणतः**=लक्षणों के अनुसार; **व्याख्यास्यामः**=व्याख्या करने का प्रयत्न करूँगा।

अनुवाद

ऋषिश्रेष्ठ शुकदेव गोस्वामी बोले, हे राजन्! श्रीभगवान् की माया के विस्तार की कोई सीमा नहीं है। यह भौतिक जगत् सत्त्व, रज तथा तम् इन तीन गुणों का रूपान्तर है फिर भी ब्रह्मा के समान दीर्घ आयु पाकर भी इसकी व्याख्या कर पाना सम्भव नहीं है। इस भौतिक जगत् में कोई भी पूर्ण नहीं और अपूर्ण मनुष्य सतत चिन्तन के बाद भी इस भौतिक ब्रह्माण्ड का वर्णन नहीं कर सका। तो भी, हे राजन्! मैं प्रमुख भूखण्डों यथा भूगोलक (भूलोक) की व्याख्या उनके नामों, रूपों, मापों तथा विविध लक्षणों सहित करने का प्रयत्न करूँगा।

तात्पर्य

यह भौतिक जगत् श्रीभगवान् की सृष्टि का चतुर्थांश ही है, किन्तु है अनन्त और किसी के लिए भी उसका वर्णन कर पाना या उसे जान पाना दुष्कर है, भले ही उसे ब्रह्मा जैसी लाखों वर्ष की दीर्घायु क्यों न प्राप्त हो जाय। आधुनिक वैज्ञानिक जन तथा ज्योतिर्विद ब्रह्माण्ड की स्थिति और अन्तरिक्ष की विशालता की व्याख्या करने का प्रयत्न कर रहे हैं और उनमें से कुछ का विश्वास है कि प्रकाशमान नक्षत्र विभिन्न सूर्य हैं। किन्तु भगवद्गीता से हमें यह पता चलता है कि ये समस्त नक्षत्र चन्द्रमा के तुल्य हैं, क्योंकि ये सूर्य प्रकाश को परावर्तित करते हैं। ये स्वयं प्रकाशित नहीं हैं। भूलोक वाह्य अन्तरिक्ष का वह भाग है जिसमें से होकर सूर्य प्रकाश तथा उष्मा गति करते हैं। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह ब्रह्माण्ड जहाँ तक हमें दिखाई देता है अन्तरिक्ष में फैला है और प्रकाशयुक्त नक्षत्रों तक परिवृत है। श्रील शुकदेव गोस्वामी यह स्वीकार करते हैं कि इस विस्तृत ब्रह्माण्ड का विस्तृत वर्णन कर पाना असम्भव है, किन्तु तो भी वे राजा परीक्षित् को वह सब ज्ञान प्रदान करना चाह रहे थे जो उन्हें परम्परा से प्राप्त हुआ था। अतः हम निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि यदि कोई श्रीभगवान् के भौतिक विस्तार को नहीं समझ पाता तो वह चिन्मय जगत् की विराटता का अनुमान नहीं लगा सकता। ब्रह्म-संहिता (५.३३) इसकी पुष्टि करती है—

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम्
आद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च।

श्रीभगवान् गोविन्द के विस्तार की सीमाओं का अनुमान लगा पाना किसी के लिए भी असम्भव है, भले ही वह ब्रह्मा के समान पूर्ण मानव क्यों न हो, फिर भला तुच्छ वैज्ञानिक की क्या बिसात, जिसकी इन्द्रियाँ तथा उपकरण अपूर्ण हैं और जो इस एक ब्रह्माण्ड के विषय में भी पूरी जानकारी नहीं दे पाता। अतः हमें शुकदेव गोस्वामी जैसे पंडितों द्वारा कथित वैदिक स्रोतों से उपलब्ध सूचना से सन्तुष्ट होना चाहिए।

यो वायं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजन विशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥ ५ ॥

यः=जो; **वा**=अथवा; **अयम्**=यह; **द्वीपः**=द्वीप; **कुवलय**=भूलोक; **कमल-कोश**=कमल गुच्छ; **अभ्यन्तर**=भीतरी; **कोशः**=कोश; **नियुत-योजन-विशालः**=दस लाख योजन (अस्सी लाख मील) चौड़ा; **समवर्तुलः**=समान रूप से गोल अथवा समान लम्बाई तथा चौड़ाई वाला; **यथा**=सदृश; **पुष्कर-पत्रं**=कमल का पत्ता।

अनुवाद

भूमण्डल नाम से विख्यात ग्रह कमल पुष्प के अनुरूप है और इसके सातों द्वीप पुष्प-कोश के सदृश हैं। इस कोश के मध्य में स्थित जम्बूद्वीप की लम्बाई तथा चौड़ाई दस लाख योजन है। जम्बूद्वीप कमल-पत्र के समान गोल है।

यस्मिन्नव वर्षाणि नवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादागिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥ ६ ॥

यस्मिन्=उस जम्बूद्वीप में; **नव**=नौ (संख्या); **वर्षाणि**=भूखण्ड अथवा वर्ष; **नव-योजन-सहस्र**=नौ हजार योजन अर्थात् ७२,००० मील लम्बा; **आयामानि**=माप वाला, आयाम का; **अष्टभिः**=आठ; **मर्यादा**=सीमा सूचक; **गिरिभिः**=पर्वतों के द्वारा; **सुविभक्तानि**=भली-भाँति विभाजित; **भवन्ति**=हैं।

अनुवाद

जम्बूद्वीप में नौ वर्ष (खण्ड) हैं जिनमें से प्रत्येक की लम्बाई ९,००० योजन (७२,००० मील) है। इन खण्डों की सीमा बताने वाले पर्वत हैं जो उन्हें भलीभाँति विलग करते हैं।

तात्पर्य

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने वायु पुराण से निम्नलिखित उद्धरण दिया है, जिसमें हिमालय पर्वत से प्रारम्भ करके विभिन्न पर्वतों की स्थितियाँ दी गई हैं—

धनुर्वत संस्थिते ज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे। दीर्घाणि तत्र चत्वारि चतुरस्रम इलावृतम् इति दक्षिणोत्तरे भारतोत्तरकुरुवर्षे चत्वारि किंपुरुषहरिवर्षरम्यक-हिरण्मयानि वर्षाणि नीलनिषधयोस तिरश्चिनीभूय समुद्रप्रविष्टयोः संलग्नत्वम् अंगीकृत्य भद्राश्वकेतुमालयोर अपि धनुर्राकृतित्वम्। अतस् तयोर् दैर्घ्यंत एव मध्ये संकुचितत्वेन नवसहस्रायामत्वम्। इलावृतस्य तु मेरोः सकाशात् चतुर्दिक्षु नवसहस्रायामत्वं संभवेत् वस्तुतस् त्व इलावृतभद्राश्वकेतुमालानां चतुस्त्रिंशत् सहस्रायामत्वं ज्ञेयम्।

एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत् सहस्र योजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावतान्तर्भूम्यां प्रविष्टः ॥ ७ ॥

एषाम् = जम्बूद्वीप के इन समस्त खंडों के; **मध्ये** = मध्य में; **इलावृतम्-नाम** = इलावृत वर्ष नामक; **अभ्यन्तर-वर्षम** = आन्तरिक खण्ड; **यस्य** = जिसके; **नाभ्याम्** = नाभि में; **अवस्थितः** = स्थित; **सर्वतः** = पूरी तरह, पूर्णरूपेण; **सौवर्णः** = स्वर्ण का बना हुआ; **कुल-गिरि-राजः** = प्रसिद्ध पर्वतों में सर्वश्रेष्ठ; **मेरुः** = मेरु पर्वत; **द्वीप-आयाम-समुन्नाहः** = जिसकी ऊँचाई जम्बूद्वीप की चौड़ाई के समान है; **कर्णिका-भूतः** = आवरण के रूप में विद्यमान; **कुवलय** = इस लोक के; **कमलस्य** = कमल पुष्प के सदृश; **मूर्धनि** = शीर्ष पर; **द्वा-त्रिंशत्** = बत्तीस; **सहस्र** = हजार; **योजन** = योजन, (प्रत्येक ८ मील का); **विततः** = विस्तृत; **मूले** = आधार पर, मूल भाग में; **षोडश-सहस्रम्** = सोलह हजार योजन; **तावत्** = तक; **आन्तः-भूम्याम्** = पृथ्वी के भीतर; **प्रविष्टः** = धँसा हुआ ।

अनुवाद

इन खण्डों (वर्षों) में से इलावृत नाम का एक वर्ष है जो कमल-कोश के मध्य में स्थित है । इलावृत वर्ष में ही सुवर्ण का बना हुआ सुमेरु पर्वत है । यह कमल जैसे भूमण्डल के वाह्य-आवरण के तरह है । इस पर्वत की चौड़ाई जम्बूद्वीप की चौड़ाई के तुल्य अर्थात् एक लाख योजन या आठ लाख मील है; जिसमें से १६,००० योजन (१,२८,००० मील) पृथ्वी के भीतर है जिससे पृथ्वी के ऊपर पर्वत की ऊँचाई केवल ८४,००० योजन (६,७२,००० मील) ही है। शीर्ष पर इस पर्वत की चौड़ाई ३२,००० योजन (२,५६,००० मील) और पाद भाग पर १६,००० योजन है ।

उत्तरोत्तरणेलावृतं नीलः श्वेतः श‍ृङ्गवानिति त्रयो रम्यकहिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयो द्विसहस्रपृथव एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति ॥ ८ ॥

उत्तर-उत्तरेण इलावृतम् = इलावृत वर्ष के सुदूर उत्तर में; **नीलः** = नील; **श्वेतः** = श्वेत; **शृंगवान्** = शृंगवान्; **इति** = इस प्रकार; **त्रयः** = तीन पर्वत; **रम्यक** = रम्यक; **हिरण्मय** = हिरण्मय; **कुरूणाम्** = कुरु खण्ड के; **वर्षाणाम्** = वर्षों में; **मर्यादा-गिरयः** = सीमा बताने वाले पर्वत; **प्राक्-आयताः** = पूर्व दिशा में फैले; **उभयतः** = पूर्व तथा पश्चिम की ओर; **क्षारोद** = लवण सागर; **अवधयः** = तक फैले हुए; **द्वि-सहस्र-पृथवः** = जो दो हजार चौड़े हैं; **एक-एकशः** = एक के बाद एक, क्रमशः; **पूर्वस्मात्** = प्रथम की अपेक्षा; **पूर्वस्मात्** = प्रथम की अपेक्षा; **उत्तरः** = और भी उत्तर; **उत्तरः** = और भी उत्तर; **दश-अंश-अधिक-अंशेन** = पहले वाले का दशमांश; **दैर्घ्यः** = लम्बाई में; **एव** = निस्सन्देह; **ह्रसन्ति** = घटते (छोटे होते) जाते हैं ।

अनुवाद

इलावृत-वर्ष के सुदूर उत्तर में क्रमशः नील, श्वेत तथा शृंगवान् नामक तीन पर्वत हैं। ये तीनों रम्यक, हिरण्मय तथा कुरु इन तीन वर्षों की सीमा रेखा बनाने वाले हैं और एक दूसरे से पृथक करने वाले हैं। इन पर्वतों की चौड़ाई २,००० योजन (१६,००० मील) है। लम्बाई में ये पूर्व से पश्चिम की ओर लवण सागर के तट तक विस्तृत हैं। दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ने पर प्रत्येक पर्वत की लम्बाई अपने पूर्ववर्ती पर्वत की दशमांश होती जाती है, किन्तु इन सबकी ऊँचाई एक सी रहती है।

तात्पर्य

इस सम्बन्ध में मध्वाचार्य ने ब्रह्माण्ड पुराण के निम्न श्लोक उद्धृत किये हैं—

यथा भागवते तुक्तं भौवनं कोश-लक्षणं।
तस्याविरोधतो योज्यम् अन्यग्रंथान्तरे स्थितम्॥
मण्डोदे पुराणं चैव व्यत्यासं क्षीर सागरे।
राहुसोमरवीणां च मण्डलाद्विगुणोक्तिताम्॥
विनैव सर्वं उन्नेयं योजनाभेदतोऽत्र तु।

इन श्लोकों से ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य तथा चन्द्र के अतिरिक्त एक अन्य अदृश्य ग्रह भी है जिसे राहु कहते हैं। राहु के गतिशील होने से सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण लगते हैं। हमारा सुझाव है कि चन्द्रमा तक पहुँचने के लिए जो यात्राएँ की जा रही हैं वे भूल से राहु तक प्रेरित हैं।

एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा नीलादयो-ऽयुतयोजनोत्सेधाहरिवर्षकिम्पुरुषभारतानां यथासंख्यम् ॥ ९ ॥

एवम्=इस प्रकार; **दक्षिणेन**=दक्षिण दिशा में; **इलावृतम्**=इलावृत वर्ष के; **निषधः हेम-कूटः हिमालयः**=निषध, हेमकूट तथा हिमालय ये तीन पर्वत; **इति**= इस प्रकार; **प्राक्-आयताः**=पूर्व दिशा तक विस्तारित; **यथा**=जिस प्रकार; **नील-आदयः**=नील इत्यादि पर्वत; **अयुत-योजन-उत्सेधाः**=दस हजार योजन ऊँचा; **हरि-वर्ष**=हरिवर्ष नामक खण्ड; **किंपुरुष**=किंपुरुष नामक खण्ड; **भारतानाम्**= भारतवर्ष नामक खण्ड; **यथा-संख्यम्**=संख्यानुसार, क्रमशः।

अनुवाद

इसी प्रकार, इलावृत-वर्ष के दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम को फैले हुए तीन

विशाल पर्वत हैं (उत्तर से दक्षिण को) जिनके नाम हैं—निषध, हेमकूट तथा हिमालय। इनमें से प्रत्येक १०,००० योजन (८०,००० मील) ऊँचा है। ये हरिवर्ष, किंपुरुष-वर्ष तथा भारतवर्ष नामक तीन वर्षों की सीमाओं के सूचक हैं।

तथैवेलावृतमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गन्धमादनावानीलनिषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥१०॥

तथा एव=उसके ही समान; **इलावृतम् अपरेण**=इलावृत वर्ष के पश्चिम में; **पूर्वेण च**=और पूर्व दिशा में भी; **माल्यवद्-गन्ध-मादनौ**=पश्चिम में माल्यवान् तथा पूर्व में गन्धमादन पर्वत सीमा बनाने वाले हैं; **आ-नील-निषध-आयतौ**=उत्तर दिशा में नील पर्वत तक और दक्षिण दिशा में निषध पर्वत तक; **द्वि-सहस्रं**=दो हजार योजन; **पप्रथतुः**=फैले हुए हैं; **केतुमाल-भद्राश्वयोः**=केतुभाल तथा भद्राश्व इन दो वर्षों की; **सीमानं**=सीमा; **विदधाते**=स्थापना करते हैं।

अनुवाद

इसी प्रकार से इलावृत-वर्ष के पूर्व तथा पश्चिम क्रमशः माल्यवान् और गन्धमादन नामक दो विशाल पर्वत हैं। ये दोनों २,००० योजन (१६,००० मील) ऊँचे हैं और उत्तर में नीलपर्वत तक तथा दक्षिण में निषध तक फैले हैं। ये इलावृत-वर्ष की और केतुभाल तथा भद्राश्व नामक वर्षों के भी सीमाओं के सूचक हैं।

तात्पर्य

इस पृथ्वी ग्रह पर ही न जाने कितने पर्वत हैं जिनकी ठीक से माप नहीं हो पाई है। मेक्सिको से काराकास के मध्य पर्वतोय क्षेत्र के ऊपर से यात्रा करते हुए हमने इतने पर्वत देखे कि शायद ही उन सबों की ठीक-ठीक ऊँचाई, लम्बाई तथा चौड़ाई नापी गई हो। अतः जैसा श्रीशुकदेव गोस्वामी ने श्रीमद्भागवतम् में इंगित किया है, हमें मात्र अपनी गणना के द्वारा बड़े-बड़े पर्वतों को जानने का प्रयास नहीं करना चाहिए। उन्होंने यह पहले ही कह दिया है कि ब्रह्मा जैसी दीर्घायु पाकर भी इनकी गणना कर पाना सम्भव नहीं है। हमें शुकदेव गोस्वामी जैसे प्रामाणिक विद्वानों के कथन से संतुष्ट हो जाना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि श्रीभगवान् की माया से यह सारा ब्रह्माण्ड किस प्रकार सम्भव हो सका है। यहाँ पर जो प्रमाण दिये गये हैं—यथा १,००० या १०,००० योजन उन्हें सही मानना चाहिए, क्योंकि वे श्रीशुकदेव गोस्वामी द्वारा दिए गये हैं। हमारे प्रयोगात्मक ज्ञान से श्रीमद्भागवतम् के कथनों की न तो पुष्टि हो सकती है न अपुष्टि। हमें विद्वानों के मुख से ऐसे कथनों का श्रवण मात्र करना चाहिए। यदि हम श्रीभगवान् की असीम शक्ति का अनुमान लगा सकें तो इससे हम लाभान्वित ही होंगे।

मन्दरो मेरुमन्दरः सुपार्श्वः कुमुद इत्ययुतयोजनविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भगिरय उपक्लृप्ताः ॥११॥

मन्दरः = मन्दर नामक पर्वत; **मेरु-मन्दरः** = मेरुमन्दर पर्वत; **सुपार्श्वः** = सुपार्श्व पर्वत; **कुमुदः** = कुमुद पर्वत; **इति** = इस प्रकार; **अयुत-योजन-विस्तार-उन्नाहाः** = जिनकी ऊँचाई तथा चौड़ाई दस हजार योजन है; **मेरोः** = सुमेरु की; **चतुः-दिशं** = चारों दिशाएँ; **अवष्टम्भ-गिरयः** = पर्वत जो सुमेरु की मेखलाओं के सदृश हैं; **उपक्लृप्ताः** = स्थित हैं।

अनुवाद

सुमेरु पर्वत के चारों दिशाओं में मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व तथा कुमुद नामक चार पर्वत हैं जो इसकी मेखलाओं के सदृश हैं। ये पर्वत १०,००० योजन (८०, ००० मील) ऊँचे तथा इतने ही चौड़े हैं।

चतुर्ष्वेतेषु चूतजम्बूकदम्बन्यग्रोधाश्चत्वारः पादप प्रवरा पर्वतकेतव इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद् विटपविततयः शतयोजनपरिणाहाः ॥१२॥

चतुर्षु = चारों पर; **एतेषु** = मन्दर इत्यादि इन चारों पर; **चूत-जम्बू-कदम्ब** = आम, जामुन तथा कदम्ब जैसे वृक्ष; **न्यग्रोधाः** = (तथा) वट वृक्ष; **चत्वारः** = चार प्रकार के; **पादप-प्रवराः** = वृक्षों में श्रेष्ठ; **पर्वत-केतवः** = पर्वतों पर ध्वजाएँ; **इव** = सदृश; **अधि** = ऊपर; **सहस्र-योजन-उन्नाहाः** = एक हजार योजन ऊँचा; **तावत्** = इतना भी; **विटप-विततयः** = शाखाओं की लम्बाई; **शत-योजन** = एक सौ योजन; **परिणाहाः** = चौड़ी।

अनुवाद

इन चारों पर्वतों की चोटियों पर ध्वजाओं के रूप में आम्र, जामुन, कदम्ब तथा वट वृक्ष हैं जो श्रेष्ठ वृक्ष होते हैं। इन वृक्षों का घेरा १०० योजन (८०० मील) तथा ऊँचाई १,१०० योजन (८,८०० मील) है। इनकी शाखाएँ १,१०० योजन की त्रिज्या में फैली हैं।

ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेवगणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ॥ १३ ॥ देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति ॥१४॥

ह्रदाः=सरोवर; **चत्वारः**=चार; **पयः**=दुग्ध; **मधु**=शहद; **इक्षु-रस**= गन्ने का रस; **मृष्ट-जलाः**=विशुद्ध जल से पूरित; **यत्**= जिसका; **उपस्पर्शिनः**=तरल पदार्थों का प्रयोग करने वाले; **उपदेवगणाः**=देवतागण; **योग-ऐश्वर्याणि**=योग की समस्त सिद्धियाँ; **स्वाभाविकानि**=सरलता से; **भरतर्षभ**=हे भरतवंश में श्रेष्ठ; **धारयन्ति**=धारण करते हैं; **देव-उद्यानानि**=स्वर्गिक उद्यान; **च**=भी; **भवन्ति**=हैं; **चत्वारि**=चार; **नन्दम्**=नन्दन वन; **चैत्र-रथम्**=चैत्ररथ उद्यान; **वैभ्राजकम्**=वैभ्राजक उद्यान; **सर्वतः-भद्रम्**=सर्वतोभद्र उद्यान; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

भारतवर्ष में श्रेष्ठ हे महाराज परीक्षित्! इन चारों पर्वतों के मध्य में चार विशाल सरोवर हैं। इनमें से पहले का जल दुग्ध की तरह, दूसरे का मधु के सदृश और तीसरे का इक्षुरस की भाँति स्वादिष्ट है। चौथा सरोवर विशुद्ध जल से परिपूर्ण है। इन चारों सरोवरों की सुविधा का उपभोग सिद्ध, चारण तथा गन्धर्व जैसे अलौकिक प्राणी, जिन्हें देवता भी कहा जाता है, करते हैं। फलस्वरूप उन्हें योग की सहज सिद्धियाँ—यथा, सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम और दीर्घतर से दीर्घतम रूप धारण करने की शक्तियाँ प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त चार देव उद्यान भी हैं, जिनके नाम हैं—नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक तथा सर्वतोभद्र।

येष्वमर परिवृढाः सह सुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विहरन्ति ॥१५॥

येषु=जिनमें; **अमर-परिवृढाः**=सर्वश्रेष्ठ देवगण; **सह**=सहित; **सुर-ललना**=समस्त देवताओं की पत्नियों के; **ललाम**=आभूषण सदृश उन स्त्रियों के; **यूथ-पतयः**=पतिगण; **उपदेव-गणैः**=उपदेवों (गन्धर्वों) के द्वारा; **उपगीयमान**=जिनकी स्तुति हो रही है; **महिमानः**=जिनका यश; **किल**=निश्चय ही; **विहरन्ति**=विहार करते हैं, क्रीड़ा करते हैं।

अनुवाद

इन उद्यानों में श्रेष्ठतम देवगण अपनी-अपनी सुन्दर पत्नियों के सहित एकत्र होकर आनन्द लेते हैं और गन्धर्वजन उनके यशों का गान करते हैं।

मन्दरोत्सङ्ग एकादशशतयोजनोत्तुङ्गदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति ॥१६॥

मन्दर-उत्संगे=मन्दर पर्वत के निचले ढाल पर; **एकादश-शत-योजन-उत्तुंग**=

१,१०० योजन ऊँचा; **देवचूत-शिरसः** = देवचूत नामक आम्रवृक्ष की चोटी से; **गिरि-शिखर-स्थूलानि** = जो पर्वतश्रृंगों के समान स्थूल हैं; **फलानि** = फल; **अमृत-कल्पानि** = अमृत की भाँति मधुर; **पतन्ति** = गिरते हैं।

अनुवाद

मन्दर पर्वत के निचले ढाल पर देवचूत नामक एक आम्रवृक्ष है, जिसकी ऊँचाई १,१०० योजन है। इस वृक्ष की चोटी से पर्वतश्रृंग जितने बड़े तथा अमृततुल्य मधुर फल गिरते रहते हैं। जिनका उपभोग दिव्य लोक के निवासी करते हैं।

तात्पर्य

ऋषियों ने वायु पुराण में भी इस वृक्ष का उल्लेख किया है—

अरत्नीनां शतान्यष्टावकषष्ट्यधिकानि च।
फलप्रमाणमाख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिरिति॥

तेषां विशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगन्धि बहुलारुणरसोदेनारुणोदा नाम नदी मन्दरगिरिशिखरान्निपतन्ती पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति॥१७॥

तेषाम् = सभी आम्रफलों के; **विशीर्यमाणानाम्** = चोटी से गिरकर फट जाने के कारण; **अति-मधुर** = अत्यन्त मीठी; **सुरभि** = महकने वाली; **सुगन्धि** = सुगन्धयुक्त; **बहुल** = प्रभूत मात्रा; **अरुण-रस-उदेन** = लाल-लाल रस के द्वारा; **अरुणोदा** = अरुणोदा; **नाम** = नामक; **नदी** = सरिता; **मन्दर-गिरि-शिखरात्** = मन्दर पर्वत के शिखर से; **निपतन्ती** = गिरती हुई; **पूर्वेण** = पूर्व दिशा में; **इलावृतम्** = इलावृत-वर्ष से होकर; **उपप्लावयति** = बहती है।

अनुवाद

इतनी ऊँचाई से गिरने के कारण वे सभी आम्रफल फट जाते हैं और उनका मधुर, सुगन्धित रस बाहर निकल आता है। यह रस अन्य सुगन्धियों से मिलकर अत्यधिक सुरभित हो जाता है। यही रस पर्वत से झरनों में जाता है और अरुणोदा नामक नदी का रूप धारण कर लेता है जो इलावृत की पूर्व दिशा से होकर बहती है।

यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्शसुगन्धवातो दशयोजनं समन्तादनुवासयति॥१८॥

यत्=जिसका; **उपजोषणात्**=सुगन्धित जल का प्रयोग करने से; **भवान्याः**= भगवान् शिव की पत्नी भवानी का; **अनुचरीणाम्**=चेरियों का; **पुण्य-जन-वधूनाम्** =जो परम पवित्र यक्षों की पत्नियाँ हैं; **अवयव**=शरीर के अंगों के; **स्पर्श**=स्पर्श से; **सुगन्ध-वातः**=सुरभित वायु; **दश-योजनम्**=दस योजन (अस्सी मील) तक; **समन्तात्**=चारों ओर; **अनुवासयति**=सुवासित करती है।

अनुवाद

यक्षों की पवित्र पत्नियाँ भगवान् शंकर की अर्द्धांगिनी भवानी की चेरियाँ हैं। अरुणोदा नदी के जल का पान करने के कारण उनके शरीर सुगन्धित हो जाते हैं। वायु उनके शरीर का स्पर्श करके उस सुगन्धि से अस्सी मील तक चारों ओर के समस्त वायुमण्डल को सुरभित कर देती है।

एवं जम्बूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणामिभकायनिभानां रसेन जम्बू नाम नदी मेरुमन्दरशिखरादयुतयोजनादवनितले निपतन्ती दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्यन्दयति ॥१९॥

एवम्=इसी प्रकार; **जम्बू-फलानाम्**=जामुन के फलों का; **अति-उच्च-निपात** =अत्यधिक ऊँचाई से गिरने के कारण; **विशीर्णानाम्**=खण्ड-खण्ड हो जाने से; **अनस्थि-प्रायाणाम्**=अत्यन्त लघु बीज होने के कारण; **इभ-काय-निभानाम्**=और जो हाथी के शरीर के सदृश विशाल हैं; **रसेन**=रस के द्वारा; **जम्बू नाम नदी**=जम्बू नामक नदी; **मेरु-मन्दर-शिखरात्**=मेरु मन्दर पर्वत के शिखर से; **अयुत-योजनात्** =दस हजार योजन ऊँची; **अवनि-तले**=पृथ्वी तल पर; **निपतन्ती**=गिरती हुई; **दक्षिणेन्**=दक्षिण दिशा में; **आत्मानाम्**=स्वयमेव; **यावत्**=सम्पूर्ण; **इलावृतम्**= इलावृतवर्ष; **उपस्यन्दयति**=से होकर बहती है।

अनुवाद

इसी प्रकार गूदे से पूर्ण और अत्यन्त छोटी गुठली वाले जामुन के फल अत्यधिक ऊँचाई से गिरकर खण्ड-खण्ड हो जाते हैं। ये फल हाथी जैसे आकार वाले होते हैं और इनका रस बहकर जम्बूनदी का रूप धारण कर लेता है। यह नदी इलावृत के दक्षिण में मेरुमन्दर की चोटी से दस हजार योजन नीचे गिरकर समस्त इलावृत भूखण्ड को रस से आप्लावित करती है।

तात्पर्य

हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि हाथी जैसे आकार वाले फल, जिसमें गुठली

नाममात्र की हो, कितना अधिक रस होता होगा। अतः स्वाभाविक है कि जामुन के फलों के फटने से रस पहले झरनों के रूप में बहता है और फिर इलावृत के पूरे प्रदेश को आप्लावित कर देता है। इस रस से प्रभूत मात्रा में स्वर्ण उत्पन्न होता है, जैसा कि अगले श्लोक में कहा गया है।

तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदामरलोकाभरणं जाम्बूनदं नाम सुवर्णं भवति ॥२०॥ यदु ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयन्ति ॥२१॥

तावत्=सर्वथा; **उभयोः अपि**=दोनों का; **रोधसोः**=तटों का; **या**=जो; **मृत्तिका**=कीचड़; **तत्-रसेन**=नदी में बहने वाले जम्बू फलों के रस से; **अनुविध्यमाना**=संपृक्त होकर; **वायु-अर्क-संयोग-विपाकेन**=वायु तथा प्रकाश की रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप; **सदा**=सदैव; **अमर-लोक-आभरणम्**=जो स्वर्गलोक में निवास करने वाले देवताओं के आभूषणों के लिए प्रयुक्त होता है; **जाम्बू-नदम्-नाम**=जाम्बू नद नामक; **सुवर्णम्**=स्वर्ण; **भवति**=बन जाता है; **यत्**=जो; **उ ह वाव**=निस्सन्देह; **विबुध-आदयः**=देवता आदि; **सह**=साथ; **युवतिभिः**=उनकी युवा पत्नियाँ; **मुकुट**=मुकुट; **कटक**=चूड़ियाँ; **कटि-सूत्र**=करधनी; **आदि**=इत्यादि; **आभरण**=सभी प्रकार के आभूषणों के; **रूपेण**=रूप में; **खलु**=निश्चय ही; **धारयन्ति**=धारण करती हैं।

अनुवाद

जम्बू नदी के दोनों तटों का कीचड़ जामुनफल के बहते हुए रस से सिक्त होकर और फिर वायु तथा सूर्य प्रकाश के कारण सूख कर जाम्बू-नद नामक स्वर्ण की प्रचुर मात्रा उत्पन्न करता है। स्वर्ग के निवासी इस स्वर्ण का उपयोग विविध आभूषणों के लिए करते हैं। फलतः स्वर्गलोक के सभी निवासी एवं उनकी तरुण पत्नियाँ स्वर्ण के मुकुटों, चूड़ियों तथा करधनियों से आभूषित रहती हैं। इस प्रकार वे जीवन का आनन्द लेते हैं।

तात्पर्य

श्रीभगवान् की व्यवस्था के फलस्वरूप कुछ ग्रहों की नदियों के तटों पर स्वर्ण उत्पन्न होता है। इस पृथ्वी के बेचारे निवासी अपने अल्पज्ञान के कारण "तथाकथित भगवान्" के वशीभूत हो जाते हैं जो केवल मुट्ठी भर ही स्वर्ण बना पाते हैं। किन्तु ऐसा माना जाता है कि इस भौतिक जगत् के उच्चतर लोकों में, जम्बू नदी के तटों का कीचड़ जामुन के रस के साथ मिलकर, सूर्यप्रकाश एवं वायु की क्रिया के द्वारा प्रचुर मात्रा में स्वर्ण उत्पन्न करता है। इस प्रकार वहाँ के स्त्री-पुरुष विविध

स्वर्णाभूषणों से अलंकृत होकर अत्यन्त मनोहर लगते हैं। दुर्भाग्यवश, पृथ्वी पर सोने की इतनी कमी है कि सरकारें इसे अपने कोष में रखकर कागजी मुद्रा चलाती हैं। चूँकि यह मुद्रा स्वर्ण पर आश्रित नहीं रहती, इसलिए कागजी नोटों के रूप में वितरित धन व्यर्य होता है। तो भी सांसारिक प्राणी भौतिक उन्नति पर इतराते हैं। आज के युग में, कन्याएँ तथा स्त्रियाँ सोने के बजाय प्लास्टिक के आभूषण धारण करती हैं, सोने के पात्रों के बजाय प्लास्टिक के बने पात्र काम में लाये जाते हैं, किन्तु फिर भी मनुष्यों को अपनी सम्पत्ति पर अत्यधिक गर्व है। इसीलिए इस युग के मनुष्यों को **मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः** (भाग० १.१.१०) कहा गया है। तात्पर्य यह है कि वे श्रीभगवान् के ऐश्वर्य को न समझ पाने के कारण अत्यन्त मन्द एवं नीच हैं। उन्हें **सुमन्द मतयः** कहा गया है, क्योंकि वे इतने मूर्ख हैं कि मुट्ठी भर सोना बनाने वाले को ईश्वर मान बैठते हैं। पास में सोना न होने से वे अत्यन्त दरिद्र होते हैं, इसीलिए उन्हें अभागा माना जाता है।

कभी-कभी ये अभागे पुरुष उच्च स्थान प्राप्त करने के लिए स्वर्गलोक जाना चाहते हैं, जैसा कि इस श्लोक में कहा गया है, किन्तु भगवान् के शुद्ध भक्तों की रुचि ऐसे ऐश्वर्य के प्रति नहीं होती। वास्तव में कभी-कभी भक्तजन तो स्वर्ण के रंग की उपमा चमकीली सुनहली विष्ठा से देते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने भक्तों को स्वर्ण आभूषणों एवं अत्यन्त अलंकृत स्त्रियों के द्वारा आकृष्ट न होने का उपदेश दिया है। **न धनं न जनं न सुन्दरीम्**—भक्त को चाहिए कि वह न तो स्वर्ण से, न सुन्दर स्त्रियों से तथा न ही अनेक अनुगामियों के होने से आकृष्ट हो। अतः श्रीचैतन्य महाप्रभु ने गुप्त रूप से प्रार्थना की—**मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि**—"मेरे प्रभो, मुझे अपनी अहैतुकी भक्ति प्रदान करें। मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए।" भक्त इस भौतिक जगत् से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना कर सकता है। यही उसकी एकमात्र कामना है।

अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपंकजस्थितधूलीसदृशं विचिन्तय॥

विनीत भक्त भगवान् से यही प्रार्थना करता है, "कृपा करके अनेकानेक भौतिक ऐश्वर्यों से पूर्ण इस भौतिक जगत् से मुझे उबार कर अपने चरणारविन्द की शरण में रख लो।"

श्रीनरोत्तमदास ठाकुर प्रार्थना करते हैं—

हा हा प्रभु नन्दसुत, वृषभानुसुतायुत करुणा करह एइ बार।
नरोत्तमदास कय, ना ठेलिह रांगापाय, तोमा बिने के आछे आमार॥

"हे प्रभो, हे नन्द महाराज के पुत्र, आप मेरे समक्ष वृषभानु की पुत्री श्रीमती राधारानी सहित खड़े हैं। मुझे अपने चरण कमल की धूलि के रूप में स्वीकार करें। मुझे ठुकरावें नहीं, क्योंकि मेरा अन्य कोई आश्रय नहीं है।"

इसी प्रकार से प्रबोधानन्द सरस्वती बताते हैं कि स्वर्णमुकट तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत देवताओं की स्थिति आकाश कुसुम से अधिक नहीं है (**त्रिदशपुर आकाश-पुष्पायते**)। भक्त कभी भी ऐसे ऐश्वर्य से चमत्कृत नहीं होता। वह तो मात्र भगवान् के चरण कमल की धूलि बनने की आकांक्षा रखता है।

यस्तु महाकदम्बः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिःसृताः पञ्चायामपरिणाहाः पञ्च मधुधाराः सुपार्श्वशिखरात्पतन्त्योऽपरेणात्मानमिलावृतमनुमोदयन्ति ॥२२॥

यः=जो; **तु**=किन्तु; **महा-कदम्बः**=महाकदम्ब नामक वृक्ष; **सुपार्श्व-निरूढः**=जो सुपार्श्व पर्वत की बगल में खड़ा हुआ है; **यः**=जो; **तस्य**=उसका; **कोटरेभ्यः**=कोटर से; **विनिःसृताः**=प्रवाहित; **पंच**=पाँच; **आयाम**=व्याम, लगभग आठ फुट माप की इकाई; **परिणाहाः**=जिसकी माप; **पंच**=पाँच; **मधु-धाराः**=मधु की धाराएँ; **सुपार्श्व-शिखरात्**=सुपार्श्व पर्वत की चोटी से; **पतन्त्यः**=गिर रही हैं; **अपरेण**=सुमेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में; **आत्मानम्**=समग्र; **इलावृतम्**=इलावृत वर्ष को; **अनुमोदयन्ति**=सुरभित करती हैं।

अनुवाद

सुपार्श्व पर्वत की बगल में महाकदम्ब नामक अत्यन्त प्रसिद्ध विशाल वृक्ष खड़ा है। इस वृक्ष के कोटर से मधु की पाँच नदियाँ निकलती हैं जिनमें से प्रत्येक लगभग पाँच "व्याम" चौड़ी हैं। यह प्रवाहमान मधु सुपार्श्व पर्वत की चोटी से सतत नीचे गिरता रहता है और इलावृत-वर्ष की पश्चिम दिशा से प्रारम्भ होकर उसके चारों ओर बहता रहता है। इस प्रकार सम्पूर्ण स्थल सुहावनी गंध से पूरित है।

तात्पर्य

दोनों भुजाओं के फैलाने पर एक हथेली से दूसरे की बीच की दूरी "व्याम" कहलाती है जो लगभग आठ फुट होती है। इस प्रकार प्रत्येक नदी की चौड़ाई लगभग चालीस फुट और कुल मिलाकर लगभग दो सौ फुट होगी।

या ह्युपयुञ्जानानां मुखनिर्वासितो वायुः समन्ताच्छतयोजनमनुवासयति ॥२३॥

याः=जो (वे मधु धाराएँ); **हि**=निस्सन्देह; **उपयुञ्जानानाम्**=पान करने वालों के; **मुख-निर्वासितः-वायुः**=मुखों से निष्कासित वायु; **समन्तात्**=चतुर्दिक; **शत-योजनम्**=एक सौ योजन तक; **अनुवासयति**=सुगन्धित बना देती है।

अनुवाद

इस मधु को पीने वालों के मुख से निकली वायु चारों ओर सौ योजन तक के भूभाग को सुगन्धित बना देती है।

एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो नाम वटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बरशय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुदाग्रात्पतन्तस्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयन्ति ॥२४॥

एवम्=इस प्रकार; **कुमुद-निरूढः**=कुमुद पर्वत पर उगा हुआ; **यः**=वह; **शत-वल्शः नाम**=शतवल्श नामक वृक्ष (एक सौ तने होने के कारण); **वटः**=वट-वृक्ष; **तस्य**=उसके; **स्कन्धेभ्यः**=मोटी-मोटी शाखाओं से; **नीचीनाः**=नीचे गिर-कर; **पयः**=दुग्ध; **दधि**=दही; **मधु**=शहद; **घृत**=घी; **गुड**=गुड़; **अन्न**=अनाज; **आदि**=इत्यादि; **अम्बर**=वस्त्र; **शय्या**=बिस्तर; **आसन**=बैठने का स्थान; **आभरण-आदयः**=आभूषण इत्यादि; **सर्वे**=सब कुछ, प्रत्येक वस्तु; **एव**=निश्चय ही; **काम-दुघाः**=समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली; **नदाः**=बड़ी नदियाँ; **कुमुद-अग्रात**=कुमुद पर्वत की चोटी से; **पतन्तः**=गिरकर, बहकर; **तम्**=उस तक; **उत्तरेण**=उत्तर दिशा में; **इलावृतम्**=इलावृत वर्ष में; **उपयोजयन्ति**=सुखी बनाती हैं।

अनुवाद

इसी प्रकार, कुमुद पर्वत के ऊपर एक विशाल वट वृक्ष है, जो एक सौ प्रमुख शाखाओं के कारण शतवल्श कहलाता है। इन शाखाओं से अनेक जड़ें निकली हुई हैं, जिनमें से अनेक नदियाँ बहती हैं। ये नदियाँ इलावृत-वर्ष की उत्तर दिशा में स्थित पर्वत की चोटी से नीचे बहकर वहाँ के निवासियों को लाभ पहुँचाती हैं। इन नदियों के कारण, सभी लोगों के पास प्रचुर दुग्ध, दही, मधु, घी, गुड़, अन्न, वस्त्र, बिस्तर, आसन तथा आभूषण हैं। उनकी समृद्धि के लिए उन्हें जो भी चाहिए वे सब उपलब्ध हैं, जिससे वे सभी अत्यन्त सुखी हैं।

तात्पर्य

मानवीय समृद्धि ऐसी आसुरी सभ्यता पर आश्रित नहीं होती जिसमें केवल गगन-

चुम्बी प्रासाद और राजमार्ग पर दौड़ने वाले बड़े-बड़े स्वचालित वाहन हों, किन्तु वह संस्कृति तथा ज्ञान से शून्य हो। प्राकृतिक पदार्थ ही इसके लिए पर्याप्त होते हैं। जहाँ दूध, दही, मधु, अन्न, घी, गुड़, धोती, साड़ी, बिस्तर, आसन तथा आभूषण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों, वहाँ के वासी ही वास्तव में ऐश्वर्यवान् हैं। जब नदी अपने प्रभूत जल की बाढ़ से भूखण्ड को डुबो देती है तो ये सारी वस्तुएँ उपजाई जा सकती हैं और इस तरह किसी प्रकार का अभाव नहीं दिखता। किन्तु, यह सब कुछ यज्ञ अनुष्ठान पर निर्भर करता है, जैसा कि वैदिक शास्त्रों में कहा गया है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

"सभी प्राणी अन्न पर निर्भर रहते हैं, जो वर्षा से उत्पन्न होता है। वर्षा यज्ञ करने से होती है और यज्ञ की उत्पत्ति कर्म से होती है।" भगवद्गीता (३.१४) में इन नियमों का उल्लेख है। यदि मनुष्य पूर्णरूप से श्रीकृष्णभावनामृत में इन नियमों का पालन करे तो मानव समाज सम्पन्न होगा और सभी मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में सुखी रहेंगे।

यानुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां बलीपलितक्लमस्वेददौर्गन्ध्यजरामय-मृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्तापविशेषा भवन्ति यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥२५॥

यान्=जो (उपर्युक्त नदियों से उत्पन्न होने वाले समस्त पदार्थ); **उपजुषाणानाम्**=पूर्णरूप से उपभोग करने वाले पुरुषों का; **न**=नहीं; **कदाचित्**=किसी भी समय; **अपि**=निश्चय ही; **प्रजानाम्**=प्रजा का; **वली**=झुर्रियाँ; **पलित**=पके केश; **क्लम**=थकान; **स्वेद**=पसीना; **दौर्गंध्य**=पसीने के कारण दुर्गंध; **जरा**=बुढ़ापा; **आमय**=रोग; **मृत्यु**=असामयिक मृत्यु; **शीत**=कड़ाके की सर्दी; **उष्ण**=दाहक गर्मी; **वैवर्ण्य**=शरीर की कान्ति का धूमिल पड़ना, विवर्णता, **उपसर्ग**=क्लेश; **आदयः**=इत्यादि; **ताप**=दुखों का; **विशेषः**=किस्में, प्रकार; **भवन्ति**=हैं; **यावत्**=जब तक; **जीवम्**=जीवन; **सुखम्**=सुख; **निरतिशयम्**=अपार, सीमाहीन; **एव**=केवल।

अनुवाद

इस भौतिक जगत् के वे वासी जो इन नदियों से प्राप्त पदार्थों का सेवन करते हैं उनके शरीर में न तो झुर्रियाँ पड़ती हैं और न केश सफेद होते हैं। न तो उन्हें

थकान का अनुभव होता है और न उनके पसीने से दुर्गन्ध ही आती है। उन्हें बुढ़ापा, रोग या असामयिक मृत्यु नहीं सताते; उन्हें न तो सर्दी या गर्मी सताती है न ही उनके शरीर की कान्ति लुप्त होती है। वे सभी मृत्युपर्यन्त चिन्ताओं से मुक्त सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में इसी भौतिक जगत् के भीतर मानव समाज की सम्पूर्णता का संकेत है। इस भौतिक जगत् की दयनीय दशा को दुग्ध, दही, मधु, घी, गुड़, अन्न, आभूषण, बिस्तर, आसन इत्यादि की प्रचुर मात्रा में पूर्ति करके सुधारा जा सकता है। यही मानवीय सभ्यता है। कृषि कर्म द्वारा प्रचुर अन्न उत्पन्न किया जा सकता है और गो संवर्धन द्वारा प्रचुर दूध, दही, तथा घी की व्यवस्था की जा सकती है। वनों की सुरक्षा करके प्रचुर मधु प्राप्त कर सकते हैं। दुर्भाग्यवश आधुनिक सभ्यता के वशीभूत होकर मनुष्य गायों का वध कर रहे हैं जो दूध, दही, घी की मूल स्रोत हैं। वे उन वृक्षों का विनाश करते हैं जो मधु को देने वाले हैं। वे कृषि कर्म में संलग्न होने की बजाय कल पुर्जों, स्वचालित वाहनों तथा मदिरा के कारखानों को खोलते जा रहे हैं। तो भला, मनुष्य किस प्रकार सुखी रह सकते हैं ? उन्हें भौतिकता के समस्त कष्टों का भोग करना होगा। उनके शरीर में झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और धीरे-धीरे उनका क्षय होता रहता है जिससे वे बौने लगने लगते हैं। नाना प्रकार की गर्हित वस्तुओं के खाने से उनके शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। यह मानवीय सभ्यता नहीं कहलाती। यदि सचमुच ही मनुष्य इस जीवन में सुख भोगना चाहते हैं और चाहते हैं कि उनका भावी जीवन सुखमय बीते तो उन्हें चाहिए कि वे वैदिक सभ्यता का अनुसरण करें। इस वैदिक सभ्यता में उपर्युक्त सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

कुरङ्गकुररकुसुम्भवैकङ्कत्रिकूटशिशिरपतङ्गरुचकनिषधशिनीवासकपिलशङ्ख-वैदुर्यजारुधिहंसर्षभनागकालञ्जरनारदादयो विंशतिगिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केसरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ताः ॥२६॥

कुरंग=कुरंग; **कुरर**=कुरर; **कुसुम्भ-वैकंक-त्रिकूट-शिशिर-पतंग-रुचक-निषध-शीनिवास-कपिल-शंख-वैदूर्य-जारुधि-हंस-ऋषभ-नाग-कालञ्जर-नारद** = ये सभी पर्वतों के नाम हैं; **आदयः**=इत्यादि; **विंशति-गिरयः**=वीस पर्वत; **मेरोः**=सुमेरु पर्वत के; **कर्णिकायाः**=कमल कोश के; **इव**=सदृश; **केसर-भूताः**=केसर के समान; **मूल-देशे**=पाद पृष्ठ पर; **परितः**=चारों ओर; **उपक्लृप्ताः**=श्रीभगवान् के द्वारा आयोजित।

अनुवाद

मेरु पर्वत के पादभाग के चारों ओर अन्य पर्वत इस सुन्दर ढंग से व्यवस्थित हैं मानों कमल पुष्प की कर्णिका के चारों ओर केसर हों। इन पर्वतों के नाम हैं—कुरंग, कुरर, कुसुम्भ, वैकंक, त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शंख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर तथा नारद।

जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः। एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलासकरवीरौ प्रागायतावेवमुत्तरतस्त्रिश्रृङ्गमकरावष्टभिरेतैः परिस्तृतोऽग्निरिव परितश्चकास्तिकाञ्चनगिरिः ॥२७॥

जठर-देवकूटौ=जठर तथा देवकूट नामक दो पर्वत; **मेरुम्**=सुमेरु पर्वत; **पूर्वेण**=पूर्व दिशा में; **अष्टादश-योजन-सहस्रम्**=अठारह हजार योजन; **उद्गायतौ**=उत्तर से दक्षिण को फैला हुआ; **द्वि-सहस्रम्**=दो हजार योजन; **पृथु-तुंगौ**=चौड़ाई तथा ऊँचाई में; **भवतः**=हैं; **एवम्**=इसी तरह; **अपरेण**=पश्चिम दिशा में; **पवन-पारियात्रौ**=पवन तथा पारियात्र नामक दो पर्वत; **दक्षिणेन**=दक्षिण दिशा में; **कैलास-करवीरौ**=कैलास तथा करवीर नामक दो पर्वत; **प्राक्-आयतौ**=पूर्व तथा पश्चिम दिशा में विस्तृत; **एवम्**=इसी तरह; **उत्तरतः**=उत्तर दिशा में; **त्रिश्रृंग-मकरौ**=त्रिश्रृंग तथा मकर ये दो पर्वत; **अष्टभिः एतैः**=इन आठ पर्वतों के द्वारा; **परिस्तृतः**=घिरा हुआ; **अग्निः इव**=अग्नि के सदृश; **परितः**=सर्वत्र; **चकास्ति**=तेजी से चमकता है; **कांचन-गिरिः**=सुमेरु या मेरु नामक सोने का पर्वत।

अनुवाद

सुमेरु पर्वत के पूर्व में जठर तथा देवकूट नामक दो पर्वत हैं जो उत्तर तथा दक्षिण की ओर १८,००० योजन (१,४४,००० मील) तक फैले हुए हैं। इसी प्रकार सुमेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में पवन तथा पारियात्र नामक दो पर्वत हैं जो उतनी ही दूरी तक उत्तर तथा दक्षिण में भी फैले हैं। सुमेरु के दक्षिण में कैलास तथा करवीर पर्वत हैं जो पूर्व से पश्चिम तक १८,००० योजन तक फैले हुए हैं और सुमेरु की उत्तरी दिशा में त्रिश्रृंग तथा मकर नामक दो पर्वत पूर्व से पश्चिम तक इतनी ही दूरी में विस्तृत हैं। इन समस्त पर्वतों की चौड़ाई २,००० योजन (१६,००० मील) है। इन आठों पर्वतों से घिरा हुआ स्वर्ण निर्मित सुमेरु पर्वत अग्नि की तरह जाज्वल्यमान है।

मेरोर्मूर्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति ॥२८॥

मेरोः=सुमेरु पर्वत की; **मूर्धनि**=चोटी पर; **भगवतः**=सर्वशक्तिमान् प्राणी; **आत्म-योनेः**=भगवान् ब्रह्मा का; **मध्यतः**=मध्य में; **उपक्लृप्ताम्**=स्थित; **पुरीम्**=पुरी, विशाल नगरी; **अयुत-योजन**=दस हजार योजन; **साहस्रीम्**=एक हजार; **सम-चतुरस्राम्**=चारों ओर समान लम्बाई का; **शातकौम्भीम्**=पूर्णतः सोने का बना हुआ; **वदन्ति-ऋषि**=मुनियों का कथन है।

अनुवाद

मेरु की चोटी के मध्य भाग में ब्रह्माजी की पुरी स्थित है। इसके चारों कोने समान रूप से एक करोड़ योजन (आठ करोड़ मील) विस्तृत हैं। यह नितान्त स्वर्ण से निर्मित है, इसीलिए ऋषि-मुनि इसे शतकौम्भी नाम से पुकारते हैं।

तामनुपरितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥२९॥

ताम्=ब्रह्मपुरी नामक उस पुरी को; **अनुपरितः**=घेरे हुए; **लोक-पालानाम्**=लोकों के शासक; **अष्टानाम्**=आठ; **यथा-दिशम्**=दिशाओं के अनुसार; **यथा-रूपम्**=ब्रह्मपुरी के ही समान; **तुरीय-मानेन**=माप में केवल एक चतुर्थांश; **पुरः**=पुरी; **अष्टौ**=आठ; **उपक्लृप्ताः**=स्थित है।

अनुवाद

ब्रह्मपुरी के चारों ओर सभी दिशाओं में लोकों के आठ प्रमुख लोकपालों के निवास-स्थल हैं, जिनमें से पहला इन्द्र का है। ये निवासस्थल ब्रह्मपुरी के ही समान हैं, किन्तु वे आकार में एक चौथाई हैं।

तात्पर्य

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि लोकों के आठ लोकपालों तथा ब्रह्मा की पुरियों का उल्लेख अन्य पुराणों में पाया जाता है—

मेरौ नवपुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती
तेजोवती संयमनी तथा कृष्णांगना परा।

श्रद्धावती गन्धवती तथा चान्या महोदया
यशोवती च ब्रह्मेन्द्र बह्यादीनां यथाक्रमम् ॥

ब्रह्मा की पुरी मनोवती कहलाती है और उनके सहायक इन्द्र तथा अग्नि इत्यादि की पुरियाँ अमरावती, तेजोवती, संयमनी, कृष्णांगना, श्रद्धावती, गंधावती, महोदया तथा यशोवती कहलाती हैं। ब्रह्मपुरी मध्य में स्थित है और शेष आठों पुरियाँ इसके चारों ओर स्थित हैं।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चम स्कन्धे भुवनकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, "जम्बूद्वीप का वर्णन" शीर्षक नामक सोलहवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त भाष्य समाप्त हुआ।

सत्रहवाँ अध्याय

गंगा-अवतरण

इस अध्याय में गंगा नदी की उत्पत्ति तथा उसके इलावृत-वर्ष में और इसके चारों ओर बहने का वर्णन किया गया है। इसमें श्रीभगवान् के चतुर्भुज रूप के अंश संकर्षण के प्रति की गई शिव की वन्दना भी है। एक बार भगवान् विष्णु बलि महाराज के पास पहुँचे तो वे यज्ञ में तल्लीन थे। भगवान् उनके समक्ष त्रिविक्रम अथवा वामन के रूप में प्रकट हुए और उनसे तीन पग भूमि की याचना की। भगवान् वामन ने दो ही पगों में तीनों लोकों को मापकर अपने बाएँ पैर के अँगूठे से ब्रह्माण्ड के आवरण को भेद डाला। इस छिद्र के कारण समुद्र के जल की कुछ बूंदें बाहर निकल कर भगवान् शंकर के सिर पर पड़ीं जहाँ पर वे एक हजार युगों तक पड़ी रहीं। ये ही बूंदें पवित्र गंगा नदी हैं। यह पहले स्वर्ग लोक में बहती है जो भगवान् विष्णु के चरण तल में स्थित है। गंगा नदी भागीरथी तथा जाह्नवी नामों से भी विख्यात है। यह ध्रुव लोक तथा सप्तर्षि लोकों को पवित्र करने वाली है, क्योंकि ध्रुव तथा सप्तर्षियों की एकमात्र अभिलाषा भगवान् के चरणकमलों की सेवा करना है।

भगवान् विष्णु के चरणकमल से निर्गत गंगा नदी स्वर्ग लोकों को, विशेष रूप से चन्द्रमा को, आप्लावित करती हुई मेरु पर्वत के ऊपर बसी ब्रह्मपुरी से होकर आगे बहती है। यहाँ पर यह चार धाराओं (सीता, अलकनन्दा, चक्षु तथा भद्रा) में विभाजित होकर लवण सागर की ओर बहती है। इनमें से सीता नामक धारा शेखर पर्वत तथा गन्धमादन पर्वत से होकर बहती है और फिर भद्राश्व-वर्ष तक प्रवाहित होकर लवण सागर से मिल जाती है। चक्षु धारा माल्यवान्-गिरि से होकर प्रवाहित होते हुए केतुमाल-वर्ष में पहुँचकर लवण सागर में मिल जाती है। भद्रा कुरुदेश पहुँचने के पूर्व मेरु, कुमुद, नील, श्वेत तथा शृंगवान् पर्वतों को पार करती है और तब उत्तर दिशा में लवण सागर में मिल जाती है। अलकनन्दा पहले ब्रह्मालय को पार करती है, फिर अनेक पर्वतों को, जिनमें हेमकूट तथा हिमकूट भी सम्मिलित हैं—लाँघ करके भारतवर्ष में पहुँचती है जहाँ यह लवण सागर के दक्षिण की ओर बहती है। अनेक नदियाँ तथा उनकी शाखाएँ नौ वर्षों में से होकर बहती हैं।

भारतवर्ष नामक भूभाग कर्म क्षेत्र है तथा अन्य आठ वर्ष उन पुरुषों के निमित्त

हैं जो स्वर्गिक आनन्द उठाना चाहते हैं। इन आठों प्रदेशों में स्वर्गिक प्राणी भौतिक सुख और आनन्द का अनुभव करते हैं। श्रीभगवान् भिन्न अवतार लेकर जम्बूद्वीप के इन नवो वर्षों में अपनी दया का वितरण करते हैं।

इलावृत वर्ष में भगवान् शंकर ही एकमात्र पुरुष हैं। यहाँ वे अपनी पत्नी भवानी के साथ वास करते हैं और अनेक अनुचरियाँ उनकी सेवा करती हैं। यदि कोई अन्य पुरुष इस प्रदेश में प्रवेश करता है तो भवानी के श्राप से वह स्त्री बन जाता है। भगवान् शंकर संकर्षण भगवान् की पूजा अनेक प्रकार की प्रार्थनाओं द्वारा करते हैं। उन प्रार्थनाओं में से एक इस प्रकार है—"हे भगवन्! अपने समस्त भक्तों को इस भौतिक जीवन से उबारें और जो भक्त नहीं है उन्हें भौतिक जगत् से बाँध कर रखें। आपकी कृपा के बिना कोई भी प्राणी भौतिक अस्तित्त्व के बन्धन से छुटकारा नहीं पा सकता।"

श्रीशुक उवाच

तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तःप्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिञ्जल्कोपरञ्जिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनामला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानातिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्धन्यवततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥ १ ॥

श्रीशुकः उवाच=श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले; **तत्र**=उस काल; **भगवतः**= श्रीभगवान् के अवतार का; **साक्षात्**=प्रत्यक्ष; **यज्ञ-लिंगस्य**=समस्त यज्ञों के फल का भोक्ता; **विष्णोः**=भगवान् विष्णु का; **विक्रमतः**=दूसरा पग भरते हुए; **वाम-पाद**=बाएँ पैर का; **अंगुष्ठ**=अँगूठा; **नख**=नाखून द्वारा; **निर्भिन्न**=भेद कर; **ऊर्ध्व**= ऊपरी; **अंड-कटाह**=ब्रह्माण्ड का ऊपरी आवरण (इसमें पृथ्वी, जल, अग्नि आदि सात आवरण हैं); **विवरेण**=छिद्र से होकर; **अन्तः-प्रविष्टा**=ब्रह्माण्ड को भेद कर; **या**=जो; **बाह्य-जल-धारा**=कारण समुद्र जल की धारा; **तत्**=उसका; **चरण-पंकज**=चरण कमल का; **अवनेजन**=धोकर; **अरुण-किंजल्क**=लाल चूर्ण के द्वारा; **उपरंजिता**=रंजित होकर; **अखिल-जगत्**=सम्पूर्ण संसार के; **अघ-माला**=पाप कर्म; **अपहा**=विनष्ट करती है; **उपस्पर्शन**=जिसके स्पर्श से; **अमला**=नितान्त शुद्ध; **साक्षात्**=प्रत्यक्षतः; **भगवत्-पदी**=श्रीभगवान् के चरण कमल-से निकलने वाली; **इति**=इस प्रकार; **अनुपलक्षित**=वर्णित; **वचः**=नाम से; **अभिधीयमाना**=पुकारी जाकर; **अति-महता-कालेन**=दीर्घकाल के पश्चात्; **युग-सहस्र-उपलक्षणेन**=एक हज़ार युग; **दिवः**=आकाश के; **मूर्धनि**=शीश पर (ध्रुव लोक); **अवततार**=नीचे उतरी;

यत=जो; **तत्**=वह; **विष्णु-पदम्**=भगवान् विष्णु के चरण कमल; **आहुः**=पुकारते हैं।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—राजन् ! भगवान् विष्णु महाराज बलि की यज्ञशाला में वामनदेव का रूप धारण करके प्रकट हुए। तब उन्होंने अपने वाम पाद को ब्रह्माण्ड के छोर तक फैला दिया और अपने पैर के अँगूठे से उसके आवरण में एक छिद्र बना दिया। इस छिद्र से निकले कारण-समुद्र के विशुद्ध जल ने गंगा नदी के रूप में इस ब्रह्माण्ड में प्रवेश किया। विष्णु के चरण कमल को, जो केशर से लेपित था, धोने से गंगा का जल अत्यन्त मनोहर गुलाबी रंग का हो गया। गंगा के दिव्य जल के स्पर्श से क्षण भर में प्राणियों के मानसिक विकार शुद्ध हो जाते हैं, किन्तु इसका जल सदैव शुद्ध रहता है। चूँकि इस ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट होने के पूर्व गंगा प्रत्यक्ष रूप से विष्णुजी के चरण कमल का स्पर्श करती है, इसलिए वह विष्णु पदी कहलाती है। बाद में उसके अन्य नाम पड़े यथा जाह्नवी तथा भागीरथी। एक हजार युगों के बाद गंगा का जल ध्रुवलोक में उतरा जो इस ब्रह्माण्ड का सर्वोपरि लोक है। इसीलिए सभी सन्त तथा विद्वान् ध्रुवलोक को विष्णुपद कहते हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में गंगा नदी की महिमा का वर्णन है। गंगा जल पतित-पावनी कहलाता है, क्योंकि यह सभी पापियों का उद्धार करने वाला होता है। यह सर्वविदित है कि गंगा में नित्य प्रति स्नान करने से बाह्य तथा आन्तरिक शुद्धि होती है। बाह्यतः शरीर सभी प्रकार के रोगों का प्रतिरोध कर सकता है और आन्तरिक रूप से मनुष्य में क्रमशः श्रीभगवान् के प्रति भक्ति भाव उत्पन्न होता है। भारत के हजारों लोग, जो गंगा के तट पर वास करने वाले हैं, नियमित रूप से गंगाजल में स्नान करते हैं और निश्चित रूप से मन तथा तन से पवित्र होते हैं। अनेक ऋषियों ने, जिनमें शंकराचार्य भी हैं गंगा की प्रशंसा में स्तुतियाँ लिखी हैं और भारतवर्ष स्वयं भी गंगा, यमुना, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा, नर्मदा जैसी नदियों के कारण धन्य हुआ है। स्वाभाविक है कि इन नदियों के तटवर्ती भूभाग का वासी आध्यात्मिक भावना में अग्रणी हो। श्रील माध्वाचार्य का कथन है—

वाराहे वामपादं तु तदन्येषु तु दक्षिणम्।
पादं कल्पेषु भगवानुज्जहार त्रिविक्रमः॥

अपने दक्षिण पाद पर खड़े होकर तथा वामपाद को ब्रह्माण्ड के ऊपर रखकर भगवान् वामन त्रिविक्रम कहलाए, जिन्होंने तीन वीरतापूर्ण कार्य किए।

यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविन्दोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमानान्तर्हृदय औत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाभिव्यज्यमानरोमपुलककुलकोऽधुनापि परमादरेण शिरसा बिभर्ति ॥ २ ॥

यत्र ह वाव=ध्रुवलोक में; **वीर-व्रतः**=दृढ़प्रतिज्ञ; **औत्तानपादिः**=महाराज उत्तानपाद का विख्यात पुत्र; **परम-भागवतः**=परम भक्त; **अस्मत्**=हमारा; **कुल-देवता**=पारिवारिक देवता का; **चरण-अरविन्द**=चरणकमल; **उदकम**=जल में; **इति**=इस प्रकार; **याम्**=जो; **अनुसवनम्**=सतल; **उत्कृष्यमाना**=वर्धमान्; **भगवत्-भक्ति-योगेन**=भगवान् के प्रति भक्ति के द्वारा; **दृढम्**=अत्यन्त; **क्लिधमान-अन्तः-हृदयः**=अपने हृदय के अन्तः में मृदु होकर; **औत्कण्ठ्य**=अत्यन्त उत्कंठा (चिन्ता) से; **विवश**=तत्क्षण; **अमीलित**=कुछ कुछ खुले; **लोचन**=नेत्रों का; **युगल**=युग्म, जोड़ा; **कुड्मल**=कली से; **विगलित**=विकीर्ण होकर; **अमल**=मल रहित; **बाष्प-कलया**=अश्रु पूर्ण; **अभिव्यज्यमान**=प्रकट रूप में; **रोम-पुलक-कुलकः**=शरीर में प्रसन्नता द्योतक लक्षण; **अधुना अपि**=आज भी; **परम-आदरेण**=अत्यन्त आदर पूर्वक; **शिरसा**=शिर पर; **बिभर्ति**=धारण करता है।

अनुवाद

महाराज उत्तानपाद के विख्यात पुत्र ध्रुव महाराज परम-ईश्वर के सर्वश्रेष्ठ भक्त कहलाते हैं, क्योंकि उनकी भक्ति-निष्ठा दृढ़ थी। यह जानते हुए कि गंगाजल भगवान् विष्णु के चरण कमल को पखारता है, वे उस जल को अपने लोक में ही रहते हुए आज तक अपने शिर पर धारण करते हैं। चूँकि वे अपने अन्तस्थल (हृदय) में श्रीकृष्ण का निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं, फलतः वे अत्यन्त उत्कंठित रहते हैं, उनके अर्ध-निमीलित नेत्रों से अश्रु की धारा बहती है और उनका सारा शरीर पुलकायमान रहता है।

तात्पर्य

जब कोई व्यक्ति श्रीभगवान् की भक्ति में स्थिर हो जाता है तो उसे **वीरव्रत** अर्थात् दृढ़ प्रतिज्ञ कहते हैं। ऐसा भक्त अपनी उत्कंठा को अधिकाधिक बढ़ाता रहता है। अतः जब वह भगवान् विष्णु का स्मरण करता है तो उसके नेत्र अश्रु-पूरित हो उठते हैं। यह महाभागवत का लक्षण है। ध्रुव महाराज ऐसी ही भक्तिपूर्ण उत्कंठा में मग्न रहते थे और जगन्नाथ पुरी में रहते हुए चैतन्य महाप्रभु ने भी दिव्य उत्कंठा का उदाहरण प्रस्तुत किया। **श्रीचैतन्यचरितामृत** में उनकी जीवनचर्या का सम्यक् वर्णन मिलता है।

ततः सप्त ऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञा यां ननु तपस आत्यन्तिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्ति मिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्वहन्ति ॥ ३ ॥

ततः=तत्पश्चात्; **सप्त ऋषयः**=सप्तर्षि (मारीचि से लेकर); **तत् प्रभाव-अभिज्ञाः**=जो गंगा के प्रभाव से भलीभाँति परिचित थे; **याम्**=यह गंगा जल; **ननु**=निश्चय ही; **तपसः**=हमारे तपों का; **आत्यन्तिकी**=परम; **सिद्धिः**=सिद्धि; **एतावती**=इतना; **भगवति**=श्रीभगवान्; **सर्व-आत्मनि**=सर्वव्यापी; **वासुदेवे**=श्रीकृष्ण में; **अनुपरत**=अविरत; **भक्ति-योग**=भक्ति योग का; **लाभेन**=इस पद को प्राप्त करके; **एव**=निश्चय ही; **उपेक्षित**=तिरस्कृत; **अन्य**=दूसरा; **अर्थ-आत्मगतयः**=सिद्धि के अन्य सभी साधन (यथा—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष); **मुक्तिम्**=सांसारिक बन्धनों से छुटकारा; **इव**=सदृश; **आगतम्**=प्राप्त किया; **मुमुक्षवः**=मुक्ति की इच्छा करने वाला व्यक्ति; **इव**=सदृश; **स-बहु-मानम्**=अत्यन्त मानपूर्वक; **अद्य अपि**=आज भी; **जटा-जूटैः**=जूड़े के रूप में बँधी जटाओं से युक्त; **उद्वहन्ति**=धारण करते हैं।

अनुवाद

ध्रुवलोक के नीचे सप्तर्षियों (मारीचि, वशिष्ठ, अत्रि इत्यादि) का वास है। गंगा जल के प्रभाव से परिचित होने के कारण वे आज भी अपने शिर की जटाओं पर उसे धारण करते हैं। अन्ततः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यही परम धन, समस्त तपस्याओं की सिद्धि तथा दिव्य जीवन बिताने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। श्रीभगवान् की निरन्तर भक्ति प्राप्त होने के कारण उन्होंने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जैसे समस्त साधनों का परित्याग कर दिया। जिस प्रकार ज्ञानीजन यह सोचते हैं कि भगवान् में तदाकार होना ही परम सत्य है उसी प्रकार सप्तर्षि भी भक्ति को जीवन की परम सिद्धि मानने वाले हैं।

तात्पर्य

आध्यात्मवादियों की दो कोटियाँ हैं—निर्विशेषवादी तथा भक्त। निर्विशेषवादी जीवन के अप्राकृत रूपों को स्वीकार नहीं करते। वे श्रीभगवान् के ब्रह्मरूप (ब्रह्मज्योति) में तदाकार होना चाहते हैं। किन्तु भक्तजन श्रीभगवान् की अप्राकृत क्रियाओं में सम्मिलित होने के लिए इच्छुक रहते हैं। ऊर्ध्व लोकों में सबसे ऊपर ध्रुवलोक है और इसके नीचे महर्षियों द्वारा पहले मरीचि, फिर वशिष्ठ और अत्रि द्वारा, अधिकृत सात ग्रह हैं। ये सभी ऋषि भक्ति को जीवन की चरम सिद्धि मानने वाले हैं। फलतः

ये गंगाजल को अपने अपने शिर पर धारण करते हैं। इस श्लोक से यह सिद्ध होता है कि जिसने विशुद्ध भक्ति के पद को प्राप्त कर लिया है उसके लिए सभी कुछ, यहाँ तक कि तथाकथित मुक्ति (कैवल्य) भी तुच्छ है। श्रील श्रीधर स्वामी का कहना है कि भगवान् की विशुद्ध भक्ति प्राप्त कर लेने पर अन्य समस्त कार्यों को तुच्छ समझकर छोड़ा जा सकता है। प्रबोधानन्द स्वामी इस कथन की पुष्टि इस प्रकार करते हैं—

कैवल्यं नरकायते त्रिदशपुर आकाशपुष्पायते
दुर्दान्तेन्द्रियकालसर्पपटली प्रोत्खातदंष्ट्रायते।
विश्वं पूर्णसुखायते विधिमहेन्द्रादिश्च कीटायते
यत् कारुण्यकटाक्षवैभववतां तं गौरम् एव स्तुमः ॥

श्री चैतन्यमहाप्रभु ने भक्तियोग को क्रिया का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया है। फलतः जो चैतन्यमहाप्रभु के चरण कमल की शरण में जाता है, उसके लिए माया-वादियों की परम सिद्धि, कैवल्य, नारकीय लगती है और कर्मियों की महत्वाकांक्षाओं का क्या कहना जो स्वर्ग लोक पहुँचना चाहते हैं। भक्तगण ऐसे लक्ष्य को मायाजाल ही मानते हैं। योगी भी अपनी इन्द्रियों को वश में करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु भक्ति की अवस्था को प्राप्त हुए विना उन्हें भी सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। इन्द्रियों की तुलना विषधर सर्पों से की जाती है, किन्तु श्रीभगवान् की सेवा में संलग्न भक्तों की इन्द्रियाँ विषरहित सर्पों की तरह हैं। योगी अपनी इन्द्रियों को दमन करने का भरसक प्रयत्न करता है, किन्तु विश्वामित्र जैसे योगी भी अपने प्रयास में असफल रहते हैं। अपनी तपस्या के समय विश्वामित्र मेनका द्वारा वशीभूत हो गये। बाद में उनसे शकुन्तला का जन्म हुआ। अतः इस संसार में भक्ति-योगी सबसे बुद्धिमान हैं, जैसा कि भगवद्गीता (६.४७) में श्रीकृष्ण इसकी पुष्टि करते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

"सब योगियों में जो भी योगी श्रद्धाभाव से मेरे परायण होकर प्रेममय भक्ति योग के द्वारा मेरी सेवा करता है, वह मुझसे परम अन्तरंग रूप में युक्त है और परम श्रेष्ठ है।"

ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसङ्कुलदेवयानेनावतरन्तीन्दुमण्डलमावार्य ब्रह्म सदने निपतति ॥ ४ ॥

ततः = सप्तर्षियों के सात लोकों को पवित्र करने के पश्चात्; **अनेक** = कई; **सहस्र** = हजार; **कोटि** = करोड़ों; **विमान-अनीक** = विमान सेना सहित; **संकुल** = समूहित; **देव-यानेन** = देवताओं के अन्तरिक्ष से होकर; **अवतरन्ति** = उतरते हुए; **इन्दु-मण्डलम्** = चन्द्र लोक; **आवार्य** = आप्लावित; **ब्रह्म-सदने** = सुमेरु पर्वत के ऊपर ब्रह्मा के आवास तक; **निपतति** = गिरता है ।

अनुवाद

ध्रुवलोक के पड़ोसी सात लोकों को पावन करने के पश्चात् गंगा का जल करोड़ों देवताओं के विमानों द्वारा आन्तरिक्ष को ले जाया जाता है । तब यह चन्द्रलोक को आप्लावित करता हुआ अन्ततः मेरु पर्वत पर स्थित ब्रह्मा के आवास तक पहुँच जाता है ।

तात्पर्य

हमें स्मरण रखना होगा कि गंगा नदी ब्रह्माण्ड के बाह्यावरण से भी परे कारण-समुद्र से निकली है । भगवान् वामन द्वारा बनाये गये छिद्र के कारण समुद्र का जल स्रावित होकर पहले ध्रुवलोक में पहुँचता है और फिर उसके नीचे के सातों लोकों में पहुँचता है । फिर असंख्य स्वर्गिक विमानों के द्वारा चन्द्रमा तक पहुँचाया जाता है और तब यह मेरु पर्वत की चोटी पर गिरता है । इस प्रकार गंगा का जल अन्त में अधोलोकों तथा हिमालय श्रृंगों में पहुँचता है जहाँ से बहकर हरद्वार पहुँचता है और फिर भारत के समूचे मैदानी भाग को पवित्र बनाता है । इस श्लोक में यह बताया गया है कि गंगा का जल ब्रह्माण्ड के ऊपर से विभिन्न लोकों तक किस प्रकार पहुँचता है । यही जल नैसर्गिक विमानों द्वारा ऋषि लोकों से अन्य लोकों तक पहुँचता है । आज के तथाकथित समुन्नत वैज्ञानिक उच्चतर लोकों में पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं, किन्तु उन्हें इसका अनुभव हो रहा है कि पृथ्वी पर ऊर्जा का अभाव हो रहा है । यदि वे सचमुच समर्थ वैज्ञानिक होते तो वे स्वयं विमानों के द्वारा अन्य लोकों की यात्रा करते, किन्तु ऐसा कर पाने में वे असमर्थ हैं । उन्होंने अब चन्द्रमा की यात्राएँ बन्द कर दी हैं और अब वे अन्य ग्रहों में जाने का प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिल पा रही ।

तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पन्दन्ती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति सीतालकनन्दा चक्षुर्भद्रेति ॥ ५ ॥

तत्र = वहाँ (मेरु पर्वत पर); **चतुर्धा** = चार धाराओं में; **भिद्यमाना** = विभाजित होकर; **चतुर्भिः** = चार; **नामभिः** = नामों से; **चतुः-दिशम्** = चारों दिशाओं में (पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण); **अभिस्पन्दन्ति** = वेग से प्रवाहित होकर; **नद-नदी-**

पतिम्=समस्त वृहद् नदियों का आगार (सागर); **एव**=निश्चय ही; **अभिनिविशति**=प्रविष्ट करती है; **सीता-अलकन्दा**=सीता तथा अलकनन्दा; **चक्षुः**=चक्षु; **भद्रा**=भद्रा; **इति**=इन नामों से विख्यात।

अनुवाद

मेरु पर्वत की चोटी पर गंगा नदी चार धाराओं में विभक्त हो जाती है और प्रत्येक धारा अलग-अलग दिशाओं की ओर (पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण) वेग से प्रवाहित होती है। ये धाराएँ सीता, अलकनन्दा, चक्षु तथा भद्रा नाम से विख्यात हैं और ये सब सागर की ओर बहती हैं।

सीता तु ब्रह्मसदनात्केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधः प्रस्रवन्ती गन्धमादनमूर्धसु पतित्वान्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ॥ ६ ॥

सीता=सीता नामक धारा; **तु**=निश्चय ही; **ब्रह्मसदनात्**=ब्रह्मपुरी से; **केसराचल-आदि**=केसराचल तथा अन्य पर्वतों के; **गिरि**=पहाड़ियाँ; **शिखरेभ्यः**=चोटियों से; **अधः अधः**=नीचे की ओर; **प्रस्रवन्ती**=प्रवाहित; **गंधमादन**=गंधमादन पर्वत की; **मूर्धसु**=चोटी पर; **पतित्वा**=गिर कर; **अन्तरेण**=के अन्तर्गत; **भद्राश्व-वर्षं**=भद्राश्व प्रदेश; **प्राच्याम्**=पूर्व; **दिशि**=दिशा में; **क्षार-समुद्रम्**=लवण सागर में; **अभिप्रविशति**=प्रवेश करती है।

अनुवाद

गंगा नदी की सीता नामक धारा मेरु पर्वत की चोटी पर स्थित ब्रह्मपुरी से होकर बहती हुई पार्श्ववर्ती केसराचल पर्वतों के शृंगों पर पहुँचती है। ये पर्वत मेरु पर्वत के चारों ओर तन्तु गुच्छ जैसे हैं। केसराचल पर्वतों से चलकर गंगा नदी गंधमादन की चोटी पर गिरती है और वहाँ से भद्राश्व-वर्ष की भूमि में बहती है। अन्त में यह लवण सागर में पहुँच जाती है।

एवं माल्यवच्छिखरान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥ ७ ॥

एवम्=इस प्रकार; **माल्यवत्-शिखरात्**=माल्यवान् पर्वत की चोटी से; **निष्पतन्ती**=नीचे गिरकर; **ततः**=तत्पश्चात्; **अनुपरत-वेगा**=अप्रतिहत वेग से;

केतुमालम् अभि = केतुमाल वर्ष में; **चक्षुः** = चक्षु नामक धारा; **प्रतीच्याम्** = पश्चिम; **दिशि** = दिशा में; **सरित्-पतिम्** = सागर में; **प्रविशति** = प्रवेश करती है।

अनुवाद

गंगा नदी की चक्षु नामक धारा माल्यवान् पर्वत की चोटी पर गिरती है और वहाँ से प्रपात के रूप में गिरकर केतुमाल वर्ष में प्रवेश करती है। अविच्छिन्न रूप से केतुमाल वर्ष से बहकर गंगा नदी पश्चिम की ओर लवण सागर तक पहुँच जाती है।

भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखराद्गिरिशिखरमतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गादवस्यन्दमाना उत्तरांस्तु कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥ ८ ॥

भद्रा = भद्रा नामक धारा; **च** = भी; **उत्तरतः** = उत्तर दिशा को; **मेरु-शिरसः** = मेरु पर्वत की चोटी से; **निपतिता** = गिर कर; **गिरि-शिखरात्** = कुमुद पर्वत की चोटी से; **गिरि-शिखरम्** = नील पर्वत की चोटी तक; **अतिहाय** = बिना स्पर्श किये पार करके; **शृंगवतः** = शृंगवान् पर्वत की; **शृंगात्** = चोटी से; **अवस्यन्दमाना** = प्रवाहित होकर; **उत्तरान्** = उत्तरी; **तु** = किन्तु; **कुरून** = कुरु प्रदेश की; **अभितः** = चारों दिशाओं में; **उदीच्याम्** = उत्तरी; **दिशि** = दिशा में; **जलधिम्** = लवण सागर में; **अभिप्रविशति** = प्रवेश करती है।

अनुवाद

गंगा की भद्रा नामक धारा मेरु पर्वत की उत्तरी दिशा से होकर बहती है। इसका जल क्रमशः कुमुद, नील, श्वेत तथा शृंगवान् पर्वतों की चोटियों पर गिरता है। फिर वह कुरु प्रदेश में से बहती हुई उत्तर में लवण सागर से मिल जाती है।

तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्धैमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठयन्ती भारतमभिवर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति ॥ ९ ॥

तथा एव = इसी प्रकार; **अलकनन्दा** = अलकनन्दा नामक धारा; **दक्षिणेन** =

दक्षिण दिशा से; **ब्रह्म-सदनात्** = ब्रह्मपुरी से; **बहूनि** = बहुत सी; **गिरि-कूटानि** = पर्वत चोटियों को; **अतिक्रम्य** = पार करके; **हेमकूटात्** = हेमकूट पर्वत से; **हैमकूटानि** = तथा हिमकूट; **अति-रभसतर** = अधिक भयावनी; **रंहसा** = अधिक वेग से; **लुठयन्ती** = अपहरण करती हुई; **भारतम् अभिवर्षम्** = भारतवर्ष के चारों ओर; **दक्षिणस्याम्** = दक्षिण; **दिशि** = दिशा में; **जलधिम्** = लवण सागर में; **अभिप्रविशति** = प्रवेश करती है; **यस्याम्** = जिसमें; **स्नान-अर्थम्** = स्नात हेतु; **च** = और; **आगच्छत:** = आये हुए; **पुंस:** = पुरुष; **पदे पदे** = प्रत्येक पग पर; **अश्वमेध-राजसूय-आदीनाम्** = अश्वमेध तथा राजसूय जैसे महान् यज्ञों का; **फलम्** = फल; **न** = नहीं; **दुर्लभम्** = प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है; **इति** = ऐसा।

अनुवाद

इसी प्रकार अलकनन्दा ब्रह्मपुरी की दक्षिण दिशा से होकर बहती है। विभिन्न प्रदेशों में पर्वतों की चोटियों को पार करती हुई यह अत्यन्त वेग से हेमकूट तथा हिमकूट पर्वतों की चोटियों पर गिरती है। इन पर्वतों की चोटियों को आप्लावित करती हुई गंगा भारतवर्ष नामक भूभाग में गिरती है और उसे अपने जल से आपूरित करती चलती है। तत्पश्चात् यह दक्षिण दिशा में लवण सागर में मिल जाती है। जो व्यक्ति इस नदी में स्नान करने आते हैं वे भाग्यशाली हैं। उन्हें पग-पग पर राजसूय तथा अश्वमेध जैसे महान् यज्ञों के करने का फल प्राप्त करना दुष्कर नहीं है।

तात्पर्य

अब भी जहाँ बंगाल की खाड़ी के लवण जल में गंगा नदी मिलती है वह स्थान गंगा सागर कहलाता है। जनवरी-फरवरी मास में मकर-संक्रान्ति के अवसर पर आज भी यहाँ हजारों लोग मुक्ति प्राप्त करने की अभिलाषा से स्नान करने आते हैं और वास्तव में उनको मुक्ति प्राप्त होती है जिसकी पुष्टि यहाँ की गई है। जो लोग गंगा स्नान करते हैं उन्हें अश्वमेध तथा राजसूय जैसे महान् यज्ञों का फल प्राप्त होता है। आज भी भारत के अधिकांश लोग गंगा में स्नान करने के इच्छुक हैं और ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँ वे स्नान कर सकते हैं। प्रयाग (इलाहाबाद) में प्रतिवर्ष जनवरी मास में गंगा तथा यमुना नदी के संगम पर लाखों लोग एकत्र होते हैं। इसके बाद वे बंगाल की खाड़ी तथा गंगा के संगम में स्नान करते हैं। भारत के लोगों के लिए यह विशेष सुविधा है कि वे अनेक तीर्थ स्थानों पर गंगा स्नान कर सकते हैं।

अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशो मेर्वादिगिरिदुहितरः शतशः ॥१०॥

अन्ये = अन्य अनेक; **च** = भी; **नदाः** = नदियाँ; **नद्यः** = छोटी नदियाँ; **च** = तथा; **वर्षे-वर्षे** = प्रत्येक प्रदेश में; **सन्ति** = हैं; **बहुशः** = अनेक प्रकार की; **मेरु-आदि-गिरि-दुहितरः** = मेरु आदि पर्वतों की पुत्रियाँ; **शतशः** = सैकड़ों।

अनुवाद

मेरु पर्वत की चोटी से अन्य अनेक छोटी तथा बड़ी नदियाँ निकलती हैं। ये नदियाँ पर्वत की पुत्रियों के तुल्य हैं और वे सैकड़ों धाराओं में विभिन्न भूप्रदेशों में बहती हैं।

तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति ॥११॥

तत्र अपि = इन सबों में से; **भारतम्** = भारतवर्ष नाम से विख्यात; **एव** = निश्चय ही; **वर्षम्** = भूखण्ड, प्रान्त; **कर्म-क्षेत्रम्** = कर्मक्षेत्र; **अन्यानि** = अन्य सभी; **अष्ट वर्षाणि** = आठ वर्ष (भूखण्ड); **स्वर्गिणाम्** = पवित्र कर्मों के फलस्वरूप स्वर्गलोक को प्राप्त जीवात्माओं के; **पुण्य** = पवित्र कर्मों के फल; **शेष** = बचे हुए; **उपभोग-स्थानानि** = भौतिक सुख के स्थान; **भौमानि स्वर्ग-पदानि** = पृथ्वी पर स्वर्गिक स्थानों के रूप में; **व्यपदिशन्ति** = कहलाते हैं।

अनुवाद

नौ वर्षों में से भारतवर्ष नामक भूभाग कर्म क्षेत्र माना जाता है। विद्वान् तथा सन्तजनों का कथन है कि अन्य आठ वर्ष अत्यन्त पवित्रात्माओं के निमित्त हैं। वे स्वर्गलोक से लौटकर इनमें अपने शेष पुण्य कर्मों का फल भोगते हैं।

तात्पर्य

स्वर्ग के भोग स्थानों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है—दिव्य स्वर्गलोक, भौम स्वर्गलोक, बिल स्वर्गलोक, जो निम्नतर भागों में पाये जाते हैं। इन तीनों श्रेणियों में से भौम स्वर्गलोक भारतवर्ष के अतिरिक्त आठ वर्षों के रूप में हैं। भगवद्‌गीता (९.२१) में श्रीकृष्ण कहते हैं, **क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति**—"पुण्यों के क्षय होने पर स्वर्ग में वास करने वाले व्यक्ति इस पृथ्वी पर लौट आते हैं।" इस प्रकार वे पहले स्वर्गलोक पहुँचते हैं और पुनः च्युत होकर पृथ्वी लोक पर आते हैं। यह क्रिया ब्रह्माण्ड-भ्रमण अर्थात् ब्रह्माण्ड भर में ऊपर नीचे भ्रमण करना कहलाती है। जो बुद्धिमान् हैं वे इस आवागमन में नहीं पड़ते। वे भगवान् की सेवा करते हुए अन्त में ब्रह्माण्ड के आवरण को भेदकर दिव्य लोक में प्रवेश करते हैं। फिर वे

वैकुण्ठ लोक या इससे भी ऊपर स्थित श्रीकृष्णलोक (गोलोक वृन्दावन) में आसीन होते हैं। भक्त कभी भी स्वर्ग लोक तक उठने और फिर वहाँ से नीचे गिरने के बन्धन में नहीं पड़ते। इसीलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं—

एइ रूपे ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज॥

ब्रह्माण्ड भर में चक्कर लगाने वाली समस्त जीवात्माओं में जो सर्वाधिक भाग्यवान् है वही श्रीभगवान् के प्रतिनिधि के सम्पर्क में आता है और सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त करता है। जो निष्ठा से श्रीकृष्ण की कृपा के लिए लालायित रहते हैं उन्हें ऐसा गुरु प्राप्त होता है जो श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि होता है। मनोकल्पना करने वाले मायावादी तथा कर्मों के फल की इच्छा रखने वाले कर्मी गुरु नहीं बन सकते। गुरु को श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि होना चाहिए जो उनके निर्देशों को बिना किसी परिवर्तन के फैलावे। इस प्रकार केवल भाग्यवान् व्यक्ति ही गुरु के सम्पर्क में आते हैं। जैसे कि वैदिक शास्त्रों से पुष्टि होती है—**तद्विज्ञानार्थं स गुरुं एवाभिगच्छेत्**—आध्यात्मिक जगत् के व्यापारों को समझने के लिए गुरु की खोज करनी होती है। श्रीमद्भागवतम् में भी इसकी पुष्टि की गई है, **तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्**—आध्यात्मिक जगत् में कार्यों को जानने के इच्छुक व्यक्ति को गुरु की खोज अवश्य करनी चाहिए—ऐसा गुरु जो श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि हो। अतः सभी दृष्टियों से गुरु शब्द का अर्थ श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि ही है, अन्य कुछ नहीं। पद्मपुराण में कहा गया है कि **अवैष्णवो गुरुर् न स्यात्**—जो वैष्णव नहीं है अर्थात् जो श्रीकृष्ण का प्रामाणिक प्रतिनिधि नहीं है वह गुरु नहीं हो सकता। यहाँ तक कि योग्य ब्राह्मण भी, यदि वह श्रीकृष्ण का प्रतिनिधि नहीं है तो गुरु नहीं हो सकता। ब्राह्मणों के छः शुभ लक्षण बताये गये हैं—वे अत्यन्त विद्वान् (पठन) तथा अत्यन्त योग्य शिक्षक (पाठन) होते हैं, वे ईश्वर या देवताओं की पूजा (यजन) में दक्ष होते हैं, वे अन्यों को पूजा विधि सिखाते हैं (याजन); अन्यों से भिक्षा ग्रहण करने के सुपात्र होते हैं (प्रतिग्रह) और वे दान द्वारा धन का वितरण करते हैं (दान)। इन समस्त योग्यताओं के होने पर भी यदि कोई ब्राह्मण श्रीकृष्ण का प्रतिनिधि नहीं है तो वह गुरु नहीं बन सकता (**गुरुर् न स्यात्**)। किन्तु **वैष्णवः श्वपचो गुरुः**—श्वपच अर्थात् कुत्ता-भक्षी परिवार का होकर भी भगवान् श्रीविष्णु का प्रामाणिक प्रतिनिधि वैष्णव गुरु बन सकता है। स्वर्ग लोक की तीन श्रेणियों में से भौम स्वर्ग को कभी-कभी भारतवर्ष के एक भूभाग के रूप में स्वीकार किया जाता है जो कश्मीर के नाम से विख्यात है। इस भूभाग में निश्चय ही इन्द्रिय सुख की अनेक सुविधाएँ प्राप्त हैं, किन्तु विशुद्ध इन्द्रियातीत जनों को इससे कोई सरोकार नहीं होता। रूप गोस्वामी ने विशुद्ध इन्द्रियातीत जनों के कार्य का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकुल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।।

"मनुष्य को चाहिए कि वह श्रीभगवान् की दिव्य सेवा बिना किसी लाभ की आकांक्षा किये, बिना सकाम कर्मों के द्वारा अथवा मीमांसा द्वारा करे। यही विशुद्ध सेवा कहलाती है।" जो श्रीकृष्ण को रिझाने के लिए उनकी सेवा में पूर्णतः लगे रहते हैं, वे स्वर्ग की तीन प्रकार की श्रेणियों—दिव्य स्वर्ग, भौम स्वर्ग तथा बिल स्वर्ग में से किसी में भी रुचि नहीं रखते।

एषु पुरुषाणामयुतपुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानां नागायुतप्राणानां वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवायापवर्गवर्षधृतैकगर्भ कलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालो वर्तते ।।१२।।

एषु=इन आठ वर्षों में; **पुरुषाणाम्**=समस्त पुरुषों में; **अयुत**=दस हजार; **पुरुष**=व्यक्ति, पुरुष; **आयुः-वर्षाणाम्**=वे जिनकी आयु; **देव-कल्पानाम्**=जो देवताओं के सदृश हैं; **नाग-अयुत-प्राणानाम्**=दस हजार हाथियों के बल वाले; **वज्र-संहनन**=वज्र के समान ठोस शरीर के द्वारा; **बल**=शारीरिक शक्ति; **वयः**=यौवन से; **मोद**=प्रचुर इन्द्रिय भोग द्वारा; **प्रमुदित**=उत्तेजित होकर; **महा-सौरत**=अत्यधिक विषयभोग सम्बन्धी; **मिथुन**=पुरुष-स्त्री समागम, प्रसंग; **व्यवाय-अपवर्ग**=रतिजन्य सुख की अवधि के अन्त में; **वर्ष**=अन्तिम वर्ष में; **धृत-एक-गर्भ**=एक गर्भ धारण करने वाली; **कलत्राणाम्**=पत्नियों के; **तत्र**=वहाँ; **तु**=लेकिन; **त्रेता-युग-समः**=त्रेता युग (जिसमें कोई ताप नहीं रहता) के ही समान; **कालः**=समय; **वर्तते**=रहता है।

अनुवाद

गणना के अनुसार इन आठ वर्षों में मानव प्राणी दस हजार वर्षों तक जीवित रहते हैं। इनके सभी निवासी प्रायः देवताओं के तुल्य हैं। उनमें दस हजार हाथियों का बल होता है। उनके शरीर वज्र की भाँति कठोर होते हैं। उनके जीवन का यौवनकाल अत्यन्त मनोहारी होता है और स्त्री तथा पुरुष दीर्घकाल तक आनन्दपूर्वक समागम करते हैं। वर्षों तक इन्द्रिय सुख भोगने के पश्चात् जब जीवन का एक वर्ष शेष रह जाता है तो स्त्री गर्भवती होती है। इस प्रकार इन स्वर्गलोकों के वासी वैसा ही आनन्द उठाते हैं जैसा कि त्रेता युग के मानव प्राणी।

तात्पर्य

युग चार हैं—सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, तथा कलियुग। सत्ययुग में सभी

मनुष्य अत्यन्त पवित्र होते थे। प्रत्येक व्यक्ति आत्मज्ञान तथा भगवत्-साक्षात्कार के लिए योगाभ्यास करते थे। समाधि में लीन रहने के कारण किसी की भी रुचि इन्द्रिय सुख में नहीं रहती थी। त्रेतायुग में प्राणी किसी प्रकार का कष्ट सहे बिना इन्द्रिय सुख भोगते थे। द्वापरयुग में भौतिक तापों का प्रारम्भ हुआ, किन्तु वे अधिक कष्टप्रद न थे। वास्तव में कलियुग के आते ही कठिन भौतिक तापों का आरम्भ हुआ।

इस श्लोक में जो दूसरी बात कही गई है वह यह है कि इन आठों दिव्य वर्षों में स्त्री तथा पुरुष द्वारा इन्द्रिय सुख भोगते रहने पर भी गर्भाधान नहीं होता था। गर्भाधान तो निम्न योनियों में होता था। उदाहरणार्थ कुतिया तथा सुअरी वर्ष में दो बार गर्भ धारण करती है और प्रत्येक बार कम से कम आधा दर्जन बच्चे उत्पन्न होते हैं। सर्प जैसी निम्नतर योनियों में भी एक बार में सैकड़ों बच्चे पैदा होते हैं। इस श्लोक से यह सूचित होता है कि इससे उच्च योनियों में जीवनपर्यन्त केवल एक बार गर्भाधान होता है। पुरुष के संग रहने पर भी स्त्री के गर्भाधान नहीं होता। दिव्यलोक के प्राणी कामेच्छा के प्रति अधिक आकर्षित नहीं होते जिसका कारण भक्ति की ओर उनकी मनोवृत्ति है। एक तरह से देखा जाय तो दिव्य लोक में कामेच्छा होती ही नहीं और यदि कभी हुई भी तो गर्भाधान नहीं होता। किन्तु पृथ्वी लोक में गर्भाधान होता है, भले ही लोग सन्तानों से कितना ही क्यों न बचना चाहें। इस पापी कलियुग में तो मनुष्य गर्भ में ही शिशु-हत्या करने लगे हैं। यह अत्यन्त नीच कर्म है, इससे कर्ता के भौतिक कष्टों में वृद्धि होती है।

यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैर्गणनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वर्तुकुसुमस्तबकफलकिसलयश्रियाऽऽनम्यमानविटपलता विटपिभिरुपशुम्भमानरुचिरकाननाश्रमायतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषु विकचविविधनववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुटकारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुन्दरीणां कामकलिलविलासहासलीलावलोकाकृष्टमनोदृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥१३॥

यत्र ह=उन आठों भूखण्डों में; **देव-पतयः**=देवताओं के स्वामी, यथा इन्द्र; **स्वैः स्वैः**=अपने अपने; **गण-नायकैः**=सेवकों के नेताओं द्वारा; **विहित**=अलंकृत; **महा-अर्हणाः**=मूल्यवान् भेंटें—यथा चन्दन तथा मालाएँ; **सर्व-ऋतु**=समस्त ऋतुओं में; **कुसुम-स्तबक**=पुष्प गुच्छ, फूलों का गुच्छा; **फल**=फल का; **किसलय-श्रिया**=कोपलों की श्री (वैभव); **आनम्यमाना**=नमित; **विटप**=जिसकी शाखाएँ; **लता**=तथा बेलें; **विटपिभिः**=अनेक वृक्षों से; **उपशुम्भमान**=पूर्णतया अलंकृत; **रुचिर**=सुन्दर; **कानन**=उद्यान; **आश्रम-आयतन**=और अनेक आश्रमों; **वर्ष-गिरि-द्रोणीषु**

=भूखण्ड की सीमा के सूचक पर्वतों के बीच की घाटियाँ; **तथा**=और; **च**=भी; **अमल-जल-आशयेषु**=विमल जल वाले सरोवरों में; **विकच**=सद्यः विकसित; **विविध**=अनेक प्रकार के; **नव-वनरुह-आमोद**=कमल पुष्पों की सुरभि से; **मुदित**=प्रसन्न; **राजहंस**=बड़े-बड़े हंस; **जल-कुक्कुट**=जल मुर्गी; **कारण्डव**=कारण्डव नामक जल पक्षी; **सारस**=सारस पक्षी; **चक्रवाक-आदिभिः**=चक्रवाक तथा अन्य पक्षी; **मधुकर-निकर-आकृतिभिः**=भौंरों के समूह द्वारा; **उपकूजितेषु**=प्रतिध्वनित; **जलक्रीडा-आदिभिः**=जल क्रीड़ा आदि के द्वारा; **विचित्र**=विविध; **विनोदैः**=आमोद-प्रमोद से; **सु-ललित**=आकर्षक; **सुर-सुन्दरीणाम्**=देवताओं की पत्नियों का; **काम**=भोगेच्छा; **कलिल**=उत्पन्न; **विलास**=आमोद-प्रमोद; **हास**=मुस्कान; **लीला-अवलोक**=बाँकी चितवन द्वारा; **आकृष्ट-मनः**=जिनके मन आकृष्ट होते रहते हैं; **दृष्टयः**=तथा जिसकी दृष्टि आकृष्ट हो जाती है; **स्वैरम्**=स्वेच्छापूर्वक; **विहरन्ति**=विहार करते हैं।

अनुवाद

इन भूखण्डों में से प्रत्येक में ऋतुओं के अनुसार फूलों तथा फलों से पूरित अनेक उद्यान एवं मनोहर ढंग से अलंकृत आश्रम हैं। इन भूखण्डों की सीमा बताने वाले विशाल पर्वतों के बीच निर्मल जल से पूरित विशाल सरोवर हैं जिनमें कमल के पुष्प खिले हुए हैं। इन कमल पुष्पों की सुगन्धि से हंस, बत्तख, जल मुर्गियाँ तथा सारस जैसे जल पक्षी अत्यन्त उत्तेजित होते हैं और भौंरों के गुंजन से वायु पूरित रहती है। इन भूखण्डों के निवासी प्रसिद्ध नायक हैं। अपने सेवकों से सेवित ये लोग सरोवरों के तटवर्ती उद्यानों में जीवन का आनन्द उठाते हैं। ऐसे मोहक वातावरण में देवताओं की पत्नियाँ अपने पतियों से मन्द हास करती हैं और उन्हें बाँकी चितवन से देखती हैं। सभी देवताओं एवं उनकी पत्नियों पर उनके सेवक चन्दन तथा पुष्प मालाएँ चढ़ाते हैं। इस प्रकार आठों वर्षों के रहने वाले स्त्रियों की क्रियाओं से आकृष्ट होकर जीवन का आनन्द भोगते रहते हैं।

तात्पर्य

यहाँ पर निम्नस्थ स्वर्ग लोकों का वर्णन हुआ है। इन लोकों के वासी मोहक वातावरण में जीवन-उपभोग करते हैं जहाँ स्वच्छ सरोवर कमल पुष्पों और उद्यान, नाना प्रकार के फलफूलों, पक्षियों तथा गुंजार करते भौंरों से पूर्ण रहते हैं। वे अपनी अत्यन्त सुन्दर एवं कामसक्त पत्नियों के साथ आनन्दमग्न रहते हैं। तो भी वे सब श्रीभगवान् के भक्त होते हैं। इस पृथ्वी के निवासी भी ऐसे स्वर्गिक सुखोपभोग की आकांक्षा करते हैं, किन्तु उन्हें जैसे तैसे कामसुख तथा नशा जैसे कृत्रिम आनन्दों की प्राप्ति हो जाती है तो वे भगवान् की सेवा सर्वथा भूल जाते हैं। किन्तु स्वर्ग लोकों

में इन्द्रिय सुख का भोग करते हुए भी वहाँ के वासी यह कभी नहीं भूल पाते कि वे परम-ईश्वर के सेवक हैं।

नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्त्व व्यूहेनात्मनाद्यापि संनिधीयते ॥१४॥

नवसु=नवों; **अपि**=निश्चय ही; **वर्षेषु**=वर्षों में; **भगवान्**=श्रीभगवान्; **नारायणः**=विष्णु; **महा-पुरुषः**=परम पुरुष; **पुरुषाणाम्**=विभिन्न भक्तों को; **तत्-अनुग्रहाय**=कृपा प्रदर्शित करने के लिए; **आत्म-तत्त्व-व्यूहेन**=अपने चतुर्गुण रूपों में—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध; **आत्मना**=स्वयं; **अद्य अपि**=आज तक; **सन्निधीयते**=भक्तों के निकट हैं।

अनुवाद

इन सभी नौ वर्षों में अपने भक्तों पर कृपा करने के लिए श्रीभगवान्, जिन्हें नारायण कहा जाता है, अपने चतुर्गुण रूपों—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—में विस्तार करते हैं। इस प्रकार अपने भक्तों की सेवा स्वीकार करने के लिए वे उनके निकट रहते हैं।

तात्पर्य

इस प्रसंग में विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने बताया है कि सभी देवता परमेश्वर की पूजा उनके विविध श्रीविग्रह (अर्चा-विग्रह) रूपों में इसलिए करते हैं, क्योंकि दिव्य लोक के अतिरिक्त अन्यत्र साक्षात् श्रीभगवान् की प्रत्यक्ष पूजा नहीं की जा सकती। भौतिक जगत् में भगवान् की पूजा अर्चा-विग्रह अथवा मन्दिर में श्रीविग्रह के रूप में की जाती है। अर्चा-विग्रह तथा मूल पुरुष में कोई अन्तर नहीं होता, अतः जो लोग इस लोक में ऐश्वर्यपूर्ण मन्दिरों में श्रीविग्रह की पूजा करने में रत रहते हैं उन्हें निश्चित रूप से श्रीभगवान् के प्रत्यक्ष सम्पर्क में मानना चाहिए। शास्त्रों में जैसा कहा गया है—**अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर गुरुषु नरमतिः**—"न तो मन्दिर स्थित श्रीविग्रह को पत्थर या धातु मानना चाहिए और न गुरु को सामान्य प्राणी।" प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह इस शास्त्र-न्याय का पालन करके श्रीभगवान् के श्रीविग्रह की पूजा बिना किसी अपराध के करे। गुरु ईश्वर का साक्षात् प्रतिनिधि होता है कोई उसे सामान्य प्राणी न समझे। कोई भी व्यक्ति श्रीविग्रह तथा गुरु के प्रति अपराध से विरत रहकर अपने आध्यात्मिक जीवन को उन्नत कर सकता है या श्रीकृष्ण-भावनाभावित हो सकता है।

इस सम्बन्ध में लघुभावनामृत का निम्नलिखित उद्धरण दृष्टव्य है—

पाद्मे तु परमव्योम्नः पूर्वाद्ये दिक्चतुष्टये ।
वासुदेवादयो व्यूहश्चत्वारः कथिताः क्रमात् ॥

तथा पादविभूतौ च निवसन्ति क्रमादिमे ।
जलावृतिस्थवैकुण्ठस्थित वेदवतिपुरे ॥

सत्योर्ध्वे वैष्णवे लोके नित्याख्ये द्वारकापुरे ।
शुद्धोदादुत्तरे श्वेतद्वीपे चैरावतीपुरे ॥

क्षीराम्बुधिस्थितान्ते क्रोड पर्यंकधामनि ॥

सात्वतीये क्वचित् तन्त्रे नव व्यूहाः प्रकीर्तिताः ।
चत्वारो वासुदेवाद्या नारायणनृसिंहकौ ॥

हयग्रीवो महाक्रोडो ब्रह्मा चेति नवोदिताः ।
तत्र ब्रह्मा तु विज्ञेयः पूर्वोक्तविधया हरिः ॥

"पद्मपुराण में यह कहा गया है कि आध्यात्मिक लोक में भगवान् स्वतः समस्त दिशाओं में विस्तार करते हैं और वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध रूप में पूजित हैं। वे ही भगवान् इस भौतिक जगत् में श्रीविग्रह रूप में प्रदर्शित किये जाते हैं जो उनकी सृष्टि का चतुर्थांश है। इस भौतिक जगत् की चारों दिशाओं में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध भी उपस्थित रहते हैं। इस भौतिक जगत् में जल के नीचे वैकुण्ठ लोक है जिसमें वेदवती नामक स्थान है जहाँ वासुदेव स्थित हैं। एक अन्य लोक, जिसे विष्णुलोक कहते हैं, वह सत्यलोक के ऊपर स्थित है, जहाँ संकर्षण उपस्थित हैं। इसी प्रकार द्वारकापुरी में प्रद्युम्न का आधिपत्य है। श्वेतद्वीप में क्षीर सागर है। इसी सागर के मध्य में ऐरावती पुरी स्थित है जहाँ अनिरुद्ध अनन्तशायी हैं। कतिपय सात्वत तन्त्रों में नौ वर्षों एवं उनमें पूजित प्रधान श्रीविग्रहों का वर्णन मिलता है। वे हैं—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, नृसिंह, हयग्रीव, महावाराह तथा ब्रह्मा।" इस प्रसंग में उल्लिखित ब्रह्मा ही स्वयं श्रीभगवान् हैं। जब कोई मनुष्य ब्रह्मा बनने के योग्य नहीं होता तो भगवान् स्वयं ब्रह्मा का स्थान ले लेते हैं। **तत्र ब्रह्मा तु विज्ञेयः पूर्वोक्तविधया हरिः।** यहाँ पर वर्णित ब्रह्मा साक्षात् हरि हैं।

इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान्न ह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत्पश्चाद्वक्ष्यामि ॥१५॥

इलावृते=इलावृत-वर्ष में; **तु**=लेकिन; **भगवान्**=सर्वशक्तिमान्; **भवः**=भगवान् शिव; **एक**=एकमात्र; **एव**=निश्चय ही; **पुमान्**=पुरुष; **न**=नहीं; **हि**=अवश्य ही; **अन्यः**=दूसरा कोई; **तत्र**=वहाँ; **अपरः**=के अतिरिक्त; **निर्विशति**=प्रवेश करता है; **भवान्याः शाप-निमित्त-ज्ञः**=शिव की पत्नी भवानी के शाप का कारण जानने वाला; **यत्-प्रवेक्ष्यतः**=बलपूर्वक उस प्रदेश में प्रवेश करने वाले का; **स्त्री-भावः**=स्त्री में परिवर्तन; **तत्**=वह; **पश्चात्**=बाद में; **वक्ष्यामि**=मैं व्याख्या करूँगा।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—इलावृत वर्ष नामक भूखण्ड में भगवान् शिव ही एकमात्र ऐसे पुरुष हैं जो देवताओं में सर्वाधिक शक्तिमान् हैं। भगवान् शिव की पत्नी देवी दुर्गा नहीं चाहतीं कि इस प्रदेश में कोई भी पुरुष प्रवेश करे। यदि कोई मूर्ख पुरुष प्रवेश करने का दुस्साहस करता है तो वे उसे तत्क्षण स्त्री में परिणत कर देती हैं। इसकी व्याख्या मैं बाद में (नवम स्कन्ध में) करूँगा।

भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः सङ्कर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण संनिधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधावति ॥१६॥

भवानी नाथैः=भवानी के संग से; **स्त्री-गण**=स्त्रियों का; **अर्बुद-सहस्रैः**=सौ अरब; **अवरुध्यमानः**=सदैव सेवित होकर; **भगवतः-चतुः-मूर्तेः**=चतुर्गुण रूप में विस्तारित श्रीभगवान्; **महा-पुरुषस्य**=परम पुरुष का; **तुरीयाम्**=चतुर्थ विस्तार; **तामसीम्**=तमोगुण से सम्बद्ध; **मूर्तिम्**=रूप; **प्रकृतिम्**=स्रोत स्वरूपा; **आत्मनः**=स्वयं (भगवान् शिव) का; **संकर्षण-संज्ञाम्**=संकर्षण नाम से विख्यात; **आत्म-समाधि-रूपेण**=समाधि में स्वयं के ध्यान के द्वारा; **सन्निधाप्य**=निकट लाकर; **एतत्**=यह; **अभिगृणन्**=स्पष्टतः कीर्तन करके; **भवः**=भगवान् शिव; **उपधावति**=पूजा करता है।

अनुवाद

इलावृत वर्ष में भगवान् शंकर सदैव देवी दुर्गा की सौ अरब दासियों से घिरे रहते हैं जो उनकी सेवा करती हैं। परमात्मा का चतुर्गुण विस्तार वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा संकर्षण से हुआ है। इनमें चतुर्थ विस्तार संकर्षण हैं जो निश्चित रूप से दिव्य हैं, किन्तु भौतिक जगत् में उनका संहार-कार्य तमोगुणमय है, अतः वे तामसी अर्थात् तमोगुण रूप में ईश्वर कहलाते हैं। भगवान् शिव को ज्ञात है कि

संकर्षण ही उनके अतित्त्व के मूल कारण हैं, अतः वे समाधि में निम्नलिखित मन्त्र का जप करते हुए उनका ध्यान करते हैं।

तात्पर्य

कभी-कभी हम ध्यानमग्न भगवान् शंकर का चित्र देखते हैं। इस श्लोक में बताया गया है कि शिवजी समाधि में सदा संकर्षण का ध्यान करते रहते हैं। शिव इस जगत् के संहारक हैं। ब्रह्मा इस जगत् की सृष्टि करते हैं तथा भगवान् विष्णु इसका पालन करते हैं और शिवजी इसका संहार करते हैं। चूँकि संहार तमोगुण है, अतः शिवजी तथा उनके उपास्य संकर्षण को तामसी कहा गया है। शिवजी तमोगुण के अवतार हैं। चूँकि शिवजी तथा संकर्षण दोनों ही सदा जाग्रत रहते हैं और दिव्य स्थान ग्रहण करते हैं, अतः वे तीनों भौतिक गुणों—सतो, रजो तथा तमो—से कोई सरोकार नहीं रखते, किन्तु उनके कर्म उन्हें तमोगुणी बनाते हैं, अतः वे कभी-कभी तामसी कहलाते हैं।

श्रीभगवानुवाच

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसङ्ख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥१७॥

श्रीभगवान् उवाच=भगवान् शंकर कहते हैं; **ॐ नमो भगवते**=श्रीभगवान् को मैं आदरपूर्वक प्रणाम करता हूँ; **महापुरुषाय**=आप महापुरुष हैं; **सर्व-गुण-संख्यानाय** =समस्त दिव्य गुणों के आगार; **अनन्यताय**=अपरिमित; **अव्यक्ताय**=भौतिक जगत् में न प्रगट होने वाले; **नमः**=प्रणाम करता हूँ; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

परम शक्तिमान् भगवान् शिव कहते हैं—हे श्रीभगवान्! मैं संकर्षण के रूप में आपको प्रणाम करता हूँ। आप समस्त दिव्य गुणों के आगार हैं। अनन्त होकर भी आप अभक्तों के लिए अप्रकट रहने वाले हैं।

भजे भजन्यारणपादपङ्कजं
भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम्।
भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं
भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥१८॥

भजे=मैं पूजा करता हूँ; **भजन्य**=हे आराध्य स्वामी; **अरण-पाद-पंकजम्**= जिसके चरण कमल भक्तों के सभी प्रकार के भयों से रक्षा करते हैं; **भगस्य**= ऐश्वर्य का; **कृत्स्नस्य**=विभिन्न प्रकार के (धन, यश, बल, ज्ञान, रूप तथा त्याग); **परम्**=श्रेष्ठ; **परायणम्**=परम शरण; **भक्तेषु**=भक्तों के लिए; **अलम्**=अनुमान से परे; **भावित-भूत-भावनम्**=भक्तों के परितोष के लिए अपने विभिन्न रूपों को प्रकट करने वाला; **भव-अपहम्**=भक्त के जन्म-मरण चक्र को रोकने वाला; **त्वा**= आप को; **भव-भावम्**=भौतिक सृष्टि का मूल; **ईश्वरम्**=श्रीभगवान् ।

अनुवाद

हे प्रभो ! आप ही एकमात्र आराध्य हैं, क्योंकि आप ही समस्त ऐश्वर्यों के आगार श्रीभगवान् हैं । आपके चरण-कमल भक्तों के एकमात्र आश्रय हैं । आप भक्तों को अपने नाना रूपों द्वारा सन्तुष्ट करने वाले हैं । हे प्रभो ! आप अपने भक्तों को भौतिक संसार के चंगुलों से छुड़ाने वाले हैं । आपकी इच्छा से ही अभक्त लोग इस भौतिक संसार में उलझे रहते हैं । कृपया मुझे अपने दास के रूप में स्वीकार करें ।

न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभि-
र्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ।
ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां
कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥१९॥

न=कभी नहीं; **यस्य**=जिसका; **माया**=माया शक्ति, माया; **गुण**=गुणों में; **चित्त**=हृदय का; **वृत्तिभिः**=क्रियाओं के द्वारा (चिन्तन, अनुभव तथा इच्छा); **निरीक्षतः**=निरीक्षण करने वाले का; **हि**=निश्चय ही; **अणु**=कुछ-कुछ; **अपि**= भी; **दृष्टिः**=दृष्टि; **अज्यते**=प्रभावित होती है; **ईशे**=नियमन हेतु; **यथा**=जिस प्रकार; **नः**=हम लोगों का; **अजित्**=जो जीता न जा सके; **मन्यु**=क्रोध को; **रंहसाम्**=वेग; **कः**=कौन; **तम्**=उस (ईश्वर) को; **न**=नहीं; **मन्येत**=पूजा करेगा; **जिगीषुः**=जीतने की कामना करने वाला; **आत्मनः**=इन्द्रियाँ ।

अनुवाद

हम अपने क्रोध के वेग को रोक नहीं पाते, अतः जब हम भौतिक वस्तुओं को देखते हैं तो उनसे आकर्षित या विकर्षित हुए बिना नहीं रह पाते । किन्तु श्रीभगवान् इस प्रकार कभी भी प्रभावित नहीं होते । यद्यपि आप इस भौतिक जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार के हेतु इस पर दृष्टिपात करते हैं, किन्तु इससे रंचमात्र भी

प्रभावित नहीं होते। अतः वे जो अपनी इन्द्रियों के वेग पर विजय प्राप्त करना चाहता है, उसे श्रीभगवान् के चरण कमल की शरण लेनी चाहिए। तभी वह विजयी होगा।

तात्पर्य

श्रीभगवान् सदा अचिन्त्य शक्तियों से युक्त रहते हैं। यद्यपि उनके द्वारा भौतिक शक्ति (माया) पर दृष्टिपात करते ही सृष्टि का सृजन हो जाता है, किन्तु भौतिक प्रकृति के गुणों से वे अप्रभावित रहते हैं। जब श्रीभगवान् इस भौतिक जगत् में प्रकट होते हैं तो अपनी दिव्य स्थिति के कारण भौतिक प्रकृति के गुण उनमें व्याप्त नहीं होते। इसीलिए श्रीभगवान् दिव्य कहलाते हैं। फलतः जो भी भौतिक प्रकृति के गुणों के प्रभाव से बचना चाहता है उसे उनकी शरण ग्रहण करनी चाहिए।

असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया
क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः।
न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया
यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥२०॥

असत्-दृशः=कुत्सित दृष्टि वाले व्यक्ति के हेतु; **यः**=जो; **प्रतिभाति**=प्रतीत होता है; **मायया**=माया के वश में; **क्षीबः**=क्रुद्ध; **इव**=सदृश; **मधु**=शहद; **आसव**=तथा सुरा द्वारा; **ताम्र-लोचनः**=ताँबे के समान रक्त नेत्र वाला; **न**=नहीं; **नाग-वध्वः**=नागों की स्त्रियाँ; **अर्हणे**=पूजन; **ईशिरे**=करने में अशक्त; **ह्रिया**=लज्जावश; **यत्पादयोः**=जिसके चरण कमल; **स्पर्शन**=स्पर्श से; **र्धाषत**=उत्तेजित; **इन्द्रियाः**=जिसकी इन्द्रियाँ।

अनुवाद

कुत्सित दृष्टि वाले व्यक्तियों के लिए श्रीभगवान् के नेत्र सुरा पीकर उन्मत्त पुरुष जैसे हैं। ऐसे अविवेकी पुरुष भगवान् पर रुष्ट होते हैं और अपने रोषवश उन्हें श्रीभगवान् अत्यन्त रुष्ट एवं भयावने लगते हैं। किन्तु यह माया है। जब भगवान् के चरणकमल के स्पर्श से नाग वधुएँ उत्तेजित हुईं तो वे लज्जावश उनकी आराधना नहीं कर पाईं। जबकि श्रीभगवान् उनके स्पर्श से उत्तेजित नहीं हुए, क्योंकि समस्त परिस्थितियों में वे धीर बने रहते हैं। अतः ऐसा कौन होगा जो श्रीभगवान् की आराधना करना नहीं चाहेगा?

तात्पर्य

उत्तेजना का कारण रहते हुए भी जो उत्तेजित नहीं होता वह धीर कहलाता है।

श्रीभगवान् सदैव दिव्य स्थिति में रहने के कारण कभी भी किसी प्रकार उत्तेजित नहीं होते। अतः यदि कोई धीर बनना चाहता है तो उसे श्रीभगवान् की शरण में जाना चाहिए। भगवद्गीता (२.१३) में श्रीकृष्ण का कथन है, **धीरस्तत्र न मुह्यति**—ऐसा पुरुष जो सभी परिस्थितियों में धीर बना रहता है कभी किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होता। प्रह्लाद महाराज धीर के ज्वलन्त उदाहरण हैं। जब नृसिंहदेव हिरण्यकशिपु का वध करने के लिए अपने विकराल रूप में प्रकट हुए तो प्रह्लाद तनिक भी उत्तेजित नहीं हुए। वे शान्त और स्थिर बने रहे, जबकि अन्य सभी, यहाँ तक कि ब्रह्माजी भी, भगवान् के रूप से भयभीत थे।

यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं
त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः।
न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं
भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥२१॥

यम्=जिसको; **आहुः**=उन्होंने कहा; **अस्य**=इस भौतिक जगत् की; **स्थिति**=पोषण; **जन्म**=सृष्टि; **संयमम्**=संहार; **त्रिभिः**=ये तीनों; **विहीनम्**=से रहित; **यम्**=जो; **अनन्तम्**=अनन्त, असीम; **ऋषयः**=समस्त ऋषि; **न**=नहीं; **वेद**=अनुभव करते हैं; **सिद्ध-अर्थम्**=सरसों का बीज; **इव**=के समान; **क्वचित्**=जहाँ; **स्थितम्**=स्थित; **भू-मण्डलम्**=यह ब्रह्माण्ड; **मूर्ध-सहस्र-धामसु**=भगवान् के सैकड़ों हजारों फणों पर।

अनुवाद

भगवान् शंकर कहते हैं—सभी ऋषि भगवान् को सृजक, पालक और संहारक के रूप में स्वीकार करते हैं, यद्यपि उनका इन कार्यों से कोई सरोकार नहीं है। इसीलिए श्रीभगवान् को अनन्त कहा गया है। यद्यपि शेष अवतार के रूप में वे अपने फणों पर समस्त ब्रह्माण्डों को धारण करते हैं, किन्तु प्रत्येक ब्रह्माण्ड उन्हें सरसों के बीज से अधिक भारी नहीं लगता। अतः सिद्धि का इच्छुक ऐसा कौन पुरुष होगा जो ईश्वर की आराधना नहीं करना चाहेगा?

तात्पर्य

श्रीभगवान् के शेष या अनन्त अवतार में असीम शक्ति, यश, वैभव, ज्ञान, सौन्दर्य तथा त्याग भरा है। इस श्लोक में बताया गया है कि अनन्त अवतार में इतनी महान् शक्ति है कि उनके फणों पर असंख्य ब्रह्माण्ड टिके हैं। उनका शरीर हजार फणों वाले सर्प की भाँति और अपार शक्ति होने के कारण फणों पर टिके सभी

ब्रह्माण्ड सरसों के बीज से अधिक भार वाले नहीं प्रतीत होते। हम सहज कल्पना कर सकते हैं कि सर्प के फण पर स्थित सरसों का बीज कितना नगण्य होता है। इस प्रसंग में पाठकों को चाहिए कि वे चैतन्यचरितामृत आदिलीला, अध्याय ५, श्लोक ११७-१२५ पढ़ें। उसमें यह कहा गया है कि अनन्त शेषनाग के रूप में श्रीविष्णु का अवतार समस्त ब्रह्माण्डों को अपने फणों पर धारण किये है। हमारी गणना के अनुसार भले ही कोई ब्रह्माण्ड कितना ही भारी क्यों न हो, किन्तु अनन्त होने के कारण श्रीभगवान् को वह सरसों के बीज से अधिक भारी नहीं लगता।

यस्याद्य आसीद् गुणविग्रहो महान्
विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल।
यत्सम्भवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा
वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥२२॥

एते वयं यस्य वशे महात्मनः
स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः।
महानहं वैकृततामसेन्द्रियाः
सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥२३॥

यस्य=जिससे; **आद्यः**=आरम्भ; **आसीत्**=था; **गुण-विग्रहः**=गुणों का अवतार; **महान्**=सम्पूर्ण माया; **विज्ञान**=सम्पूर्ण ज्ञान; **धिष्ण्यः**=आगार; **भगवान्**=सर्व-शक्तिमान्; **अजः**=भगवान् ब्रह्मा; **किल**=निश्चय ही; **यत्**=जिससे; **सम्भवः**=उत्पन्न, सम्भूत; **अहम्**=मैं; **त्रि-वृत्ता**=तीन गुणों के अनुसार तीन प्रकार का; **स्वे-तेजसा**=मेरी शक्ति से; **वैकारिकम्**=सभी देवता; **तामसम्**=भौतिक तत्त्व; **ऐन्द्रियम्**=इन्द्रियाँ; **सृजे**=उत्पन्न करता हूँ; **एते**=इन सबों को; **वयम्**=हम; **यस्य**=जिसके; **वशे**=वश में; **महा-आत्मनः**=महान् पुरुष; **स्थिताः**=स्थित; **शकुन्ताः**=गृद्ध; **इव**=सदृश; **सूत्र-यन्त्रिताः**=सूत्र (डोरी) के द्वारा बद्ध; **महान्**=महत्तत्त्व; **अहम्**=मैं; **वैकृत**=देवतागण; **तामस**=पाँच तत्त्व; **इन्द्रियाः**=इन्द्रियाँ; **सृजामः**=हम सृष्टि करते हैं; **सर्वे**=हम सभी; **यत्**=जिसके; **अनुग्रहात्**=कृपा से; **इदम्**=यह भौतिक जगत्।

अनुवाद

श्रीभगवान् से ही ब्रह्माजी प्रकट होते हैं, जिनका शरीर महत्तत्त्व से निर्मित है और वह रजोगुण प्रधान बुद्धि का आगार है। भगवान् ब्रह्मा से मैं स्वयं अहंकार

रूप में, जिसे रुद्र कहते हैं, उत्पन्न होता हूँ। मैं अपनी शक्ति से अन्य समस्त देवताओं, पंच तत्त्वों तथा इन्द्रियों को जन्म देता हूँ। अत: मैं श्रीभगवान् की आराधना करता हूँ। वे हम सबों से श्रेष्ठ हैं और सभी देवता, महत्तत्त्व तथा इन्द्रियाँ, यहाँ तक कि ब्रह्माजी और स्वयं मैं उनके वश में वैसे ही हूँ जिस प्रकार कि डोरी से बँधे पक्षी। केवल उन्हीं के अनुग्रह से हम इस जगत् का सृजन, पालग एवं संहार करते हैं। अतः मैं परमब्रह्म को सादर प्रणाम करता हूँ।

तात्पय

इस श्लोक में सृष्टि का सारांश दिया गया है। संकर्षण से महाविष्णु और महाविष्णु से गर्भोदकशायी विष्णु का विस्तार होता है। ब्रह्माजी का जन्म इन्हीं विष्णु से हुआ और ब्रह्माजी से शिवजी का जन्म हुआ जिनसे समस्त देवताओं का क्रम से विकास हुआ। ब्रह्माजी, शिवजी तथा श्रीविष्णु भिन्न-भिन्न गुणों से युक्त अवतार हैं। भगवान् विष्णु समस्त भौतिक गुणों से परे हैं, किन्तु वे सत्त्व गुण को वश में रखते हैं जिससे ब्रह्माण्ड का पोषण होता है। ब्रह्माजी की उत्पत्ति महत्तत्त्व से हुई। ब्रह्माजी ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सृजन करने वाले हैं, श्रीविष्णु इसका पालन करने वाले और शिवजी इसका संहार करने वाले हैं। श्रीभगवान् समस्त प्रमुख देवताओं को—विशेषतः ब्रह्माजी तथा शिवजी को वैसे ही अपने वश में रखते हैं जिस प्रकार डोरी से बँधा कोई पक्षी। कभी-कभी गृद्ध भी इसी तरह वशीभूत किये जाते हैं।

यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं
मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः।
न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा
तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥२४॥

यत् = जिससे; **निर्मिताम्** = निर्मित; **कर्हि अपि** = किसी भी समय; **कर्म-पर्वणीम्** = कर्मों की गाँठ को बाँधने वाली; **मायाम्** = माया; **जनः** = व्यक्ति; **अयम्** = यह; **गुण-सर्ग-मोहितः** = तीन प्रकार के गुणों से मोहित; **न** = नहीं; **वेद** = जानता है; **निस्तारण-योगम्** = सांसारिक बन्धन से छूटने की विधि; **अञ्जसा** = शीघ्र; **तस्मै** = उसको; **नमः** = नमस्कार है; **ते** = तुम्हें; **विलय-उदय-आत्मने** = जिसमें प्रत्येक वस्तु विलय होकर पुनः उसी में उत्पन्न होती है।

अनुवाद

श्रीभगवान् की माया समस्त जीवात्माओं को इस भौतिक जगत् से बाँधती है,

अतः उनकी कृपा के बिना हम जैसे तुच्छ प्राणी माया से छूटने की विधि नहीं समझ पाते। मैं उन श्रीभगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ, जो इस जगत् की उत्पत्ति और लय के कारण स्वरूप हैं।

तात्पर्य

भगवद्गीता (७.१४) में श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

"मेरी यह दैवीशक्ति अर्थात् त्रिगुणमयी माया बड़ी दुस्तर है, परन्तु जो मेरे शरणागत हो जाते हैं, वे सुगमतापूर्वक इससे तर जाते हैं।" भगवान् के मायावश होकर कार्य करने वाली समस्त जीवात्माएँ स्वयं को ही साक्षात् देह मानकर निरन्तर ब्रह्माण्ड में घूमती रहती हैं और विभिन्न योनियों में जन्म धारण करके नाना प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न करती रहती हैं। कभी-कभी वे इन समस्याओं से हार कर ऐसी विधि निकाल लेती हैं, जिससे इस बन्धन से निकल सके। दुर्भाग्यवश ऐसे शोध करने वाले श्रीभगवान् तथा उनकी माया से अपरिचित रहकर अन्धकार में भटकते फिरते हैं और कभी भी निकल नहीं पाते। तथाकथित वैज्ञानिक और उन्नतिशील शोधकर्ता जीवन के कारण का पता लगाने का प्रयास कर रहे हैं। वे इसकी परवाह नहीं करते कि जीवन का सृजन पहले से हो रहा है। यदि वे जीवन का रासायनिक संघटन ज्ञात कर लेते हैं तो इसमें उनका क्या श्रेय है? उनके सभी रासायनिक पदार्थ आखिर पाँच तत्त्वों—क्षिति, जल, पावक, गगन तथा समीर के विभिन्न रूपान्तर ही तो हैं। जैसा भगवद्गीता (२.२०) में कहा गया है जीवात्मा का कभी सृजन नहीं होता (**न जायते म्रियते वा कदाचिन्**) पाँच स्थूल भौतिक तत्त्व, तीन सूक्ष्म भौतिक तत्त्व (मन, बुद्धि और अहं) तथा शाश्वत जीवात्माएँ हैं। जीवात्मा जब किसी प्रकार के देह की कामना करती है तो श्रीभगवान् की आज्ञा से भौतिक प्रकृति से देह की उत्पत्ति होती है जो परम-ईश्वर द्वारा संचालित यन्त्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। भगवान् जीवात्मा को एक विशेष प्रकार के यान्त्रिक देह प्रदान करता है और जीवात्मा को कर्मों के नियमानुसार कार्य करना होता है। कर्मों का विवरण इस श्लोक में दिया गया है—**कर्म पर्वनीं मायाम्**। जीवात्मा यन्त्रारूढ है और श्रीभगवान् की आज्ञानुसार वह उसका संचालन करता है। आत्मा के एक देह से दूसरे में देहान्तर का यही रहस्य है। इस प्रकार जीवात्मा इस भौतिक जगत् में कर्मों में फँस जाता है। जैसा कि भगवद्गीता (१५.७) में पुष्टि की गई है, **मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति**—"जीवात्मा मन समेत छहों इन्द्रियों के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है।"

उत्पत्ति तथा लय की समस्त क्रियाओं में जीवात्मा अपने कर्मों में फँसा रहता

है जो माया के द्वारा सम्पादित होते हैं। वह श्रीभगवान् द्वारा संचालित कम्प्यूटर के समान है। वैज्ञानिकों का कथन है कि प्रकृति मुक्त भाव से कार्य करती है, किन्तु वे प्रकृति की व्याख्या नहीं कर पाते। प्रकृति श्रीभगवान् द्वारा संचालित यन्त्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। संचालनकर्ता को जान लेने पर जीवन की समस्याएँ हल हो जाती हैं, जैसा श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (७.१९) में कहा है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

"बहुत जन्मान्तरों के अन्त में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष मुझे सब कारणों का परम कारण और सर्वव्यापक जानकर मेरी शरण में आता है। ऐसा महात्मा बड़ा दुर्लभ है।"

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चमस्कन्धे सप्तदशो अध्यायः॥ १७॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, "गंगा अवतरण" शीर्षक नामक सत्रहवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त भाष्य समाप्त हुआ।

अठारहवाँ अध्याय

जम्बूद्वीप के निवासियों द्वारा भगवान् की स्तुति

इस अध्याय में शुकदेव गोस्वामी ने जम्बूद्वीप के विभिन्न वर्षों एवं प्रत्येक में आराधित भगवान् के अवतारों का वर्णन किया है। भद्राश्ववर्ष का प्रधान शासक भद्राश्व है। वह तथा उसके सेवक हयग्रीव नामक अवतार को सदैव पूजा करते हैं। प्रत्येक कल्प के अन्त में, जब अज्ञान नामक असुर वैदिक-ज्ञान की चोरी करता है तो भगवान् हयग्रीव प्रकट होकर उसको सुरक्षित रखते हैं। फिर वे यह ज्ञान ब्रह्माजी को प्रदान करते हैं। हरिवर्ष में परम भक्त प्रह्लाद महाराज नृसिंह भगवान् की अराधना करते हैं। (नृसिंह भगवान् के प्राकट्य का वर्णन श्रीमद्भागवतम् के सातवें स्कन्ध में मिलता है)। प्रह्लाद महाराज का अनुसरण करते हुए हरिवर्ष के सभी निवासी नृसिंह भगवान् की पूजा करते हैं और उनकी भक्ति में तत्पर रहने का वर माँगते हैं। केतुमालवर्ष में श्रीभगवान् (भगवान् हृषीकेश) कामदेव के रूप में प्रकट होते हैं। ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मीजी तथा देवता-गण अहर्निश उनकी सेवा में लगे रहते हैं। भगवान् हृषीकेश सोलह अंशों में प्रकट होते हैं जो समस्त उत्साह, बल तथा प्रभाव के स्रोत हैं। यह जीवात्मा का सबसे बड़ा दोष है कि वह सदैव भयभीत रहता है, किन्तु श्रीभगवान् की कृपामात्र से सारा भय जाता रहता है। अतः भगवान् को ही ईश्वर के रूप में सम्बोधित किया जा सकता है। रम्यक वर्ष में मनु तथा समस्त वासी आज भी मत्स्यदेव की आराधना करते हैं, जिनका स्वरूप पूर्ण सतोगुण में स्थित है। मत्स्यदेव सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के शासक एवं नियामक हैं, अतः वे इन्द्र समेत समस्त देवताओं के भी निदेशक हैं। हिरण्मय-वर्ष में भगवान् विष्णु ने कच्छप (कूर्म मूर्ति) रूप धारण कर रखा है और वहाँ वे अर्यमा तथा अन्य समस्त वासियों द्वारा पूजित हैं। इसी प्रकार उत्तरकुरुवर्ष नामक खण्ड में भगवान् श्रीहरि ने शूकर रूप धारण कर रखा है और इसी रूप में वे वहाँ के निवासियों की सेवाएँ ग्रहण करते हैं।

इस अध्याय की सारी सूचनाएँ वही ठीक से समझ सकता है जो भगवान् के भक्तों की संगति करता है। इसलिए शास्त्रों की संस्तुति है कि मनुष्य को चाहिए कि भक्तों की संगति करे। यह गंगा के तट पर बसने की अपेक्षा श्रेष्ठतर है। विशुद्ध भक्तों के हृदयों में समस्त सद्भाव एवं देवताओं के श्रेष्ठ गुण वास करते हैं। किन्तु

जो भक्त नहीं हैं और जो भगवान् की माया से मोहित हैं, उनके हृदयों में ऐसे गुण नहीं रह सकते। भक्तजनों का अनुसरण करके ही यह जाना जा सकता है कि श्रीभगवान् ही एकमात्र पूजनीय श्रीविग्रह हैं। प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि इस विचार को स्वीकार करे और ईश्वर की आराधना करे। जैसा कि भगवद्गीता (१५.१५) में कहा गया है, **वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः**—"समस्त वैदिक शास्त्रों के अध्ययन का उद्देश्य भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करना है।" यदि समस्त वैदिक शास्त्र पढ़ लेने के बाद परंब्रह्म के प्रति सुप्त प्रेम जाग्रत नहीं होता तो मनुष्य को यह समझना चाहिए कि सारा श्रम व्यर्थ रहा। उसने केवल अपना समय गँवाया। श्रीभगवान् के प्रति आसक्ति न होने से वह इस भौतिक जगत् में आकर केवल पारिवारिक जीवन में व्यस्त रहता है। अतः इस अध्याय की यही शिक्षा है कि मनुष्य को चाहिए कि वह पारिवारिक जीवन से निकल कर एकान्त भाव से भगवान् के चरण-कमलों की शरण ले।

श्रीशुक उवाच

तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्ववर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य प्रियांतनुं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानां परमेण समाधिना संनिधाप्येदमभिगृणन्त उपधावन्ति ॥ १ ॥

श्रीशुकः उवाच=शुकदेव गोस्वामी बोले; **तथा च**=इसी प्रकार (जिस प्रकार इलावृत-वर्ष में शिवजी संकर्षण की पूजा करते हैं); **भद्र-श्रवा**=भद्रश्रवा; **नाम**=नामक; **धर्म सुतः**=धर्मराज के पुत्र; **तत्**=उससे; **कुल-पतयः**=कुल के मुखिया; **पुरुषाः**=समस्त वासी; **भद्राश्व-वर्षे**=भद्राश्ववर्ष नामक भूखण्ड में; **साक्षात्**=प्रकट रूप में, स्वयं; **भगवतः**=श्रीभगवान्; **वासुदेवस्य**=वासुदेव का; **प्रियाम् तनुम्**=अत्यन्त प्रिय रूप; **धर्म-मयीम्**=समस्त धार्मिक नियमों का निदेशक; **हयशीर्ष-अभिधानाम्**=हयशीर्ष (हयग्रीव भी) नामक भगवान् के अवतार; **परमेण समाधिना**=परम समाधि द्वारा; **सन्निधाप्य**=समीप आकर; **इदम्**=यह; **अभिगृणन्तः**=कीर्तन करते हुए; **उपधावन्ति**=पूजा करते हैं।

अनुवाद

श्री शुकदेव गोस्वामी बोले—धर्मराज के पुत्र भद्राश्व, भद्राश्ववर्ष नामक भूखण्ड में राज्य करते हैं। जिस प्रकार इलावृतवर्ष में भगवान् शिव संकर्षण की पूजा करते हैं उसी प्रकार भद्राश्व अपने सेवकों तथा राज्य के समस्त वासियों समेत वासुदेव के अंश प्रकाश हयशीर्ष की पूजा करते हैं। हयशीर्ष भक्तों को अत्यन्त प्रिय हैं और वे

समस्त धार्मिक विधानों के निदेशक हैं। गहरी समाधि में स्थित भद्रश्रवा तथा उसके सेवक भगवान् को सादर नमस्कार करते हैं और निम्नलिखित स्तुतियों का कीर्तन करते हैं।

भद्रश्रवस ऊचुः

ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥ २ ॥

भद्रश्रवसः ऊचुः = भद्रश्रवा तथा उसके पार्षद बोले; **ॐ** = हे ईश्वर; **नमः** = सादर नमस्कार है; **भगवते** = श्रीभगवान् को; **धर्माय** = समस्त धार्मिक विधानों के स्रोत; **आत्म-विशोधनाय** = भौतिक दूषण से शुद्ध करने वाले को; **नमः** = नमस्कार करते हैं; **इति** = इस प्रकार।

अनुवाद

भद्रश्रवा तथा उसके घनिष्ठ सेवक इस प्रकार स्तुति करते हैं—इस भौतिक जगत् में बद्धजीव के चित्त को शुद्ध करने वाले, समस्त धार्मिक विधानों के आगार श्रीभगवान् को हमारा नमस्कार है। हम उन्हें बारम्बार सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य

मूढ़ संसारी व्यक्ति यह नहीं जान पाते कि वे प्रकृति के नियमों द्वारा किस प्रकार पग-पग पर नियन्त्रित और दण्डित किये जा रहे हैं। वे बार-बार जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा रोग के प्रयोजन को जाने बिना यह मान बैठते हैं कि भौतिक जीवन की बद्धावस्था में परम सुखी हैं। फलतः भगवद्गीता (७.१५) में भगवान् कृष्ण ने ऐसे संसारी व्यक्तियों को मूढ़ कहा है—**न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।** ये मूढ़ यह नहीं जानते कि यदि वे पवित्र होना चाहते हैं तो तप और संयम द्वारा भगवान् वासुदेव (कृष्ण) की पूजा करें। यही पवित्रता मानव जीवन का ध्येय है। यह जीवन अन्धाधुन्ध इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं मिला। मनुष्य जीवन पाकर प्रत्येक प्राणी को अपने को पवित्र बनाने के लिए श्रीकृष्णभावनामृत में संलग्न करना चाहिए—**तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वंशुद्ध्येत्।** यह अपने पुत्रों के प्रति ऋषभदेव का उपदेश है। मनुष्य जन्म पाकर सभी प्रकार के तपों के द्वारा अपने को पवित्र बनाना चाहिए। **यस्माद् ब्रह्मसौख्यंत्वनन्तम्।** हम भी सुख की खोज में रहते हैं, किन्तु अज्ञानवश हम यह नहीं जान पाते कि वास्तव में अबाध सुख क्या है। यद्यपि इस भौतिक जगत् में हमें कुछ सुख प्राप्त हो सकता है, किन्तु यह क्षणिक होता है। मूर्ख भौतिकवादी इसे नहीं समझ सकता। अतः प्रह्लाद महाराज निर्देश करते हैं, **माया-सुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्**—क्षणिक भौतिक सुख के लिए ये मूढ़ बड़े-बड़े प्रबन्ध करते हैं और इस तरह जन्म-जन्मातर दिग्भ्रमित रहते हैं।

अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं
घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ।
ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्म सेवितुं
निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥ ३ ॥

अहो=अरे; **विचित्रम्**=आश्चर्यजनक; **भगवत्-विचेष्टितम्**=भगवान् की लीला; **घ्नन्तम्**=मृत्यु; **जनः**=व्यक्ति; **अयम्**=यह; **हि**=निश्चय ही; **मिषन्**=देखकर भी; **न पश्यति**=नहीं देखता; **ध्यायान्**=ध्यान करते हुए; **असत्**=भौतिक सुख; **यर्हि**=क्योंकि; **विकर्म**=वर्जित कार्य; **सेवितम्**=उपभोग करते हुए; **निर्हृत्य**=जलाकर; **पुत्रम्**=पुत्रों को; **पितरम्**=पिता को; **जिजीविषति**=दीर्घायु की इच्छा करता है ।

अनुवाद

अहो ! कितने आश्चर्य की बात है कि मूर्ख संसारी सिर पर नाचती मृत्यु की भी परवाह नहीं करता । यह जानते हुए भी कि मृत्यु ध्रुव है तो भी वह उसके प्रति उदासीन एवं लापरवाह है । चाहे उसके पिता की मृत्यु हो अथवा पुत्र की मृत्यु क्यों न हो, वह उसकी सम्पत्ति का उपभोग करना चाहता है । प्रत्येक दशा में वह प्राप्त धन से किसी की परवाह किये बिना सांसारिक सुख का उपभोग करने का प्रयत्न करता है ।

तात्पर्य

भौतिक सुख का अर्थ है आहार, निद्रा, मैथुन तथा सुरक्षा की सुविधाएँ प्राप्त होना । इस संसार में भौतिकवादी व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति के इन चार साधनों के लिए ही मृत्यु की भी परवाह न करके जीवित रहना चाहता है । अपने पिता की मृत्यु के बाद पुत्र उसकी सम्पत्ति का उपभोग इन्द्रियतृप्ति के लिए करता है । इसी प्रकार यदि पुत्र की मृत्यु होती है तो पिता उसकी सम्पत्ति का उपभोग करता है । कभी-कभी वह अपने मृत पुत्र की वधू के साथ संभोग करता है । जितने भौतिकवादी व्यक्ति हैं वे ऐसा ही आचरण करते हैं । इसीलिए शुकदेव गोस्वामी का कथन है, "श्रीभगवान् की इच्छा से घटने वाली भौतिक सुख की ये लीलाएँ कितनी विचित्र हैं ।" दूसरे शब्दों में, भौतिकवादी व्यक्ति सभी प्रकार के दुष्कर्म करना चाहते हैं, किन्तु श्रीभगवान् की इच्छा के बिना कोई कुछ भी नहीं कर सकता । तो फिर श्रीभगवान् दुष्कर्म करने की अनुमति क्यों देते हैं ? श्रीभगवान् नहीं चाहते कि कोई पाप करे । उन्हें पाप से दूर रहने के लिए वे अन्तःकरण से याचना करते हैं । किन्तु जब कोई पाप करने पर उतारू हो जाता है तो श्रीभगवान् उसे वैसा करने की अनुमति

भी दे देते हैं (मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च)। भगवान् की इच्छा के विरुद्ध कोई कुछ भी नहीं कर सकता, किन्तु वे इतने दयालु हैं कि बद्ध-आत्मा के अनुनय-विनय करने पर उस आत्मा को अपने दायित्व पर वैसा करने के लिए अनुमति प्रदान करते हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार अन्य लोकों में तथा इस ब्रह्माण्ड के पृथ्वी से अन्य भागों में, विशेषतः स्वर्गलोक में, पुत्र सदैव पिता के बाद तक जीवित रहते हैं। किन्तु इस पृथ्वीलोक पर प्रायः पुत्र अपने पिता के आगे मरता है और उसका पिता उसकी सम्पत्ति का प्रसन्नतापूर्वक उपभोग करता है। पिता या पुत्र में से किसी को भी इस वास्तविकता के दर्शन नहीं होते कि दोनों की ही मृत्यु होनी है। किन्तु जब मृत्यु आ जाती है तो उपभोग की सारी योजनाएँ धरी रह जाती हैं।

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं
पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः।
तथापि मुह्यन्ति तवाज मायया
सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम्॥ ४॥

वदन्ति=वे साधिकार कहते हैं; **विश्वम्**=समस्त भौतिक सृष्टि को; **कवयः**=विद्वान् सन्त; **स्म**=निश्चय ही; **नश्वरम्**=नश्वर, विनाशशील; **पश्यन्ति**=समाधि में देखते हैं; **च**=भी; **अध्यात्म-विदः**=आत्मज्ञानी; **विपश्चितः**=अत्यन्त ज्ञानीजन; **तथापि**=तिस पर भी; **मुह्यन्ति**=मोहित हो जाते हैं; **तव**=आपके; **अज**=ओ अजन्मा; **मायया**=माया के द्वारा; **सु-विस्मितम्**=अत्यन्त विचित्र; **कृत्यम्**=कार्य; **अजम्**=परम अजन्मा को; **नतः अस्मि**=मैं नमस्कार करता हूँ; **तम्**=उसको।

अनुवाद

हे अजन्मा! आत्मज्ञान में समुन्नत वेदविद् अन्य तार्किक तथा दार्शनिकों की तरह यह भलीभाँति जानते हैं कि भौतिक जगत् नश्वर है। वे समाधि की दशा में इस जगत् की वास्तविक स्थिति का अनुभव करते हैं। वे सत्य का भी उपदेश देते हैं। किन्तु कभी-कभी वे भी आपकी माया से मोहित हो जाते हैं। यह आपकी विचित्र लीला है, अतः मैं समझ सकता हूँ कि आपकी माया कितनी विचित्र है। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

श्रीभगवान् की माया इस भौतिक जगत् में रहने वाले बद्ध-आत्मा पर ही अपना प्रभाव नहीं जमाती वरन् कभी-कभी ऐसे परम विद्वज्जनों पर भी प्रभाव दिखाती है

जो आत्म-साक्षात्कार द्वारा इस भौतिक जगत् की वास्तविक स्थिति से भिज्ञ हैं। ज्योंही कोई यह सोचता है कि मैं देहस्वरूप हूँ (**अहं ममेति**) और इस देह से सम्बन्धित सभी वस्तुएँ मेरी हैं तो वह मोह ग्रस्त रहता है। माया से उत्पन्न यह मोह विशेषत: बद्धजीवों पर प्रभाव दिखाता है, किन्तु कभी-कभी मुक्त जीव भी इसके वश में हो जाते हैं। मुक्त जीव ऐसा व्यक्ति होता है जिसे इस भौतिक जगत् का यथेष्ट ज्ञान रहता है जिससे वह जीवन की देहात्मबुद्धि में लिप्त नहीं होता। किन्तु दीर्घकाल तक भौतिक गुणों के संसर्ग से मुक्त जीव भी कभी-कभी माया के द्वारा छले जाते हैं। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (७.१४) में कहा है, **मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते**—"मेरी शरण में आने वाले ही माया के प्रभाव से बच सकते हैं।" फलत: किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि वह माया से अप्रभावित मुक्त जीव है। प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि वह विधि-विधान का दृढ़ता से पालन करते हुए सतर्कतापूर्वक भक्ति करे। इस प्रकार वह भगवान् के चरणारविन्द पर स्थिर रह सकता है। अन्यथा थोड़ी सी भी असावधानी से प्रलय मच जायेगी। महाराज भरत इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं—जैसा हम देख चुके हैं। वे निस्सन्देह एक महान् भक्त थे, किन्तु एक क्षुद्र मृग के प्रति अपना थोड़ा ध्यान बाँटने के कारण उन्हें और दो जन्म लेने पड़े—एक तो मृग के रूप में और दूसरा जड़ भरत ब्राह्मण के रूप में। इसके बाद उनकी मुक्ति हुई और वे भगवान् के धाम पहुँच गए।

श्रीभगवान् अपने भक्त को क्षमा करने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं। किन्तु यदि भक्त उनकी इस उदारता का लाभ उठा कर जान-बूझ कर बारम्बार त्रुटि करता है तो वे निश्चय ही उसे माया के चंगुल में गिरने देकर दंडित करते हैं। कहने का आशय यह है कि वेदों के अध्ययन से प्राप्त मात्र कोरे ज्ञान द्वारा माया के चंगुल से रक्षा नहीं की जा सकती। मनुष्य को चाहिए कि वह दृढ़ता से श्रीभगवान् के चरणारविन्द की भक्ति करे।

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते
ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः।
युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे
सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥ ५ ॥

विश्व=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की; **उद्भव**=उत्पत्ति का; **स्थान**=स्थिति या पालन का; **निरोध**=लय का; **कर्म**=ये कर्म; **ते**=आपके (हे ईश्वर !); **हि**=ही; **अकर्तुः**=पृथक, विलग; **अंगीकृतम्**=वैदिक शास्त्रों द्वारा अब भी मान्य; **अपि**=यद्यपि; **अपावृत:**=इन समस्त कर्मों से अछूता; **युक्तम्**=अनुकूल, योगय; **न**=नहीं; **चित्रम्**=विचित्र; **त्वयि**=आप में; **कार्य-कारणे**=समस्त कार्यों का मूल कारण;

सर्व-आत्मनि = सभी प्रकार से; **व्यतिरिक्ते** = विलग; **च** = भी; **वस्तुतः** = मूल वस्तु।

अनुवाद

हे भगवन्! यद्यपि आप इस भौतिक जगत् की उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय से सर्वथा विरत हैं और इन कर्मों से आप प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं होते, तो भी वे आपके द्वारा किये गये माने जाते हैं। हमें इस पर विस्मय नहीं होता, क्योंकि सर्वात्मरूप से आप समस्त कारणों के कारण हैं। आप प्रत्येक वस्तु से विलग रहते हुए भी प्रत्येक वस्तु के सक्रिय तत्त्व हैं। इस प्रकार हम अनुभव करते हैं कि आपकी अचिन्त्य शक्ति के कारण ही प्रत्येक घटना घटती है।

वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान्
रसातलाद्यो नृतुरङ्गविग्रहः।
प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते
तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति ॥ ६ ॥

वेदान् = चारों वेदों को; **युग-अन्ते** = कल्प के अन्त में; **तमसा** = साक्षात् अज्ञान रूपी दैत्यों द्वारा; **तिरस्कृतान्** = चुराये जाकर; **रसातलात्** = रसातल (निम्नतम लोक) से; **यः** = जो (श्रीभगवान्); **नृ-तुरंग-विग्रहः** = आधा घोड़ा तथा आधा मनुष्य का रूप धारण कर; **प्रत्याददे** = लौटा दिया; **वै** = निश्चय ही; **कवये** = परम कवि (भगवान् ब्रह्मा) को; **अभियाचते** = उनके माँगने पर; **तस्मै** = उनको (हयग्रीव रूप); **नमः** = मेरा नमस्कार है; **ते** = आपको; **अवितथ-ईहिताय** = जिसका संकल्प विफल नहीं होता; **इति** = इस प्रकार।

अनुवाद

कल्प के अन्त में साक्षात् अज्ञान दैत्य का रूप धारण कर सभी वेदों को चुरा कर उन्हें रसातल ले गया। किन्तु श्रीभगवान् ने हयग्रीव का रूप धारण करके वेदों को पुनः प्राप्त किया और ब्रह्माजी के विनय करने पर उन्हें लाकर दे दिया। हे सत्य संकल्प श्रीभगवान्! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

यद्यपि वैदिक ज्ञान अनश्वर है, किन्तु इस भौतिक जगत् में कभी वह प्रकट होता है तो कभी लुप्त होता रहता है। जब इस भौतिक जगत् के प्राणी अज्ञान में डूब जाते हैं तो वैदिक ज्ञान लुप्त हो जाता है। किन्तु श्रीभगवान् हयग्रीव अथवा मत्स्य

भगवान् वैदिक ज्ञान की सदैव रक्षा करते हैं और वह यथासमय ब्रह्माजी के माध्यम से पुनः वितरित होने लगता है। ब्रह्माजी ही श्रीभगवान् के विश्वासपात्र प्रतिनिधि हैं, अतः जब उन्होंने वैदिक ज्ञान कोष की पुनः याचना की तो भगवान् ने उनकी इच्छा पूरी की।

हरिवर्षे चापि भगवान्नरहरिरूपेणास्ते। तद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये तद्दयितं रूपं महापुरुषगुणभाजनो महाभागवतो दैत्यदानवकुलतीर्थी-करणशीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरुपास्ते इदं चोदाहरति ॥ ७ ॥

हरि-वर्षे = हरिवर्ष नामक भूभाग में; **च** = भी; **अपि** = निस्सन्देह; **भगवान्** =
श्रीभगवान्; **नर-हरि-रूपेण** = नृसिंह देव के रूप में; **आस्ते** = अवस्थित है; **तत्-रूप-**
ग्रहण-निमित्तम् = श्रीकृष्ण (केशव) ने नृसिंह रूप जिस कारण धारण किया; **उत्तरत्र**
= अगले अध्यायों में; **अभिधास्ये** = मैं वर्णन करूँगा; **तत्** = वह; **दयितम्** = अत्यन्त
प्रिय; **रूपम्** = रूप; **महा-पुरुष-गुण-भाजनः** = प्रह्लाद महाराज, जो महापुरुषोचित
गुणों के आगार हैं; **महाभागवतः** = सर्वश्रेष्ठ भक्त; **दैत्य-दानव-कुल-तीर्थी-करण-**
शीला-चरितः = उनके कर्म तथा चरित्र इतने पवित्र थे कि अपने कुल में उत्पन्न
समस्त दैत्यों का मोक्ष करा दिया; **प्रह्लादः** = महाराज प्रह्लाद; **अत्यवधान-अनन्य**
भक्ति-योगेन = अविच्छिन्न एवं अनन्य भक्ति के द्वारा; **सह** = सहित; **तत्-वर्ष-पुरुषैः**
= हरिवर्ष के निवासियों; **उपास्ते** = नमस्कार एवं पूजन करता है; **इदम्** = यह;
च = और; **उदाहरति** = जप करता है।

अनुवाद

**श्रीशुकदेव गोस्वामी कहते हैं—हे राजन्! भगवान् नृसिंह हरिवर्ष नामक भूभाग
में वास करते हैं। मैं श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कंध में आपको बताऊँगा कि प्रह्लाद
महाराज ने किस प्रकार श्रीभगवान् को नृसिंह देव रूप धारण करने के लिए बाध्य
किया। प्रह्लाद महाराज भगवद्-भक्तों में शिरोमणि हैं और महापुरुषोचित समस्त
उत्तम गुणों के भण्डार हैं। उनके चरित्र और कर्म से उनके दैत्य वंश के समस्त
पतित जनों का उद्धार हुआ है। उन्हें भगवान् नृसिंह देव परम प्रिय हैं। इस प्रकार
प्रह्लाद महाराज अपने समस्त सेवकों तथा हरिवर्ष के समस्त वासियों सहित भगवान्
नृसिंह देव की पूजा निम्नलिखित मन्त्रोच्चार द्वारा करते हैं।**

तात्पर्य

जयदेव गोस्वामी द्वारा रचित भगवान् श्रीकृष्ण के दशावतारों की स्तुति के प्रत्येक पद्यांश में केशव नाम आता है। उदाहरणार्थ—**केशव धृत-नर-हरि-रूप जय जगदीश हरे, केशव धृत-मीन-शरीर जय जगदीश हरे** तथा **केशव धृत-वामन-रूप जय जगदीश हरे**। जगदीश शब्द से समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी का बोध होता है। उनका मूल रूप दो भुजाओं वाले श्रीकृष्ण हैं, जिसमें वे अपने हाथ में मुरली लिए खड़े हुए गायों के पालन में व्यस्त हैं। जैसा कि ब्रह्मसंहिता में कहा गया है—

चिन्तामणिप्रकरसद्मसुकल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम् ।
लक्ष्मीसहस्रशतसंभ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

"लाखों कल्पवृक्षों से आवृत चिन्तामणिनिकर-गठित गृहसमूह में सुरभि गउओं का पालन करने वाले तथा सैकड़ों-हजारों लक्ष्मी-देवियों से सेवित, मैं उन आदि पुरुष गोविन्द की आराधना करता हूँ।" इस श्लोक से हमें यह ज्ञात होता है कि गोविन्द या श्रीकृष्ण आदि-पुरुष हैं। जिस प्रकार बहती हुई नदी में असंख्य तरंगें होती हैं, उसी प्रकार भगवान् के असंख्य अवतार हैं, किन्तु श्रीभगवान् का मूल रूप श्रीकृष्ण या केशव ही है।

श्रीशुकदेव गोस्वामी नृसिंहदेव का उल्लेख प्रह्लाद महाराज के कारण करते हैं। प्रह्लाद महाराज को उनके पिता हिरण्यकशिपु ने अत्यधिक कष्ट पहुँचाया था। उसके समक्ष अपने को असहाय मानकर ही उन्होंने भगवान् को पुकारा। भगवान् ने उस दैत्यराज को मारने के लिए आधा सिंह तथा आधा पुरुष वाला नृसिंहदेव का रूप धारण किया था। यद्यपि श्रीकृष्ण ही आदि-पुरुष हैं, जिसके समान कोई अन्य नहीं है, किन्तु वे अपने भक्तों को तुष्ट रखने अथवा कोई विशेष कार्य पूरा करने के उद्देश्य से नाना रूप धारण करते रहते हैं। इसीलिए जयदेव गोस्वामी दशावतारों का वर्णन करते हुए अपनी स्तुति में केशव नाम का बारम्बार उल्लेख करते हैं।

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा। अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम् ॥ ८ ॥

ॐ = हे ईश्वर; **नमः** = नमस्कार है; **भगवते** = श्रीभगवान् को; **नर-सिंहाय** = नृसिंह नाम से विख्यात; **नमः** = नमस्कार है; **तेजः-तेजसे** = समस्त तेजों के तेज;

आविः-आविर्भव=कृपया पूर्णरूप से प्रकट करें; **वज्र-नख**=वज्र के समान नखों वाले; **वज्र-दंष्ट्र**=वज्र के समान दाँतों वाले; **कर्म-आशयान्**=कर्म के द्वारा सुखी रहने की वांछा करने वाले दैत्य; **रंधय-रंधय**=कृपया परास्त करें; **तमः**=अज्ञान; **ग्रस**=दूर करें; **ग्रस**=दूर करें; **ॐ**=हे ईश्वर; **स्वाहा**=सादर आहुति; **अभयम्**=निर्भीकता; **अभयम्**=निर्भीकता; **आत्मनि**=मेरे मन में; **भूयिष्ठाः**=आप प्रकट हों; **ॐ**=हे ईश; **क्ष्रौम्**=भगवान् नृसिंह की स्तुतियों का बीज मन्त्र ।

अनुवाद

समस्त तेज के स्रोत श्रीनृसिंहदेव ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे वज्र नख तथा वज्र दंष्ट्र ! आप इस भौतिक जगत् में हमारी आसुरी कर्म-वासनाओं को निरस्त कर दें । हमारे हृदय में प्रकट होकर हमारे अज्ञान् को भगा दें, जिससे इस भौतिक जगत् में हम निडर होकर जीवन के लिए संघर्ष कर सकें ।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (४.२२.३९) में महाराज पृथु से सनत्-कुमार कहते हैं—

यत्पादपङ्कजपलाशविलाशभक्त्या
कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः ।
तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध-
स्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥

"श्रीभगवान् के चरणारविन्द की सेवा में संलग्न भक्त कर्म-वासनाओं की ग्रन्थि से सरलता से मुक्त हो जाते हैं । किन्तु ऐसा कर पाना कठिन है इसलिए ज्ञानी तथा योगी, जो भक्त नहीं हैं, इन्द्रियतुष्टि की तरंगों को प्रयास करने पर भी रोक नहीं पाते । अतः तुम्हें उपदेश दिया जाता है कि वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण की भक्ति में अपने को लगाओ ।"

इस भौतिक जगत् में रहने वाला प्रत्येक जीव हर पदार्थ का जी भर कर उपभोग करना चाहता है । इसके लिए बद्धजीव को एक के पश्चात् दूसरा देह धारण करना पड़ता है और इस प्रकार उसकी प्रबल कामनाएँ वैसे ही बनी रहती हैं । कामना-रहित हुए बिना जन्म तथा मृत्यु के चक्र को रोका नहीं जा सकता । इसीलिए श्रील रूप गोस्वामी ने शुद्ध भक्ति का वर्णन इस प्रकार किया है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकुल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

"मनुष्य को चाहिए कि कर्म अथवा दार्शनिक चिन्तन (मीमांसा) द्वारा भौतिक लाभ की कामना किए बिना श्रीकृष्ण की दिव्य प्रेमा-भक्ति करे। यही विशुद्ध भक्ति है।" जब तक मनुष्य उन समस्त भौतिक कामनाओं से, जो अज्ञान तम से उत्पन्न होती है पूरी तरह मुक्त नहीं हो जाता, तब तक वह भगवान् की भक्ति में भली-भाँति संलग्न नहीं हो पाता। अतः हमें सदैव नृसिंहदेव की, जिन्होंने भौतिक कामना के साक्षात रूप हिरण्यकशिपु का वध किया, स्तुति करनी चाहिए। हिरण्य का अर्थ "स्वर्ण" और कशिपु का अर्थ "मुलायम शय्या" है। भौतिकवादी व्यक्ति शरीर को सदा सुखी रखना चाहते हैं और इसके लिए उन्हें प्रचुर मात्रा में स्वर्ण की आवश्यकता पड़ती रहती है। इस प्रकार हिरण्यकशिपु भौतिकवादी जीवन का सही प्रतिनिधि था। इसीलिए वह भक्तराज प्रह्लाद महाराज को तब तक कष्ट पहुँचाता रहा जब तक कि नृसिंहदेव ने उसका वध नहीं कर दिया। अतः जो भी व्यक्ति भौतिक इच्छाओं से मुक्त होने की अभिलाषा रखता है उसे चाहिए कि वह नृसिंहदेव की उसी प्रकार सादर स्तुति करे जिस प्रकार से इस श्लोक में प्रह्लाद महाराज ने की है।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥ ९ ॥

स्वस्ति=कल्याण, मंगल; **अस्तु**=हो; **विश्वस्य**=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का; **खलः**=ईर्ष्यालु (लगभग सभी); **प्रसीदताम्**=प्रसन्न हों; **ध्यायन्तु**=वे विचार करें; **भूतानि**=सभी जीवात्माएँ; **शिवम्**=मंगल; **मिथः**=परस्पर; **धिया**=अपनी बुद्धि से; **मनः**=मन; **च**=और; **भद्रम्**=शान्ति; **भजतात्**=अनुभव होने दें; **अधोक्षजे**=मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के द्वारा अगम्य श्रीभगवान् में; **आवेश्यताम्**=ध्यानमग्न हों; **नः**=हमारे; **मतिः**=बुद्धि; **अपि**=निस्सन्देह; **अहैतुकी**=बिना किसी हेतु के।

अनुवाद

इस सम्पूर्ण विश्व का कल्याण हो और सभी ईर्ष्यालु प्रसन्न हों, सभी जीवात्माएँ भक्तियोग का अभ्यास करके प्रसन्न हों, क्योंकि भक्ति करने पर ही एक दूसरे का कल्याण चिन्तन कर सकेंगे। अतः हम सभी भगवान् श्रीकृष्ण की परम भक्ति में लगकर उन्हीं के विचार में मग्न रहें।

तात्पर्य

निम्नलिखित पद्य में वैष्णव का वर्णन किया गया है—

वांछाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिंधुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥

कल्पवृक्ष के समान वैष्णव उन सबों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला है जो उसके चरणकमल की शरण में आते हैं। प्रह्लाद महाराज एक विशिष्ट वैष्णव थे। वे अपने लिए नहीं वरन् उन समस्त जीवात्माओं के लिए—चाहे वे साधु हों, ईर्ष्यालु हों या दुष्ट हों, प्रार्थना करते हैं। वे सदैव दुष्टों का, यथा अपने पिता हिरण्यकशिपु का भी, हितचिन्तन करने वाले थे। उन्होंने अपने लिए कभी कुछ नहीं माँगा, अपरंच भगवान् से अपने दैत्य पिता को क्षमा करने के लिए प्रार्थना की। यही वैष्णव का स्वभाव है, वह निरन्तर समग्र विश्व के कल्याण का चिन्तन करता है।

श्रीमद्भागवत तथा भागवत-धर्म ऐसे व्यक्तियों के लिए है जो ईर्ष्या से रहित हों (**परम निर्मत्सराणाम्**)। इसीलिए इस श्लोक में प्रह्लाद महाराज प्रार्थना करते हैं—**खलः प्रसीदताम्**, "सभी ईर्ष्यालु पुरुष प्रसन्न हों।" यह संसार ईर्ष्यालु पुरुषों से भरा हुआ है, किन्तु यदि कोई स्वयं को ईर्ष्या-मुक्त कर ले तो वह उदार हो सकता है और परमार्थ कर सकता है। जो कोई भी श्रीकृष्णभावनामृत ग्रहण करके श्रीभगवान् की सेवा में अर्पित हो जाता है उसका हृदय समस्त प्रकार के विचारों से रहित हो जाता है (**मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे**)। अतः हमें चाहिए कि हम नृसिंहदेव से अपने हृदयों में विराजने के लिए विनय करें। हमें प्रार्थना करनी चाहिए—**बहिर् नृसिंहो हृदये नृसिंहः**—"भगवान् नृसिंहदेव, मेरी समस्त कुवृत्तियों का विनाश करते हुए मेरे अन्तस्थल में विराजमान हों; मेरे मन को विमल करें जिससे मैं शान्तिपूर्वक पूजा कर सकूँ और अखिल विश्व में शान्ति प्रदान कर सकूँ।"

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस सम्बन्ध में हमें उत्तम सीख दी है। जब कोई श्रीभगवान् से प्रार्थना करता है तो वह एक न एक वर माँगता है। यहाँ तक कि निष्काम भक्त भी कोई न कोई वर माँगता है, जैसा कि श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपनी कृति **शिक्षाष्टक** में शिक्षा दी है—

अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपंकजस्थितधूलिसदृशं विचिन्तय ॥

"हे नन्दकुमार! मैं आपका चिर सेवक हूँ, किन्तु न जाने कैसे जन्म-मरण के सागर में गिर गया हूँ। कृपा करके मुझे मृत्युसागर से उबारकर अपने चरणकमल की रजकण बना लीजिए।" एक अन्य स्तुति में श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं, **मम**

जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकि त्वयि, "मुझे जन्म-जन्मान्तर आपके चरण-कमलों में विशुद्ध प्रेम और भक्ति प्राप्त हो।" जब प्रह्लाद महाराज, "ॐ नमो भगवते नृसिंहाय" का जप करते हैं तो वे ईश्वर से वर माँगते हैं, किन्तु परम वैष्णव होने के नाते वे अपनी इन्द्रिय-तुष्टि के लिए कुछ नहीं माँगते। इस स्तुति में उनकी प्रथम कामना है, **स्वस्त्यस्तु विश्वस्य**—"सारे विश्व का कल्याण हो।" इस प्रकार उन्होंने सबों पर, यहाँ तक कि परम ईर्ष्यालु व्यक्ति अपने पिता पर भी, दया दिखाने की प्रार्थना की। चाणक्य पण्डित के अनुसार ईर्ष्यालु जीवात्माएँ दो प्रकार की होती हैं—एक तो सर्प और दूसरी हिरण्यकशिपु जैसा व्यक्ति जो प्रत्येक व्यक्ति से, चाहे वह पिता हो या पुत्र ईर्ष्या करता है। हिरण्यकशिपु अपने नन्हें से पुत्र प्रह्लाद से ईर्ष्या करता था, किन्तु प्रह्लाद ने अपने पिता के हितार्थ वर माँगा। हिरण्यकशिपु भक्तों से भी ईर्ष्या करता था, किन्तु प्रह्लाद चाहते थे कि उनका पिता तथा पिता के सदृश अन्य दैत्य अपनी ईर्ष्यालु प्रकृति त्याग कर भक्तों को सताना बन्द कर दें **(खल: प्रसीदताम्)**। किन्तु कठिनाई यह है कि खल (ईर्ष्यालु) कभी प्रसन्न नहीं होते। सर्प, जो एक प्रकार का खल है, उसे तो केवल मन्त्र बल से या विशेष औषधि से प्रसन्न किया जा सकता है **(मन्त्रौषधिवश: सर्प: खलकेन निवार्यते)**। किन्तु ईर्ष्यालु (खल) पुरुष को किसी भी प्रकार प्रसन्न नहीं किया जा सकता। इसीलिए प्रह्लाद महाराज विनय करते हैं कि सभी खलों के हृदयों का परिवर्तन हो और वे दूसरों की भलाई सोचें।

यदि श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन समस्त संसार में फैल सके और भगवान् के अनुग्रह से सभी लोग इसे मानने लगें तो खल-जनों की विचारधारा में अवश्य परिवर्तन आयेगा। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे का हित-चिन्तन करेगा। अत: प्रह्लाद महाराज प्रार्थना करते हैं—**शिवं मिथो धिया**। अपने-अपने कर्मों में प्रत्येक व्यक्ति अन्यों से ईर्ष्या करता है, किन्तु श्रीकृष्णभावना में कोई किसी से ईर्ष्या नहीं करता, प्रत्येक व्यक्ति दूसरे का कल्याण सोचता है। इसीलिए प्रह्लाद महाराज विनती करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का मन श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में स्थिर हो करके उदार बने **(भजताद्-अधोक्षजे)**। जैसा कि श्रीमद्भागवत में अन्यत्र इंगित किया गया है—**(स वै मन: कृष्णपदारविन्दयो:)** और भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (१८.६५) में उपदेश दिया है—**मन्मना भव मद्भक्त:**, मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का चिन्तन करे। इससे उसका मन स्वच्छ होगा **(चेतो दर्पणमार्जनम्)**। भौतिकवादी सदैव इन्द्रियतृप्ति का चिन्तन करते हैं, किन्तु प्रह्लाद महाराज की प्रार्थना है कि भगवान् की कृपा से उनके मन परिवर्तित होंगे और वे इन्द्रियतृप्ति का चिन्तन छोड़ देंगे। यदि वे निरन्तर श्रीकृष्ण का चिन्तन करें तो सब कुछ ठीक हो जाय। कुछ लोगों का तर्क है कि यदि प्रत्येक प्राणी इस प्रकार श्रीकृष्ण का चिन्तन करे तो यह समस्त विश्व रिक्त हो जायेगा, क्योंकि सभी भगवान् के धाम चले जायेंगे।

किन्तु श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का कथन है कि ऐसा असम्भव है, क्योंकि जीवात्माएँ असंख्य हैं। यदि श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन से जीवात्माओं का एक समूह मुक्ति को प्राप्त हो जाता है तो दूसरा समूह सारे विश्व को भर लेगा।

मागारदारात्मजवित्तबन्धुषु
सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः।
यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्
सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥१०॥

मा=नहीं; **अगार**=घर; **दार**=पत्नी; **आत्म-जा**=सन्तान; **वित्त**=धन; **बंधुषु**=मित्रों एवं सम्बन्धियों के मध्य; **संगः**=साथ, लगाव; **यदि**=यदि; **स्यात्**=होना चाहिए; **भगवत्-प्रियेषु**=श्रीभगवान् के अत्यन्त प्रिय व्यक्तियों में; **नः**=हम लोगो में से; **यः**=जो कोई; **प्राण-वृत्या**=जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से; **परितुष्टः**=सन्तुष्ट; **आत्मवान्**=जिसने अपने मन को वश में कर लिया है और अपने आपको जान लिया (आत्मज्ञान) है; **सिध्यति**=सफल होता है; **अदूरात्**=शीघ्र ही; **न**=नहीं; **इन्द्रिय-प्रियः**=इन्द्रियतुष्टि में लीन व्यक्ति।

अनुवाद

हे भगवन्! हमारी प्रार्थना है कि हम पारिवारिक जीवन के बन्धन के प्रति जिसमें घर, स्त्री, सन्तान, मित्र, धन तथा सम्बन्धी सम्मिलित रहते हैं, कभी भी आकृष्ट न हों। यदि किसी से किंचित आसक्ति हो भी तो वह भक्तों से हो जिनके लिए श्रीकृष्ण ही परम प्रिय हैं। जिस व्यक्ति को आत्मसाक्षात्कार हो चुका है और जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, वह जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से तुष्ट रहता है। वह अपनी इन्द्रियतुष्टि का प्रयास नहीं करता। ऐसा व्यक्ति जल्दी ही श्रीकृष्णभावना की ओर अग्रसर होता है, किन्तु जो भौतिक वस्तुओं में अत्यधिक लिप्त रहते हैं, उनके लिए ऐसा कर पाना कठिन है।

तात्पर्य

जब श्रीचैतन्य महाप्रभु से वैष्णव अथवा श्रीकृष्णभावनाभावित व्यक्ति के कर्तव्य की व्याख्या करने के लिए अनुरोध किया गया तो उन्होंने तुरन्त कहा—**असत्संग-त्याग,—एइ वैष्णव-आचार।** वैष्णव का प्रथम कर्तव्य है कि वह ऐसे व्यक्ति की संगति तुरन्त त्याग दे जो श्रीकृष्ण का भक्त नहीं है और स्त्री, सन्तान, धन आदि

भौतिक वस्तुओं में अत्यधिक लिप्त रहता है। प्रह्लाद महाराज भी श्रीभगवान् से यही प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें ऐसे अभक्तों से दूर रखें जो भौतिक जीवन बिताते हैं। यदि वह किसी से अनुरक्त होना चाहते हैं तो मात्र भक्त से।

कभी भी भक्त की रुचि इन्द्रियों की तृप्ति के लिए अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाने की ओर नहीं होती। निस्सन्देह, जब तक कोई भी इस भौतिक जगत् में रहता है, उसे भौतिक देह चाहिए, और भक्ति करने के लिए इसका पालन होना चाहिए। शरीर का पोषण श्रीकृष्ण प्रसाद खाकर सरलता से किया जा सकता है। जैसा कि श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (९.२६) में कहा है--

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

"यदि मुझे कोई प्रेम एवं भक्ति से एक पत्र, पुष्प, फल या जल अर्पण करता है तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।" जीभ की तुष्टि के लिए व्यंजनों की संख्या में वृद्धि क्यों की जाय? भक्तों को चाहिए कि सादा से सादा भोजन करें। अन्यथा भौतिक वस्तुओं के प्रति लगाव बढ़ता जायेगा और इन्द्रियाँ प्रबल होने के कारण अधिकाधिक आनन्द चाहेंगी। इससे जीवन के असली कार्य श्रीकृष्णभावनामृत की उन्नति रुक जायेगी।

यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं
तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम्।
हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं
को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥११॥

यत्=जिनके (भक्तों के); **संग-लब्धम्**=संग से उपलब्ध; **निज-वीर्य-वैभवम्**= जिसका प्रभाव असामान्य है; **तीर्थम्**=तीर्थस्थल, यथा गंगा नदी; **मुहुः**=बारम्बार; **संस्पृशताम्**=उन स्पर्शों का; **हि**=निश्चयपूर्वक; **मानसम्**=मन के मल; **हरति**= हर लेती है; **अजः**=अजन्मा; **अन्तः**=अन्तःकरण में; **श्रुतिभिः**=कानों से; **गतः** =प्रविष्ट; **अंगजम्**=शरीर के मल या संदूषण; **कः**=कौन; **वै**=निस्सन्देह; **न**= नहीं; **सेवेत**=सेवा करेगा; **मुकुन्द-विक्रमम्**=श्रीभगवान् मुकुन्द के यशस्वी कार्य।

अनुवाद

ऐसे व्यक्तियों की संगति करने से, जिनके लिए श्रीभगवान् मुकुन्द ही सब कुछ हैं, भगवान् के यशस्वी कार्यों को सुनकर समझा सकता है। मुकुन्द के यशस्वी कार्यों को सुनकर ही भगवान् की संगति प्राप्त की जा सकती है। निरन्तर उत्सुकतापूर्वक

भगवान् के यशस्वी कार्यों का वर्णन सुनते रहने से परम सत्य श्रीभगवान् ध्वनि तरंगों के रूप में हृदय में प्रवेश करते हैं और समस्त मल को दूर कर देते हैं। दूसरी ओर यद्यपि गंगास्नान से मल तथा संदूषण घटते हैं, किन्तु स्नान तथा पवित्र स्थानों के दर्शन से दीर्घकाल के अनन्तर ही हृदय स्वच्छ हो पाता है। अतः ऐसा कौन विज्ञपुरुष होगा जो जीवन की पूर्णता के लिए भक्तों की संगति करना नहीं चाहेगा ?

तात्पर्य

निस्सन्देह गंगा स्नान से अनेक संक्रामक रोग दूर हो जाते हैं, किन्तु इससे मनुष्य का भौतिकता से आसक्त मन स्वच्छ नहीं हो सकता, जिसके कारण भौतिक जीवन में सभी प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। किन्तु जो कोई भगवान् के कार्यों का श्रवण करके उनसे प्रत्यक्ष संगति करता है वह मन की मलिनता को धोकर शीघ्र ही श्रीकृष्णभावनामृत को प्राप्त करता है। श्रीमद्भागवत (१.२.१७) में सूत गोस्वामी ने इसकी पुष्टि की है—

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥

जब कोई भगवान् के कार्यों का वर्णन सुनता है तो प्रत्येक के हृदय में वास करने वाले श्रीभगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और वे स्वयं श्रोता के मनोमल को स्वच्छ कर देते हैं। **हृद्यन्तस्थो ह्य भद्राणि विधुनोति**—वे मन के समस्त मल को धो डालते हैं। अपने मन को धो डालने पर मनुष्य श्रीकृष्णभावनामृत की अपनी मूल स्थिति में पहुँच जाता है और इस प्रकार उसका जीवन सफल हो जाता है। इसीलिए भक्तिमार्ग के सभी महान् सन्तजन श्रवण विधि की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने "हरे कृष्ण" मन्त्र के सामूहिक कीर्तन का समारम्भ किया जिससे प्रत्येक व्यक्ति श्रीकृष्ण के पवित्र नाम का श्रवण कर सके, क्योंकि "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे" के श्रवण मात्र से वह पवित्र हो जाता है (**चेतोदर्पणमार्जनम्**)। इसीलिए हमारा श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन सारे संसार में हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करता है।

जब "हरे कृष्ण" के कीर्तन से मन शुद्ध हो जाता है तो मनुष्य क्रमशः श्रीकृष्ण-भावनामृत स्थिति को प्राप्त होता है और वह श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता, श्रीचैतन्य-चरितामृत तथा "भक्तिरसामृतसिंधु" जैसे ग्रन्थों को पढ़ता है। इस प्रकार वह भौतिक दूषण से अधिकाधिक पवित्र होता जाता है। श्रीमद्भागवत (१.२.१८) में कहा गया है—

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिभर्वति नैष्ठिकी ॥

"निरन्तर श्रीमद्भागवत का श्रवण करने तथा निष्काम भक्त की सेवा से मन के सारे कष्ट दूर हो जाते हैं और पवित्र कीर्ति भगवान् के प्रति सेवाभाव स्थापित हो जाता है जिनकी प्रशंसा दिव्य गीतों द्वारा की जाती है।" इस प्रकार भगवान् के यशस्वी चरित्र के श्रवण मात्र से भक्त का हृदय पूरी तरह शुद्ध हो जाता है और उसे चिरन्तन दास के रूप में, जो भगवान् का विभिन्न अंश होता है अपनी मूल स्थिति प्रकट हो जाती है। भक्त द्वारा भक्ति में संलग्न होने पर रजो तथा तमोगुण क्रमशः पराभूत हो जाते हैं और वह सतोगुण में ही सारे कार्य करता है। उस समय उसे प्रसन्नता होती है और वह श्रीकृष्णभावना की ओर अग्रसर होता है।

सभी बड़े-बड़े आचार्यों का अभिमत है कि मनुष्यों को श्रीभगवान् के सम्बन्ध में सुनने का अवसर प्राप्त होना चाहिए। तभी सफलता निश्चित है। जितना ही अधिक हम अपने हृदयों के मल को स्वच्छ करेंगे उतना ही अधिक श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण, वैशिष्ट्य और कार्यों के प्रति आकृष्ट होंगे। श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही सार है।

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥१२॥

यस्य = जिसकी; **अस्ति** = है; **भक्तिः** = भक्ति; **भगवति** = श्रीभगवान् के प्रति; **अकिंचना** = निष्काम; **सर्वैः** = समस्त; **गुणैः** = उत्तम गुणों के द्वारा; **तत्र** = वहाँ (उस व्यक्ति में); **समासते** = निवास करते हैं; **सुराः** = समस्त देवता; **हरौ** = श्रीभगवान् में; **अभक्तस्य** = अभक्त का; **कुतः** = कहाँ; **महत्-गुणाः** = उत्तम गुण; **मनोरथेन** = मानसिक चिन्तन द्वारा; **असति** = नश्वर भौतिक जगत् में; **धावतः** = दौड़ता हुआ; **बहिः** = बाहर।

अनुवाद

जो व्यक्ति श्रीभगवान् वासुदेव के प्रति शुद्ध भक्ति उत्पन्न कर लेता है उसके शरीर में सभी देवता तथा उनके महान् गुण यथा—धर्म, ज्ञान तथा त्याग प्रकट होते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति भक्ति से रहित और भौतिक कर्मों में व्यस्त रहता है उसमें कोई सद्गुण नहीं आते। भले ही वह योगाभ्यास में दक्ष क्यों न हो अथवा अपने परिवार और सम्बन्धियों का भलीभाँति भरण-पोषण करता हो तथा जो मनोकल्पना (मीमांसा) द्वारा भगवान् की बहिरंगा-शक्ति की सेवा में तत्पर हो। भला ऐसे पुरुष में सद्गुण कैसे आ सकते हैं?

तात्पर्य

जैसा कि अगले श्लोक में व्याख्या की गई है, श्रीकृष्ण समस्त जीवात्माओं के आद्य स्रोत हैं। भगवद्गीता (१५.७) में इसकी पुष्टि हुई है जहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

"इस बद्ध जगत् में यह जीव मेरा ही शाश्वत् भिन्न-अंश है। बद्धदशा में होने के कारण यह मन और पाँच इन्द्रियों के साथ घोर संघर्ष कर रहा है।" सभी जीवात्माएँ श्रीकृष्ण के विभिन्न अंश हैं, अतः जब वे मूल श्रीकृष्णभावना को पुनः प्राप्त कर लेती हैं तो उनमें थोड़ी मात्रा में श्रीकृष्ण के महान् गुण आ जाते हैं। जब कोई नवधाभक्ति में रत होता है (**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनं। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्**) तो उसका हृदय पवित्र हो जाता है और वह श्रीकृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को तुरन्त समझ जाता है। तब उसमें श्रीकृष्णभावनामृत के आद्य गुण जागरित हो उठते हैं।

"श्रीचैतन्यचरितामृत" के अध्याय आठ में आदि लीला के अन्तर्गत भक्तों के कतिपय गुणों का वर्णन है, उदाहरणार्थ श्रीपण्डित हरिदास को अत्यन्त शिष्ट, सहनशील, शान्त, विशाल हृदय तथा गम्भीर बताया गया है। इसके अतिरिक्त वह मृदुभाषी, धैर्यवान्, विनयशील, परोपकारी, द्वैत भाव से मुक्त मन वाले तथा कपटरहित थे। ये मूलतः श्रीकृष्ण के गुण हैं और जब कोई भक्त बन जाता है तो ये गुण स्वतः उसमें प्रकट हो जाते हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत के लेखक श्रीकृष्णदास कविराज का कथन है कि वैष्णव के शरीर में समस्त गुण प्रकट होते हैं और इन्हीं सद्गुणों के आधार पर वैष्णव तथा अवैष्णव में अन्तर किया जा सकता है। उन्होंने वैष्णवों के छब्बीस गुणों की सूची प्रस्तुत की है जो इस प्रकार है--(१) वह सबों पर दयालु होता है। (२) उसका कोई शत्रु नहीं होता। (३) वह सत्यनिष्ठ होता है। (४) वह सबके समान होता है। (५) उसमें किसी प्रकार का अवगुण नहीं पाया जाता। (६) वह उदार होता है। (७) वह मृदु होता है। (८) वह सदैव स्वच्छ रहता है। (९) उसके सम्पत्ति नहीं होती। (१०) वह सभी के कल्याण के लिए कार्य करता है। (११) वह शान्त होता है। (१२) वह श्रीकृष्ण की शरणागत होता है। (१३) उसे कोई भौतिक कामना नहीं सताती। (१४) वह विनम्र होता है। (१५) वह स्थिर चित्त होता है। (१६) वह अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखता है। (१७) आवश्यकता से अधिक नहीं खाता। (१८) वह ईश्वर की माया से प्रभावित नहीं होता। (१९) सबों का आदर करता है। (२०) वह अपने सम्मान का भूखा नहीं रहता। (२१) वह अत्यन्त गम्भीर होता है। (२२) वह कृपालु होता

है। (२३) वह सखा होता है। (२४) वह कवित्वपूर्ण होता है। (२५) वह पटु होता है। (२६) वह मितभाषी होता है।

हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणा-
मात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम्।
हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे
तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥१३॥

हरिः=भगवान्; **हि**=निश्चय ही; **साक्षात्**=प्रत्यक्ष रूप में; **भगवान्**=श्रीभगवान्; **शरीरिणाम्**=समस्त देहधारियों की; **आत्मा**=आत्मा; **झषानाम्**=जलचरों के; **इव**=सदृश; **तोयम्**=जल; **ईप्सितम्**=कामना की जाती है; **हित्वा**=त्यागकर; **महान्**=महान् व्यक्ति; **तम्**=उसको; **यदि**=यदि; **सज्जते**=लिप्त हो जाता है; **गृहे**=गृहस्थ जीवन में; **तदा**=उस समय; **महत्त्वम्**=बड़प्पन; **वयसा**=आयु से; **दम्पतीनाम्**=पति-पत्नी का।

अनुवाद

जिस प्रकार जलचर प्राणी सदैव विशाल जलराशि में रहना चाहते हैं उसी प्रकार समस्त बद्धात्माएँ श्रीभगवान् के अपार अस्तित्त्व में रहने की कामना करती हैं। अतः यदि भौतिक गणना के आधार पर माना गया कोई श्रेष्ठ पुरुष किन्हीं कारणों से परमात्मा की शरण न ग्रहण कर गृहस्थ जीवन में लिप्त हो जाता है तो उसकी स्थिति निम्न श्रेणी के तरुण दम्पत्ति जैसी होती है। भौतिक जीवन के प्रति अत्यधिक आसक्ति से समस्त आध्यात्मिक गुणों का लोप हो जाता है।

तात्पर्य

यद्यपि मकर अत्यन्त भयावना पशु है, किन्तु जल के बाहर आने पर वह अशक्त हो जाता है। इसी प्रकार परमात्मा समस्त प्राणियों का स्रोत है और सभी प्राणी उसके विभिन्न अंश हैं। जब प्राणी श्रीभगवान् वासुदेव के सम्पर्क में रहता है तो वह अपनी आध्यात्मिक शक्ति को उसी प्रकार प्रकट करता रहता है जिस प्रकार जल में मकर अपनी शक्ति प्रदर्शित करता है। तात्पर्य यह कि जब जीवात्मा आध्यात्मिक जगत् में रहता है और आध्यात्मिक कार्यों में संलग्न रहता है तभी उसकी महानता के दर्शन होते हैं। अनेक गृहस्थ वेदों में पारंगत होते हुए भी गृहस्थ जीवन में लिप्त रहते हैं। उनकी तुलना जल के बाहर आये हुए मकर से की जाती है, क्योंकि वे समस्त आध्यात्मिक शक्ति से विहीन होते हैं। उनकी स्थिति उस तरुण पति-पत्न

युग्म से की जा सकती है जो अशिक्षित होते हुए पारस्परिक सुन्दरता के प्रति आकृष्ट होकर परस्पर प्रशंसा करते रहते हैं। इस प्रकार की स्थिति निम्न श्रेणी के व्यक्तियों द्वारा प्रशंसित होती हैं।

अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह परमात्मा की शरण में जाय, जो समस्त जीवात्माओं का मूल स्रोत है। किसी भी व्यक्ति को तथाकथित भौतिकवादी गृहस्थ जीवन के सुख में वृथा समय नहीं गँवाना चाहिए। वैदिक सभ्यता में पचास वर्ष की आयु तक ही इस प्रकार का पंगु जीवन बिताने की अनुमति दी जाती है। फिर तो गृहस्थ जीवन त्याग कर वानप्रस्थ अथवा संन्यास आश्रम में प्रवेश करना होता है।

तस्माद्रजोरागविषादमन्यु-
मानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ।
हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं
नृसिंहपादं भजताकुतोभयमिति ॥१४॥

तस्मात्=अतः; **रजः**=रजोगुण, कामना का; **राग**=भौतिक वस्तुओं के प्रति लगाव; **विषाद**=फिर निराशा; **मन्यु**=क्रोध; **मान-स्पृहा**=समाज में सम्मानित बनने की कामना; **भय**=भय; **दैन्य**=दीनता का; **अधिमूलम्**=मूल कारण; **हित्वा**=परित्याग करके; **गृहम्**=गृहस्थ जीवन; **संस्सृति-चक्रवालम्**=जन्म-मरण का चक्र; **नृसिह-पादम्**=भगवान् नृसिंह देव के चरणारविन्द; **भजता**=पूजा करते हुए; **अकृतः-भयम्**=निर्भीकता की शरण; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

अतः, हे असुरगण! गृहस्थ जीवन के सुख का परित्याग करके भगवान् नृसिंह देव के चरणारविन्दों की शरण ग्रहण करो, वे ही निर्भीकता की वास्तविक शरण-स्थली हैं। राग, दुर्दमनीय कामनाएँ, विषाद, क्रोध, निराशा, भय, झूठी प्रतिष्ठा की भूख इन सबका मूल कारण गृहस्थ जीवन में आसक्ति है, जिसके कारण जीवन-मरण का चक्र चलता रहता है।

केतुमालेऽपि भगवान् कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितॄणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुषायुषाहोरात्रपरिसंख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥१५॥

केतुमाले=केतुमालवर्ष में; **अपि**=भी; **भगवान्**=श्रीभगवान्, विष्णु; **कामदेव-स्वरूपेण**=कामदेव के रूप में; **लक्ष्म्याः**=लक्ष्मी देवी का; **प्रिय-चिकीर्षया**=तुष्ट करने की कामना; **प्रजापतेः**=प्रजापति की; **दुहितॄणाम्**=पुत्रियों का; **पुत्राणाम्**=पुत्रों का; **तत्-वर्ष-पतीनाम्**=उस भूभाग (वर्ष) के राजा; **पुरुष-आयुषा**=मनुष्य के जीवनकाल में (लगभग १०० वर्ष); **अहः-रात्र**=दिन तथा रातें; **परिसंख्यानानाम्**=समान संख्या वाले; **यासाम्**=जिनको (पुत्रियों का); **गर्भाः**=गर्भ; **महापुरुष**=श्रीभगवान् का; **महा-अस्त्र**=महास्त्र (चक्र); **तेजसा**=तेज या प्रभा के द्वारा; **उद्वेजित-मनसाम्**=उत्तेजित चित से; **विध्वस्ताः**=विध्वंस; **व्यसवः**=मृत; **संवत्सर-अन्ते**=वर्ष के अन्त में; **विनिपतन्ति**=गिर जाते हैं।

अनुवाद

शुकदेव गोस्वामी बोले—भगवान् विष्णु अपने भक्तों के संतोष के लिए ही कामदेव के रूप में केतुमालवर्ष में रहते हैं। इन भक्तों में लक्ष्मीजी, प्रजापति संवत्सर तथा संवत्सर के समस्त पुत्र तथा पुत्रियाँ सम्मिलित हैं, प्रजापति की पुत्रियाँ रात के तथा उनके पुत्र दिन के नियामक देवता माने जाते हैं। प्रजापति की सन्तानों की संख्या ३६,००० है जो मनुष्य के जीवन काल के प्रत्येक दिन तथा रात की संख्या के तुल्य है। प्रत्येक वर्ष के अन्त में प्रजापति की पुत्रियाँ श्रीभगवान् के चक्र को देखकर अत्यन्त उत्तेजित हो उठती हैं जिससे उन सबों का गर्भपात हो जाता है।

तात्पर्य

कामदेव श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में प्रकट होते हैं और वे ही विष्णु तत्त्व हैं। ऐसा क्यों है, इसकी व्याख्या मध्वाचार्य ने ब्रह्माण्ड पुराण से उद्धरण देकर की है—**कामदेवस्थितं विष्णुं उपास्ते**। यद्यपि यह कामदेव विष्णुतत्त्व है, किन्तु उसका शरीर आध्यात्मिक न होकर भौतिक है। भगवान् विष्णु प्रद्युम्न या कामदेव के रूप में इस भौतिक शरीर को धारण करते हैं, किन्तु फिर भी वे आध्यात्मिक रूप में आचरण करते हैं। चाहे वे भौतिक रूप धारण करें या आध्यात्मिक, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वे किसी भी दशा में रह कर आध्यात्मिक रूप में आचरण कर सकने वाले हैं। मायावादी दार्शनिक भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर को भी भौतिक मानते हैं, किन्तु उनके मतों से भगवान् की आध्यात्मिक क्रियाशीलता में कोई बाधा नहीं पहुँचती।

अतीव सुललितगतिविलासविलसितरुचिरहासलेशावलोकलीलया
किञ्चिदुत्तम्भितसुन्दरभ्रूमण्डलसुभगवदनारविन्दश्रिया रमां
रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ॥१६॥

अतीव=अत्यन्त; **सु-ललित**=सुन्दर; **गति**=चाल से; **विलास**=लीलाओं से; **विलासित**=प्रकट रूप; **रुचिर**=मनोहर; **हास-लेश**=मन्द मुसकान; **अवलोक-लीलया**=लीला पूर्ण चितवन से; **किंचित्-उत्-तंभित**=कुछ-कुछ ऊपर उठा; **सुन्दर**=सुन्दर; **भ्रूमंडल**=भौंहों से; **सुभग**=शुभ; **वदन-अरविन्द-श्रिया**=अपने कमल तुल्य मुख से; **रमाम्**=रमा अथवा लक्ष्मी देवी को; **रमयन**=आनन्दित करते हुए; **इन्द्रियाणि**=समस्त इन्द्रियों को; **रमयते**=आनन्दित होते हैं।

अनुवाद

केतुमालवर्ष में भगवान् कामदेव (प्रद्युम्न) अत्यन्त सुन्दर चाल से चलते हैं। उनकी मन्द मुसकान मनोहर है और जब वे अपनी भृकुटियों को किंचित ऊपर उठा कर लीलापूर्वक देखते हैं तो उनकी सुन्दरता बढ़ जाती है और वे लक्ष्मीजी को आनन्दित करते हैं। इस प्रकार वे अपनी दिव्य इन्द्रियों का आनन्द लेते हैं।

तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधियोगेन रमा देवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताहःसु च तद्भर्तृभिरुपास्ते इदं चोदाहरति ॥१७॥

तत्=वह; **भगवतः**=श्रीभगवान् का; **माया-मयम्**=भक्तों के लिए स्नेह से पूरित; **रूपम्**=रूप; **परम**=सर्वोच्च; **समाधि-योगेन**=प्रभु की सेवा में मन तल्लीन होने से; **रमा**=लक्ष्मी; **देवी**=दिव्य नारी; **संवत्सरस्य**=संवत्सर नामक; **रात्रिषु**=रात्रि में; **प्रजापतेः**=प्रजापति की; **दुहितृभिः**=पुत्रियों के साथ; **उपेत**=मिलकर; **अहःसु**=दिन में; **च**=भी; **तत्-भर्तृभिः**=पतियों के साथ; **उपासते**=पूजा करता है; **इदम्**=यह; **च**=भी; **उदाहरति**=जप करता है।

अनुवाद

लक्ष्मीजी संवत्सर की अवधि में दिन के समय प्रजापति के पुत्रों के साथ और रात्रि में उनकी पुत्रियों के साथ मिलकर परम दयालु कामदेव रूप में भगवान् की पूजा करती हैं। भक्ति में तल्लीन रहकर लक्ष्मीजी निम्नलिखित मन्त्रों का जप करती हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में प्रयुक्त "मायामयम्" शब्द का अर्थ मायावादियों की विवेचना के अनुसार नहीं ग्रहण करना चाहिए। माया का अर्थ प्रेम तथा मोह (भ्रम) दोनों है। जब माता अपने बालक को प्यार करती है तो वह मायामय कहलाती है। भगवान् विष्णु चाहे जिस रूप में प्रकट हों, वे अपने भक्तों पर सदैव स्नेहिल रहते हैं, अतः यहाँ मायामयम् शब्द का व्यवहार, "भक्तों के प्रति अत्यन्त स्नेहिल" अर्थ में हुआ है। श्रील

जीव गोस्वामी लिखते हैं कि मायामयम् का एक अर्थ **कृपा-प्रचुरम्** (अत्यधिक दयालु) भी हो सकता है। इसी प्रकार श्रीवीर राघव कहते हैं—**माया प्रचुरनात्मीयासंकल्पेन परिगृहीतम् इत्यर्थः ज्ञानपर्यायोऽत्र मायाशब्दः**—जब अन्तरंग सम्बन्धों के कारण कोई अत्यन्त स्नेहिल होता है तो उसे मामामय कहा जाता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने मायामयम् को माया तथा आमयम् शब्दों में विभक्त करके व्याख्या की है। वे इन शब्दों की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—जीवात्मा मोह रोग से घिरी है, जबकि भगवान् अपने भक्त को माया के चंगुल से छुड़ाने और माया के कारण उत्पन्न रोग से छुड़ाने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलायच्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥१८॥

ॐ=हे ईश्वर; **ह्राम् ह्रीम् ह्रूम्**=सिद्धि के लिए जपा जाने वाला बीज मंत्र; **ॐ**=हे ईश्वर; **नमः**=नमस्कार है; **भगवते**=श्रीभगवान् के चरण कमलों में; **हृषीकेशाय**=इन्द्रियों के स्वामी हृषीकेश को; **सर्व-गुण**=समस्त दिव्य गुणों सहित; **विशेषैः**=समस्त प्रकारों सहित; **विलक्षित**=विशेष रूप से दृष्टव्य; **आत्मने**=समस्त जीवात्माओं में; **आकूतीनाम्**=समस्त प्रकार के कार्यों का; **चित्तीनाम्**=समस्त प्रकार के ज्ञानों का; **चेतसाम्**=मन के कार्यों, यथा संकल्प तथा मानसिक प्रयत्नों का; **विशेषानाम्**=अपने-अपने लक्ष्यों का; **च**=तथा; **अधिपयते**=अधिपति तक; **षोडश-कलाय**=उत्पत्ति की सोलह कलाएँ जिनके अंगस्वरूप (यथा पाँच इन्द्रियों के विषय तथा मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ); **छन्दः-मयाय**=समस्त अनुष्ठानों के भोक्ता को; **अन्न-मयाय**=जो समस्त जीवात्माओं का भरण करता है; **अमृत-मयाय**=जो अमर करता है; **सर्व-मयाय**=जो सर्वव्यापी है; **सहसे**=शक्तिमान्; **ओजसे**=इन्द्रियों को बल प्रदान करने वाला; **बलाय**=शरीर को शक्ति प्रदान करने वाले; **कान्ताय**=समस्त जीवात्माओं के परम भर्ता या स्वामी; **कामाय**=भक्तों की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले; **नमः**=विनीत नमस्कार; **ते**=आपको; **उभयत्र**=सदैव (दिन तथा रात्रि अथवा इस तथा अगले जीवन में); **भूयात्**=शुभ हो।

अनुवाद

मेरी समस्त इन्द्रियों तथा समस्त वस्तुओं की उत्पत्ति के नियन्ता भगवान् श्रीहृषीकेश को मेरा नमस्कार है। आप समस्त दैहिक, मानसिक तथा बौद्धिक

कर्मों के अधीश्वर और उनके फलों के एकमात्र भोक्ता हैं। पाँचों इन्द्रियों के विषय तथा मन समेत ग्यारह इन्द्रियाँ (सोलह कला) उनकी आंशिक अभिव्यक्तियाँ हैं। वे समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं, जो उनकी शक्तिस्वरूपा होने के कारण उनसे अभिन्न हैं; वे प्रत्येक व्यक्ति की दैहिक और मानसिक शक्ति के कारण रूप हैं, जो उनसे अभिन्न हैं। निस्सन्देह वे समस्त जीवात्माओं की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले तथा भर्ता हैं। समस्त वेदों का ध्येय उनकी उपासना है। अतः हम सभी उन्हें सविनय नमस्कार करते हैं। वे इस जन्म में तथा अगले जन्म में सदा हमारे अनुकूल रहें।

तात्पर्य

इस श्लोक में "मायामय" शब्द की आगे भी व्याख्या की गई है कि किस प्रकार भगवान् विभिन्न दिशाओं में अपनी दया का प्रसार करते हैं। **परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते**—श्रीभगवान् की शक्तियाँ कई प्रकार से समझी जाती हैं। इस श्लोक में उन्हें प्रत्येक वस्तु—यहाँ तक कि हमारे देह, मन, कर्म, बल, शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति तथा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संकल्प का भी मूल स्रोत कहा गया है। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक वस्तु में श्रीभगवान् की शक्ति के दर्शन किये जा सकते हैं। भगवद्गीता (७.८) में कहा गया है, **रसोऽहमप्सु कौन्तेय**—जल का स्वाद भी कृष्णमय है। हमारे भरण के लिए जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है उनमें क्रियाशील तत्त्व श्रीकृष्ण ही हैं।

श्रीभगवान् की स्तुति स्वरूप इस श्लोक की रचना ऐश्वर्य की देवी रमा ने की है। यह चेतना शक्ति से ओत-प्रोत है। गुरुदेव के निर्देशानुसार सबों को इस मन्त्र का जाप करना चाहिए। इस तरह ईश्वर का पूर्ण भक्त बना जा सकता है। भौतिक बन्धन से पूर्ण छुटकारा पाने के लिए इस मन्त्र का जप करना चाहिए और मुक्ति मिलने के पश्चात् भी वैकुण्ठलोक में श्रीभगवान् की पूजा करते हुए इसे जपते रहना चाहिए। निस्सन्देह सभी मन्त्र इस जन्म तथा अगले जन्म के लिए हैं, जैसा कि श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (९.१४) में पुष्टि की है—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥

"ये महात्माजन नित्य-निरन्तर मेरा कीर्तन करते हुए, दृढ़ निश्चयपूर्वक चेष्टा करते हुए भक्तिभाव से निरन्तर मेरी उपासना करते हैं।" जो भक्त इस जीवन में तथा अगले जन्म में महामन्त्र या किसी भी मंत्र का जप करता है वह "नित्ययुक्तोपासक" कहलाता है।

स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषिकेश्वरं स्वतो
ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ।
तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं
प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्राः ॥१९॥

स्त्रियः=सभी स्त्रियाँ; **व्रतैः**=व्रत उपवास रखकर; **त्वा**=आप; **हृषीकेश्वरम्**=इन्द्रियों के स्वामी श्रीभगवान्; **स्वतः**=स्वयमेव; **हि**=निश्चय पूर्वक; **आराध्य**=आराधना करके; **लोके**=इस जगत् में; **पतिम्**=पति, स्वामी; **आश्वासते**=याचना करते हैं; **अन्यम्**=दूसरा; **तासाम्**=उन सभी स्त्रियों का; **न**=नहीं; **ते**=पति; **वै**=निस्सन्देह; **परिपान्ति**=रक्षा करने में समर्थ; **अपत्यम्**=सन्तानें; **प्रियम्**=अत्यन्त प्रिय; **धन**=सम्पत्ति; **आयूंषि**=अथवा जीवनकाल; **यतः**=क्योंकि; **अस्व-तन्त्राः**=आश्रित ।

अनुवाद

हे प्रभो ! आप निश्चित रूप से समस्त इन्द्रियों के स्वतन्त्र स्वामी हैं । अतः समस्त स्त्रियाँ जो अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए पति की कामना से आपको नमन करती हैं वे अवश्य ही मोहग्रस्त हैं । वे यह नहीं समझ पातीं कि ऐसा पति न तो उनकी और न ही उनकी सन्तानों की रक्षा कर सकता है । वह स्वयं काल, कर्मफल, तथा प्रकृति-गुणों के अधीन है जो सब आपके आश्रित हैं, अतः वह न तो सम्पत्ति की रक्षा कर सकता है और न जीवन की ।

तात्पर्य

प्रस्तुत श्लोक में लक्ष्मीदेवी उन स्त्रियों के प्रति दयाभाव प्रदर्शित कर रही हैं, जो योग्य वर पाने के उद्देश्य से भगवान् की आराधना करती हैं । यद्यपि ऐसी स्त्रियाँ सन्तान, धन, दीर्घायु तथा अपनी प्रिय वस्तुओं को प्राप्त करने की कामना करके सुखी बनना चाहती हैं, किन्तु वे वैसा नहीं कर पातीं । भौतिक जगत् में तथाकथित पति श्रीभगवान् के वश में होता है । ऐसी स्त्रियों के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जिनके पति अपने कर्मफलों के आधार पर अपनी पत्नी, सन्तान, पत्नी के धन तथा उसके जीवन का पालन नहीं कर पाते । अतः वास्तव में समस्त स्त्रियों के परम पति श्रीकृष्ण हैं । गोपियाँ मुक्त जीव होने के कारण इस तथ्य से परिचित थीं । इसीलिए उन्होंने अपने सांसारिक पतियों को त्याग कर श्रीकृष्ण को अपने वास्तविक पति के रूप में स्वीकार किया । श्रीकृष्ण न केवल गोपियों के, वरन् प्रत्येक जीवात्मा के परम पति हैं । अतः सबों को यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि श्रीकृष्ण सभी

जीवात्माओं के परम पति हैं। इसीलिए भगवद्गीता में उन्हें प्रकृति (स्त्री) कहा गया है, पुरुष (नर) नहीं। भगवद्गीता (१०.१२) में केवल श्रीकृष्ण को पुरुष कहकर सम्बोधित किया गया है—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥

"अर्जुन ने कहा, हे प्रभो! आप परम ब्रह्म, परमधाम, पावन परम-तत्त्व तथा सनातन दिव्य पुरुष हैं। आप ही चिन्मय आदिदेव अजन्मा और सर्वव्यापी हैं।"

श्रीकृष्ण आदि पुरुष हैं और जीवात्माएँ प्रकृति स्वरूपा हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण भोक्ता हैं और सभी जीवात्माएँ उनके भोगार्थ हैं। अतः यदि कोई स्त्री अपनी रक्षा के लिए संसारी पति की खोज करती है या कोई पुरुष पत्नी की कामना करता है तो वह मोहग्रस्त है। पति बनने का अर्थ होता है धन तथा सुरक्षा द्वारा पत्नी और सन्तान का पोषण। किन्तु सांसारिक पति ऐसा करने में समर्थ नहीं हो पाता, क्योकि वह कर्माधीन होता है। **कर्मणा दैव-नेत्रेण**—उसकी परिस्थितियाँ उसके गत कर्मों से निर्धारित होती हैं। अतः कोई यह गर्व करे कि वह अपनी पत्नी की रक्षा कर सकता है तो वह मोहग्रस्त ही है। श्रीकृष्ण ही एकमात्र पति हैं, अतः इस भौतिक जगत् में पति-पत्नी का सम्बन्ध कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता। चूँकि हममें विवाह करने की आकांक्षा रहती है, इसलिए श्रीकृष्ण दयापूर्वक पत्नी बनाने के लिए अनुमति देते हैं। इसी प्रकार से पारस्परिक सन्तोष के लिए स्त्री को पति बनाने की अनुमति देते हैं। ईशोपनिषद् में कहा गया है—**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा**—ईश्वर सबों को उसका प्राप्य प्रदान करते हैं। तो भी वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक जीवात्मा प्रकृति है और श्रीकृष्ण ही एकमात्र पति (भर्ता) हैं।

एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य।
यारे यैछे नाचाय, से तैछे करे नृत्य॥

(चै० चरि० आदि ५.१४२)

श्रीकृष्ण प्रत्येक प्राणी के आद्यपति हैं और अन्य समस्त जीवात्माएँ पति या पत्नी रूप में उन्हीं की इच्छा से नाच रही हैं। इन्द्रियतृप्ति के लिए तथाकथित पति अपनी पत्नी से भले एकाकार हो ले, किन्तु उसकी इन्द्रियों का संचालन हृषीकेश द्वारा होता है जो वास्तविक पति हैं।

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं
समन्ततः पाति भयातुरं जनम्।

स एक एवेतरथा मिथो भयं
नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥२०॥

सः=वह; **वै**=निस्संदेह; **पतिः**=पति; **स्यात्**=होवे; **अकुतः-भयः**=जो किसी से भयभीत नहीं है, निर्भय; **स्वयम्**=आत्म निर्भर; **समन्ततः**=पूर्णतया; **पाति** =भरण करता है; **भय-आतुरम्**=अत्यन्त भयभीत; **जनम्**=व्यक्ति; **सः**=अतः वह; **एकः**=एक; **एव**=केवल; **इतरथा**=अन्यथा; **मिथः**=एक दूसरे से; **भयम्**= भय, डर; **न**=नहीं; **एव**=निस्सन्देह; **आत्म-लाभात्**=आपकी प्राप्ति की अपेक्षा; **अधि**=महत्तर; **मन्यते**=मानी जाती है; **परम्**=अन्य वस्तु ।

अनुवाद

जो स्वयं निर्भय है, किन्तु जो सभी भयभीत व्यक्तियों को शरण प्रदान करता है, वास्तव में वही पति तथा रक्षक हो सकता है। अतः, हे प्रभो! आप ही एकमात्र पति हैं, कोई अन्य इस पद का भागी नहीं हो सकता। यदि आप एकमात्र पति न होते तो आप भी अन्यों से डरते। अतः वेदों के पारंगत व्यक्ति आपको ही प्रत्येक का स्वामी स्वीकार करते हैं और यह मानते हैं कि आप से बढ़कर कोई अन्य पति तथा रक्षक नहीं है।

तात्पर्य

यहाँ पर पति या संरक्षक की स्पष्ट व्याख्या की गई है। मनुष्य इस श्रेष्ठ पद का अर्थ समझे बिना पति, संरक्षक, शासक अथवा राजनीतिक नेता बनना चाहते हैं। इस ब्रह्माण्ड में न जाने कितने ऐसे व्यक्ति हैं जो कुछ समय के लिए अपने को पति, संरक्षक, शासक अथवा राजनीतिक नेता के रूप में घोषित करते हैं, किन्तु कालान्तर में परमेश्वर उन्हें इन पदों से हटा देता है और तुरन्त ही उनके जीवन का अन्त हो जाता है। अतः जो वास्तव में विद्वान् हैं और दिव्य जीवन में अग्रणी हैं वे श्रीभगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी नेता, पति या भर्ता को स्वीकार नहीं करते।

भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं भगवद्गीता (१८.६६) में कहा है, **अहं त्वा सर्व-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि**—"मैं तेरा सम्पूर्ण पापों से उद्धार कर दूँगा।" श्रीकृष्ण किसी से भी भयभीत नहीं होते। अपितु प्रत्येक प्राणी उन्हीं से भयभीत है। अतः वही अपने अधीन जीवात्माओं को सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं। चूँकि नामधारी नेता या तानाशाह भौतिक प्रकृति के वशीभूत हैं, अतः वे किसी को पूर्ण सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकते, भले ही वे झूठी प्रतिष्ठा पाने के लिए ऐसा दम भरते रहें। **न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्**—लोग यह नहीं जानते कि जीवन का परम उत्कर्ष श्रीभगवान् को अपना स्वामी मान लेने में है। समस्त राजनीतिक नेताओं, पतियों तथा संरक्षकों

को चाहिए कि वे अपने आपको तथा अन्यों को सर्वशक्तिमान् बताकर धोखा न देकर श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करें जिससे प्रत्येक व्यक्ति यह सीख सके कि परम पति श्रीकृष्ण के समक्ष किस प्रकार आत्मसमर्पण किया जाय।

या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं
निकामयेत्साखिलकामलम्पटा ।
तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो
यद्भग्नयाच्ञा भगवन् प्रतप्यते ॥२१॥

या=जो स्त्री; **तस्य**=उनका; **ते**=आपका; **पाद-सरोरुह**=चरणकमलों का; **अर्हणाम्**=पूजा; **निकामयेत**=पूर्णतया कामना करती है; **सा**=ऐसी स्त्री; **अखिल-काम-लम्पटा**=समस्त प्रकार की लौकिक कामनाएँ करते हुए भी; **तत्**=वह; **एव**=केवल; **रासि**=आप पुरस्कृत करते हैं; **ईप्सितम्**=कुछ अन्य वांछा; **यत**=जिससे; **भग्न-याचना**=जो आपके चरण कमलों को छोड़कर अन्य वस्तुओं की कामना करता है और इस प्रकार मग्नचित्त हो जाता है; **भगवान्**=हे ईश्वर; **प्रतप्यते**=पीड़ा को प्राप्त होता है।

अनुवाद

हे भगवान्! जो स्त्री आपके चरणकमल की आराधना विशुद्ध प्रेमवश करती है, आप उसकी समस्त कामनाओं को स्वयं ही पूरा करते हैं। यदि कोई स्त्री आपके चरणकमलों की पूजा विशेष प्रयोजन के लिए करती है, तो आप उसकी कामनाओं को भी शीघ्र पूरा करते हैं, किन्तु अन्ततः वह भग्नहृदया पश्चात्ताप करती है। अतः किसी भौतिक लाभ के लिए आपके चरणकमलों की आराधना नहीं की जानी चाहिए।

तात्पर्य

श्रील रूपगोस्वामी ने विशुद्ध भक्ति का वर्णन इस प्रकार किया है—**अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम्**—मनुष्यों को चाहिए कि वे श्रीभगवान् की आराधना किसी भौतिक कामना की पूर्ति के लिए न करें। श्रीभगवान् के चरणारविन्दों की सेवा करने का अर्थ है उन्हीं की इच्छानुकूल सेवा करना। अतः नव-दीक्षित भक्त को यह आदेश दिया जाता है कि गुरु तथा शास्त्रों के द्वारा बताये गये विधि-नियमों के अनुसार ही भगवान् की पूजा करे। इस प्रकार से भक्ति करते हुए वह क्रमशः श्रीकृष्ण में आसक्त होता है और जब उसका सुप्त प्रेम जाग्रत हो जाता है तो बिना किसी उद्देश्य के वह भगवान् की सेवा करने लगता है। ऐसी अवस्था परमावस्था

है। तब ईश्वर अयाचित ही अपने भक्त के सुख-सुविधा का ध्यान रखता है। भगवद्गीता (९.२२) में श्रीकृष्ण यह वचन देते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

श्रीभगवान् अपनी भक्ति में पूर्णतः संलग्न रहने वालों का स्वतः ध्यान रखते हैं। वे उसकी सभी प्रकार से रक्षा करते हैं और उन्हें जो कुछ चाहिए उसकी पूर्ति करते हैं। तो भला भौतिक वस्तुओं की क्योंकर कामना की जाय? ऐसी प्रार्थनाएँ वृथा हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बताते हैं कि यदि कोई भक्त भगवान् से अपनी किसी इच्छा पूर्ति की कामना करे, तो भी उसे सकाम-भक्त नहीं मानना चाहिए। भगवद्गीता (७.१६) में श्रीकृष्ण ने कहा है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

"हे भारत! विपदाग्रस्त, धन की इच्छा वाले, जिज्ञासु और ज्ञानी—ये चार प्रकार के पुण्यात्मा मेरी भक्ति करते हैं।" जो आर्त तथा अर्थार्थी श्रीभगवान् के निकट दुःख से छुटकारा पाने या कुछ धन प्राप्त करने के उद्देश्य से जाते हैं वे वैसा प्रकट होते हुए भी सकाम-भक्त नहीं हैं। वे नौसिखिया भक्त होने के कारण अज्ञानी होते हैं। अन्यत्र श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं, **उदाराः सर्व एवैते**:—वे सभी उदार हैं। प्रारम्भ में भले ही किसी भक्त के मन में कोई कामना रहे, किन्तु कालान्तर में उसका लोप हो जाता है। अतः श्रीमद्भागवत (२.३.१०) का आदेश है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

"व्यापक बुद्धि वाला पुरुष चाहे वह सकाम हो या निष्काम अथवा मोक्ष चाहने वाला हो उसे सभी प्रकार से श्रीभगवान् की आराधना करनी चाहिए।"

यदि किसी व्यक्ति को किसी प्रकार की कामना हो तो उसे श्रीभगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी से प्रार्थना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वही उसको पूर्ण करते हैं। यदि वह अपनी कामना पूर्ति के लिए किसी देवता के पास जाता है तो उसे नष्ट-बुद्धि मानना चाहिए। भगवद्गीता (७.२०) में श्रीकृष्ण का कथन है—

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥

"कामनाओं ने जिनके ज्ञान को हर लिया है, वे ही अन्य देवताओं की शरण लेकर अपने स्वभाव के अनुरूप उपासना के विधि-विधानों का पालन करते हैं।"

लक्ष्मी देवी उन समस्त भक्तों को जो भगवान् के पास कोई भौतिक कामना लेकर जाते हैं अपने अनुभव के आधार पर यही उपदेश देती हैं कि श्रीभगवान् कामदेव हैं, अतः उनसे किसी भौतिक वस्तु की याचना न की जाय, वे कहती हैं कि प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि बिना किसी कामना के भगवान् की सेवा करे। चूँकि प्रत्येक प्राणी के हृदय में श्रीभगवान् का वास है, अतः वे उन सबकी इच्छाओं को जानते हैं और समय आने पर वह उनकी समस्त आकांक्षाओं को पूरा करते हैं। अतः किसी भी प्रकार के वरदान प्राप्त करने की परवाह किये बिना हमें भगवान् की सेवा पर अवलंबित रहना चाहिए।

मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादय-
स्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियेधियः।
ऋते भवत्पादपरायणान्न मां
विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥२२॥

मत-प्राप्यते=मेरी दया प्राप्त करने के लिए; **अज**=ब्रह्माजी; **ईश**=शिवजी; **सुर**=अन्य देवता जिनके स्वामी इन्द्र, चन्द्र तथा वरुण हैं; **असुर-आदयः**=असुर भी; **ताप्यन्ते**=तप करते हैं; **उग्रम्**=कठिन; **तपः**=तपस्या; **ऐन्द्रिये धिया**=जिनके मस्तिष्क महत् इन्द्रियतृप्ति में लीन रहते हैं; **ऋते**=जब तक; **भवत्-पाद-परायणात्**=जो श्रीभगवान् के चरणारविन्द की सेवा में एकान्त भाव से तल्लीन रहते हैं; **न**=नहीं; **माम्**=मुझको; **विन्दन्ति**=प्राप्त करते हैं; **अहम्**=मैं; **त्वत्**=आप में; **हृदयाः**=जिनके हृदय; **यतः**=अतः; **अजित**=हे दुर्जेय।

अनुवाद

हे अजित! मुझे पाने के लिए इन्द्रियसुख के अभिलाषी ब्रह्मा तथा शिव आदि समस्त सुर-असुर-गण घोर तपस्या करते हैं, किन्तु आपके चरणारविन्द की सेवा में संलग्न भक्त के अतिरिक्त अन्य पर, चाहे वह कितना भी महान् क्यों न हो, मैं अनुग्रह नहीं करती। चूँकि मैं निरन्तर आपको अपने हृदय में बसाये रहती हूँ, इसलिए भक्त के अतिरिक्त अन्य किसी पर मैं अनुग्रह नहीं करती।

तात्पर्य

इस श्लोक में सौभाग्य की देवी लक्ष्मीजी स्पष्ट बताती हैं कि वे किसी संसारी

व्यक्ति पर अनुग्रह नहीं करतीं। भले ही कोई संसारी व्यक्ति दूसरे संसारी व्यक्ति की दृष्टि में कितना ही ऐश्वर्यवान् क्यों न बन जाय, ऐसे ऐश्वर्य की दात्री स्वयं लक्ष्मी देवी न होकर सौभाग्य की देवी की अंशरूपा भगवती दुर्गा देवी होती हैं। जिन्हें धन-धान्य की कामना होती है वे दुर्गादेवी की आराधना इस मंत्र से करते हैं—**धनं देहि रूपं देहि रूपपति भाजं देहि**—"हे माता दुर्गे, मुझे धन, बल, यश, पत्नी इत्यादि दें।" देवी दुर्गा को प्रसन्न करके ऐसे वर प्राप्त किये जा सकते हैं, किन्तु वे क्षणिक होने के कारण माया-सुख ही प्रदान करने वाले होते हैं। जैसा कि प्रह्लाद महाराज ने कहा है—**मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्**—जो भौतिक लाभों के लिए अत्यन्त श्रम करते हैं वे विमूढ़ हैं, क्योंकि ऐसा सुख स्थायी नहीं होता। दूसरी ओर प्रह्लाद तथा ध्रुव महाराज के समान भक्त हैं, जिन्होंने अद्वितीय ऐश्वर्य प्राप्त किया, किन्तु वह माया-सुख नहीं था। जब किसी भक्त को अद्वितीय ऐश्वर्य प्राप्त होता है तो यह ऐश्वर्य की देवी का, जो नारायण के हृदय में वास करने वाली हैं, प्रत्यक्ष दान होता है।

देवी दुर्गा की स्तुति करके प्राप्त किया हुआ ऐश्वर्य क्षणिक होता है। जैसा कि भगवद्गीता (७.२३) में कहा गया है; **अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्**—अल्पबुद्धि प्राणी ही क्षणिक सुख की कामना करते हैं। हमें ज्ञात है कि भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के एक शिष्य ने अपने गुरु की सम्पत्ति का भोग करना चाहा तो दयालु गुरु ने सहर्ष उसे ऐसा करने की अनुमति तो दे दी, किन्तु विश्व भर में श्रीचैतन्य महाप्रभु सम्प्रदाय के उपदेश देने की अपनी शक्ति नहीं दी। उपदेश देने की यह विशिष्ट शक्ति केवल उस भक्त को दी जाती है जो अपने गुरु से किसी संसारी वस्तु की कामना नहीं करता वरन् गुरु की ही सेवा करना चाहता है। दृष्टान्त के रूप में असुर रावण की कथा सटीक होगी। यद्यपि रावण ने ऐश्वर्य की देवी सीता देवी का भगवान् रामचन्द्र के अधिकार से हरण कर लेना चाहा, किन्तु वह ऐसा नहीं कर पाया। उसने जिस सीता देवी को बलपूर्वक हरण किया वह वास्तविक सीता देवी न होकर माया रूप अथवा दुर्गा देवी थीं। फलस्वरूप ऐश्वर्य की देवी की कृपा प्राप्त करने के बजाय दुर्गा देवी की शक्ति से रावण सपरिवार विनष्ट हो गया (**सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका**)।

स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं
कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम्।
बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया
क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुरिति ॥२३॥

सः=वह; **त्वम्**=आप; **मम**=मेरे; **अपि**=भी; **अच्युत**=च्युत न होने वाले;

शीर्ष्णि = शिर पर; **वन्दितम्** = पूजित; **कर-अम्बुजम्** = आपके कर-कमल; **यत्** = जो; **त्वत्** = आपके द्वारा; **अधायि** = रखे गये; **सात्वताम्** = भक्तों के ऊपर; **बिभर्षि** = आप पालन करते हैं; **माम्** = मुझको; **लक्ष्म** = श्रीलांछन चिह्न, जिसे आप वक्षस्थल पर धारण करते हैं; **वरेण्य** = पूजनीय; **मायया** = माया से, भ्रम से; **कः** = कौन; **ईश्वरस्य** = ईश्वर का; **ईहितम्** = कामनाएँ; **ऊहितुम्** = तर्क द्वारा समझना; **विभुः** = समर्थ है; **इति** = इस प्रकार।

अनुवाद

हे अच्युत! आपका कर-कमल सभी आशीर्वादों का स्रोत है। अतः आपके शुद्ध भक्त उसकी पूजा करते हैं और आप अत्यन्त दयापूर्वक उनके शिरों पर अपना हाथ रखते हैं। मेरी भी यही कामना है कि आप मेरे मस्तक पर अपना हाथ रखें, यद्यपि आप पहले से ही अपने वक्षस्थल पर लक्ष्म (चिह्न) रूप में मुझे धारण करते हैं, किन्तु इस सम्मान को मैं झूठी प्रतिष्ठा मानती हूँ। आप अपनी दया भक्तों पर ही दिखाते हैं, मुझ पर नहीं। निस्सन्देह आप सर्वसमर्थ हैं, आपके प्रयोजन को भला कौन समझ सकता है।

तात्पर्य

शास्त्रों में कई स्थलों पर श्रीभगवान् को वक्षस्थल में सतत वास करने वाली अपनी पत्नी की अपेक्षा भक्तों के प्रति अधिक दयालु दिखाया गया है। श्रीमद्भागवत (११.१४.१५) में कहा गया है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥

यहाँ श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि उन्हें ब्रह्मा, शिव, संकर्षण, लक्ष्मी, यहाँ तक कि स्वयं की अपेक्षा उनके भक्त अधिक प्रिय हैं। श्रीमद्भागवत (१०.९.२०) में अन्यत्र शुकदेव गोस्वामी कहते हैं—

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥

परमात्मा, जो सबों के मोक्षदाता हैं, ब्रह्मा, शिव, यहाँ तक कि ऐश्वर्य की देवी, जो उन्हीं की पत्नी हैं और उनके शरीर में वास करती हैं, की अपेक्षा गोपियों के प्रति अधिक दयालु दिखाई पड़ते हैं। इसी तरह श्रीमद्भागवत का यह भी कहना है (१०.४७.६०)—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजसुन्दरीणाम् ।।

"गोपियों को भगवान् से वे सभी वरदान प्राप्त हुए जो न तो लक्ष्मीजी को और न स्वर्ग की परम सुन्दरी नर्तकियों को प्राप्त हो सका। रास-नृत्य में भगवान् ने परम भाग्यशाली गोपियों के कंधों पर अपना हाथ रखकर और प्रत्येक के साथ नृत्य करके परम अनुकम्पा प्रदर्शित की भगवान् की अहैतुकी कृपा प्राप्त करने वाली गोपियों की कोई बराबरी नहीं कर सकता।"

श्रीचैतन्यचरितामृत में कहा गया है कि गोपियों के चरणचिह्नों का अनुसरण किये बिना किसी को भी श्रीभगवान् का अनुग्रह प्राप्त नहीं हो सकता। यहाँ तक कि ऐश्वर्य की देवी वर्षों तक कठिन तपस्या करके गोपियों का सा अनुग्रह नहीं पा सकीं। श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने इस बात की विवेचना व्यंकट भट्ट से "श्रीचैतन्य-चरितामृत" में की है (मध्य ९.१११–१३१)—"चैतन्यमहाप्रभु ने व्यंकट भट्ट से पूछा 'तुम्हारी आराध्या देवी लक्ष्मी सदैव नारायण के वक्षस्थल में विराजमान रहती हैं और सृष्टि की सबसे पवित्र महिला हैं। किन्तु मेरे प्रभु श्रीकृष्ण एक गोप हैं जो गायों को चराते हैं। तो फिर वह कौन सा कारण है कि ऐसी पतिव्रता मेरे प्रभु की संगिनी बनना चाहती हैं? मात्र श्रीकृष्ण का संग-लाभ उठाने के निमित्त लक्ष्मी देवी ने वैकुण्ठ का दिव्य सुख छोड़कर दीर्घकाल तक कठोर तप किया।'

"व्यंकट भट्ट ने उत्तर दिया, 'भगवान् श्रीकृष्ण तथा भगवान् नारायण एक ही हैं, किन्तु श्रीकृष्ण की लीलाएँ अधिक मधुर हैं। वे श्रीकृष्ण की शक्तियों के लिए अधिक मनमोहक हैं। चूँकि श्रीकृष्ण तथा नारायण दोनों एक ही पुरुष हैं, अतः कृष्ण के साथ लक्ष्मी का मिलन उनके पातिव्रत्य को नष्ट नहीं करता। यह अत्यन्त कुतूहलपूर्ण है कि लक्ष्मी ने जानबूझकर श्रीकृष्ण से मिलाप करना चाहा। ऐश्वर्य की देवी ने सोचा कि श्रीकृष्ण से सम्बन्ध स्थापित करने से उनका पातिव्रत भंग नहीं होगा, वरन् उन्हें रास-नृत्य का लाभ प्राप्त हो सकेगा। यदि वे स्वयं श्रीकृष्ण के साथ भोग करना चाहती हैं जो इसमें क्या दोष है ? आप क्यों उपहास कर रहे हैं ?'

"चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, 'मैं यह समझता हूँ कि लक्ष्मीजी में कोई दोष नहीं है, किन्तु तो भी वे रास-नृत्य में प्रविष्ट नहीं हो पाईं। ऐसा शास्त्रों से प्रकट होता है। दण्डकारण्य में वेदों के ज्ञानी भगवान् श्रीरामचन्द्र से मिले और उनकी तपस्या के कारण उन्हें रास-नृत्य में प्रवेश करने की अनुमति मिल गई। किन्तु क्या तुम बता सकते हो कि ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मीजी को यह सुअवसर क्यों नहीं प्राप्त हो सका ?'

"इस पर व्यंकट भट्ट या उत्तर था, 'मैं एक तुच्छ प्राणी हूँ, अतः मैं इस घटना के रहस्य को नहीं बता सकता। मेरा ज्ञान सीमित है और मैं सदैव अशान्त रहता हूँ। भला मैं परमात्मा की लीलाओं को कैसे समझ सकता हूँ? उनकी लीलाएँ लाखों सागरों से भी अगाध हैं।'

"श्रीचैतन्य महाप्रभु उत्तर दिया, 'श्रीकृष्ण में विशेष गुण हैं। वे अपने व्यक्तिगत माधुर्य प्रेम से सबके हृदयों को आकृष्ट कर लेते हैं। व्रजलोक अथवा गोलोक वृन्दावन के वासियों के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्रीकृष्ण के चरणकमल का आश्रय प्राप्त हो सकता है। किन्तु उस लोक के वासी इस तथ्य से अपरिचित हैं कि श्रीकृष्ण ही भगवान् हैं। फलतः नन्द महाराज, यशोदा देवी तथा गोपियाँ उन्हें अपने प्रिय पुत्र या प्रेमी के रूप में मानती हैं। माता यशोदा उन्हें पुत्रवत् मानती हैं और कभी-कभी उन्हें उखल से बाँध देती हैं। गोपजन उन्हें सामान्य बालक मानते हैं और वे उनके कन्धों पर चढ़ते हैं। गोलोक वृन्दावन में श्रीकृष्ण को प्रेम करने के अतिरिक्त कोई और कुछ भी नहीं सोच पाता।' "

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि व्रजभूमि के निवासियों की कृपा दृष्टि के बिना श्रीकृष्ण की संगति नहीं मिल सकती। अतः यदि कोई चाहता है कि श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष मोक्ष प्रदान करें तो उसे वृन्दावनवासियों की सेवा करनी चाहिए, क्योंकि वे भगवान् के विशुद्ध भक्त हैं।

रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवताररूपं तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक्प्रदर्शितं स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयतीदं चोदाहरति ॥२४॥

रम्यके च = रम्यकवर्ष में भी; **भगवतः** = श्रीभगवान् का; **प्रिय-तमम्** = अत्यन्त प्रिय; **मात्स्यम्** = मछली; **अवतार-रूपम्** = अवतारस्वरूप; **तत्-वर्ष-पुरुषस्य** = उस भूभाग के शासक; **मनोः** = मनु; **प्राक्** = इसके पूर्व (चाक्षुष-मन्वन्तर के अन्त में); **प्रदर्शितम्** = प्रदर्शित; **सः** = वह मनु; **इदानीम् अपि** = यहाँ तक कि आज भी; **महता भक्ति-योगेन** = महती भक्ति के द्वारा; **आराधयति** = श्रीभगवान् की आराधना करता है; **इदम्** = यह; **च** = तथा; **उदाहरति** = जप करता है।

अनुवाद

शुकदेव गोस्वामी कहते हैं—रम्यकवर्ष में अन्तिम मन्वन्तर (चाक्षुष) के अन्त में श्रीभगवान् मत्स्य रूप में प्रकट हुए, जहाँ के अधिपति वैवस्वत मनु थे। वे आज भी मत्स्य भगवान् की शुद्ध भक्ति करते हैं और निम्नलिखित मन्त्र का जप करते हैं।

ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नम इति ॥२५॥

ॐ=हे ईश्वर; **नमः**=नमस्कार है; **भगवते**=श्रीभगवान् को; **मुख्य-तमाय**= प्रथम अवतार को; **नमः**=मेरा नमस्कार है; **सत्त्वाय**=सत्त्व रूप को; **प्राणाय**= जीवन के मूलाधार को; **ओजसे**=इन्द्रियों के ओजस्वरूप; **सहसे**=समस्त बुद्धि बल के स्रोत; **बलाय**=शारीरिक शक्ति के उद्गम; **महा-मत्स्याय**=महा मत्स्यावतार को; **नमः**=नमस्कार है; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

मैं सत्त्व स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार करता हूँ। वे प्राण, शारीरिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति तथा ज्ञानेन्द्रिय शक्ति के मूल स्रोत हैं। समस्त अवतारों में प्रकट होने वाले वे महामत्स्यावतार हैं। मैं पुनः उनको नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

श्रील जयदेव गोस्वामी का गीत है—

प्रलयो पयोधि-जले धृतवान् असि वेदं
विहित-वहित्र-चरित्रं अखेदम्
केशव धृत-मीन-शरीर जय जगदीश हरे

सृष्टि रचना के तुरन्त बाद यह सारा ब्रह्माण्ड जल से मग्न हो गया। उस समय वेदों की रक्षा के लिए भगवान् श्रीकृष्ण (केशव) ने महामत्स्य के रूप में अवतार लिया। इसीलिए मनु ने मत्स्य भगवान् को मुख्यतम अर्थात् प्रथम अवतार ग्रहण करने वाला कहा है। सामान्यतः मत्स्य को तमो तथा रजोगुण से युक्त माना जाता है, किन्तु हमें यह समझना आवश्यक है कि श्रीभगवान् का प्रत्येक अवतार पूर्णतः दिव्य होता है। परमात्मा के मूल दिव्य गुण में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। इसीलिए "सत्त्वाय" शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है दिव्य धरातल पर विशुद्ध सत्त्व (अच्छाई)। भगवान् के अनेक अवतार हैं वाराहमूर्ति, कूर्ममूर्ति, हयग्रीवमूर्ति इत्यादि। किन्तु इन्हें भौतिक मानना चाहिए। वे शुद्ध सत्त्व पद पर सदैव आसीन होते हैं।

अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकै-
रदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः।

स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनय-
न्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥२६॥

अन्तः=भीतर; **बहिः**=बाहर; **च**=भी; **अखिल-लोक-पालकैः**=विभिन्न लोकों, समाजों, राज्यों आदि के नायकों द्वारा; **अदृष्ट-रूपः**=अदृश्य; **विचरसि**=विचरण करते हो; **उरु**=अत्यन्त महान्; **स्वनः**=जिसकी ध्वनि (वैदिक मंत्र); **सः**=वह; **इदम्**=यह; **वशे**=वश में; **अनयत**=ले आया; **नाम्ना**=विभिन्न नामों से, यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र; **यथा**=ठीक वैसा ही; **दारुमयीम्**=काष्ठ का बना; **नरः**=मनुष्य; **स्त्रियम्**=पुत्तली।

अनुवाद

हे ईश्वर ! जिस प्रकार नट पुतलियों को तथा पति अपनी पत्नी को वश में रखता है, उसी प्रकार आप इस ब्रह्माण्ड की समस्त जीवात्माओं को, चाहे वे ब्राह्मण हों या क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र, अपने वश में रखने वाले हैं। यद्यपि आप जन-जन के हृदयों के भीतर परम साक्षी के रूप में और उनके बाहर भी निवास करते हैं, किन्तु समाज, जाति तथा देश के तथाकथित नेता आपको समझ नहीं पाते। केवल वैदिक मन्त्रों की स्वरलहरियों को सुनने वाले आपको जान पाते हैं।

तात्पर्य

श्रीभगवान् "अन्तर्बहिः" हैं अर्थात् सबों के भीतर और बाहर विद्यमान रहते हैं। भगवान् की माया से जनित भ्रम को जीतकर उनकी अन्तः तथा वहिः उपस्थिति जानी जा सकती है। श्रीमद्भागवत (१.८.१९) में श्रीमती कुन्तीदेवी ने बताया है कि श्रीकृष्ण **नटो नाट्यधरो यथा,** नाटक के नट की भाँति प्रकट होते हैं। भगवद्गीता (१८.६१) में श्रीकृष्ण कहते हैं, **ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**—"हे अर्जुन, ईश्वर प्राणीमात्र के हृदय में स्थित हैं।" श्रीभगवान् सबों के हृदयों के भीतर और बाहर उपस्थित रहते हैं। हृदय के भीतर वे परमात्मा हैं, जो निदेशक तथा साक्षी तुल्य हैं। यद्यपि ईश्वर हमारे हृदयों में वास करते हैं, किन्तु अज्ञानी कहते फिरते हैं कि ईश्वर कहाँ हैं, मुझे उनके दर्शन कराओ।

प्रत्येक प्राणी श्रीभगवान् के वश में उसी प्रकार है जिस प्रकार नाचने वाली पुतलियाँ नट के वश में रहती हैं, अथवा पति के वश में पत्नियाँ। स्त्री की उपमा पुतली (दारुमयी) से दी गई है, क्योंकि वह पराधीन है। उस पर मनुष्य सदैव शासन करता है। तो भी, झूठी प्रतिष्ठावश स्त्रियों का एक वर्ण स्वतन्त्र रहना चाहता है। स्त्रियाँ तो स्त्रियाँ, समस्त जीवात्माएँ प्रकृति (स्त्री) हैं, अतः वे भगवान् पर

आश्रित हैं, जैसा कि श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में स्वयं कहा है (**अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्**)। जीवात्मा कभी भी स्वतन्त्र नहीं है। सभी दशाओं में वह भगवान् की कृपा पर आश्रित है। भगवान् ने मानव समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। इन वर्गों में विभाजित किया और आदेश दिया कि अपने-अपने वर्ण के नियमों का पालन करें। इस प्रकार समाज के सभी सदस्य उनके वश में रहते हैं। फिर भी कुछ मूर्ख लोग ईश्वर की सत्ता को नकारते हैं।

आत्मसाक्षात्कार का अर्थ है भगवान् की तुलना में अपनी गौण स्थिति को समझना। जब मनुष्य को ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो वह श्रीभगवान् की शरण ग्रहण करता है और माया के चंगुल से छुटकारा पा लेता है। दूसरे शब्दों में, जब तक मनुष्य भगवान् के चरणकमल में आत्मसमर्पण नहीं कर देता, तब तक माया उसे विभिन्न रूपों में वशीभूत करती रहती है। इस भौतिक जगत् में कोई इनकार नहीं कर सकता कि वह वश में है। भगवान् नारायण इस भौतिक अस्तित्व से परे हैं और वही सबको वश में रखते हैं। इस वैदिक मंत्र से इसकी पुष्टि होती है—**एको ह वै नारायण आसीत्**। मूर्ख लोग नारायण को सामान्य भौतिक अस्तित्व के धरातल पर मानते हैं वे जीवात्मा की प्राकृतिक वैधानिक स्थिति से परिचित नहीं हैं, इसलिए वे दरिद्रनारायण, स्वामीनारायण या मिथ्यानारायण जैसे शब्द गढ़ लेते हैं। किन्तु नारायण वास्तव में सबों के परम नियन्ता हैं। यही ज्ञान आत्मसाक्षात्कार है।

यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा
हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च ।
पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः
सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥२७॥

यम्=जिसको (आपको); **लोक-पालाः**=इस ब्रह्माण्ड के महान् नेता, जिनमें ब्रह्मा प्रथम हैं; **किल**=अन्यों की क्या कहें; **मत्सर-ज्वराः**=जिन्हें ईर्ष्या का ज्वर चढ़ा हुआ है; **हित्वा**=परित्याग करके; **यतन्तः**=यत्न करते हुए; **अपि**=यद्यपि; **पृथक**=अलग से; **समेत्य**=सम्मिलित; **च**=भी; **पातुम्**=रक्षा करना; **न**=नहीं; **शेकुः**=समर्थ; **द्वि-पदः**=दो पैर वाले; **चतुः-पदः**=चार पाँव वाले; **सरीसृपम्**=रेंगने वाले; **स्थाणु**=जड़; **यत्**=जो भी; **अत्र**=इस भौतिक जगत् के भीतर; **दृश्यते**=दीख पड़ता है।

अनुवाद

हे ईश्वर ! इस ब्रह्माण्ड के बड़े से बड़े लोकपाल, यथा ब्रह्मा तथा अन्य देवता से लेकर इस संसार के राजनीतिक नेता तक, सभी आपकी सत्ता के प्रति ईर्ष्यालु

हैं। किन्तु आपकी सहायता के बिना वे न तो पृथक-पृथक, न ही सम्मिलित रूप से इस ब्रह्माण्ड के असंख्य जीवों का पालन कर सकते हैं। आप समस्त मनुष्यों, पशुओं यथा गाय, गधा तथा समस्त वनस्पतियों, रेंगने वाले जीवों, पक्षियों, पर्वतों तथा इस संसार में जो भी दिखाई पड़ता है उसके एकमात्र पालक हैं।

तात्पर्य

संसारी व्यक्तियों में ईश्वर की सत्ता से स्पर्धा करना फैशन बन चुका है। जब नामधारी वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालाओं में जीव की सृष्टि करने का प्रयास करते हैं तो उसका उद्देश्य श्रीभगवान् की प्रतिभा एवं शक्ति को चुनौती देना होता है। यही माया कहलाता है। यह वैकुण्ठलोक में भी जहाँ ब्रह्मा, शिव आदि देवता वास करते हैं व्याप्त है। इस संसार में अपने समस्त प्रयासों के असफल होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति झूठी प्रतिष्ठा से फूला रहता है। जब गरीबों की सहायता करने वाले नामधारी परोपकारकर्ताओं के पास श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्य जाते हैं तो वे कहते हैं कि आप लोग वृथा ही अपना समय नष्ट करते हैं, हमलोग ही असंख्य भूखे जनसमूह का भरण करने वाले हैं। दुर्भाग्यवश कि उनके इने-गिने प्रयास, चाहे व्यष्टि रूप से हों या समष्टि रूप में, किसी समस्या का हल नहीं ढूंढ़ पाते।

कभी-कभी नामधारी स्वामी लोग दरिद्रों को भोजन देने के इच्छुक रहते हैं, वे उन्हें दरिद्रनारायण समझते हैं। वे मूल परम-नारायण की अपेक्षा कृत्रिम दरिद्र-नारायण की सेवा को वरीयता प्रदान करते हैं। उनका कहना है कि भगवान् नारायण की सेवा को बढ़ावा देने की अपेक्षा संसार के भूखे मनुष्यों की सेवा करना श्रेष्ठ है। दुर्भाग्यवश ऐसे भौतिकवादी, व्यष्टि रूप से या संयुक्त राष्ट्र के रूप में समष्टित अपनी योजनाएँ पूरी नहीं कर पाते। सत्य तो यह है कि करोड़ों मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों तथा वृक्ष —यही नहीं सम्पूर्ण जीवात्माओं का भरण श्रीभगवान् द्वारा अकेले ही किया जाता है। **एकोबहूनां यो विदधाति कामान्**—एक ही श्रीभगवान् सभी जीवों की अवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हैं। भगवान् श्रीनारायण की सत्ता को चुनौती देना असुरों का कार्य है। किन्तु कभी-कभी माया के वशीभूत होकर सुर अथवा भक्तजन भी किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अपने को सारे ब्रह्माण्ड का नियामक घोषित करने लगते हैं। ऐसी घटनाओं का उल्लेख श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में मिलता है जहाँ ब्रह्मा और इन्द्र को गर्व होता है और अन्त में वे श्रीकृष्ण द्वारा अनुशासित होते हैं।

भवान् युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि
क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम्।

मया सहोरु क्रमतेऽज ओजसा
तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नम इति ॥२८॥

भवान्=आप; **युग-अन्त-अर्णवे**=प्रलय कालीन सागर में; **ऊर्मि-मालिनि**=उत्ताल तरंगों के स्वामी; **क्षोणीम्**=पृथ्वी; **इमाम्**=यह; **ओषधि-वीरुधाम्**=समस्त प्रकार की ओषधियों एवं लताओं की; **निधिम्**=आगार, संग्रह; **मया**=मेरे; **सह**=साथ; **उरु**=महान्; **क्रमते**=आप भ्रमण करते रहे; **अज**=हे अजन्मा; **ओजसा**=गतिपूर्वक; **तस्मै**=उसको; **जगत्**=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का; **प्राण-गण-आत्मने**=जीवन का परम स्रोत; **नमः**=नमस्कार है; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

हे सर्वशक्तिमान् ! कल्पान्त में यह पृथ्वी, जो सभी प्रकार की जड़ी बूटियों तथा वृक्षों की आगार है, जल की बाढ़ से प्रलयकारी तरंगों के नीचे डूब गई। उस समय आपने पृथ्वी सहित मेरी रक्षा की और अत्यन्त वेग से समुद्र में भ्रमण करते रहे। हे अजन्मा ! आप इस समग्र सृष्टि के वास्तविक पालनकर्ता हैं, इसलिए आप ही सभी जीवात्माओं के कारणस्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

ईर्ष्यालु व्यक्ति यह नहीं समझ पाते कि ईश्वर कितने आश्चर्यजनक ढंग से इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन और फिर उसका संहार करते हैं। किन्तु ईश्वर के भक्तजन इसे अच्छी तरह समझते हैं। वे यह देख पाने में समर्थ हैं कि इस भौतिक प्रकृति के पीछे ईश्वर का कैसा हाथ है।

भगवद्गीता (९.१०) में श्रीकृष्ण कहते हैं—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

"हे कुन्तीपुत्र ! यह अपरा प्रकृति (माया) मेरी अध्यक्षता में कार्य करती हुई सम्पूर्ण चराचर प्राणियों को रचती है। इसी कारण इस जगत् का बारम्बार सृजन और संहार होता है।" प्रकृति के समस्त विस्मयकारी परिवर्तन श्रीभगवान् के निरीक्षण में घटित होते हैं। ईर्ष्यालु व्यक्ति इसे नहीं देख पाते, किन्तु जो भक्त हैं वे अशिक्षित होकर भी प्रकृति की इन क्रियाओं के पीछे भगवान् के हाथ को देखते हैं।

हिरण्मयेऽपि भगवान्निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य तत्प्रियतमां तनुमर्यमा सह वर्षपुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति मन्त्रमिमं चानुजपति ॥२९॥

हिरण्मये=हिरण्मयवर्ष में; **अपि**=निस्सन्देह; **भगवान्**=श्रीभगवान्; **निवसति**=निवास करते हैं; **कूर्म-तनुम्**=कछुए का शरीर; **बिभ्राणः**=प्रकट करते हुए; **तस्य**=श्रीभगवान् का; **तत्**=वह; **प्रिय-तमाम्**=सर्वाधिक प्रिय; **तनुम्**=शरीर; **अर्यमा**=हिरण्मय वर्ष का प्रमुख वासी अर्यमा; **सह**=साथ; **वर्ष-पुरुषैः**=उस भूभाग के व्यक्ति; **पितृ-गण-अधिपतिः**=जो पितरों का प्रतिनिधि है; **उपधावति**=भक्ति-पूर्वक पूजा करता है; **मन्त्रम्**=मन्त्र को; **इमम्**=इस; **च**=भी; **अनुजपति**=जपता है ।

अनुवाद

शुकदेव गोस्वामी बोले, हिरण्मयवर्ष में भगवान् विष्णु कच्छप रूप में निवास करते हैं। इस परम प्रिय एवं सुन्दर रूप की आराधना हिरण्मयवर्ष के प्रमुख प्रतिनिधि अर्यमा तथा उस वर्ष के अन्य वासियों द्वारा सदैव की जाती है। वे निम्नलिखित स्तुति करते हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में **प्रियतम** (सर्वाधिक प्रिय) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द है। प्रत्येक भक्त भगवान् के किसी विशेष रूप को ही अपना प्रिय बनाता है। कुछ सौन्दर्य प्रेमी ऐसा सोचते हैं कि भगवान् के कूर्म, शूकर तथा मत्स्य अवतार अत्यन्त सुन्दर नहीं हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि भगवान् का प्रत्येक रूप अत्यन्त तेजवान है। चूँकि उनके तेजों में से अनन्त सौन्दर्य एक है, अतः भगवान् के समस्त अवतार अत्यन्त सुन्दर हैं और भक्त लोग ऐसा ही सोचते हैं। किन्तु जो भगवान् के भक्त नहीं हैं वे श्रीकृष्ण के अवतारों को सामान्य संसारी प्राणी मानते हैं, फलतः वे सुन्दर तथा असुन्दर में अन्तर पाते हैं। भक्त भगवान् के किसी एक विशेष रूप को पूजता है, क्योंकि वह उसी रूप में उन्हें देखना चाहता है। ब्रह्मसंहिता में कहा गया है (५.३३)— **अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपमाद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च**। भगवान् का परम सुन्दर रूप सदैव यौवनपूर्ण रहता है। विशिष्ट सम्प्रदाय के सेवक उसी रूप को परम सुन्दर मानकर लगातार भक्ति करते हैं।

ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणायानुपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥३०॥

ॐ=हे ईश्वर; **नमः**=नमस्कार है; **भगवते**=श्रीभगवान् को; **अकूपाराय**=कूर्म के रूप में; **सर्व-सत्त्व-गुण-विशेषणाय**=जिसका रूप शुद्ध सत्त्वमय है; **अनुपलक्षित-स्थानाय**=आप को, जिनका स्थान अनिश्चित है; **नमः**=नमस्कार है; **वर्ष्मणे**=काल की मर्यादा के बाहर आप को; **नमः**=नमस्कार है; **भूम्ने**=जो सर्वत्र गति करता है ऐसे महान् को; **नमः नमः**=बारम्बार नमस्कार है; **अवस्थानाय**=सर्वाधार; **नमः**=नमस्कार है; **ते**=आपको।

अनुवाद

हे प्रभो ! कच्छप स्वरूप आपको मेरा सादर नमस्कार है। आप समस्त दिव्य गुणों के आगार हैं। आप भौतिकता से रहित तथा परम सत्त्व में स्थित हैं। आप जल में विचरण करते रहते हैं, किन्तु कोई आपका पता नहीं लगा पाता। अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ। अपनी दिव्य स्थिति के कारण आप भूत, वर्तमान तथा भविष्य से बँधे नहीं रहते। आप सर्वत्र सर्वाधार रूप में उपस्थित रहते हैं, अतः मैं बारम्बार आपको नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

ब्रह्मसंहिता में कहा गया है कि=**गोलोक एव निवसत्यखिलात्म भूतः**=आध्यात्मिक जगत् में सबसे ऊपर के लोक, गोलोक में भगवान् सदैव रहते हैं। साथ ही वे सर्वव्यापी हैं। ऐसा विरोधाभास केवल श्रीभगवान् पर ही लागू हो सकता है जो समस्त तेजों से पूर्ण हैं। भगवान् की सर्वव्यापकता की पुष्टि भगवद्गीता से (१८.६१) होती है जहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं, **ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**—"हे अर्जुन ! परमेश्वर प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थित हैं।" भगवद्गीता में ही अन्यत्र वे कहते हैं, **सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च**—मैं सब प्राणियों के हृदय में बैठा हूँ और मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और विस्मृति होती है। अतः यद्यपि भगवान् सर्वत्र विद्यमान हैं, किन्तु वे सामान्य नेत्रों से नहीं देखे जा सकते। जैसा कि अर्यमा कहते हैं, श्रीभगवान् "अनुपलक्षितस्थान" हैं। अर्थात् उनको कोई ढूँढ़ नहीं सकता। यही श्रीभगवान् की महानता है।

यद्रूपमेतन्निजमाययार्पित-
मर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ।
संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भनात्-
तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥३१॥

यत् = जिसका; **रूपम्** = रूप; **एतत्** = यह; **निज-मायया अर्पितम्** = आपकी माया से प्रकट; **अर्थ-स्वरूपम्** = यह समस्त दृश्य सार्वभौम अभिव्यक्ति (प्रकाश); **बहु-रूप-रूपितम्** = अनेक रूपों में प्रकट; **संख्या** = गणना; **न** = नहीं; **यस्य** = जिसका; **अस्ति** = है; **अयथा** = झूठे ही; **उपलम्भनात्** = देखने से; **तस्मै** = उसे (भगवान् को); **नमः** = मेरा नमस्कार; **ते** = आपको; **अव्यपदेश** = मानसिक चिन्ता द्वारा निश्चित न हो सकने वाला, अनिवर्चनीय; **रूपिणे** = जिसका सत्य रूप ।

अनुवाद

हे भगवन्! यह दृश्य सार्वभौमिक अभिव्यक्ति आपकी अपनी सृजनात्मक शक्ति का प्रदर्शन है। इसके अन्तर्गत अनन्त रूप आपकी बहिरंगा शक्ति (माया) का प्रदर्शन मात्र है, अतः यह विराट रूप आपका वास्तविक रूप नहीं है। आपके वास्तविक रूप का दर्शन तो केवल भक्तजन दिव्य भावना में कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं। इसलिए मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

मायावादी दार्शनिक भगवान् के विराट रूप को ही सत्य तथा आत्मरूप को मायास्वरूप मानते हैं। उनकी त्रुटि इस एक उदाहरण द्वारा समझी जा सकती है। अग्नि में तीन तत्त्व होते हैं—उष्मा तथा प्रकाश, जो शक्तिस्वरूप है वह है स्वयं अग्नि। यह कोई भी समझ लेता है कि मूलतः अग्नि ही वास्तविक है और उष्मा तथा प्रकाश अग्नि के शक्ति मात्र हैं। वे अग्नि की स्वरूपहीन शक्तियाँ होने के कारण अवास्तविक हैं। केवल अग्नि में रूप होता है, अतः यही उष्मा तथा प्रकाश का वास्तविक रूप है। भगवद्गीता (९.४) में श्रीकृष्ण कहते हैं, **मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना**—मेरे प्राकृत इन्द्रियों से अतीत अव्यक्त रूप द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। इस प्रकार भगवान् का अव्यक्त रूप अग्नि की उष्मा तथा प्रकाश के प्रसार की भाँति है। भगवद्गीता में भगवान् का यह भी वचन है—**मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः**—यह सम्पूर्ण भौतिक सृष्टि श्रीकृष्ण की शक्ति पर आश्रित है, चाहे वह भौतिक हो, आध्यात्मिक या तटस्था शक्ति हो। किन्तु उनका रूप उनकी शक्ति के विस्तार से रहित है, अतः वह व्यक्तिगत रूप में उपस्थित नहीं है। श्रीभगवान् की शक्ति का अकल्पनीय विस्तार अचिन्त्य शक्ति कहलाती है। अतः बिना भक्त बने कोई भी भगवान् के सत्य रूप को जान नहीं पाता।

जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं
चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम् ।

द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्र-
द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥३२॥

जरायु-जम् = गर्भ से उत्पन्न; **स्वेद-जम्** = पसीने से उत्पन्न; **अंड-जम्** = अंडे से उत्पन्न; **उद्भिदम्** = पृथ्वी से उत्पन्न; **चर-अचरम्** = चर तथा अचर (स्थावर तथा जंगम); **देव** = देवता; **ऋषि** = ऋषि; **पितृ** = पितृलोक के वासी; **भूतम्** = वायु, जल तथा क्षिति नामक तत्त्व; **ऐन्द्रियम्** = सभी इन्द्रियाँ; **द्यौः** = उच्चतर लोक; **खम्** = आकाश; **क्षितिः** = पृथ्वी; **शैल** = पर्वत; **सरित** = नदियाँ; **समुद्र** = सागर; **द्वीप** = द्वीप; **ग्रह-ऋक्ष** = नक्षत्र तथा ग्रह; **इति** = इस प्रकार; **अभिधेयः** = विभिन्न नामों से अभिहित; **एकः** = एक ।

अनुवाद

हे प्रभो ! आप अपनी शक्तियों को अनन्त रूपों में प्रदर्शित करने वाले हैं—यथा जरायुज, स्वेदज, अंडज, उद्भिद्, समस्त जड़ और चेतन जीवात्माएँ जिनमें देवता, ऋषि तथा पितर सम्मिलित हैं, बाह्याकाश, स्वर्गलोक तथा पृथ्वीलोक जिसमें पर्वत, नदियाँ, समुद्र, सागर, द्वीप सम्मिलित हैं । निस्संदेह समस्त ग्रह तथा नक्षत्र आपकी विभिन्न शक्तियों की अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं, किन्तु मूलतः आप एक हैं, अन्य कोई नहीं । अतः आपसे परे कोई नहीं है । यह सम्पूर्ण सार्वभौमिक अभिव्यक्ति झूठ नहीं है, वरन् आपकी अकल्पनीय शक्ति की क्षणिक अभिव्यक्ति है ।

तात्पर्य

यह श्लोक **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या** के सिद्धान्त को जिसके अनुसार ब्रह्म सत्य है, जबकि यह भौतिक जगत् मिथ्या (असत्य) है, पूर्णतया नकारता है । कुछ भी मिथ्या नहीं है । एक वस्तु स्थायी हो सकती है और दूसरी अस्थायी, किन्तु स्थायी तथा अस्थायी दोनों ही तथ्य हैं । उदाहरणार्थ, यदि कोई क्षण भर के लिए क्रुद्ध हो जाता है तो यह कोई नहीं कहेगा कि उसका क्रोध असत्य है । यह केवल क्षणिक है । दैनिक जीवन में अनुभव की जाने वाली प्रत्येक वस्तु इसी प्रकार की है; यह क्षणिक होकर भी सत्य है ।

इस श्लोक में विभिन्न स्रोतों से आगत नाना प्रकार की जीवात्माओं का सुस्पष्ट वर्णन मिलता है । इनमें से कुछ गर्भ से उत्पन्न होते हैं और कुछ मनुष्य के पसीने से अन्य अण्डे से और कुछ पृथ्वी से अंकुरित होते हैं । जीवात्मा अपने पूर्व कर्मों के अनुसार विभिन्न परिस्थितियों में जन्म लेता है । यद्यपि उसका शरीर भौतिक होता है, किन्तु यह कभी मिथ्या नहीं होता । यह किसी भी व्यक्ति को स्वीकार्य नहीं होगा कि मनुष्य का शरीर मिथ्या है, इसलिए हत्या की कोई प्रतिक्रिया नहीं होगी । हमारे

क्षणिक शरीर अपने कर्मों के अनुसार हमें प्राप्त होते हैं और इसी शरीर से हमें जीवन की वेदनाओं और आनन्दा को भोगना चाहिए। हमारे शरीर मिथ्या नहीं कहे जा सकते; हाँ वे क्षणिक अवश्य हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भगवान् की शक्ति स्वयं भगवान् की भाँति स्थायी है भले ही यह शक्ति कभी प्रकट हो तो कभी अप्रकट रहे। जैसा कि वेदों में सार-रूप में कहा गया है--**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**—अर्थात् प्रत्येक प्राणी ब्रह्म है।

यस्मिन्नसंख्येयविशेषनाम-
रूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ।
संख्या यया तत्त्वदृशापनीयते
तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते इति ॥३३॥

यस्मिन्=जिसमें (श्रीभगवान् में); **असंख्येय**=अगणित; **विशेष**=विशिष्ट; **नाम**=नाम; **रूप**=स्वरूप; **अकृतौ**=शारीरिक स्वरूप से युक्त; **कविभिः**=विद्वान् व्यक्तियों के द्वारा; **कल्पिता**=कल्पित की गई; **इयम्**=यह; **संख्या**=गिनती; **यया**=जिसके द्वारा; **तत्त्व**=सत्य का; **दृशा**=ज्ञान से; **अपनीयते**=निकाल लेते हैं; **तस्मै**=उसे; **नमः**=नमस्कार; **सांख्य-निदर्शनाय**=जो सांख्य दर्शन के उद्‌घाटक हैं; **ते**=आपको; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

हे प्रभो! आपका नाम, रूप तथा आकृति असंख्य रूपों में अभिव्यक्त होती है। निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि आप कितने रूपों में विद्यमान हैं, फिर भी कपिलदेव जैसे मुनियों ने आपके स्वयं के अवतार में चौबीस तत्त्व निश्चित किये हैं। अतः यदि कोई सांख्य दर्शन में रुचि रखता है तो उसे चाहिए कि विभिन्न सत्यों को वह आपसे सुने। दुर्भाग्यवश जो आपके भक्त नहीं हैं वे केवल तत्त्वों की गणना कर पाते हैं, किन्तु आपके वास्तविक रूप से अनभिज्ञ रहते हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

दार्शनिक तथा वैज्ञानिक लाखों-करोड़ों वर्षों से सम्पूर्ण विश्व-स्थिति के अध्ययन करने का प्रयास करते रहे हैं, किन्तु नामधारी वैज्ञानिक या दार्शनिक को काल्पनिक शोध उसकी मृत्यु के साथ ही अवरुद्ध हो जाती है और प्रकृति के नियम उसके कार्य की परवाह किये बिना चलते रहते हैं।

भौतिक सृष्टि में अरबों वर्षों तक परिवर्तन होते रहने के बाद समस्त ब्रह्माण्ड

विलीन हो जाता है और अप्रकट रहा आता है। प्रकृति में परिवर्तन तथा विनाश (भूत्वा भूत्वा प्रलीयते) अनवरत रूप से चलता रहता है। तो भी संसारी वैज्ञानिक प्रकृति के मूलाधार श्रीभगवान् को जाने बिना प्राकृतिक नियमों का अध्ययन करना चाहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता (९.१०) में श्रीकृष्ण कहते हैं—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

"हे कुन्तीपुत्र! यह अपरा प्रकृति (माया) मेरी अध्यक्षता में कार्य करती हुई सम्पूर्ण चराचर प्राणियों को रचती है। इसी कारण इस जगत् का बारम्बार सृजन और संहार होता है।"

सृष्टि की अभिव्यक्ति हो जाने पर अन्ततः इसका संहार होगा और लाखों वर्षों तक अन्धकारपूर्ण स्थिति रहने के पश्चात् पुनः सृष्टि होगी। यही प्रकृति का नियम है।

उत्तरेषु च कुरुषु भगवान् यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते तं तु देवी हैषा भूः सह कुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति इमां च परमामुपनिषद-मावर्तयति ॥३४॥

उत्तरेषु=उत्तर दिशा में; **च**=भी; **कुरुषु**=कुरुवर्ष में; **भगवान्**=श्रीभगवान्; **यज्ञ-पुरुष**=समस्त यज्ञों के फल को स्वीकार करने वाला; **कृत-वराह-रूपः**=शूकर (वराह) रूप को धारण करके; **आस्ते**=शाश्वत विद्यमान रहता है; **तम**=उसको; **तु**=निश्चय पूर्वक; **देवी**=देवी; **ह**=निश्चय ही; **एषा**=यह; **भूः**=पृथ्वी लोक; **सह**=के साथ; **कुरुभिः**=कुरु-देश के वासी; **अस्खलित**=स्खलित न होने वाले; **भक्ति-योगेन**=भक्ति के द्वारा; **उपधावति**=पूजा करता है; **इमम्**=यह; **च**=भी; **परमाम् उपनिषदम्**=श्रेष्ठतम उपनिषद् (भगवान् तक पहुँचने की विधि); **आवर्त-यति**=अभ्यास हेतु बारम्बार जप करता है।

अनुवाद

शुकदेव गोस्वामी ने कहा, हे राजन! सभी यज्ञाहुतियों को स्वीकार करने वाले श्रीभगवान् वराह रूप में जम्बूद्वीप के उत्तरी भाग में निवास करते हैं। वहाँ उत्तर कुरुवर्ष में पृथ्वी माता तथा अन्य सभी वासी निम्नलिखित उपनिषद् मन्त्र का बारम्बार जप करते हुए उनकी आराधना करते हैं।

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥३५॥

ॐ=हे प्रभो; **नमः**=नमस्कार; **भगवते**=श्रीभगवान् को; **मन्त्र-तत्त्व-लिंगाय**=जो विभिन्न मन्त्रों द्वारा सत्य में जाने जाते हैं; **यज्ञ**=पशु-बलि के रूप में; **क्रतवे**=तथा पशुबलि; **महा-ध्वर**=बड़ी-बड़ी बलियाँ; **अवयवाय**=जिनके शरीर के अंग; **महा-पुरुषाय**=परमात्मा को; **नमः**=नमस्कार; **कर्म-शुक्लाय**=जो जीवात्माओं के कर्मों को पवित्र करने वाला है; **त्रि-युगाय**=तीन युगों में छः ऐश्वर्यों के साथ प्रकट होने वाले श्रीभगवान् (चतुर्थ युग में प्रच्छन्न रहने वाले) को; **नमः**=नमस्कार; **ते**=आपको।

अनुवाद

हे प्रभो ! हम विराट् पुरुष के रूप में आपको नमस्कार करते हैं। केवल मन्त्रोच्चार से हम आपको पूर्णतः समझ सकते हैं। आप यज्ञरूप हैं, आप क्रतु हैं। अतः यज्ञ के सभी अनुष्ठान आपके दिव्य शरीर के अंशरूप हैं और केवल आप ही समस्त यज्ञों के भोक्ता हैं। आपका स्वरूप दिव्य गुणों से युक्त है। आप 'त्रियुग' कहलाते हैं, क्योंकि कलियुग में आपने प्रच्छन्न अवतार लिया है और आप छहों ऋद्धियों के स्वामी हैं।

तात्पर्य

श्रीचैतन्य महाप्रभु इस कलियुग के अवतार हैं, जैसा कि पुराणों, महाभारत, श्रीमद्भागवत तथा अन्य उपनिषदों में अनेक स्थलों में पुष्टि हुई है। उनके आविर्भाव का विवरण चैतन्यचरितामृत (मध्यलीला ६.९९) में निम्न प्रकार मिलता है—

कलियुगे लीलावतार ना करे भगवान्।
अतएव 'त्रियुग' करि' कहि तार नाम ॥

इस कलिकाल में श्रीभगवान् लीलावतार के रूप में, लीलाओं के प्रदर्शनार्थ प्रकट नहीं होते। इसलिए वे **त्रियुग** कहलाते हैं। अन्य अवतारों के विपरीत श्रीचैतन्य महाप्रभु कलिकाल में श्रीभगवान् के भक्त के रूप में प्रकट होते हैं। इसीलिए उन्हें "छन्नावतार" कहा जाता है।

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो

गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम्।

मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो
गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥३६॥

यस्य=जिसका; **स्व-रूपम्**=स्वरूप; **कवयः**=महान् सन्त; **विपश्चितः**=परम सत्य को सुनिश्चित करने में पटु; **गुणेषु**=तीन गुणों से युक्त भौतिक जगत् में; **दारुषु**=काष्ठ में; **इव**=सदृश; **जात**=प्रकट; **वेदसम्**=अग्नि; **मिथ्नति**=मथते हैं; **मथ्ना**=अरणी या मथानी से; **मनसा**=मन के द्वारा; **दिदृक्षवः**=उत्सुकजन; **गूढम्**=छिपे; **क्रिया-अर्थैः**=कर्मों तथा उनके फलों के द्वारा; **नमः**=नमस्कार है; **ईरित-आत्मने**=प्रकट होने वाले प्रभु को।

अनुवाद

ऋषि तथा मुनि काठ में छिपी अग्नि को अरणी के द्वारा उत्पन्न कर सकने में समर्थ हैं। हे प्रभो! ऐसे व्यक्ति आपको प्रत्येक वस्तु में, यहाँ तक कि अपने शरीर में भी देखने का प्रयास करते हैं। मानसिक या भौतिक क्रियाओं जैसी गूढ़ विधियों से आपको नहीं समझा जा सकता। आप स्वतः प्रकट होने वाले हैं, अतः जब आप देख लेते हैं कि कोई व्यक्ति सर्वतोभावेन आप की खोज में संलग्न है तभी आप अपने को प्रकट करते हैं। अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

तात्पर्य

क्रियार्थैः शब्द का अर्थ है, "देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अनुष्ठानों द्वारा।" **विपश्चितः** शब्द की व्याख्या तैत्तिरीय उपनिषद् में इस प्रकार दी गई है—**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।** जैसा कि श्रीकृष्ण भगवद्गीता (७.१९) में कहते हैं—**बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते,** "बहुत जन्मान्तरों के अन्त में तत्त्व ज्ञान को प्राप्त पुरुष मुझे सब कारणों का कारण जानकर मेरी शरण में आता है।" जब मनुष्य को यह बोध हो जाता है कि भगवान् सबके हृदयों में विद्यमान हैं और जो भगवान् को कण-कण में उपस्थित देखता है तो वह पूर्ण ज्ञानी होता है। **जातवेदः** शब्द का तात्पर्य है, "वह अग्नि जो काष्ठ के रगड़ने से उत्पन्न होती है।" वैदिक युग में ऋषियों द्वारा काष्ठ से अग्नि उत्पन्न की जाती थी। **जातवेदः** का अर्थ जठराग्नि भी होता है जो भोजन को पचाने वाली और भूख उत्पन्न करने वाली है। **गूढ़** शब्द की विवेचना श्वेताश्वतर उपनिषद में की गई है। **एको देवः सर्वभूतेषु गूढः**—वैदिक मन्त्रों के जाप से ही श्रीभगवान् को जाना जा सकता है। **सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा**—वह सर्वव्यापी है और प्रत्येक जीवात्मा के हृदय में स्थित है।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः—वह जीवात्मा के सभी व्यापारों का साक्षी है। **साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च**—श्रीभगवान् साक्षी होने के साथ-साथ जीवित शक्ति हैं, तो भी वह समस्त भौतिक गुणों में दिव्य हैं।

द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभि-
र्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने।
अन्वीक्षयाङ्गातिशयात्मबुद्धिभि-
र्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥३७॥

द्रव्य=इन्द्रिय सुख के पदार्थों द्वारा; **क्रिया**=इन्द्रियों का व्यापार; **हेतु**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता; **अयन**=शरीर; **ईश**=प्रबल काल; **कर्तृभिः**=झूठे अहंकार से; **माया-गुणैः**=भौतिक प्रकृति के गुणों द्वारा; **वस्तु**=तथ्य स्वरूप; **निरीक्षित**=निरीक्षण किया जाकर; **आत्मने**=परमात्मा को; **अन्वीक्षया**=अत्यन्त विचार करके; **अंग**=योगसाधना के अंगों द्वारा; **अतिशय-आत्म-बुद्धिभिः**=जिनकी बुद्धि स्थिर हो चुकी है उनके द्वारा; **निरस्त**=पूर्णतया मुक्त; **माया**=माया; **आकृतये**=जिनकी आकृति (रूप); **नमः**=नमस्कार; **नमः**=नमस्कार है।

अनुवाद

भौतिक सुख के साधन (शब्द, गन्ध, रूप, स्पर्श, स्वाद), ऐन्द्रिय कर्म, इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता, शरीर, अनन्त काल तथा अहंकार—ये सभी आपकी माया से उत्पन्न हैं। जिन्होंने योग के द्वारा अपनी बुद्धि को स्थिर कर लिया है वे यह देख पाते हैं कि ये सभी तत्त्व आपकी माया के ही परिणाम हैं। वे आपके दिव्य रूप को भी प्रत्येक वस्तु की परम आत्मा के रूप में देख पाते हैं। अतः मैं पुनः पुनः आपको नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य

भौतिक सुख के साधन, मानसिक क्रियाएँ, इन्द्रियसुख के प्रति लगाव, शरीर, अहंकार इत्यादि सभी भगवान् की माया से उत्पन्न हैं। इन सब कार्यों का आधार जीवात्मा है और संचालक है परमात्मा। जीव सर्वेसर्वा नहीं है। उसका संचालन परमात्मा करते हैं। भगवद्गीता (१५.१५) में श्रीकृष्ण इसी की पुष्टि करते हैं—

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च, "मैं सब प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ और मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और विस्मृति होती है।" निर्देशों के लिए जीवात्मा परमात्मा पर निर्भर करता है। आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त व्यक्ति अथवा

योगक्रिया (यम, नियमासनादि) में पटु व्यक्ति ही सत्त्व को परमात्मा या श्रीभगवान् के रूप में जान सकता है। परमात्मा ही सभी प्राकृतिक घटनाओं के मूल कारण हैं। उन्हें **सर्व कारण-कारणम्**—सभी कारणों का कारण बताया गया है। हमें जो कुछ भी दिखाई पड़ता है उसका कुछ न कुछ कारण है और जो कोई समस्त कारणों के मूल कारण, श्रीकृष्ण, को देख सकता है वही वास्तव में देखता है। सच्चिदानन्द विग्रह श्रीकृष्ण ही प्रत्येक वस्तु की पृष्ठभूमि में हैं, जैसा कि भगवद्गीता (९.१०) में वे स्वयं इसकी पुष्टि करते हैं—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥

"हे कुन्तीपुत्र ! यह अपरा प्रकृति (माया) मेरी अध्यक्षता में कार्य करती हुई सम्पूर्ण चराचर प्राणियों को रचती है। इसी कारण इस जगत् का बारम्बार सृजन और संहार होता है।"

करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं
यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः।
माया यथायो भ्रमते तदाश्रयं
ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥३८॥

करोति=करता है; **विश्व**=ब्रह्मांड की; **स्थिति**=भरण; **संयम**=विलोप; **उदयम्**=सृष्टि; **यस्य**=जिसका; **इप्सितम्**=वांक्षित; **न**=नहीं; **इप्सितम्**= वांक्षित; **ईक्षितुः**=ऊपर से देखने वाले का; **गुणैः**=गुणों के द्वारा; **माया**=माया; **यथा**=जितना; **अयः**=लोहा; **भ्रमते**=भ्रमण करता है; **तत्-आश्रयम्**=उसके निकट स्थित; **ग्राव्णः**=चुम्बक पत्थर; **नमः**=नमस्कार; **ते**=आपको; **गुण-कर्म-साक्षिणे**=भौतिक प्रकृति की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के साक्षी।

अनुवाद

हे प्रभो ! आप इस भौतिक जगत् की सृष्टि, पालन या संहार के इच्छुक नहीं हैं, किन्तु बद्धजीवों के लिए अपनी सृजनात्मक शक्ति के द्वारा इन क्रियाओं को करने वाले हैं। जिस प्रकार चुम्बक-पत्थर के प्रभाव से लोहे का टुकड़ा घूमता है ठीक उसी प्रकार जब आप समस्त माया पर दृष्टि फेरते हैं तो सारे जड़ पदार्थ गति करने लगते हैं।

तात्पर्य

कभी-कभी मन में यह प्रश्न उठता है कि जीवों के लिए अनेक प्रकार के कष्टों से पूर्ण इस भौतिक जगत् की सृष्टि क्यों हुई। यहाँ यह उत्तर दिया गया है कि श्रीभगवान् जीवों को कष्ट भोगने के लिए इस भौतिक जगत् की सृष्टि नहीं करना चाहते। वे तो उनके सुख-भोग के लिए इसकी सृष्टि करते हैं।

प्रकृति के कार्यकलाप स्वतः नहीं चलते रहते। प्रकृति (माया) पर भगवान् की दृष्टि पड़ने से प्रकृति उसी प्रकार कार्यशील होती है। जिस प्रकार कि चुम्बक पत्थर लोहे के टुकड़े को इधर-उधर घुमाता रहता है। चूँकि भौतिकवादी विज्ञानी तथा नामधारी सांख्य दार्शनिक ईश्वर में विश्वास नहीं करते, इसीलिए वे प्रकृति को बिना किसी अधीक्षक के कार्यशील मानते हैं। किन्तु वास्तविकता ऐसी नहीं है। चैतन्यचरितामृत (आदि ६.१८-१९) में भौतिक जगत् की उत्पत्ति को व्याख्या इस प्रकार दी गई है—

यद्यपि सांख्य माने, 'प्रधान'—कारण।
जड़ हइते कभु नहे जगत्-सृजन॥
निज सृष्टिशक्ति प्रभु संचारे प्रधाने।
ईश्वरेर शक्त्ये तबे हये त' निर्माणे॥

"नास्तिक सांख्य दार्शनिक सोचते हैं कि समग्र भौतिक शक्ति से जगत् की सृष्टि होती है, किन्तु वे गलती पर हैं। जड़ पदार्थ में गति करने की शक्ति नहीं होती, अतः यह स्वतन्त्र रूप से भौतिक अवयवों का संचार करते हैं। फिर भगवान् की शक्ति से द्रव्य गति करता है और परस्पर क्रिया करता है।" सागर की तरंगें वायु द्वारा गतिशील होती हैं, वायु की सृष्टि शून्य (ईथर) से होती है और प्रकृति के त्रिगुणों के विक्षोभ से शून्य की उत्पत्ति होती है तथा वे त्रिगुण समग्र भौतिक शक्ति (माया) पर भगवान् की कृपादृष्टि से परस्पर क्रिया करते हैं। अतः सभी प्राकृतिक घटनाओं के मूलाधार श्रीभगवान् ही हैं जैसा कि भगवद्गीता में पुष्टि की गई है। (**मयाध्यक्षेणप्रकृतिः सूयते सचराचरम्**)। इसकी व्याख्या चैतन्यचरितामृत (आदि ५.५९-६१) में भी की गई है—

जगत्कारण नहे प्रकृति जड़रूपा।
शक्ति सञ्चारिया तारे कृष्ण करे कृपा॥
कृष्णशक्त्ये प्रकृति हय गौण कारण।
अग्निशक्त्ये लौह .यैछे करये जारण॥
अतएव कृष्ण मूल-जगत्कारण।
प्रकृति—कारण .यैछे अजागलस्तन॥

"चूँकि प्रकृति जड़ रूप है, अतः यह भौतिक जगत् का वास्तविक कारण नहीं हो सकती। भगवान् श्रीकृष्ण इस जड़ प्रकृति में अपनी शक्ति संचार करके अनुग्रह प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण की शक्ति से प्रकृति गौण कारणस्वरूप है, जिस प्रकार से लोह अग्नि की शक्ति से लाल होता है। अतः श्रीकृष्ण इस दृश्य जगत् के मूल कारण हैं। प्रकृति बकरी के उस गलस्तन के तुल्य है जिसमें से दूध नहीं निकलता।" इस तरह वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों की यह भारी भूल है कि वे पदार्थ (जड़) को स्वतन्त्र रूप से गतिशील मानते हैं।

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे
यो मां रसाया जगदादिसूकरः।
कृत्वाग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः
क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ॥३६॥

प्रमथ्य=वध करके; **दैत्यम्**=असुर को; **प्रतिवारणम्**=अत्यन्त शक्तिशाली प्रतियोगी; **मृधे**=युद्ध में; **यः**=वह जो; **माम्**=मुझको (पृथ्वी); **रसायाः**=रसातल में पड़ी हुई; **जगत्**=इस भौतिक जगत् में; **आदि-शूकरः**=आदिशूकर रूप; **कृत्वा**=धारण करके; **अग्र-दंष्ट्रे**=दाँतों के अग्रभाग में; **निरगात**=जल के बाहर आया; **उदन्वतः**=गर्भोदक सागर से; **क्रीडन्**=खेलते हुए; **इव**=समान, सदृश; **इभः**=हाथी; **प्रणता अस्मि**=मैं आपके समक्ष नतमस्तक हूँ; **ताम्**=उसको; **विभुम्**=भगवान् को; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

हे प्रभो! इस ब्रह्मांड में आदि शूकर रूप में आपने हिरण्याक्ष दैत्य के साथ युद्ध करके उसका संहार किया। फिर आपने अपने दाँतों के अगले भाग से मुझ पृथ्वी को गर्भोदक सागर से उसी प्रकार ऊपर उठा लिया जैसे क्रीडारत गज जल में से कमल-दल चुन लेता है। मैं आपके समक्ष नतमस्तक हूँ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चमस्कन्धे भुवनकोषवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, "जम्बूद्वीप के निवासियों द्वारा भगवान् की स्तुति" शीर्षक नामक अठारहवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त भाष्य समाप्त हुआ।

उन्नीसवाँ अध्याय

जम्बूद्वीप के द्वीपों का वर्णन

इस अध्याय में भारतवर्ष के यशोगान के साथ ही किम्पुरुष वर्ष में भगवान् रामचन्द्र की आराधना का वर्णन है। किम्पुरुष वर्ष के निवासी भाग्यशाली हैं, क्योंकि वे भगवान् रामचन्द्र की आराधना उनके आज्ञाकारी सेवक हनुमान सहित करते हैं। भगवान् रामचन्द्र एक ऐसे अवतार का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जो अपने भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों के वध करने के उद्देश्य से अवतरित होते हैं—**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्**। भगवान् रामचन्द्र श्रीभगवान् के अवतार के वास्तविक उद्देश्य को प्रस्तुत करते हैं और भक्तजन उनकी दिव्य सेवा करने का सुयोग प्राप्त करते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह सुख, ऐश्वर्य तथा शिक्षा का परित्याग करके पूर्णतः भगवान् के समक्ष आत्मसमर्पण कर दे, क्योंकि इनसे भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होते। वे तो केवल आत्मसमर्पण की क्रिया से प्रसन्न होते हैं।

जब देवर्षि नारद सार्वणि मनु को उपदेश देने के लिए अवतरित हुए तो उन्होंने भारतवर्ष के ऐश्वर्य का वर्णन किया। सार्वणि मनु तथा भारतवर्ष के निवासी श्रीभगवान् की भक्ति में संलग्न रहते हैं जो सृष्टि, पालन और संहार के मूलरूप हैं और आत्मज्ञानी जनों द्वारा सदैव वंदित हैं। भारतवर्ष में भी अन्य भूखण्डों की भाँति अनेक नदियाँ तथा पर्वत हैं, किन्तु भारतवर्ष का विशेष महत्त्व इसलिए है, क्योंकि यहाँ पर वेद सम्मत वर्णाश्रम-धर्म प्रचलित है जो समाज को चार वर्णों तथा चार आश्रमों में विभाजित करता है। यही नहीं नारदमुनि के अनुसार यदि वर्णाश्रम धर्म के पालन में कोई क्षणिक बाधा भी पहुँचती है, तो तुरन्त ही उसको पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। वर्णाश्रम धर्म में दृढ़ रहने के कारण क्रम से परम पद की प्राप्ति और भौतिक बन्धन से छुटकारा प्राप्त होता है। वर्णाश्रम धर्म के नियमों के पालन से भक्तों की संगति का सुअवसर मिलता है, जिससे श्रीभगवान् के प्रति सेवा भाव जागरित होता है और पापमय जीवन से छुटकारा मिल जाता है। तब मनुष्य को भगवान् वासुदेव की अव्यभिचारिणी भक्ति करने का अवसर प्राप्त होता है। भारतवासियों को ऐसा अवसर मिल सकने के कारण वैकुंठ में भी उनकी प्रशंसा की जाती है। यहाँ तक कि इस ब्रह्मांड के सर्वोच्च लोक, ब्रह्मलोक में भी भारतवर्ष के स्थान की चर्चा अत्यन्त रुचिपूर्वक की जाती है।

इस ब्रह्माण्ड के विभिन्न लोकों में तथा विभिन्न जीवों में समस्त बद्धजीवों का विकास हो रहा है। इस प्रकार कोई भी जीव ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकता है, किन्तु उसे पुनः पृथ्वी पर उतरना होता है जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता में पुष्टि की गई है (**आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन**)। यदि भारतवर्ष के वासी वर्णाश्रम धर्म का दृढ़ता से पालन करें और अपनी सुप्त कृष्णभावना को विकसित होने दें तो मृत्यु के पश्चात् उन्हें इस भौतिक जगत् में लौटने की आवश्यकता नहीं रह जाती। जहाँ सिद्ध आत्माओं द्वारा श्रीभगवान् की चर्चा नहीं होती, चाहे वह ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, जीवात्मा के लिए लाभप्रद स्थान नहीं है। यदि किसी ने भारतवर्ष में जन्म लेकर आध्यात्मिक उन्नति का लाभ नहीं उठाया तो सचमुच ही वह शोचनीय है। यदि भारतवर्ष की भूमि में कोई "सर्वकाम" भक्त है अर्थात् वह भौतिक कामना की पूर्ति करना चाहता है तो वह भी भक्तों की संगति करने से समस्त कामनाओं से मुक्त होकर अंत में शुद्ध भक्त बन जाता है और बिना किसी कठिनाई के भगवान् के धाम वापस पहुँच जाता है।

इस अध्याय के अन्त में श्रीशुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित् से जम्बूद्वीप के अन्तर्गत आठ उपद्वीपों का वर्णन किया है।

श्रीशुक उवाच

किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरण-संनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥१॥

श्रीशुकः उवाच=श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले; **किम्पुरुषे वर्षे**=किम्पुरुष नामक भूखण्ड में; **भगवन्तम्**=श्रीभगवान्; **आदि-पुरुषम्**=समस्त कारणों के मूल कारण; **लक्ष्मण-अग्र-जम्**=लक्ष्मण के अग्रज (बड़े भ्राता); **सीताभिरामम्**=सीता माता को अत्यन्त प्रिय अथवा सीतादेवी के पति; **रामम्**=भगवान् रामचन्द्र; **तत्-चरण-सन्निकर्ष-अभिरतः**=भगवान् राम के चरणकमल की सेवा में सदैव तत्पर; **परम-भागवतः**=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विख्यात महान् भक्त; **हनुमान्**=श्री हनुमानजी; **सह**=सहित; **किम्पुरुषैः**=किम्पुरुषवर्ष के निवासी; **अविरत**=निरन्तर; **भक्तिः**=भक्ति करने वाला; **उपास्ते**=पूजा करता है।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले, हे राजन्! किम्पुरुषवर्ष में महान् भक्त हनुमान वहाँ के निवासियों सहित सदैव भगवान् रामचन्द्र की सेवा में तत्पर रहते हैं जो लक्ष्मण के अग्रज तथा सीतादेवी के पति हैं।

आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति ॥ २ ॥

आर्ष्टि-षेणेन=किम्पुरुष वर्ष का प्रधान पुरुष आर्ष्टिषेण; **सह**=साथ; **गन्धर्वैः**= गन्धर्वों के द्वारा; **अनुगीयमानाम्**=जपे जाकर; **परम-कल्याणीम्**=परम कल्याण प्रदान करने वाली; **भर्तृ-भगवत्-कथाम्**=अपने पति (श्रीभगवान्) का यशोगान; **समुपशृणोति**=अत्यन्त मनोयोग से श्रवण करता है; **स्वयम् च**=स्वयं भी; **इदम्**= यह; **गायति**=गायन करता है।

अनुवाद

गन्धर्वों का समूह भगवान् रामचन्द्र के यशों का गान करता है जो अत्यन्त मंगलकारी है। हनुमानजी तथा किम्पुरुषवर्ष के प्रधान पुरुष आर्ष्टिषेण अत्यन्त मनोयोग से इस यशोगान का निरन्तर श्रवण करते हैं। हनुमानजी निम्न मन्त्रों का जप करते हैं।

तात्पर्य

पुराणों में भगवान् रामचन्द्र के सम्बन्ध में दो मत हैं। लघुभावनामृत (५.३४-३६) में मनु-अवतार वर्णन में इसकी पुष्टि हुई है।

वासुदेवादिरूपाणामवताराः प्रकीर्तिताः ।
विष्णु-धर्मोत्तरे रामलक्ष्मणाद्याः क्रमादमी ॥
पाद्मे तु रामो भगवान् नारायण इतीरितः ।
शेषश्चक्रं च शंखाश्च क्रमात् स्यूर्लक्ष्मणादयः ॥
मध्यदेशस्थितायोध्यापुरेऽस्य वसतिः स्मृता ।
महावैकुंठ लोके च राघवेन्द्रस्य कीर्तिता ॥

"विष्णु-धर्मोत्तर" में वर्णित है कि रामचन्द्रजी तथा उनके भ्राता लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध के अवतार हैं। किन्तु पद्म पुराण का कथन है कि भगवान् रामचन्द्र नारायण के अवतार हैं और अन्य तीनों भाई शेष, चक्र तथा शंख के अवतार हैं। अतः श्रील बलदेव विद्याभूषण इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि **तदिदं कल्पभेदेनैव सम्भावयम्**। कहने का तात्पर्य यह कि ये मत विरोधी नहीं हैं। किसी युग में अपने भाइयों सहित भगवान् रामचन्द्र वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध का अवतार लेते हैं तो अन्य युग में वे नारायण, शेष, चक्र तथा शंख का अवतार धारण करते रहते हैं। आज भी उत्तर प्रदेश के उत्तर में जिला फैजाबाद के अन्तर्गत अयोध्या नगर स्थित है।

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्य-देवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥ ३ ॥

ॐ=हे भगवान् !; **नमः**=नमस्कार है; **भगवते**=श्रीभगवान् को; **उत्तम-श्लोकाय**=जिनकी अर्चना सदैव उत्तम श्लोकों से की जाती है; **नमः**=मेरा नमस्कार; **आर्य-लक्षण-शील-व्रताय**=जिसमें उत्तम पुरुषों के समस्त गुण प्राप्त हैं; **नमः**=मेरा नमस्कार; **उपशिक्षित-आत्मने**=आपको जिनकी इन्द्रियाँ वश में हैं; **उपासित-लोकाय**=जो समस्त श्रेणियों के लोगों द्वारा सदैव पूजित हैं; **नमः**=मेरा नमस्कार; **साधु-वाद-निकषणाय**=श्रीभगवान् को जो गुणों के परखने की कसौटी तुल्य हैं; **नमः**=मेरा नमस्कार; **ब्रह्मण्य-देवाय**=जो सुयोग्य ब्राह्मणों द्वारा पूजित हैं; **महा-पुरुषाय**=श्रीभगवान् को जो पुरुष-सूक्त द्वारा पूजित हैं; **महा-राजाय**=सभी राजाओं में श्रेष्ठ महाराजा; **नमः**=मेरा नमस्कार; **इति**=इस प्रकार ।

अनुवाद

हे प्रभो ! ऊँकार बीजमन्त्र के जप से आप प्रसन्न हों । मैं श्रीभगवान् को नमस्कार करता हूँ जो उत्तम पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ हैं । आप आर्यजनों के समस्त उत्तम गुणों के भंडार हैं । आपका चरित्र तथा आचरण सदैव एक समान रहने वाला है और आप अपनी इन्द्रियों तथा मन को सदैव अपने वश में रखने वाले हैं । सामान्य व्यक्ति की भाँति आप आदर्श चरित्र प्रस्तुत करके अन्यों को आचरण करना सिखाते हैं । कसौटी केवल स्वर्ण के गुण की परीक्षा करने में समर्थ है, किन्तु आप ऐसे स्पर्श-मणि हैं, जिससे समस्त उत्तम गुणों को परीक्षा हो जाती है । आप भक्तों में अग्रणी ब्राह्मणों के द्वारा उपासित हैं । हे परम पुरुष ! आप महाराज हैं, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥ ४ ॥

यत्=जो; **तत्**=उस परम सत्य को; **विशुद्ध**=विशुद्ध, भौतिक प्रकृति के स्पर्श से दूर; **अनुभव**=अनुभव; **मात्रम्**=सच्चिदानन्द दिव्य देह; **एकम्**=एकमात्र;

स्व-तेजसा=अपने तेज से; **ध्वस्त**=ध्वस्त; **गुण-व्यवस्थम्**=गुणों का प्रभाव; **प्रत्यक**=दिव्य, भौतिक नेत्रों से अदृष्ट; **प्रशान्तम्**=धीर, विक्षोभरहित; **सुधिया**=कृष्णभावना से, जो भौतिक कामनाओं, कर्मों तथा कल्पनाओं से अप्रभावित है; **उपलम्भनाम्**=उपलब्ध किया जा सकने वाला; **हि**=निस्सन्देह; **अनाम-रूपम्**=नाम तथा रूप रहित; **निरहम्**=अहंकार रहित; **प्रपद्ये**=मुझे नमस्कार करने दें।

अनुवाद

भगवान्, जिनका विशुद्ध रूप (सच्चिदानन्दविग्रह) भौतिक गुणों के द्वारा दूषित नहीं है, विशुद्ध भक्ति के द्वारा ही देखा जा सकता है। वेदान्त में उसे अनन्य कहा गया है। अपने तेजवश वह भौतिक प्रकृति से अछूता है और भौतिक दृष्टि से अप्रभावित है, अतः वह दिव्य है। न तो वह कोई कर्म करता है, न उसका कोई नाम है न रूप। केवल श्रीकृष्णभावना में ही ईश्वर के दिव्य रूप के दर्शन किये जा सकते हैं। हमें चाहिए कि हम भगवान् रामचन्द्र के चरणकमलों में दृढ़तापूर्वक स्थित होकर उनको नमन करें।

तात्पर्य

भगवान् श्रीकृष्ण अनेक रूपों में प्रकट होते हैं, जैसा कि ब्रह्म संहिता (५.३९) में कहा गया है--

रामादि मूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं श्रीभगवान् गोविन्द की आराधना करता हूँ जो राम, नृसिंह जैसे अवतारों तथा उप-अवतारों के रूप में सदैव विराजमान हैं किन्तु जो मूल रूप में श्रीकृष्ण हैं और स्वयं अवतार ग्रहण करते हैं।" कृष्ण विष्णुतत्त्व हैं, जिन्होंने अपने को विष्णु के नाना रूपों में प्रकट किया है जिनमें से भगवान् रामचन्द्र एक है। यह ज्ञातव्य है कि विष्णुतत्त्व को पक्षिराज गरुड़ धारण करते हैं और उनके चारों हाथों में भिन्न-भिन्न आयुध रहते हैं। अतः हमें संशय हो सकता है कि क्या रामचन्द्रजी भी उसी कोटि में आते हैं, क्योंकि उनको गरुड़ ने नहीं वरन् हनुमानजी ने धारण किया था और उनके न तो चार भुजाएँ थीं; न ही उन्होंने शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किया इस था। अतः इस श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामचन्द्र तथा श्रीकृष्ण में अन्तर नहीं है (**रामादि मूर्तिषु कला**)। यद्यपि श्रीकृष्ण मूल श्रीभगवान् हैं, किन्तु रामचन्द्रजी

उनसे भिन्न नहीं हैं। भौतिक गुणों से अप्रभावित रहने के कारण भगवान् रामचन्द्र जी "प्रशान्त" हैं।

जब तक श्रीभगवान् के प्रति अगाध प्रेम नहीं होता तब तक भगवान् रामचन्द्र की दिव्यता का महत्त्व समझ में नहीं आता। उन्हें भौतिक चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। चूंकि रावण जैसे असुरों के दिव्य दृष्टि नहीं होती, अतः वे भगवान् रामचन्द्र को सामान्य क्षत्रिय राजा मानते हैं। इसलिए रावण ने उनकी अर्धांगिनी सीतादेवी का अपहरण करना चाहा। किन्तु रावण सीतादेवी को उनके वास्तविक रूप में नहीं ले जा सका। ज्योंही रावण ने उनका स्पर्श किया, उन्होंने भौतिक रूप तो उसे समर्पित कर दिया, किन्तु अपने मूल रूप को बनाये रखा जो उसकी बुद्धि के परे था। इसलिए इस श्लोक में आगत **प्रत्यक प्रशान्त** यह सूचित करता है कि भगवान् रामचन्द्र तथा उनकी तेजस्वरूपा अर्धांगिनी सीतादेवी ने भौतिक शक्ति के प्रभाव से अपने को विलग रखा था।

उपनिषदों में कहा गया है—**यं एवैष वृणुते तेन लभ्यः**। परमात्मा का दर्शन उन्हीं को होता है जो उनकी भक्ति से सिक्त हैं। ब्रह्मसंहिता में कहा गया है (५.३८)—

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्ति विलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्य गुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"प्रेमांजन द्वारा रंजित अभिचक्षुविशिष्ट साधुगण जिन अचिन्त्य गुण विशिष्ट श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण का अवलोकन करते हैं, मैं उन आदिपुरुष गोविन्द का भजन (पूजा) करता हूँ।" इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है--**एतास् तिस्रो देवता अनेन जीवेन**। यहाँ **अनेन** शब्द से आत्मा एवं परमात्मा का अन्तर बताया गया है। **तिस्रो देवता** से यह सूचित होता है कि जीव-देह तीन भौतिक तत्त्वों—अग्नि पृथ्वी तथा जल से बना हुआ है। यद्यपि परमात्मा जीवात्मा के हृदय में प्रवेश करता है, किन्तु जीवात्मा के देह से उसका सरोकार नहीं रहता। इसीलिए परमात्मा को **अनाम रूपं निरह्** कहा गया है। परमात्मा की कोई पहचान नहीं है, किन्तु जीवात्मा की होती है। जीवात्मा अपना परिचय भारतीय, अमरीकी या जर्मन कह कर दे सकता है, किन्तु परमात्मा का ऐसा कोई नाम नहीं होता। जीवात्मा अपने नाम से भिन्न होता है, किन्तु परमात्मा ऐसा नहीं है। उनका नाम और वे स्वयं एक हैं। **निरहं** का यही तात्पर्य है। इसको तोड़ मरोड़ कर यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता है कि परमात्मा आकार विहीन या स्वरूप विहीन है। उनका परम दिव्य स्वरूप है। श्रील जीव गोस्वमी ने यही व्याख्या दी है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर

ने एक दूसरा ही विवेचन किया है जिसमें **निरहं** का अर्थ **निर्निश्चयेन अहं** है। **निरहं** का यह अर्थ नहीं कि भगवान् के कोई स्वरूप नहीं। वरन् **अहं** शब्द पर बल होने से यह सिद्ध होता है कि भगवान् का अपना स्वरूप है क्योंकि **निर्** का अर्थ केवल **नकारात्मक** न होकर पुष्टि करने वाला भी होता है।

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥ ५ ॥

मर्त्य = मनुष्य; **अवतारः** = जिसका अवतार; **तु** = तो भी; **इह** = इस लोक में; **मर्त्य-शिक्षणम्** = समस्त जीवों को, विशेष रूप से मनुष्य को शिक्षा देने के लिए; **रक्षः-वधाय** = रावण असुर को मारने के लिए; **एव** = निश्चय ही; **न** = नहीं; **केवलम्** = केवल, मात्र; **विभोः** = श्रीभगवान् का; **कुतः** = कहाँ से; **अन्यथा** = अन्यथा; **स्यात्** = होगा; **रमतः** = रमण करने वाले का; **स्वे** = अपने आप में; **आत्मनः** = ब्रह्माण्ड का आत्म-स्वरूप; **सीता** = भगवान् रामचन्द्र की पत्नी सीता का; **कृतानि** = वियोग के कारण उत्पन्न; **व्यसनानि** = समस्त दुःख; **ईश्वरस्य** = श्रीभगवान् के।

अनुवाद

राक्षसों के नायक रावण को यह वर प्राप्त था कि उसका वध मनुष्य ही कर सकता है, इसलिए श्रीभगवान् रामचन्द्र को मनुष्य रूप धारण करना पड़ा, किन्तु भगवान् रामचन्द्र का उद्देश्य मात्र रावण का वध करना ही नहीं था। वे तो मर्त्य-प्राणियों को यह शिक्षा देना चाहते थे कि विलास अथवा पत्नी के चारों ओर केन्द्रित भौतिक सुख समस्त दुःखों का कारण है। वे स्वयं में पूर्ण हैं और उन्हें किसी भी प्रकार का पश्चात्ताप नहीं है। अतः वे माता सीता के अपहरण से भला क्यों कष्ट भोगते?

तात्पर्य

जैसा कि भगवद्गीता (४.८) में कहा गया है, इस विश्व में श्रीभगवान् दो कारणों से मनुष्यरूप धारण करते हैं—**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्**—असुरों का वध करने और अपने भक्तों की रक्षा करने के हेतु। भक्तों की रक्षा करने के लिए वे न केवल अपनी उपस्थिति से वरन् भक्ति पर दृढ़ रहने की शिक्षा देकर उन्हें तुष्ट करते हैं। भगवान् रामचन्द्र ने अपने भक्तों को यह शिक्षा दी कि वैवाहिक

जीवन में प्रवेश करने से ही सारे कष्ट झेलने पड़ते हैं। जैसा कि श्रीमद्भागवतम् (७.९.४५) में पुष्टि की गई है--

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं
कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम्।
तृष्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः
कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः॥

आत्मज्ञान में समुन्नत न होने वाले **कृपण**, जो ब्राह्मणों से सर्वथा विपरीत हैं, गृहस्थ जीवन स्वीकार करते हैं और पुनः पुनः इन्द्रियसुख भोगते हैं यद्यपि इस इन्द्रियसुख के पश्चात् उन्हें नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। भक्तों के लिए यह पूर्व सूचना है। भक्तों को तथा सारे मानव समाज को यह शिक्षा देने के लिए ही श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीभगवान् होते हुए भी नाना प्रकार के कष्टों को सहा, क्योंकि माता सीता को उन्होंने अर्द्धांगिनी के रूप में स्वीकार किया था। निस्सन्देह उन्होंने सारे कष्ट इसलिए झेले कि हमें शिक्षा मिले; वास्तव में उन्हें पश्चात्ताप करने का कोई प्रयोजन नहीं था।

भगवान् की शिक्षाओं का एक दूसरा पक्ष यह भी है कि एक बार पत्नी कर लेने के बाद मनुष्य को सत्यनिष्ठ होकर पत्नी को सब प्रकार से रक्षा करनी चाहिए। मानव समाज में दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं--वे जो धार्मिक नियमों का पालन करते हैं तथा वे जो भक्त हैं। भगवान् रामचन्द्र अपने चरित्र से इन दोनों प्रकार के लोगों को यह बताना चाहते थे किस प्रकार धार्मिक नियमों का पालन करते हुए प्रिय तथा कर्तव्यनिष्ठ पति बना जा सकता है; अन्यथा भगवान् राम को इतने कष्ट उठाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। धार्मिक नियमों का पालन करने वालों को चाहिए कि वे अपनी पत्नी की रक्षा करने में उपेक्षा न बरतें। हो सकता है कि ऐसा करने में कुछ कष्ट उठाने पड़ें, किन्तु सत्यनिष्ठ पति का यही कर्तव्य है। अपने साक्षात् दृष्टान्त से भगवान् रामचन्द्रजी ने कर्तव्य का प्रदर्शन किया। भगवान् रामचन्द्र चाहते तो अपनी इच्छाशक्ति से हजारों सीताएँ उत्पन्न कर सकते थे, किन्तु सत्यनिष्ठ पति के कर्तव्य निभाने के लिए ही न केवल रावण से सीता की रक्षा की वरन् रावण का सपरिवार संहार किया।

भगवान् रामचन्द्र की शिक्षाओं का एक पक्ष यह भी है कि भगवान् विष्णु तथा उनके भक्तों को भले ही सांसारिक यातनाएँ झेलनी पड़ें, किन्तु इनका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे तो मुक्त पुरुष हैं। इसीलिए श्रीचैतन्य भागवत में कहा गया है--

यत देख वैष्णवेर व्यवहार दुःख।
निश्चय जानिह ताहा परमानन्द-सुख॥

भक्ति में मग्न रहने के कारण वैष्णव सदैव दिव्य आनन्द का लाभ उठाता है। भले ही ऐसा लगे कि उसे भौतिक कष्ट है, किन्तु उसे दिव्य विरह अवस्था प्राप्त रहती है। प्रेमी तथा प्रेमिका को भले ही वियोग कष्टकर लगता हो, किन्तु वास्तव में यह होता है अत्यन्त आनन्ददायक। अतः सीतादेवी से भगवान् रामचन्द्र का वियोग तथा उसके बाद उनके द्वारा भोगी जाने वाली यातनाएँ एक प्रकार से उनके दिव्य-सुख को प्रकट करने वाली हैं। ऐसा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती का अभिमत है।

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः
सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत
न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥ ६ ॥

न=नहीं; **वै**=निस्सन्देह; **सः**=वह; **आत्मा**=परम-आत्मा; **आत्मवताम्**=स्वरूपसिद्धों का; **सुहृत-तमः**=सर्वश्रेष्ठ मित्र; **सक्तः**=आसक्त; **त्रि-लोक्याम्**=तीनों लोकों के भीतर कोई भी; **भगवान्**=श्रीभगवान्; **वासुदेवः**=सर्वव्यापी भगवान्; **न**=नहीं; **स्त्री-कृतम्**=अपनी पत्नी के कारण प्राप्त; **कश्मलम्**=वियोग-दु:ख; **अश्नुवीत**=प्राप्त करेगा; **न**=नहीं; **लक्ष्मणम्**=रामचन्द्र के लघुभ्राता लक्ष्मण; **च**=भी; **अपि**=निश्चय ही; **विहातुम्**=परित्याग करना; **अर्हति**=समर्थ होता है।

अनुवाद

भगवान् रामचन्द्र वासुदेव रूप होने के कारण इस भौतिक जगत् से किसी प्रकार लिप्त नहीं हैं। वे स्वरूप सिद्ध आत्माओं के परम प्रिय परमात्मा और उनके घनिष्ठ मित्र हैं। वे परम ऐश्वर्यवान् हैं। अतः पत्नी-विछोह के कारण उन्होंने न तो अधिक कष्ट उठाये होंगे, न ही उन्होंने अपनी पत्नी तथा अपने लघुभ्राता लक्ष्मण का परित्याग किया होगा। उनके लिए इन दोनों में से किसी एक का भी परित्याग सर्वथा असम्भव था।

तात्पर्य

श्रीभगवान् की परिभाषा देते हुए हम यह कहते हैं कि वे छहों ऋद्धियों धन, यश, बल, प्रभाव, रूप तथा त्याग से युक्त हैं। इस भौतिक जगत् से किसी प्रकार का लगाव न होने के कारण वे परित्यागी कहलाते हैं, उनका लगाव वैकुण्ठ जगत् और वहाँ की जीवात्माओं से है। भौतिक जगत् के समस्त कार्यकलाप दुर्गादेवी की अध्यक्षता में संचालित होते हैं (**सृष्टि-स्थिति-प्रलय-साधन-शक्तिर् एका। छायेव**

यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा)। दुर्गा के रूप में भौतिक शक्ति के कठोर नियमों के अन्तर्गत सब कुछ घटता है। फलतः भगवान् इस भौतिक जगत् से पूर्णतः विरक्त रहते हैं। सीतादेवी का सम्बन्ध वैकुण्ठ जगत् से है। इसी प्रकार लक्ष्मण संकर्षण के प्रकाश (स्वांश) रूप हैं और भगवान् रामचन्द्र स्वयं वासुदेव हैं।

भगवान् का लगाव उन सेवकों से रहता है जो उनकी दिव्य सेवा करते हैं। वे ब्राह्मण-गुणों से नहीं वरन् जीवन के सत्य से लगाव रखते हैं। निस्सन्देह उनका लगाव भौतिक गुणों से किसी प्रकार नहीं रहता। यद्यपि वे समस्त जीवात्माओं के परमात्मा हैं, किन्तु जो आत्मसिद्ध हैं उनके समक्ष वे प्रकट होते हैं और अपने दिव्य भक्तों के लिए परमप्रिय हैं। चूँकि भगवान् रामचन्द्र ने मानव समाज को यह शिक्षा देने के लिए कि राजा को कितना कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए, अवतार लिया था, अतः उन्होंने माता सीता तथा लक्ष्मण का बाह्यतः परित्याग किया, उन्होंने उनका वास्तविक परित्याग नहीं किया था। अतः हमें आत्मसिद्ध पुरुषों से भगवान् रामचन्द्र के कार्यों को सीखना चाहिए। तभी भगवान् के दिव्य कार्यों को समझा जा सकता है।

न जन्म नूनं महतो न सौभगं
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस-
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥ ७ ॥

न=न; **जन्म**=उच्च कुल में जन्म; **नूनम्**=निस्सन्देह; **महतः**=श्रीभगवान् का; **न**=न तो; **सौभगम्**=सौभाग्य; **न**=न तो; **वाक्**=वाणी; **न**=न तो; **बुद्धिः**=बुद्धि; **न**=नहीं; **आकृतिः**=शरीर के अंग-प्रत्यंग; **तोष-हेतुः**=भगवान् के आनन्द का कारण; **तैः**=उक्त समस्त गुणों के द्वारा; **यत्**=क्योंकि; **विसृष्टान्**=अस्वीकृत; **अपि**=यद्यपि; **नः**=हमको; **वन-ओकसः**=वनवासी; **चकार**=स्वीकार किया; **सख्ये**=मित्रता से; **बत**=हाय; **लक्ष्मण-अग्र-जः**=लक्ष्मण के बड़े भाई, भगवान् श्रीरामचन्द्र।

अनुवाद

उच्चकुल में जन्म धारण करने, शारीरिक सौन्दर्य, वाक्चातुरी, बुद्धि या श्रेष्ठ जाति अथवा राष्ट्र के कारण कोई चाह कर भी रामचन्द्र से मैत्री स्थापित नहीं कर सकता। उनसे मित्रता स्थापित करने के लिए इन गुणों की आवश्यकता नहीं है, अन्यथा भला हम वनवासियों को, बिना उच्च कुल में जन्म लिए तथा रूप-रंग न होते हुए भी अपने मित्रों के रूप में क्यों स्वीकार करते ?

तात्पर्य

श्रीमती कुन्तीदेवी ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए उन्हें **अकिंचन-गोचर** कहा है। अ उपसर्ग का अर्थ है नहीं और **किंचन** का अर्थ होता है—इस भौतिक जगत् से सम्बन्धित। कोई अपने उच्च पद, सम्पत्ति, रूप, शिक्षा इत्यादि का कितना ही गर्व क्यों न करे, श्रीभगवान् के साथ मित्रता स्थापित करने में इनका कोई महत्त्व नहीं है, भले ही भौतिक आचार-विचार में इन गुणों को प्रधानता प्राप्त हो। जिनमें ये समस्त गुण होते हैं, वही भक्त बन सकता है और वैसा करने पर इन गुणों का सदुपयोग होता है। किन्तु जो उच्च जन्म, सम्पत्ति शिक्षा तथा रूप से गर्वित हो उठते हैं (**जन्मैश्वर्य-श्रुत-श्री**) वे दुर्भाग्यवश न तो कृष्णभावना की ओर उन्मुख होते हैं और न श्रीभगवान् को ही इन गुणों की कोई परवाह है। श्रीभगवान् को तो भक्ति से प्राप्त किया जाता है (**भक्त्या मामभिजानाति**)। श्रीभगवान् की सेवा करने के लिए भक्ति तथा उत्कट कामना ये ही पर्याप्त हैं। रूप गोस्वामी ने भी यही कहा है कि भगवान् का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए उत्कटता ही पर्याप्त है (**लौल्यं एकं मूल्यम्**)। चैतन्यभागवत में कहा गया है—

खोलावेचा सेवकेर देख भाग्यसीमा।
ब्रह्मा शिव काँदे .यार देखिया महिमा॥
धने-जने-पांडित्ये कृष्ण नाहि पाइ।
केवल भक्तिर वश चैतन्य-गोसाईं॥

"जरा खोलवेचा भक्त के परम भाग्य को तो देखो! उसकी महानता को देखकर भगवान् ब्रह्मा तथा शिव अश्रुपात करते हैं। किसी के पास चाहे कितने ही शिष्य सम्पत्ति या विद्या क्यों न हो, उसे भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति नहीं हो सकती। श्रीचैतन्य महाप्रभु तो केवल विशुद्ध भक्ति से वश में होते हैं।" श्रीचैतन्य महाप्रभु के परम आज्ञाकारी शिष्य का नाम खोलवेचा श्रीधर था, जिसका एकमात्र काम था केले की छाल के बने पात्र बेचना। उसे जितनी आमदनी होती उसका आधा वह गंगाजी की पूजा में व्यय कर देता था और शेष आधे से घर का काम चलाता था। कुल मिलाकर उस दरिद्र के एक झोपड़ी थी जिसकी छत टूटी थी और जिसमें अनेक छेद थे। वह पीतल के बर्तन नहीं खरीद सकता था, इसलिए वह लोहे के पात्र में जल पीता था। तो भी वह श्रीचैतन्य महाप्रभु का परम भक्त था। वह एक ऐसा विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है कि बिना किसी प्रकार के धन के भी कोई भगवान् का परम भक्त कैसे बन सकता है। निष्कर्ष यह निकलता है कि कोई कितना धनवान् क्यों न हो श्रीकृष्ण अथवा श्रीचैतन्य गोसाईं के चरणकमल की शरण नहीं प्राप्त कर सकता; वह तो केवल विशुद्ध भक्ति भाव से प्राप्त किया जा सकता है।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलानं भक्तिरुत्तमा ।।

"मनुष्य को चाहिए कि वह बिना किसी भौतिक लाभ, सकाम कर्म तथा मीमांसा के श्रीभगवान् की सेवा दिव्य प्रेमाभक्ति से करे। यही विशुद्ध भक्ति है।

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ।। ८ ।।

सुरः=देवता; **असुरः**=असुर; **वा अपि**=अथवा; **अथ**=अतः; **वा**=अथवा; **अनरः**=मनुष्य के अतिरिक्त (पशु-पक्षी इत्यादि); **नरः**=मनुष्य; **सर्व-आत्मना**=सब प्रकार से, हृदय से; **यः**=जो; **सु-कृतज्ञम्**=सरलता से आज्ञाकारी वनाया गया; **उत्तमम्**=सर्वोत्कृष्ठ; **भजेत**=पूजा करना चाहिए; **रामम्**=श्रीरामचन्द्र; **मनुजा-कृतिम्**=मनुष्य रूप में प्रकट होकर; **हरिम्**=श्रीभगवान्; **यः**=जो; **उत्तरान्**=उत्तरी भारत का; **अनयत**=वापस ले गये; **कोसलान्**=कोशल देश, अयोध्या वासियों को; **दिवम्**=आध्यात्मिक जगत् या वैकुण्ठ लोक में; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

अतः चाहे सुर हो या असुर, मनुष्य हो या मनुष्येतर प्राणी जैसे पशु या पक्षी प्रत्येक को श्रीभगवान् रामचन्द्र की पूजा करनी चाहिए जो इस पृथ्वी पर मनुष्य की भाँति प्रकट होते हैं। भगवान् की पूजा के लिए किसी कठोर तप या साधना की आवश्यकता नही है, क्योंकि वे अपने भक्त की तुच्छ सेवा को भी स्वीकार करने वाले हैं। इस प्रकार वह तुष्ट हो जाते हैं और उनके तुष्ट होते ही भक्त सफल हो जाता है। निस्सन्देह श्रीरामचन्द्र अयोध्या के समस्त भक्तों को वैकुण्ठ धाम वापस ले गये।

तात्पर्य

भगवान् श्रीरामचन्द्र अपने भक्तों के प्रति इतने दयालु हैं कि वह किसी के द्वारा, चाहे मनुष्य हो या अन्य, थोड़ी भी सेवा किये जाने पर सरलता से प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र की पूजा करने का यही लाभ है। ऐसा ही लाभ श्रीचैतन्य महाप्रभु की पूजा करने से होता है। श्रीकृष्ण तथा श्रीरामचन्द्र ने क्षत्रियों की भाँति असुरों का वध करके अपनी दया का प्रदर्शन किया, किन्तु भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु

ने असुरों तक को सहज ही भगवत् प्रेम प्रदान किया। श्रीभगवान् के समस्त अवतारों ने, विशेषत: श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण तथा बाद में भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने पूर्ववर्ती अनेक जीवात्माओं को मोक्ष प्रदान किया। अत: श्रीचैतन्य महाप्रभु को षडभुज मूर्ति के रूप में प्रदर्शित किया जाता है जो श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा श्रीचैतन्य महाप्रभु इन तीनों का सम्मिलित रूप है। मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य इस षडभुज रूप की आराधना से ही प्राप्त हो जाता है।

भारतेऽपि वर्षे भगवान्नरनारायणाख्य आकल्पान्तमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यै-श्वर्योपशमोपरमात्मोपलम्भनमनुग्रहायात्मवतामनुकम्पया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥ ९ ॥

भारते = भारत; **अपि** = भी; **वर्षे** = भूभाग में; **भगवान्** = श्रीभगवान्; **नर-नारायण-आख्य** = नर-नारायण के नाम से विख्यात; **आ-कल्प-अन्तम्** = कल्पान्त तक; **उपचित** = वर्धमान; **धर्म** = धर्म; **ज्ञान** = ज्ञान; **वैराग्य** = वैराग्य; **ऐश्वर्य** = सम्पदा; **उपशम** = इन्द्रिय-निग्रह; **उपरम** = अहंकार से मुक्ति; **आत्म-उपलम्भनम्** = आत्मसाक्षात्कार; **अनुग्रहाय** = अनुग्रह हेतु; **आत्म-वताम्** = आत्मसाक्षात्कार में रुचि रखने वाले व्यक्तियों को; **अनुकम्पया** = अहैतुकी दया से; **तप:** = तप; **अव्यक्त-गति:** = अकथनीय महिमामय; **चरति** = करता है।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी आगे बोले—श्रीभगवान् की महिमा अकल्पनीय है। उन्होंने अपने भक्तों पर अनुग्रहवश उन्हें धर्म, ज्ञान, त्याग, अध्यात्म, इन्द्रिय-निग्रह तथा अहंकार से मुक्ति की शिक्षा प्रदान करने के लिए भारतवर्ष की भूमि में बद्रिकाश्रम नामक स्थान पर अपने को प्रकट किया। वे आत्मज्ञान की सम्पदा से परिपूर्ण हैं और कल्पान्त तक तप में रत रहने वाले हैं। यही आत्मसाक्षात्कार की क्रिया है।

तात्पर्य

भारतवासी बद्रिकाश्रम स्थित नर-नारायण के मन्दिर की यात्रा करके यह जान सकते हैं कि श्रीभगवान् ने किस प्रकार नर-नारायण अवतार धारण किया और जन-सामान्य को आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने की विधि समझाई। मात्र चिन्तन तथा संसारी कार्यों में मग्न रह कर आत्मसाक्षात्कार नहीं प्राप्त किया जा सकता। आत्म-साक्षात्कार तथा तप साधना में एकाग्रता की आवश्यकता होती है। दुर्भाग्यवश इस कलियुग में लोग तप का वास्तविक अर्थ नहीं जानते। फलत: भगवान् ने श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में पतित आत्माओं को आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने की विधि को

बताने, जिसे—**चेतो-दर्पण मार्जनम्**, कहा जा सकता है—अर्थात् हृदय से मल को स्वच्छ करने के लिए अवतार लिया है। यह विधि अत्यन्त सरल है। कोई भी श्रीकृष्ण-संकीर्तन—**हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे** का जप कर सकता है। इस युग में विज्ञान के अनेक रूप हैं—यथा नृविज्ञान, मार्क्सवाद, फ्रायडवाद, राष्ट्रवाद, उद्योगवाद, किन्तु यदि हम नर-नारायण द्वारा बताई गई सरल विधि का अनुसरण न करके इन वादों के निर्देशन में अत्यधिक श्रम करेंगे तो हमारा अमूल्य मनुष्य जीवन बेकार हो जायेगा। इस प्रकार हम ठगे जायेंगे और पथभ्रष्ट होंगे।

तं भगवान्नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भगवत्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णेरुपदेक्ष्यमाणः परम-भक्तिभावेनोपसरति इदं चाभिगृणाति ॥१०॥

तम् = उसको (नर-नारायण); **भगवान्** = अत्यन्त शक्तिशाली सन्त पुरुष; **नारदः** = नारद ऋषि; **वर्ण-आश्रम-वतीभिः** = चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के अनुयायियों द्वारा; **भारतीभिः** = भारतवर्ष नामक देश के; **प्रजाभिः** = वासियों द्वारा; **भगवत्-प्रोक्ताभ्याम्** = श्रीभगवान् द्वारा कहे गये; **सांख्य** = सांख्ययोग द्वारा; **योगाभ्याम्** = योग के अभ्यास द्वारा; **भगवत्-अनुभाव-उपवर्णनम्** = जो भगवत्-प्राप्ति की क्रिया को बताता है; **सावर्णेः** = सावर्णि मनु को; **उपदेक्ष्यमानः** = उपदेश करते हुए; **परम-भक्ति-भावेन** = अत्यन्त भक्तिभाव से; **उपसरति** = भगवान् की सेवा करता है; **इदम्** = यह; **च** = तथा; **अभिगृणाति** = जप करता है।

अनुवाद

नारद पंचरात्र नामक ग्रंथ में भगवान् नारद ने अत्यन्त विस्तारपूर्वक बताया है कि किस प्रकार ज्ञान तथा योगक्रिया के द्वारा जीवन के परम लक्ष्य—भक्ति को प्राप्त करने के लिए कार्य करना चाहिए। उन्होंने श्रीभगवान् की महिमा का वर्णन भी किया है। महर्षि नारद ने इस दिव्य साहित्य का उपदेश सार्वणि मनु को दिया, जिससे वह भारतवर्ष के उन वासियों को जो दृढ़तापूर्वक वर्णाश्रम धर्म के नियमों का पालन करते हैं, भगवान् की भक्ति प्राप्त करने की शिक्षा दे सकें। इस प्रकार नारद मुनि भारतवर्ष के अन्य निवासियों सहित नर-नारायण की सदा सेवा करते हुए निम्नलिखित मन्त्र का जप करते रहते हैं।

तात्पर्य

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने स्पष्ट घोषणा की है—

भारत-भूमिते हैल मनुष्य-जन्म यार।
जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार॥

भारतवर्ष में मनुष्य जीवन के उद्देश्य की पूर्ति अथवा वास्तविक सफलता सहज ही प्राप्त की जा सकती है, क्योंकि जीवन-उद्देश्य तथा सफलता प्राप्ति की विधि सुस्पष्ट हैं। भारतवर्ष में प्राप्त होने वाले सुअवसर का लाभ लोगों को, विशेष रूप से उनको जो वर्णाश्रम धर्म के नियमों का पालन करने वाले हैं, उठाना चाहिए। यदि हम वर्णाश्रम धर्म के नियमों का चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) तथा चारों आश्रमों (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) को स्वीकार करते हुए पालन नहीं करते तो जीवन में सफलता नहीं मिल सकती। दुर्भाग्यवश कलियुग के प्रभाववश प्रत्येक वस्तु की हानि हो रही है। भारतवर्ष के वासी क्रमशः म्लेक्ष तथा यवन बनते जा रहे हैं। तो फिर वे दूसरों को कैसे शिक्षा दे सकते हैं? इसीलिए इस श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन को न केवल भारतवासियों के लिए वरन् समस्त विश्व के मनुष्यों के लिए चलाया जा रहा है। अब भी समय है और यदि भारतवासी इस आन्दोलन को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करें तो सारा जगत् अधोगति प्राप्त होने से बच सकता है। यह आन्दोलन **पंचरात्रिका** विधि के साथ ही **भागवत** विधि का पालन करता है जिससे मनुष्य इस आन्दोलन का लाभ उठाकर अपने जीवन को सफल बना सके।

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति ॥११॥

ॐ=हे परमेश्वर; **नमः**=मेरा सादर नमस्कार; **भगवते**=श्रीभगवान् को; **उपशम-शीलाय**=जिन्होंने इन्द्रियों को वश में कर लिया है; **उपरत-अनात्माय**=भौतिक जगत् से विरक्त; **नमः**=नमस्कार; **अकिंचन-वित्ताय**=धनहीन व्यक्तियों के सम्पत्ति स्वरूप श्रीभगवान् को; **ऋषि-ऋषभाय**=श्रेष्ठ ऋषियों को; **नर-नारायणाय**=नर-नारायण को; **परमहंस-परम-गुरवे**=परमहंसों अर्थात् मुक्त पुरुषों के परम आदरणीय गुरु; **आत्माराम-आधिपतये**=आत्माराम में श्रेष्ठ; **नमः नमः**=बारम्बार नमस्कार है; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

मैं समस्त सन्त पुरुषों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् नर-नारायण को सादर नमस्कार करता हूँ। वे अत्यन्त आत्मसंयमित तथा आत्माराम हैं, वे झूठी प्रतिष्ठा से परे हैं और निर्धनों के एकमात्र धन हैं। वे मनुष्यों में परम सम्माननीय समस्त परमहंसों के गुरु हैं और आत्मसिद्धों के स्वामी हैं। मैं उनके चरणकमलों को पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ।

गायति चेदम्—

कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते
न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः।
द्रष्टुर्न दृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते
तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥१२॥

गायति=गाता है; **च**=तथा; **इदम्**=यह; **कर्ता**=करने वाला; **अस्य**=इस जगत् का; **सर्ग-आदिषु**=सृष्टि, पालन तथा संहार का; **यः**=जो; **न बध्यते**=सृष्टिकर्ता या स्वामी के रूप में लिप्त नहीं है; **न**=नहीं; **हन्यते**=पीड़ित किया जाता है; **देहगतः अपि**=मनुष्य के रूप में प्रकट होकर भी; **दैहिकैः**=भूख, प्यास, थकान जैसी शारीरिक यातनाओं के द्वारा; **द्रष्टुः**=सर्व द्रष्टा को; **न**=नहीं; **दृक्**=दृष्टि शक्ति; **यस्य**=जिसकी; **गुणैः**=भौतिक गुणों के द्वारा; **विदूष्यते**=प्रदूषित हो जाता है; **तस्मै**=उसको; **नमः**=नमस्कार है; **असक्त**=अनासक्त श्रीभगवान् को; **विविक्त**=बिना प्यार के; **साक्षिणे**=सब का साक्षी।

अनुवाद

परम शक्तिमान् ऋषि नारद नर-नारायण की आराधना निम्नलिखित मन्त्र को जप करके करते हैं—"श्रीभगवान् इस दृश्य जगत् के सृष्टिकर्ता, पालक और संहारक हैं तो भी वे मिथ्या अभिमान से पूर्णतया मुक्त हैं। यद्यपि मूढ़ों के लिए उन्होंने हमारे समान शरीर धारण करना स्वीकार किया है, किन्तु उन्हें भूख, प्यास तथा थकान जैसे शारीरिक कष्ट नहीं सताते। यद्यपि वे सर्वद्रष्टा हैं, किन्तु जिन वस्तुओं को वे देखते हैं उनसे उनकी इन्द्रियाँ दूषित नहीं होतीं। मैं ऐसे अनासक्त, जगत् के साक्षी, परमात्मास्वरूप श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार करता हूँ।"

तात्पर्य

भगवान् श्रीकृष्ण को "सच्चिदानन्द विग्रह" के रूप में वर्णित किया गया है।

इस श्लोक में उनका विशेष वर्णन प्राप्त है। श्रीकृष्ण इस दृश्य जगत् के कर्ता हैं, किन्तु वे इससे अनासक्त रहते हैं। यदि हम गगनचुम्बी भवन का निर्माण करें तो हम इसके प्रति अत्यधिक आसक्त होंगे, किन्तु श्रीकृष्ण इतने अनासक्त हैं कि सब कुछ उत्पन्न करके भी किसी वस्तु से लिप्त नही हैं (**न बध्यते**)। यही नहीं श्रीकृष्ण का दिव्य रूप—सच्चिदानन्द विग्रह है। उन्हें दैहिक आवश्यकताएँ नहीं सतातीं, उदाहरणार्थ न तो उन्हें भूख लगती है, न प्यास (**न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः**)। अपरंच, चूँकि प्रत्येक वस्तु श्रीकृष्ण की है, वे सब कुछ देखते हैं और सर्वत्र विद्यमान् हैं, किन्तु दिव्य देह होने के कारण वे दृष्टिगोचर नहीं होते। जब हम कोई सुन्दर वस्तु देखते हैं तो उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। सुन्दर स्त्री को देखते ही पुरुष तुरन्त आर्कषित होता है और पुरुष को देखकर स्त्री आकृष्ट होती है। किन्तु श्रीकृष्ण इन समस्त बुराइयों से परे हैं। वे सर्वद्रष्टा हैं, उनकी दृष्टि दूषित नहीं होती (**न दृग् यस्य गुणैर्विदूष्यते**) अतः वे साक्षी हैं और कर्मों के मोह से पृथक रहने वाले हैं। वे सदैव निर्लिप्त तथा पृथक रहते हैं, वे ही एकमात्र साक्षी हैं।

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं
हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत्।
यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो
भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥१३॥

इदम्=यह; **हि**=निश्चयपूर्वक; **योग-ईश्वर**=हे समस्त योगशक्ति के स्वामी; **योग-नैपुणम्**=योगिक नियमों की साधना में दक्ष; **हिरण्य-गर्भः**=भगवान् ब्रह्मा; **भगवान्**=सर्वशक्तिमान्; **जगाद**=बोला; **यत्**=जो; **यत्**=जो; **अन्त-काले**=मृत्यु के समय; **त्वयि**=तुममें (आप में); **निर्गुणे**=सत्त्व; **मनः**=मन (मस्तिष्क); **भक्त्या**=भक्तिपूर्वक; **दधीत**=रखना चाहिए; **उज्झित-दुष्कलेवरः**=भौतिक शरीर के साथ ही अपना स्वरूप त्याग करके।

अनुवाद

हे योगेश्वर! आत्माराम भगवान् ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ) ने योगक्रिया के विषय में जो कुछ कहा है यह उसकी व्याख्या है। मृत्यु के समय सभी योगी आपके चरण-कमलों में अपना मन स्थापित करके अपने भौतिक शरीर को त्यागते हैं। यही योग सिद्धि है।

तात्पर्य

श्रील मध्वाचार्य कहते हैं—

यस्य सम्यग् भगवती ज्ञानं भक्तिस्तथैव च।
निश्चिन्तस्तस्य मोक्षः स्यात् सर्वपापकृतोऽपि तु ॥

"जो श्रीभगवान् की वास्तविक स्थिति समझने के उद्देश्य से अपने जीवनकाल में गम्भीरतापूर्वक भक्ति करता है उसकी इस जगत् से मुक्ति निश्चित है, भले ही वह पापाचार क्यों न करता रहा हो।" भगवद्गीता (९.३०) में भी इसकी पुष्टि की गई है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

"यदि कोई अतिशय दुराचारी भी मेरी अनन्यभक्ति के परायण हो जाय, तो उसे साधु ही मानना चाहिए, क्योंकि वह मेरी एकान्त निष्ठारूपी श्रेष्ठ निश्चय वाला है।" इस जीवन का एकमात्र उद्देश्य श्रीकृष्ण के विचारों तथा उसके रूप, लीलाओं, कार्यों और गुणों में पूर्णतः मग्न रहना है। यदि कोई इस प्रकार श्रीकृष्ण के विषय में चौबीसों घंटे सोच सकता है तो वह पहले से मुक्त है (**स्वरूपेण व्यवस्थितिः**) जहाँ भौतिकवादी सांसारिक विचारों तथा कार्यों में मग्न रहते हैं वहीं भक्तजन श्रीकृष्ण के विचारों एवं उनकी क्रियाओं में डूबे रहते हैं। अतः वे मोक्ष के पद को पहले ही प्राप्त कर चुके होते हैं। मृत्यु के समय मनुष्य को चाहिए कि पूर्णतः श्रीकृष्ण के विचार में मग्न रहे। तभी वह श्रीभगवान् के धाम को लौट सकेगा।

यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः
सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन्।
शङ्केत विद्वान् कुकलेवरात्ययाद्
यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥१४॥

यथा=जिस प्रकार; **ऐहिक**=इस जीवन में; **अमुष्मिक**=भावी जीवन में; **काम-लम्पटः**=कामवासनाओं में लिप्त रहने वाला पुरुष; **सुतेषु**=सन्तान; **दारेषु**=पत्नी; **धनेषु**=सम्पत्ति; **चिन्तयन्**=सोचते हुए; **संकेत**=भयभीत रहता है; **विद्वान्**=आत्मज्ञानी पुरुष; **कु-कलेवर**=इस मलमूत्र से पूरित शरीर का; **अत्ययात्**=क्षति के कारण; **यः**=जो कोई; **तस्य**=उसका; **यत्नः**=प्रयास; **श्रमः**=समय एवं शक्ति का अपव्यय; **एवं**=निश्चय ही; **केवलम्**=मात्र, केवल।

अनुवाद

सामान्यत: भौतिकवादी अपने वर्तमान तथा भावी शारीरिक सुखों में अत्यन्त लिप्त रहते हैं। अतः वे अपनी पत्नी, सन्तान तथा सम्पत्ति के विचारों में सदैव मग्न रहते हैं और इस मलमूत्र से पूर्ण शरीर को त्यागने से भयभीत रहते हैं। यदि कृष्णभक्ति में संलग्न व्यक्ति भी अपने शरीर-त्याग से भयभीत हों तो फिर शास्त्रों के अध्ययन में किये गये श्रम का क्या लाभ? यह केवल समय का अपव्यय है।

तात्पर्य

मृत्यु के समय भौतिकवादी अपनी पत्नी तथा सन्तान के विषय में सोचता रहता है। वह इसी सोच में डूबता-उतराता रहता है कि उसकी मृत्यु के बाद उनकी देख भाल कौन करेगा और वे कैसे रहेंगे। अत: वह कभी शरीर नहीं छोड़ना चाहता; वरन् वह जीवित रहकर अपने समाज, परिवार, मित्र आदि की सेवा करते रहना चाहता है। अत: उसे चाहिए कि योगाभ्यास द्वारा ऐहिक सम्बन्धों से विरक्त हो जाय। यदि भक्तियोग की साधना तथा वैदिक साहित्य के अध्ययन के पश्चात् भी वह इस कुदेह का परित्याग करने से भयभीत होता है तो जीने का प्रयास करने से क्या लाभ? योग साधना का रहस्य शारीरिक लगाव से मुक्त होना है। श्रील नरोत्तदास ठाकुर का कथन है कि **देह-स्मृति नाहि यार, संसार-बंधन काहाँ तार**—जिसके अभ्यास से दैहिक चिन्ताओं से मुक्ति मिल जाती है उसे अधिक काल तक बद्धजीवन नहीं बिताना पड़ता। ऐसे व्यक्ति का बन्धन से छुटकारा हो जाता है। कृष्णभावना में लगे व्यक्ति को बिना किसी भौतिक आसक्ति के अपना भक्तिकार्य करना चाहिए। तभी उसकी मुक्ति निश्चित है।

तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां
त्वन्माययाहंममतामधोक्षज ।
भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां
विधेहि योगं त्वयि नःस्वभावमिति ॥१५॥

तत्=अत:; **नः**=हमारी; **प्रभो**=हे प्रभो! **त्वम्**=आप (तुम); **कु-कलेवर-अर्पिताम्**=मलमूत्र से पूरित इस बुरे शरीर में लगे हुए; **त्वत्-मायया**=आपकी माया से; **अहम्-ममताम्**="मैं और मेरा" का विचार; **अधोक्षज**=हे सत्त्व! **भिन्द्याम**=त्याग सकता है; **येन**=जिससे; **आशु**=शीघ्र ही; **वयम्**=हम; **सुदुर्भिदाम्**=जिसको त्याग पाना दुष्कर है; **विधेहि**=कृपया प्रदान करें; **योगम्**=क्रिया;

त्वयि=आपको; **नः**=हमारा; **स्वभावम्**=जो स्थिर मन के द्वारा जाना जाता है; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

अतः हे प्रभो, हे अधोक्षज! कृपा करके हमें भक्तियोग साधने की शक्ति प्रदान करें जिससे हम अपने अस्थिर मन को वश में करके आप में लगा सकें। हम सभी आपकी माया से प्रभावित हैं, अतः हम मलमूत्र से पूरित शरीर तथा इससे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु के प्रति अत्यधिक समर्पित हैं। इस आसक्ति को त्यागने का एकमात्र उपाय भक्ति है, अतः आप हमें यह वर दें।

तात्पर्य

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण का उपदेश है—**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।** सदैव श्रीकृष्ण का चिन्तन, भक्ति में व्यस्तता, सदैव श्रीकृष्ण की पूजा और उनको नमस्कार करना—ये पूर्ण योगक्रिया के अन्तर्गत आते हैं। इस योगक्रिया का अभ्यास किये बिना इस मल-मूत्र पूरित शरीर के प्रति मोह को त्याग पाना दुष्कर है। योग की सिद्धि इसी में है कि देह के प्रति जो भी मोह है उसे श्रीकृष्ण के प्रति आसक्ति में परिणत कर दिया जाये। हम सांसारिक सुख में अत्यधिक लिप्त रहना चाहते हैं, किन्तु जब हम श्रीकृष्ण के प्रति वैसी आसक्ति रखते हैं तो हमारे उद्धार का मार्ग प्रशस्त होता है। मनुष्य को चाहिए कि इसी योग-प्रक्रिया का पालन करे।

भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसङ्ख्याताः ॥१६॥

भारते=भारतवर्ष में; **अपि**=भी; **अस्मिन्**=इस; **वर्षे**=भूगाग में; **सरित**=नदियाँ, **शैलाः**=पर्वत; **सन्ति**=हैं; **बहवः**=अनेक; **मलयः**=मलय; **मंगल-प्रस्थः**=मंगलप्रस्थ; **मैनाकः**=मैनाक पर्वत; **त्रि-कूटः**=त्रिकूट पर्वत; **ऋषभः**=ऋषभ; **कूटकः**=कूटक; **कोल्लकः**=कोल्लक; **सह्यः**=सह्य; **देव-गिरिः**=देवगिरि; **ऋष्य-मूकः**=ऋष्यमूक; **श्री-शैलः**=श्रीशैल; **वेंकटः**=वेंकट; **महेन्द्रः**=महेन्द्र; **वारि-धारः**=वारिधार; **विन्ध्य**=विन्ध्याचल; **शुक्तिमान्**=शुक्तिमान्; **ऋक्ष-गिरिः**=

ऋक्षगिरि; **पारियात्रः**=पारियात्र; **द्रोणः**=द्रोण; **चित्र-कूट**=चित्रकूट; **गोवर्धनः**=गोवर्धन; **रैवतकः**=रैवतक; **ककुभः**=ककुभ; **नीलः**=नीलगिरि; **गोकामुखः**=गोकामुख; **इन्द्रकीलः**=इन्द्रकील; **काम-गिरिः**=कामगिरि; **इति**=इस प्रकार; **च**=तथा; **अन्ये**=अन्य; **च**=भी; **शत-सहस्रशः**=सैकड़ों तथा हजारों; **शैलाः**=पर्वत; **तेषाम्**=उनमें से; **नितम्ब-प्रभवः**=ढालों से उत्पन्न; **नदाः**=बड़ी-बड़ी नदियाँ; **नद्यः**=छोटी नदियाँ; **च**=और; **सन्ति**=हैं; **असंख्याताः**=असंख्य ।

अनुवाद

इलावृत-वर्ष की भाँति भारतवर्ष में भी अनेक पर्वत और नदियाँ हैं । कुछ पर्वत इस प्रकार हैं—मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेंकट, महेन्द्र, वारिधारा, विन्ध्य, शुक्तिमान्, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील तथा कामगिरि । इनके अतिरिक्त अनेक पहाड़ियाँ हैं जिनके ढालों से अनेक बड़ी तथा छोटी नदियाँ निकलती हैं ।

एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति ।।१७।। चन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुरन्धः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिर्ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ।।१८।।

एतासाम्=इन सबों का; **अपः**=जल; **भारत्यः**=भारतवर्ष के; **प्रजाः**=वासी; **नामभिः**=नामों से; **एव**=केवल; **पुनन्तीनाम्**=पवित्र बनाती हैं, **आत्मना**=मन; **च**=भी; **उपस्पृशन्ति**=स्पर्श करती हैं; **चन्द्रवसा**=चन्द्रवसा; **ताम्र-पर्णी**=ताम्रपर्णी; **अवटोदा**=अवटोदा; **कृत-माला**=कृतमाला; **वैहायसी**=वैहायसी; **कावेरी**=कावेरी; **वेणी**=वेणी; **पयस्विनी**=पयस्विनी; **शर्करावर्ता**=शर्करावर्ता; **तुंग-भद्रा**=तुंगभद्रा; **कृष्णा-वेण्या**=कृष्णावेण्या; **भीमरथी**=भीमरथी; **गोदावरी**=गोदावरी; **निर्विन्ध्या**=निर्विन्ध्या; **पयोष्णी**=पयोष्णी; **तापी**=तापी; **रेवा**=रेवा; **सुरसा**=सुरसा; **नर्मदा**=नर्मदा; **चर्मण्वती**=चर्मण्वती; **सिन्धुः**=सिन्धु; **अन्धः**=अन्ध; **शोणः**=शोण; **च**=तथा; **नदौ**=दो नदियाँ; **महानदी**=महानदी; **वेद-स्मृतिः**=वेदस्मृति; **ऋषिकुल्या**=ऋषिकुल्या; **त्रि-सामा**=त्रिसामा; **कौशिकी**=कौशिकी; **मन्दाकिनी**

=मन्दाकिनी; **यमुना** =यमुना; **सरस्वती** =सरस्वती; **दृषद्वती** =दृषद्वती; **गोमती** =गोमती; **सरयू** =सरयू; **रोधस्वती** =रोधस्वती; **सप्तवती** =सप्तवती; **सुषोमा** = सुषोमा; **शत-द्रुः** =शतद्रु; **चन्द्र-भागा** =चन्द्रभागा; **मरुद्वृधा** =मरुद्वृधा; **वितस्ता** =वितस्ता; **असिक्नी** =असिक्नी; **विश्वा** =विश्वा; **इति** =इस प्रकार; **महा-नद्यः** = बड़ी नदियाँ।

अनुवाद

नदियों में से दो नदियाँ—ब्रह्मपुत्र तथा शोण—नद अथवा मुख्य नदियाँ कहलाती हैं। अन्य प्रमुख बड़ी नदियाँ इस प्रकार हैं—चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुंगभद्रा, कृष्णावेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी तथा विश्वा। भारतवर्ष के वासी इन नदियों का स्मरण करने से पवित्र रहते हैं। कभी-कभी वे इन नदियों के नामों का मन्त्रवत् जाप करते हैं और कभी-कभी जाकर इनका स्पर्श और इनमें स्नान भी करते हैं। इस तरह भारतवर्ष के निवासी पवित्र होते रहते हैं।

तात्पर्य

ये समस्त नदियाँ दिव्य हैं। अतः इनके स्मरण, स्पर्श या स्नान से पवित्र हुआ जा सकता है। आज भी यह प्रथा चालू है।

अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥१९॥

अस्मिन् एव वर्षे =इसी भूभाग (भारतवर्ष) में; **पुरुषैः** =पुरुषों के द्वारा; **लब्ध-जन्मभिः** =जन्म लेने वालों के द्वारा; **शुक्ल** =सत्त्वगुण का; **लोहित** =रजोगुण का; **कृष्ण** =तमोगुण का; **वर्णेन** =वर्ण (विभाग) के अनुसार; **स्व** =स्वयं; **आरब्धेन** =प्रारम्भ किया हुआ; **कर्मणा** =कर्म के द्वारा; **दिव्य** =दिव्य, दैवी; **मानुष** = मानवीय; **नारक** =नारकीय; **गतयः** =गन्तव्य; **बह्व्यः** =अनेक; **आत्मनः** =स्वयं का; **आनुपूर्व्येण** =पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार; **सर्वाः** =समस्त; **हि** =निश्चयपूर्वक; **एव** =निस्सन्देह; **सर्वेषाम्** =सबों का; **विधियन्ते** =भाग्य में लिखा है; **यथा-वर्ण-विधानम्** =विभिन्न वर्णों के अनुसार; **अपवर्गः** =मुक्ति का मार्ग; **च** =और; **अपि** =भी; **भवति** =सम्भव है।

अनुवाद

इस भूभाग में जन्म लेने वाले व्यक्ति गुणों—सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण—के अनुसार विभाजित हैं इनमें से कुछ अत्यन्त महान् व्यक्तियों के रूप में, कुछ सामान्य व्यक्तियों के रूप में और कुछ अत्यन्त निम्न व्यक्तियों के रूप में जन्म लेते हैं, क्योंकि भारतवर्ष में विगत कर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का जन्म होता है। यदि प्रामाणिक गुरु के द्वारा किसी भी मनुष्य की स्थिति निश्चित की जाय और यदि उसे चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) तथा चार आश्रमों (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) के अनुसार भगवान् विष्णु की सेवा में रत होने का सही-सही प्रशिक्षण दिया जाय तो उसका जीवन सफल हो सकता है।

तात्पर्य

अधिक सूचना के लिए भगवद्गीता (१४.१८ तथा १८.४२-४५) देखना चाहिए। श्रील रामानुजाचार्य ने अपनी पुस्तक **वेदान्त संग्रह** में लिखा है—

एवंविध पराभक्तिस्वरूपज्ञानविशेषस्योत्पादकः पूर्वोक्ताहरहरुपचीयमानज्ञान-पूर्वककर्मानुगृहीतभक्तियोग एव, यथोक्तं भगवता पराशरेण—वर्णाश्रमेति। निखिलजगदुद्धारणायावनितलेऽवतीर्णं परब्रह्मभूतः पुरुषोत्तमः स्वयमेतदुक्तवान्—"स्वकर्म-निरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।" "यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥"

महर्षि पराशर मुनि ने विष्णुपुराण (३८९) से उद्धरण देते हुए संस्तुति की है—

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुर्आराध्यते पंथा नान्यत् तत्तोषकारणम्॥

"वर्णाश्रम प्रणाली में उल्लिखित कर्तव्यों के सही-सही पालन द्वारा—श्रीभगवान् विष्णु की आराधना की जाती है। इसके अतिरिक्त भगवान् को तुष्ट करने का अन्य कोई उपाय नहीं है।" भारतवर्ष में वर्णाश्रम-धर्म का सरलता से पालन हो सकता है। इस समय भारतवर्ष के कुछ आसुरी वर्ग वर्णाश्रम-धर्म प्रणाली की उपेक्षा कर रहे हैं। चूँकि लोगों को यह शिक्षा देने के लिए कि किस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बना जा सकता है या ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी कैसे बना जाता है कोई संस्था नहीं है, अतः ये असुर वर्गहीन समाज चाहते हैं। इससे अव्यवस्था उत्पन्न हो रही है। धर्मनिरपेक्ष सरकार के नाम पर अयोग्य व्यक्ति उच्च शासकीय पद ग्रहण कर रहे हैं। किसी को भी वर्णाश्रम-धर्म के नियमों के अनुसार कार्य करने की शिक्षा नहीं दी जा रही जिससे मनुष्य अत्यन्त पतित हो कर पशु-जीवन की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। जीवन का मुख्य उद्देश्य मुक्ति है, किन्तु

दुर्भाग्यवश मनुष्यों को मुक्ति का अवसर नहीं दिया जाता जिससे उनका जीवन विनष्ट हो रहा है। श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन सम्पूर्ण विश्व में वर्णाश्रम-धर्म प्रणाली की पुनः-स्थापना करने और मानव समाज को नारकीय जीवन से बचाने के लिए प्रवर्द्धित किया जा रहा है।

योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो नानागतिनिमित्ताविद्याग्रन्थिरन्धनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसङ्गः ॥२०॥

यः=जो कोई; **असौ**=उस; **भगवति**=श्रीभगवान् तक; **सर्व-भूत-आत्मनि**= समस्त जीवात्माओं के परम-आत्मा; **अनात्मये**=लगाव रहित; **अनिरुक्ते**=मन तथा वाणी से परे; **अनिलयने**=अन्य किसी पर आश्रित नहीं; **परम-आत्मनि**= परमात्मा को; **वासुदेवे**=भगवान् वासुदेव, वसुदेव के पुत्र; **अनन्य**=बिना समता के; **निमित्त**=कारण; **भक्ति-योग-लक्षणः**=शुद्ध भक्ति के लक्षणों से युक्त; **नाना-गति**=विभिन्न गन्तव्यों का; **निमित्त**=कारण; **अविद्या-ग्रंथि**=अज्ञानरूपी बन्धन; **रन्धन**=काटने का; **द्वारेण**=के द्वारा; **यदा**=जब; **हि**=निस्सन्देह; **महा-पुरुष**= श्रीभगवान् का; **पुरुष**=भक्त के साथ; **प्रसंगः**=घनिष्ठ सम्बन्ध।

अनुवाद

अनेकानेक जन्मों के पश्चात्, किसी को अपने पुण्य कर्मों के फलित होने पर शुद्ध भक्तों की संगति का अवसर प्राप्त होता है। तभी उसके अज्ञानरूपी बन्धन की ग्रंथि, जो उसके नाना प्रकार के कर्मों के कारण बँधती है, कट पाती है। भक्तों की संगति करने से धीरे-धीरे ऐसे भगवान् वासुदेव की सेवा में मन लगने लगता है, जो दिव्य हैं, भौतिक बन्धनों से मुक्त हैं, मन, वाणी से परे हैं तथा परम स्वतन्त्र हैं। यही भक्तियोग मुक्ति का वास्तविक मार्ग है।

तात्पर्य

ब्रह्म-साक्षात्कार मुक्ति का शुभारम्भ है तथा परमात्मा-साक्षात्कार मुक्ति की ओर एक पग और आगे है। किन्तु मनुष्य को वास्तविक मुक्ति तभी मिलती है जब वह अपने आप को श्रीभगवान् का शाश्वत दास मानने लगता है (**मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः**) इस भौतिक जगत् में देहात्मबुद्धि से प्रत्येक प्राणी उल्टी दिशा में कार्यशील रहता है। जब वह **ब्रह्मभूत** हो जाता है तो उसे यह ज्ञान होता है कि वह देह नहीं है और जीवन का देहात्मबोध वृथा तथा उल्टी दिशा में ले जाने

वाला है। तब उसकी भक्ति प्रारम्भ होती है। श्रीकृष्ण भगवद्गीता (१८.५४) में कहते हैं—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

"ब्रह्मभूत पुरुष को तत्काल परब्रह्म की अनुभूति होती है। वह न शोक करता है और न इच्छा ही करता है, सब प्राणियों में समभाव रखता है। इस अवस्था में उसे मेरी शुद्ध भक्ति प्राप्त होती है।" भक्ति ही वास्तविक मुक्ति है। जब मनुष्य श्रीभगवान् के सौन्दर्य से आकर्षित होता है और उसका मन उनके चरण-कमलों में लगा रहता है तो उसे वे सारे विषय नहीं रुचते जिनसे आत्म-साक्षात्कार में बाधा पहुँचती हो। कहने का तात्पर्य यह है कि समस्त प्रकार के कार्यों के प्रति आकर्षण जाता रहता है। तैत्तिरीय उपनिषद् (२.७) में कहा गया है—**एष ह्येवानन्दयाति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्न दृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते। अथ सोऽभयं गतो भवति।** जब जीवात्मा यह समझ लेता है कि उसका सुख आत्म-साक्षात्कार पर निर्भर है तो वह सिद्ध तथा आनन्दमय जीवन बिताने लगता है, जो आनन्द का मूल तत्त्व है और जब वह निरन्तर सर्वोपरि भगवान् की सेवा में निरत रहता है।

एतदेव हि देवा गायन्ति—
अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥२१॥

एतत्=यह; **एव**=निस्सन्देह; **हि**=निश्चय ही; **देवाः**=सभी देवता; **गायन्ति**=कीर्तन करते हैं; **अहो**=अरे; **अमीषाम्**=भारतवर्ष के इन वासियों का; **किम्**=क्या; **अकारि**=किया गया; **शोभनम्**=पवित्र सुन्दर कार्य; **प्रसन्नः**=प्रसन्न; **ऐषाम्**=उन पर; **स्वित्**=अथवा; **उत**=कहा गया; **स्वयम्**=स्वयं; **हरिः**=श्रीभगवान्; **यैः**=जिसके द्वारा; **जन्म**=जन्म; **लब्धम्**=प्राप्त किया; **नृषु**=मानव समाज में; **भारत-अजिरे**=भारतवर्ष के प्रांगण में; **मुकुन्द**=मुक्तिदाता श्रीभगवान्; **सेवा-औपायिकम्**=सेवा करने का माध्यम, स्वरूप; **स्पृहा**=इच्छा; **हि**=निस्सन्देह; **नः**=हमारी।

अनुवाद

चूँकि आत्मसाक्षात्कार के लिए मनुष्य का जीवन ही परम पद है अत: स्वर्ग के सभी देवता इस प्रकार कहते हैं—इन मनुष्यों के लिए भारतवर्ष में जन्म लेना कितना आश्चर्यजनक है। इन्होंने भूतकाल में अवश्य ही कोई तप किया होगा अथवा श्रीभगवान् स्वयं इन पर प्रसन्न हुए होंगे। अन्यथा वे इस प्रकार से भक्ति में संलग्न क्योंकर होते? हम देवतागण भक्ति करने के लिए भारतवर्ष में मनुष्य जन्म धारण करने की मात्र लालसा कर सकते हैं, किन्तु ये मनुष्य पहले से भक्ति में लगे हुए हैं।

तात्पर्य

श्रीचैतन्यचरितामृत (आदि. ९.४१) में इन तथ्यों की विशद व्याख्या है—

भारत-भूमिते हैल मनुष्य-जन्म .यार।
जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार॥

"जिसने भारत देश में मनुष्य का जन्म लिया है अपना जीवन सार्थक बनाना चाहिए और परोपकार करना चाहिए।"

भारतवर्ष में भक्ति करने की अनेक सुविधाएँ प्राप्त हैं। यहाँ के अनेक आचार्यों ने अपने अनुभवों का योगदान किया है और श्रीचैतन्य महाप्रभु ने साक्षात् प्रकट होकर भारतवर्ष के वासियों को यह शिक्षा दी कि किस प्रकार परमार्थ जीवन में आगे बढ़ना और भगवान् की भक्ति में स्थिर होना चाहिए। सभी प्रकार से भारत देश विशिष्ट है, जहाँ भक्ति को सरलता से समझ कर अपने जीवन को सफल बनाया जा सकता है। यदि कोई भक्ति में सफलता प्राप्त करके विश्व के अन्य भागों में भक्ति का उपदेश देता है, तो उससे विश्वभर के लोग लाभ उठाते हैं।

किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतै-
र्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना।
न यत्र नारायणपादपङ्कज-
स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात्॥२२॥

किम्=क्या लाभ है; **दुष्करैः**=अत्यन्त कठिन; **नः**=हमारा; **क्रतुभिः**=यज्ञों के करने से; **तपः**=तप से; **व्रतैः**=व्रत से; **दान-आदिभिः**=दान देने आदि से; **वा**=अथवा; **द्युजयेन**=स्वर्गलोक की प्राप्ति से; **फल्गुना**=तुच्छ; **न**=नहीं; **यत्र**=जहाँ; **नारायण-पाद-पंकज**=भगवान् नारायण के चरणकमल; **स्मृतिः**=

स्मरण; **प्रमुष्ट**=खोया हुआ; **अतिशय**=अत्यधिक; **इन्द्रिय-उत्-सवात्**=भौतिक इन्द्रियतृप्ति के कारण।

अनुवाद

देवता कहते हैं—वैदिक यज्ञों के करने, तप करने, व्रत रखने तथा दान देने जैसे दुष्कर कार्यों के करने के पश्चात् ही स्वर्ग में निवास करने का यह पद हमें प्राप्त हुआ है। किन्तु हमारी इस सफलता का क्या महत्त्व है? यहाँ हम निश्चय ही भौतिक इन्द्रियतृप्ति में व्यस्त रहकर भगवान् नारायण के चरणकमलों का स्मरण तक नहीं कर पाते। हम उनके चरणकमलों को विस्मृतप्राय कर चुके हैं।

तात्पर्य

भारत देश की इतनी महिमा है कि यहाँ जन्म लेने वाले को न केवल स्वर्गलोक का लाभ प्राप्त होता है वरन् वे सीधे भगवान् के धाम को पहुँचते हैं। भगवद्गीता (९.२५) में श्रीकृष्ण कहते हैं—

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

"देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को, भूतों को पूजने वाले भूतों को और जो मेरे भक्त हैं वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।" भारतवर्ष के वासी सामान्यतः वैदिक नियमों का पालन करते हैं, जिससे वे महान् यज्ञों को करते हुए स्वर्गलोकों को प्राप्त होते हैं। किन्तु इतनी बड़ी उपलब्धि का क्या लाभ? जैसा कि भगवद्गीता (९.२१) में कहा गया है, **क्षीणेपुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति**—यज्ञ, दान तथा अन्य पुण्य कर्मों के क्षीण होने पर मनुष्य को मर्त्यलोक में वापस आकर पुनः जन्म और मृत्यु के कष्टों का अनुभव करना होता है। किन्तु यदि कोई श्रीकृष्णभावनाभावित हो जाता है तो वह श्रीकृष्ण के पास वापस जा सकता है (**यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्**)। अतः देवताओं को इस बात का दुःख है कि वृथा ही वे स्वर्गलोक के उच्च पद पर स्थित हैं। उन्हें इस बात का खेद है कि उनका जन्म भारतवर्ष में क्यों नहीं हुआ। इसके विपरीत वे इन्द्रियतृप्ति के लोभ में आकर मृत्यु के समय भगवान् नारायण के चरणकमलों को भूल जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि जिसने भारतवर्ष में जन्म धारण किया है उसे श्रीभगवान् द्वारा दिये गये आदेशों का पालन करना होगा। **यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम**—मनुष्य को चाहिए कि वह श्रीभगवान् के धाम अर्थात् वैकुण्ठलोक या फिर गोलोक वृन्दावन वापस पहुँचे जहाँ वह श्रीभगवान् के संग आनन्दपूर्वक जीवन बिता सके।

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्
क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥२३॥

कल्प-आयुषाम्=जो ब्रह्मा के समान कई कल्पों तक जीवित रहते हैं; **स्थान-जयात्**=स्थान अथवा लोकप्राप्ति की अपेक्षा; **पुनः-भवात्**=जन्म, मृत्यु और जरा की सम्भावना से; **क्षण-आयुषाम्**=ऐसे पुरुषों का जिनकी आयु केवल एक सौ वर्ष है; **भारत-भू-जयः**=भारतवर्ष में जन्म; **वरम्**=श्रेष्ठ है; **क्षणेन**=क्षणिक जीवन के लिए; **मर्त्येन**=शरीर के द्वारा; **कृतम्**=किया हुआ कार्य; **मनस्विनः**=जीवन के सार को ठीक से समझने वाले; **संन्यास्य**=श्रीकृष्ण के चरणकमलों में आत्म-समर्पण करते हुए; **संयान्ति**=प्राप्त करते हैं; **अभयम्**=चिन्तारहित; **पदम्**=धाम; **हरेः**=श्रीभगवान् का।

अनुवाद

ब्रह्मलोक में करोड़ों-अरबों वर्ष की आयु प्राप्त करने की अपेक्षा भारतवर्ष में अल्पायु प्राप्त करना श्रेयस्कर है, क्योंकि ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेने के बाद भी जन्म तथा मरण के चक्र में बारम्बार पड़ना होता है। यद्यपि मर्त्यलोक के अन्तर्गत भारतवर्ष में जीवन अत्यन्त अल्प है, किन्तु यहाँ का वासी पूर्ण कृष्णभक्ति तक पहुँच सकता है और भगवान् के चरणकमलों में अर्पित होकर इस लघु जीवन में भी परम सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार उसे वैकुण्ठलोक प्राप्त होता है जहाँ न तो चिन्ता है न पुनर्जन्म।

तात्पर्य

इससे भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु के इस कथन की पुष्टि होती है—

भारत-भूमिते हैल मनुष्य जन्म यार।
जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार ॥

भारतवर्ष में जन्म ग्रहण करने वाले को श्रीकृष्ण द्वारा भगवद्गीता में दिये गये उपदेशों का अध्ययन करने का पूरा-पूरा अवसर प्राप्त होता है और इस तरह वह इस मानव जीवन में जो कुछ करना है, उसके सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय ले सकता है। मनुष्य को चाहिए कि वह समस्त विकल्पों को त्याग कर श्रीकृष्ण को आत्मसमर्पण कर दे। श्रीकृष्ण तुरन्त ही उसके सारे विगत पापों को दूर कर देंगे (**अहं त्वा सर्व-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः**)। अतः साक्षात् श्रीकृष्ण के वचनों को मानकर

उनकी भक्ति करनी चाहिए। **मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु**—सदैव मेरा ही स्मरण करो, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। यह तो एक बालक के लिए भी अत्यन्त सुगम है। तो फिर इस पथ को क्यों न ग्रहण किया जाय? मनुष्य को चाहिए कि श्रीकृष्ण के उपदेशों का यथातथ्य पालन करे और इस प्रकार भगवद्धाम को प्राप्त करे (**त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन**)। मनुष्य को चाहिए कि श्रीकृष्ण के पास जाकर उनकी सेवा में लग जाय। भारतवर्ष के वासियों के लिए यह सर्वोत्तम अवसर है। जो ईश्वर के धाम लौटने के योग्य होता है उसे अच्छे या बुरे कर्म-फल नहीं भोगने पड़ते।

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥२४॥

न=नहीं; **यत्र**=जहाँ; **वैकुण्ठ-कथा-सुधा-आपगाः**=समस्त चिन्ताओं को दूर करने वाले श्रीवैकुण्ठ अर्थात् श्रीभगवान् की अमृतमयी धारा के समान कथा; **न**=न तो; **साधवः**=भक्तजन; **भागवताः**=श्रीभगवान् की सेवा में निरन्तर तत्पर; **तत्-आश्रयाः**=श्रीभगवान् की शरण में गये; **न**=नहीं; **यत्र**=जहाँ; **यज्ञ-ईश-मखाः**=यज्ञों के स्वामी के प्रति की गई भक्ति; **महा-उत्सवाः**=जो वास्तविक उत्सव हैं; **सुरेश-लोकः**=स्वर्गवासियों का स्थान; **अपि**=यद्यपि; **न**=नहीं; **वै**=निश्चय ही; **सः**=उस; **सेव्यताम्**=सेवा करते हुए।

अनुवाद

जहाँ श्रीभगवान् की कथा रूपी विशुद्ध गंगा प्रवाहित नहीं होती, और जहाँ भक्तजन सेवा में तल्लीन नहीं रहते अथवा श्रीभगवान् को प्रसन्न करने के लिए जहाँ संकीर्तन-यज्ञ के उत्सव नहीं मनाये जाते, ऐसे स्थान में ज्ञानी पुरुष को कोई रुचि नहीं होती। (इस युग में विशेषकर संकीर्तन-यज्ञ की संस्तुति की गई है)।

तात्पर्य

श्रीचैतन्य महाप्रभु का जन्म भारतवर्ष में, विशेष रूप से बंगाल के नदिया जिले में हुआ जो नवद्वीप में स्थित है। अतः श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के अनुसार यह निष्कर्ष निकलता है कि इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सर्वश्रेष्ठ लोक यह पृथ्वी है, और इसी पर भारतवर्ष स्थित है; भारतवर्ष में ही बंगाल है जो इससे उत्तम है, बंगाल

में नदिया जिला उससे भी उत्तम है और नदिया में नवद्वीप सर्वोत्तम है, क्योंकि यहीं श्रीचैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव हरेकृष्ण महामन्त्र कीर्तन का शुभारम्भ करने के लिए हुआ। शास्त्रों का मत है—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदं।
यज्ञैः संकीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥

श्रीचैतन्य महाप्रभु के साथ सदैव ही उनके पार्षद, यथा श्रीनित्यानन्द, श्रीगदाधर तथा श्रीअद्वैत एवं श्रीवास जैसे अनेक भक्त रहते हैं। वे सदैव भगवन्नाम का कीर्तन और श्रीकृष्ण का गुण-गान करते रहते हैं। इसीलिए भारतवर्ष विश्वभर में सर्वश्रेष्ठ स्थान है। श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन ने श्रीचैतन्य महाप्रभु के जन्मस्थान मायापुर में अपना केन्द्र स्थापित कर रखा है, जिससे लोग वहाँ जायें और सतत चलने वाले संकीर्तन-यज्ञ में भाग ले सकें तथा उन लाखों भूखे मनुष्यों को प्रसाद का वितरण कर सकें जो आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए लालायित हैं। श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही सन्देश है। इसकी पुष्टि चैतन्यभागवत में इस प्रकार की गई है—"भले ही स्वर्ग क्यों न हो, यदि वहाँ श्रीभगवान् के यश का प्रचार नहीं हो पाता, यदि भगवान् के शुद्ध भक्त वैष्णवों का चिह्न नहीं मिलता और श्रीकृष्णभावना को प्रचारित करने वाले उत्सव नहीं मनाये जाते, तो मनुष्य को ऐसे स्थान की कामना नहीं करनी चाहिए। इससे अच्छा तो यही है कि सदा-सर्वदा माता के गर्भ में वास रहे, जहाँ कम से कम भगवान् के चरणकमलों का स्मरण तो होता रहता है। मेरी यही प्रार्थना है कि मुझे ऐसे अधम स्थान में जन्म न लेना पड़े।" इसी प्रकार श्रीचैतन्य चरितामृत में कृष्णदास कविराज का कथन है कि चूँकि श्रीचैतन्य महाप्रभु ही संकीर्तन आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, अतः जो भी भगवान् को प्रसन्न करने के लिए संकीर्तन करता है वह अत्यन्त भाग्यशाली है। ऐसा मनुष्य परम ज्ञानी है, जबकि अन्य लोग अविद्या से ग्रस्त हैं। वैदिक साहित्य में जितने भी यज्ञों का उल्लेख है उनमें संकीर्तन यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है। श्रीचैतन्यचरितामृत के लेखक के अनुसार यदि कोई संकीर्तन यज्ञ की अन्य यज्ञों से तुलना करता है तो वह पाखण्डी है और यमराज द्वारा दण्डित होगा। अनेक मायावादी संकीर्तन यज्ञ को अश्वमेध-यज्ञ तथा अन्य शुभ-आयोजनों के समान पवित्र कार्य मानते हैं, किन्तु ऐसा मानना नाम-अपराध हैं। मायावादी भले ही ऐसा सोचें, किन्तु नारायण के पवित्र नाम का संकीर्तन तथा अन्य नामों का संकीर्तन कभी भी एक समान नहीं है।

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो
ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्भृताम् ।

न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते
भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥२५॥

प्राप्ताः=जिन्होंने प्राप्त कर लिया है; **नृ-जातिम्**=मनुष्य समाज में जन्म; **तु**=निश्चय ही; **इह**=इस भारत देश में; **ये**=वे जो; **च**=भी; **जन्तवः**=जीवित प्राणी; **ज्ञान**=ज्ञान से; **क्रिया**=कर्म से; **द्रव्य**=पदार्थों से; **कलाप**=समूह से; **संभृताम्**=पूर्ण; **न**=नहीं **वै**=निश्चित रूप से; **यतेरन्**=प्रयत्न; **अपुनः-भवाय**=अमर-पद के लिए; **ते**=ऐसे व्यक्ति; **भूयः**=पुनः; **वनौकाः**=पक्षियों; **इव**=जैसा; **यान्ति**=जाते हैं; **बंधनम्**=बन्धन को।

अनुवाद

भारतवर्ष भक्ति के लिए उपयुक्त देश तथा काल समुपस्थित करता है, जिससे ज्ञान तथा कर्म के फलों से मुक्त हुआ जा सकता है। यदि कोई भारतवर्ष में मनुष्य देह धारण करके संकीर्तन-यज्ञ नहीं करता तो वह उन जंगली पशुओं तथा पक्षियों की भाँति है जो मुक्त किये जाने पर भी असावधान रहते हैं, जिससे शिकारी द्वारा पुनः बन्दी बना लिए जाते हैं।

तात्पर्य

भारतवर्ष ऐसा देश है जिसमें **श्रवणं कीर्तनं विष्णोः** वाले संकीर्तन यज्ञ को अथवा **स्मरणं अर्चनं दास्यं सख्यं** तथा **आत्मनिवेदनं** जैसी अन्य भक्ति-विधियों को सरलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। भारतवर्ष में ही अनेक पवित्र स्थानों को देखने का अवसर प्राप्त होता है, जिनमें श्रीचैतन्य महाप्रभु का जन्म-स्थान नवद्वीप तथा भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म-स्थान वृन्दावन मुख्य हैं, जहाँ के अनेक शुद्ध भक्तों की एकमात्र अभिलाषा भक्ति करना है (**अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्**)। इस प्रकार से प्राणी भौतिक बन्धनों से छूट सकता है। अन्य मार्ग, यथा ज्ञान तथा कर्म-मार्ग उतने लाभप्रद नहीं हैं। पुण्य कार्यों से स्वर्ग प्राप्त हो सकता है और ज्ञान-मीमांसा से ब्रह्मभूत हुआ जा सकता है, किन्तु यह वास्तविक लाभ नहीं, क्योंकि मनुष्य को पुनः नीचे आना पड़ता है। मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् के धाम पहुँचने के लिए प्रयास करे (**यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्**)। अन्यथा मनुष्य जीवन तथा जंगली पशु-पक्षियों के जीवन में कोई अन्तर नहीं है। पशु तथा पक्षी भी स्वतन्त्र होते हैं, किन्तु निम्न योनि में जन्मने के कारण वे स्वतन्त्रता का उपभोग नहीं कर पाते। अतः भारतवर्ष में जन्म लेने वाले प्रत्येक मनुष्य को जो भी सुविधाएँ प्रदत्त हैं, उनका उपयोग करते हुए उसे प्रबुद्ध भक्त बनकर भगवान् के धाम जाना चाहिए। श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही सन्देश है। भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्य सभी

देशवासियों को भौतिक सुख-सुविधाएँ तो प्राप्त हैं, किन्तु उन्हें कृष्णभक्ति प्राप्त करने की वैसी ही सुविधा प्राप्त नहीं है। अतः श्रीचैतन्य महाप्रभु का उपदेश है कि जिस किसी ने भी भारत भूमि में मनुष्य रूप में जन्म ग्रहण किया है उसे अपने आपको श्रीकृष्ण का अंश मानना चाहिए और श्रीकृष्णभावना प्राप्त कर लेने के पश्चात् समग्र विश्व में इस ज्ञान का वितरण करना चाहिए।

यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हवि-
निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः।
एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा
गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥२६॥

यैः = जिनके द्वारा (भारतवासी); **श्रद्धया** = श्रद्धापूर्वक; **बर्हिषि** = वैदिक यज्ञों के करने में; **भागशः** = विभाजन द्वारा; **हविः** = आहुति; **निरुप्तम्** = डाली गई; **इष्टम्** = इच्छित श्रीविग्रह को; **विधि** = विधिपूर्वक; **मन्त्र** = मन्त्रोच्चार द्वारा; **वस्तुतः** = समुचित वस्तुओं सहित; **एकः** = एक श्रीभगवान्; **पृथक** = भिन्न; **नामभिः** = नाम से; **आहूतः** = पुकारा हुआ; **मुदा** = अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक; **गृह्णाति** = स्वीकार करता है; **पूर्णः** = परमेश्वर, जो स्वयं में पूर्ण है; **स्वयम्** = अपने आप में, साक्षात्; **आशिषाम्** = समस्त आशीर्वादों का; **प्रभुः** = दाता।

अनुवाद

भारतवर्ष में परमेश्वर द्वारा नियुक्त विभिन्न देवताओं—यथा इन्द्र, चन्द्र तथा सूर्य के अनेक उपासक हैं जो पृथक-पृथक विधियों से पूजे जाते हैं। उपासक इन देवताओं को पूर्ण ब्रह्म का अंश मानते हुए अपनी आहुतियाँ डालते हैं, फलतः श्रीभगवान् इन भेंटों को स्वीकार करते हैं और क्रमशः इन उपासकों को शुद्ध भक्ति-पद तक उठाकर उनकी कामनाओं तथा आकांक्षाओं की पूर्ति करते हैं। क्योंकि श्रीभगवान् पूर्ण हैं, अतः वे उनको मनोवाँछित वर देते हैं, चाहे उपासक उनके दिव्य देह के एक अंश की पूजा क्यों न करते हों।

तात्पर्य

भगवद्गीता (९.१३) में श्रीकृष्ण कहते हैं—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥

"हे पार्थ ! मोहमुक्त महात्माजन तो मेरी दिव्य प्रकृति के आश्रित होकर और मुझे अविनाशी आदिपुरुष जानकर अनन्य चित्त से मेरी भक्ति के ही परायण रहते हैं।" महात्मा केवल श्रीभगवान् की उपासना करते हैं। किन्तु अन्य भी, जिन्हें कभी-कभी महात्मा कहा जाता है, भगवान् की उपासना **एकत्वेन पृथकत्वेन** रूप में करते हैं। तात्पर्य यह है कि वे देवताओं को श्रीकृष्ण के विभिन्न अंश मानकर नाना प्रकार के वरदानों के लिए उपासना करते हैं। यद्यपि देवताओं के भक्तों को इस तरह वांछित फल मिलते हैं, किन्तु भगवद्गीता में इन्हें **हृत-ज्ञान** अर्थात् अत्यधिक ज्ञानी नहीं कहा गया। श्रीकृष्ण नहीं चाहते कि अंश रूप में उनकी अप्रत्यक्ष उपासना की जाय, वे तो प्रत्यक्ष भक्ति-उपासना के इच्छुक हैं। अतः ऐसा भक्त जो श्रीकृष्ण की उपासना श्रीमद्भागवत में बताई गई कठिन भक्ति साधना से (**तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्**) करते हैं उन्हें वे शीघ्र ही दिव्य-पद प्रदान करते हैं। फिर भी जो भक्त भगवान् के अंश रूप देवताओं की उपासना करते हैं, उन्हें मनोवांछित फल प्राप्त होते हैं, क्योंकि भगवान् ही आदि-स्वामी हैं। यदि कोई विशेष वर माँगता है, तो श्रीभगवान् के लिए वर देना कोई कठिन काम नहीं होता।

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥२७॥

सत्यम्=सचमुच; **दिशति**=देता है; **अर्थितम्**=अभीष्ट पदार्थ; **अर्थितः**=माँगने पर; **नृणाम्**=मनुष्यों के द्वारा; **न**=नहीं; **एव**=निस्सन्देह; **अर्थ-दः**=वर देने वाला; **यत्**=जो; **पुनः**=फिर; **अर्हिता**=कामनाएँ; **यतः**=जिससे; **स्वयम्**=साक्षात्; **विधत्ते**=प्रदान करता है; **भजताम्**=भगवान् की सेवा में निरत लोगों को; **अनिच्छताम्**=निष्काम भाव से; **इच्छा-पिधानम्**=समस्त वांछित वस्तुएँ; **निज-पाद-पल्लवम्**=अपने चरणकमल।

अनुवाद

श्रीभगवान् उस भक्त की भौतिक कामनाओं की पूर्ति करते हैं जो सकाम भाव से उनके पास जाता है, किन्तु वे उस भक्त को वर नहीं देते जो अधिकाधिक वर माँगता रहता है। फिर भी, भगवान् प्रसन्नतापूर्वक ऐसे भक्त को अपने चरणकमलों में शरण देते हैं, भले ही वह इसका इच्छुक न हो, और शरणागत होने पर उसकी समस्त इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। यह श्रीभगवान् की विशेष अनुकम्पा है।

पिछले श्लोक में कहा गया है कि भक्तजन श्रीभगवान् के पास सकाम भाव से पहुँचते हैं। इस श्लोक में यह बताया गया है कि वे किस प्रकार उन कामनाओं से अलग रखे जा सकते हैं। श्रीमद्भागवत (२.३.१०) का उपदेश है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

"चाहे भौतिक कामनाओं से मुक्त हो या उनसे पूर्ण अथवा परमात्मा से तदाकार होना (मोक्षकामी) चाहता हो, मनुष्य को चाहिए कि भक्ति करे।" इससे न केवल भक्त की इच्छाएँ पूरी होंगी वरन् एक दिन ऐसा आयेगा जब वह भगवन् के चरण-कमलों की सेवा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहेगा। जो किसी उद्देश्य से भगवान् की सेवा करता है वह **सकाम भक्त** कहलाता है और जो बिना किसी उद्देश्य के सेवा करता है वह **अकाम भक्त** कहलाता है। श्रीकृष्ण इतने दयालु हैं कि वे सकाम भक्त को अकाम भक्त बना देते हैं। शुद्ध भक्त अथवा अकाम भक्त के किसी प्रकार की कामना नहीं होती वह श्रीभगवान् के चरणकमलों की सेवा करके ही सन्तुष्ट रहता है। भगवद्गीता (६.२२) में इसकी पुष्टि की गई है, **यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः**—श्रीभगवान् के चरणकमलों की सेवा करने पर किसी अन्य वस्तु की इच्छा नहीं रह जाती। यह भक्ति की सर्वोच्च दशा है। भगवान् सकाम-भक्त पर भी इतने दयालु रहते हैं और उसकी इच्छाओं को इस प्रकार पूर्ण करते हैं कि वह अकाम भक्त बन जाता है। उदाहरणार्थ ध्रुव महाराज अपने पिता की अपेक्षा उत्तम राज्य प्राप्त करने के लिए भक्त बने। अन्त में अकाम भक्त होकर उन्होंने भगवान् से कहा—**स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे**—"हे स्वामी, मैं परम सन्तुष्ट हूँ, मैं केवल आपके चरणकमलों की सेवा करना चाहता हूँ। मुझे किसी सांसारिक लाभ की इच्छा नहीं है।" कभी-कभी छोटा बालक गन्दी वस्तु को मुँह में डालता है तो उसके माता-पिता उसके मुँह से उस वस्तु को निकाल कर उसे संदेश या कोई दूसरी मिठाई खाने को देते हैं। वह भक्त जो भौतिक वर की इच्छा करता है ऐसे ही बालक के तुल्य है। भगवान् इतने दयालु हैं कि वे उसकी समस्त भौतिक कामनाओं को हर कर उसे सर्वोच्च वर प्रदान करते हैं। अतः भौतिक कामों के लिए भी श्रीभगवान् से ही याचना करनी चाहिए; मनुष्य को चाहिए कि भगवान् की ही सेवा करे, जिससे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हों और अन्त में वह श्रीभगवान् के धाम पहुँच सके। इसकी व्याख्या श्रीचैतन्यचरितामृत (मध्य २२.३७-३९,४१) में इस प्रकार की गई है।

अन्यकामी—ऐसा भक्त जो भगवान् के चरणकमल के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की कामना करता है। **यदि करे कृष्णेर भजन**—किन्तु यदि श्रीकृष्ण की सेवा में अपने को लगाता है, **ना मागितेह कृष्ण तारे देन स्व-चरण**—उसके न चाहने पर

भी श्रीकृष्ण उसे अपने चरणकमलों में शरण देते हैं। **कृष्ण कहे**—श्रीकृष्ण कहते हैं; **आमा भाजे**—वह मेरी सेवा में रत है। **मागे विषय-सुख**—तो भी इन्द्रिय-सुख चाहता है; **अमृत छाड़ि' विष मागे**—ऐसा भक्त उस पुरुष के तुल्य है जो अमृत छोड़कर विष की याचना करता है; **एइ बड़ मूर्ख**—यही उसकी नादानी है, **आमी—विज्ञ**—किन्तु मैं अनुभवी हूँ; **एइ मूर्खे 'विषय' केने दिब**—मैं ऐसे मूर्ख को भला क्योंकर भौतिक सुख देने लगा? **स्व-चरणामृत**—मेरे लिए सुगम है कि इसे अपने चरणकमलों में शरण दूँ। **'विषय' भुलाइब**—मैं ऐसा करूँगा कि वह समस्त भौतिक कामनाओं को भूल जाय। **काम लागि कृष्ण भजे**—यदि कोई इन्द्रियतृप्ति के लिए भगवान् की सेवा में रत होता है। **पाय कृष्ण-रसे**—उसे अन्त में भगवान् के चरणकमलों का स्वाद मिल जाता है; **काम छाड़ि 'दास' हैते हय अभिलाषे**—वह समस्त कामनाएँ छोड़कर भगवान् का चिरन्तन सेवक बनना चाहता है।

यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं
स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम्।
तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्
वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति ॥२८॥

यदि=यदि; **अत्र**=इस स्वर्गलोक में; **नः**=हमको; **स्वर्ग-सुख-अवशेषितम्**=स्वर्गिक सुख भोगने के बाद जो कुछ भी शेष रहता है; **सु-इष्टस्य**=पूर्ण यज्ञ का; **सु-उक्तस्य**=वैदिक साहित्य के पठन का; **कृतस्य**=सुकर्म का; **शोभनम्**=शेष कार्य; **तेन**=ऐसे कार्य से; **अजनाभे**=भारतवर्ष में; **स्मृति-मत् जन्म**=भगवान् के चरणों को स्मरण करने वाला जन्म; **नः**=हमको; **स्यात्**=हो; **वर्षे**=देश में; **हरिः**=श्रीभगवान्; **यत्**=जिसमें; **भजताम्**=भक्तों का; **शम्-तनोति**=कल्याण का प्रसार करता है।

अनुवाद

यज्ञ, पुण्य कर्म, अनुष्ठान तथा वेदाध्ययन करते रहने के कारणस्वरूप हम स्वर्गलोक में वास कर रहे हैं, किन्तु एक दिन ऐसा आयेगा जब हमारा अन्त हो जायेगा। हमारी प्रार्थना है कि उस समय यदि हमारे एक भी पुण्य शेष रहें तो हम मनुष्य रूप में श्रीभगवान् के चरणकमलों का स्मरण करने के लिए भारतवर्ष में जन्म लें। श्रीभगवान् इतने दयालु हैं कि वे स्वयं भारतवर्ष में आते हैं और यहाँ के वासियों को सौभाग्य प्रदान करते हैं।

तात्पर्य

निस्सन्देह पुण्यकर्मों के फलस्वरूप ही स्वर्गलोक में मनुष्य जन्म ग्रहण करता है,

किन्तु वहाँ से उसे पुनः मर्त्यलोक में आना पड़ता है, जैसा कि भगवद्गीता में कहा गया है (**क्षीणे पुण्येमर्त्यलोकं विशन्ति**)। यहाँ तक कि देवताओं को पुण्य क्षीण होने पर पृथ्वी पर लौट कर सामान्य व्यक्तियों की तरह कार्य करना होता है। तो भी, देवतागण भारतवर्ष की भूमि में आने की कामना करते रहते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में जन्म लेने के लिए देवताओं को अधिक पुण्य करने पड़ते हैं। भारतवर्ष में स्वाभाविक रूप से मनुष्य श्रीकृष्णभावनाभावित रहता है और यदि श्रीकृष्ण की कृपा से वह आगे भी कृष्णभक्ति का अनुशीलन करता रहता है तो वह कृष्णभक्ति में पारंगत बन कर श्रीभगवान् के धाम को सरलता से प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य में अन्य कई स्थानों में उल्लेख मिलता है कि देवता भी भारतवर्ष की भूमि में आने के इच्छुक रहते हैं। केवल मूर्ख व्यक्ति ही अपने पुण्य कर्मों के बदले में स्वर्गलोक की कामना करेगा, अन्यथा देवता भी भारतवर्ष में आकर देह धारण करना चाहते हैं, जिसका उपयोग श्रीकृष्णभावना के अनुशीलन में किया जा सके। इसीलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु बारम्बार कहते हैं--

भारत भूमिते हैल मनुष्य-जन्म .यार।
जन्म सार्थक करि' कर पर-उपकार॥

भारत भूमि में जन्म लेने वाले मनुष्य को कृष्णभक्ति अनुशीलन करने का जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त है। अतः जो पहले ही भारतवर्ष में जन्म धारण कर चुके हैं, उनका परम कर्तव्य है कि वे शास्त्रों तथा गुरुओं से शिक्षा ग्रहण करें तथा श्रीकृष्ण-भावना से पूर्णतया परिचित होने के लिए श्रीचैतन्य महाप्रभु की अनुकम्पा का लाभ उठाएँ। इस तरह श्रीकृष्णभावना का पूरा-पूरा लाभ उठाकर श्रीभगवान् के धाम को जाया जा सकता है (**यान्ति मद्याजिनोऽपिमाम्**)। इसलिए श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन विश्व भर में अनेक केन्द्रों की स्थापना करके मानव समाज को यह सुविधा प्रदान कर रहा है, जिससे जन साधारण श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन के शुद्ध भक्तों का संग कर सकें, श्रीकृष्णभावना को समझें एवं अन्त में श्रीधाम को जायें।

जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥२९॥ तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्र आवर्तनो रमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलो लङ्केति ॥३०॥

श्री-शुकः उवाच = श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले; **जम्बू-द्वीपस्य** = जम्बूद्वीप का; **च** = भी; **राजन्** = हे राजा; **उप-द्वीपान्-अष्टौ** = आठ उपद्वीप; **ह** = निश्चय ही; **एके** = कुछेक; **उपदिशन्ति** = विद्वान् बताते हैं; **सगर-आत्म-जैः** = महाराज सगर के

पुत्रों द्वारा; **अश्व-अन्वेषण**=खोये हुए घोड़े को ढूंढ़ते समय; **इमाम्**=यह; **महीम्**=भूभाग; **परितः**=चारों ओर; **निखनद्भिः**=खोदते हुए; **उपकल्पितान्**=सृष्टि की; **तत्**=उस; **यथा**=निम्नलिखित प्रकार से; **स्वर्ण-प्रस्थः**=स्वर्णप्रस्थ; **चन्द्र-शुक्लः**=चन्द्रशुक्ल; **आवर्तनः**=आवर्तन; **रमणकः**=रमणक; **मन्दर-हरिणः**=मन्दरहरिण; **पांचजन्यः**=पांचजन्य; **सिंहलः**=सिंहल; **लंका**=लंका; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले—हे राजन्! कुछ ज्ञानी पुरुषों के मत के अनुसार जम्बूद्वीप के चारों ओर आठ छोटे-छोटे द्वीप हैं। जब महाराज सगर के पुत्र सारे संसार में खोये हुए घोड़े की खोज कर रहे थे, तो उन्होंने पृथ्वी को खोद डाला। इस प्रकार से निकटस्थ आठ द्वीपों का अस्तित्व हुआ। इन द्वीपों के नाम हैं—स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिंहल तथा लंका।

तात्पर्य

कूर्म पुराण में देवताओं के सम्बन्ध में निम्नलिखित कथन दृष्टव्य है—

अनधिकारिणो देवाः स्वर्गस्था भारतोद्भवम्।
वांछन्त्य आत्मविमोक्षार्थमुद्रेकार्थेऽधिकारिणः॥

यद्यपि देवता स्वर्गलोक में उच्च पदों पर आसीन हैं फिर भी वे मर्त्यलोक में भारतवर्ष की भूमि पर आने के लिए उत्सुक रहते हैं। इससे सूचित होता है कि देवता भी भारतवर्ष में रहने के लिए उपयुक्त नहीं हैं। अतः यदि भारतवर्ष में जन्म लेने वाला प्राणी कुत्ते-बिल्ली की तरह रहे और इस भूमि में जन्म ग्रहण करने का लाभ न उठाए तो वह सचमुच ही अभागा है।

एवं तव भारतोत्तम जम्बूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेशमुपवर्णित इति ॥३१॥

एवम्=इस प्रकार; **तव**=तुमको; **भारत-उत्तम**=भरत के वंशज में श्रेष्ठ; **जम्बूद्वीप-वर्ष-विभागः**=इस जम्बूद्वीप के खण्ड; **यथा-उपदेशम्**=जितना मुझे ज्ञान प्राप्त है; **उपवर्णितः**=मैंने व्याख्या की; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

भरत महाराज के वंशजों में श्रेष्ठ, हे राजा परीक्षित्! मैंने जितना ज्ञान प्राप्त

किया है, उसी के अनुसार मैंने भारतवर्ष तथा उसके निकटवर्ती द्वीपों का वर्णन किया। ये ही जम्बूद्वीप के उपद्वीप हैं।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चम-स्कन्धे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पञ्चमस्कन्ध, "जम्बूद्वीप के द्वीपों का वर्णन" शीर्षक नामक उन्नीसवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त भाष्य समाप्त हुआ।

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माण्ड रचना का विश्लेषण

इस अध्याय में प्लक्षद्वीप से प्रारम्भ करके विभिन्न द्वीपों तथा उनको घेरने वाले समुद्रों का वर्णन है। इसके अन्तर्गत लोकालोक नामक पर्वत की स्थिति और उसके आकार-प्रकार का भी वर्णन है। प्लक्षद्वीप विस्तार में जम्बूद्वीप से दुगुना है तथा लवण सागर से घिरा है। इस द्वीप का स्वामी इध्मजिह्व है जो महाराज प्रियव्रत के पुत्रों में से है। यह द्वीप सात विभागों में बँटा है और प्रत्येक में एक पर्वत तथा एक बड़ी नदी है।

दूसरा द्वीप शाल्मलिद्वीप है। यह सुरा के समुद्र से घिरा हुआ है और ३,२००,००० मील विस्तृत अर्थात् प्लक्षद्वीप से दुगुना है। इस द्वीप का स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्रों में से एक यज्ञबाहु है। प्लक्षद्वीप के ही समान यह भी सात भागों में बँटा है, जिनमें से प्रत्येक में एक पर्वत और एक बड़ी नदी है। इस द्वीप के वासी श्रीभगवान् की पूजा चन्द्रात्मा के रूप में करते हैं।

तीसरा द्वीप घृत से घिरा है और सात भागों में विभाजित है। यह कुशद्वीप कहलाता है। इसका स्वामी महाराज प्रियव्रत का अन्य पुत्र हिरण्यरेता है। इसके वासी अग्नि रूप में श्रीभगवान् की पूजा करते हैं। इस द्वीप का विस्तार ६,४००,००० मील अर्थात् शाल्मलिद्वीप का दुगुना है।

चौथा द्वीप क्रौंचद्वीप है, जो दुग्ध-सागर से घिरा है। इसका विस्तार १,२८,००,००० मील है और यह भी अन्यों की तरह सात भागों में विभाजित है। प्रत्येक भाग में एक पर्वत तथा एक बड़ी नदी है। इस द्वीप का स्वामी महाराज प्रियव्रत का ही एक पुत्र घृतपृष्ठ है। इस द्वीप के वासी जल के रूप में श्रीभगवान् की पूजा करते हैं।

पाँचवाँ द्वीप शाकद्वीप है जो २,५६,००,००० मील विस्तृत और मट्ठे के समुद्र से घिरा है। इसका स्वामी मेधातिथि नामक महाराज प्रियव्रत का पुत्र है। यह द्वीप भी सात भागों में विभाजित है, जिसके प्रत्येक भाग में एक पर्वत तथा एक बड़ी नदी है। इसके वासी वायु रूप में श्रीभगवान् की पूजा करते हैं।

छठा द्वीप पुष्करद्वीप है जो पिछले द्वीप से दुगुना विस्तृत है और निर्मल जल के समुद्र से घिरा हुआ है। इसका स्वामी वीतिहोत्र है जो महाराज प्रियव्रत का ही पुत्र है। यह द्वीप मानसोत्तर पर्वत द्वारा दो भागों में विभाजित है। इसके वासी

श्रीभगवान् के ही अन्य रूप स्वयंभू की पूजा करते हैं। द्वीप से भी आगे दो और द्वीप हैं जिनमें से एक सदैव सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित रहता है और दूसरा सदैव अंधकार से पूर्ण रहता है। इन दोनों द्वीपों के मध्य लोकालोक नामक पर्वत है जो ब्रह्माण्ड के सिरे से एक अरब मील दूर है। इस पर्वत पर भगवान् नारायण अपने ऐश्वर्य का विस्तार करते हुए निवास करते हैं। लोकालोक पर्वत से आगे का भाग अलोक वर्ष कहलाता है और इसके भी आगे मुक्ति के इच्छुक पुरुषों का निवासस्थान है।

सूर्य इस ब्रह्माण्ड के मध्य में, भूर्लोक तथा भुवर्लोक के बीचोबीच अन्तरिक्ष में स्थित है। सूर्य तथा अण्डगोलक अर्थात् ब्रह्माण्ड गोलक के बीच की दूरी पच्चीस कोटि योजन (दो अरब मील) है। सूर्य को मार्तण्ड कहा जाता है क्योंकि यह ब्रह्माण्ड में प्रवेश करके आकाश को विभाजित करता है और हिरण्यगर्भ, जो महत्तत्त्व का शरीर है, से उत्पन्न होने के कारण हिरण्यगर्भ भी कहलाता है।

श्रीशुक उवाच

अतः परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥ १ ॥

श्री-शुकः उवाच=श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले; **अतः परम्**=इसके पश्चात्; **प्लक्ष-आदीनाम्**=प्लक्षद्वीप तथा अन्य द्वीप; **प्रमाण-लक्षण-संस्थानतः**=आकार-प्रकार, लक्षण तथा स्थिति की दृष्टि से; **वर्ष-विभागः**=द्वीप का विभाजन; **उपवर्ण्यते**=वर्णन किया जा रहा है।

अनुवाद

महर्षि शुकदेव गोस्वामी बोले—मैं प्लक्षादि अन्य छः द्वीपों के आकार-प्रकार, लक्षण तथा स्थिति का वर्णन करूँगा।

जम्बूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्ब्वाख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुणविशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखा बाह्योपवनेन। प्लक्षो जम्बूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्तजिह्वस्तस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्तवर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥ २ ॥

जम्बू-द्वीपः = जम्बू नामक द्वीप, जम्बूद्वीप; **अयम्** = यह; **यावत्-प्रमाण-विस्तारः** = इसके विस्तार के तुल्य परिमाप अर्थात् १,००,००० योजन (एक योजन आठ मील के तुल्य है); **तावता** = इतना; **क्षार-उदधिना** = खारे सागर द्वारा; **परिवेष्टितः** = घिरा हुआ; **यथा** = जिस प्रकार; **मेरुः** = सुमेरु पर्वत; **जम्बू-आख्येन** = जम्बू नामक द्वीप से; **लवण-उदधिः** = लवण-सागर; **अपि** = निश्चय ही; **ततः** = तत्पश्चात्; **द्वि-गुण-विशालेन** = दुगुना विस्तृत; **प्लक्ष-आख्येन** = प्लक्ष नामक द्वीप से; **परिक्षिप्तः** = घिरा हुआ; **यथा** = सदृश; **परिखा** = खाई; **बाह्य** = बाहरी; **उपवनेन** = उद्यानवत् वन के द्वारा; **प्लक्ष** = प्लक्ष (पाकुड़) वृक्ष; **जम्बू-प्रमाणः** = जम्बू वृक्ष जितना ऊँचा; **द्वीप-आख्या-करः** = द्वीप का नाम पड़ा; **हिरण्मयः** = अत्यन्त तेजमय; **उत्थितः** = ऊपर उठा हुआ; **यत्र** = जहाँ; **अग्निः** = अग्नि; **उपास्ते** = स्थित है; **सप्तजिह्वः** = सात ज्वालाओं वाली; **तस्य** = उस द्वीप का; **अधिपतिः** = राजा अथवा स्वामी; **प्रियव्रत-आत्मजः** = राजा प्रियव्रत का पुत्र; **इध्म-जिह्वः** = इध्मजिह्व नामक; **स्वम्** = निजी; **द्वीपम्** = द्वीप; **सप्त** = सात; **वर्षाणि** = भूभागों में; **विभज्य** = विभाजित होकर; **सप्त-वर्ष-नामभ्यः** = जिन पर सातों भूभागों के नाम रखे गये; **आत्मजेभ्यः** = अपने पुत्रों को; **आकलय्य** = भेंट, अर्पण; **स्वयम्** = स्वतः; **आत्म-योगेन** = भगवान् की भक्ति द्वारा; **उपरराम** = समस्त भौतिक कार्यों से अवकाश ग्रहण कर लिया।

अनुवाद

जिस प्रकार सुमेरु पर्वत चारों ओर से जम्बूद्वीप द्वारा घिरा हुआ है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप भी लवण के सागर से घिरा है। जम्बूद्वीप का विस्तार १,००,००० योजन (८,००,००० मील) है और लवण का सागर भी इतना ही विस्तृत है। जिस तरह कभी-कभी दुर्ग की खाई उपवन से घिरी रहती है उसी प्रकार जम्बूद्वीप को घेरने वाला लवण-सागर भी प्लक्षद्वीप से घिरा हुआ है। प्लक्षद्वीप का विस्तार लवण के सागर का दुगुना अर्थात् २,००,००० योजन (१६,००,००० मील) है। प्लक्षद्वीप में स्वर्ण के समान चमकीला एक वृक्ष है जो जम्बूद्वीप स्थित जम्बूवृक्ष के बराबर ऊँचा है। इसके मूल भाग में सात ज्वालाओं वाली अग्नि है। यह वृक्ष प्लक्ष का है, अतः इस द्वीप का नाम प्लक्षद्वीप पड़ा। यह द्वीप महाराज प्रियव्रत के एक पुत्र इध्मजिह्व द्वारा शासित है। उन्होंने सातों द्वीपों के नाम अपने सात पुत्रों के नाम पर रखा, उन्हें अपने पुत्रों को देकर, सक्रिय जीवन से अवकाश प्राप्त कर स्वयं श्रीभगवान् की सेवा में लीन रहने लगे।

शिवं यवसं सुभद्रं शान्तं क्षेममममृतमभयमिति वर्षाणि तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥ ३ ॥ मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनो ज्योतिष्मान् सुपर्णो

हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः। अरुणा नृम्णाऽऽङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा सत्यम्भरा इति महानद्यः। यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतङ्गोर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसन्दर्शन-प्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते ॥ ४ ॥

शिवम् = शिव; **यवसम्** = यवस; **सुभद्रम्** = सुभद्र; **शान्तम्** = शान्त; **क्षेमम्** = क्षेम; **अमृतम्** = अमृत; **अभयम्** = अभय; **इति** = इस प्रकार; **वर्षाणि** = सातों पुत्रों के नामों के अनुसार सात वर्ष; **तेषु** = उनमें; **गिरयः** = पर्वत; **नद्यः च** = और नदियाँ; **सप्त** = सात; **एव** = निस्संदेह; **अभिज्ञाताः** = जाने जाते हैं; **मणि-कूटः** = मणिकूट; **वज्र-कूटः** = वज्रकूट; **इन्द्र-सेनः** = इन्द्रसेन; **ज्योतिष्मान्** = ज्योतिष्मान्; **सुपर्णः** = सुपर्ण; **हिरण्य-ष्ठीवः** = हिरण्यष्ठीव; **मेघ-मालः** = मेघ-माल; **इति** = इस प्रकार; **सेतु-शैलाः** = वर्षों की सीमा बनाने वाली पर्वत श्रेणियाँ; **अरुणा** = अरुणा; **नृम्णा** = नृम्णा; **आंगिरसी** = आंगिरसी; **सावित्री** = सावित्री; **सुप्रभाता** = सुप्रभाता; **ऋतम्भरा** = ऋतम्भरा; **सत्यम्भरा** = सत्यम्भरा; **इति** = इस प्रकार; **महा-नद्यः** = बड़ी-बड़ी नदियाँ; **यासाम्** = जिनकी; **जल-उपस्पर्शन** = जलस्पर्श मात्र से; **विधूत** = धुल जाते हैं; **रजः-तमसः** = जिनके रजो तथा तमो गुण; **हंस** = हंस; **पतंग** = पतंग; **ऊर्ध्वायन** = ऊर्ध्वायन; **सत्यांग** = सत्यांग; **संज्ञाः** = नाम वाले; **चत्वारः** = चारों; **वर्णाः** = जातियाँ; **सहस्र-आयुषः** = एक हजार वर्षों तक जीवित रहकर; **विबुध-उपम** = देवताओं के समान; **संदर्शन** = अत्यन्त सुन्दर रूप होने में; **प्रजननाः** = तथा संतति उत्पन्न करने में; **स्वर्ग-द्वारम्** = स्वर्गलोक जाने का द्वार; **त्रय्य विद्यया** = वैदिक नियमों के अनुसार अनुष्ठान करके; **भगवन्तम्** = श्रीभगवान; **त्रयी-मयम्** = वेदों में स्थापित; **सूर्यम् आत्मानम्** = सूर्यदेव रूपी परमात्मा को; **यजन्ते** = पूजा करते हैं।

अनुवाद

इन सात वर्षों के नाम उन सातों पुत्रों के अनुसार क्रमशः शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत, तथा अभय पड़े। इन सात वर्षों में सात पर्वत तथा सात नदियाँ हैं। पर्वतों के नाम हैं—मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव तथा मेघमाल और नदियों के नाम हैं—अरुणा, नृम्णा, आंगिरसि, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा तथा सत्यम्भरा। इन नदियों के स्पर्श करने या स्नान करने से भौतिक मल तुरन्त दूर हो जाते हैं और प्लक्षद्वीप में रहने वाली हंस, पतंग, ऊर्ध्वायम तथा सत्यांग नामक जातियाँ अपने को इसी प्रकार पवित्र करती हैं। इस द्वीप के वासी एक हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं। वे देवताओं के समान सुन्दर हैं और उनकी सन्तानें भी उन्हीं के अनुरूप हैं। वे वेदों में वर्णित अनुष्ठानों को पूरा करके

तथा श्रीभगवान् के प्रतिनिधि स्वरूप सूर्यदेव की उपासना करके सूर्यलोक को प्राप्त होते हैं, जो स्वर्गलोक ही है।

तात्पर्य

सामान्य अनुभव के अनुसार मूलत: तीन देवता हैं—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव, किन्तु अल्पज्ञानी भगवान् विष्णु को ब्रह्मा या शिव से श्रेष्ठतर नहीं मानते। किन्तु यह निष्कर्ष अप्रामाणिक है। वेदों में कहा गया है कि **इष्टापूर्तं बहुधा जायमानं विश्वं बिभर्ति भुवनस्य नाभिः तदेवाग्निस्तद् वायुस्तत् सूर्यस्तद् उ चन्द्रमाः अग्निः सर्वदैवतः।** इसका अर्थ यह हुआ कि जो परमात्मा, वैदिक अनुष्ठानों (इष्टपूर्त) को स्वीकारता है, सम्पूर्ण सृष्टि का पालन करता है, समस्त जीवात्माओं की आवश्यकताएँ पूरी करता है (**एको बहूनां यो विदधाति कामान्**) और समस्त सृष्टि का केन्द्र विन्दु है, वह भगवान् विष्णु हैं। भगवान् विष्णु अग्नि, वायु, सूर्य और चन्द्र के रूप में प्रकाशित होते हैं, जो उनके अंश रूप हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता (९.२३) में कहा है—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

"जो सकाम भक्त श्रद्धासहित अन्य देवताओं की उपासना करते हैं, वे भी मेरी ही उपासना करते हैं; परन्तु उनकी आराधना विधिपूर्वक नहीं होती।" कहने का तात्पर्य यह कि जो देवताओं एवं श्रीभगवान् के सम्बन्ध को समझे बिना देवताओं की उपासना करता है उसकी आराधना अविधिपूर्वक होती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी भगवद्गीता (९.२४) में कहा है कि **अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च**—"एकमात्र मैं ही सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता हूँ।"

यह तर्क दिया जा सकता है कि देवता भी विष्णु के समान महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनके नाम विष्णु के ही भिन्न-भिन्न नाम हैं। किन्तु यह निष्कर्ष सही नहीं है, क्योंकि वैदिक ग्रन्थों में इसका प्रतिवाद करते हुए कहा गया है—

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। श्रोत्रादयश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत। नारायणाद् ब्रह्मा; नारायणाद्रुद्रो जायते, नारायणात् प्रजापतिः जायते, नारायणादिन्द्रो जायते, नारायणादष्टौ वसवो जायन्ते, नारायणादेकादश रुद्रा जायन्ते।

"चन्द्रमा देवता नारायण के मन से और सूर्य देवता उनके नेत्रों से उत्पन्न हुए। श्रवण तथा प्राणवायु के नियामक देवता नारायण से उत्पन्न हुए और अग्नि देवता उनके मुख से निकले। भगवान् ब्रह्मा, इन्द्र, आठों वसु, भगवान् शिव के ग्यारहों

विस्तार (रुद्र) तथा बारहों आदित्य भी नारायण से उत्पन्न हुए।" स्मृति में भी कहा गया है--

ब्रह्म शम्भुस्तथैवार्कश्चन्द्रमाश्च शतक्रतुः।
एवमाद्यास्तथैवान्ये युक्ता वैष्णवतेजसा॥

जगत् कार्यावसाने तु वियुज्यन्ते च तेजसा।
वितेजाश्च ते सर्वे पंचत्वमुपयान्ति ते॥

ब्रह्मा, शम्भु, सूर्य तथा इन्द्र सभी श्रीभगवान् की शक्ति के फल हैं। जिन अन्य देवताओं के नाम नहीं लिये गये, वे भी ऐसे हैं। इस जगत् के विनाश होने पर नारायण की शक्ति के ये सारे प्रकाश नारायण में ही विलीन हो जायेंगे अर्थात् ये सभी देवता मर जायेंगे। उनकी प्राणशक्ति निकलकर नारायण में विलीन हो जायेगी।

अतः यह निष्कर्ष निकला कि भगवान् विष्णु ही श्रीभगवान् हैं, ब्रह्मा या शिव नहीं। जिस प्रकार कभी-कभी एक राजकीय कर्मचारी को ही सरकार मान लिया जाता है, भले ही वह किसी एक विभाग के संचालक रूप में कार्य करता हो, उसी प्रकार देवता भगवान् विष्णु से न्यायवादी शक्ति प्राप्त करके उनके लिए कार्य करते हैं, किन्तु वे उनके समान शक्तिमान् नहीं होते। सभी देवताओं को विष्णु के आदेशों का पालन करना होता है। इसीलिए कहा गया है कि **एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य**—श्रीकृष्ण अथवा विष्णु ही एकमात्र स्वामी हैं, शेष सभी उनकी आज्ञा का पालन करने वाले उनके आज्ञाकारी सेवक हैं। भगवान् विष्णु तथा अन्य भक्तों के इस अन्तर का उल्लेख भगवद्गीता (९.२५) में भी हुआ है—**यान्ति देवव्रता देवान् ...यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्**—"देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं।" ये स्मृति-वचन हैं। अतः यह मत कि विष्णु तथा अन्य देवता एकसमान हैं शास्त्रों के विरुद्ध है। देवता सर्वोच्च नहीं हैं। उनकी श्रेष्ठता भगवान् नारायण (श्रीविष्णु या श्रीकृष्ण) की कृपा पर निर्भर है।

प्रत्नस्य विष्णो रूपं यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः।
अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति॥ ५॥

प्रत्नस्य=प्राचीनतम पुरुष का; **विष्णोः**=भगवान् विष्णु; **रूपम्**=रूप; **यत्**=जो; **सत्यस्य**=परम सत्य का; **ऋतस्य**=धर्म का; **ब्रह्मणः**=परब्रह्म का; **अमृतस्य**=शुभ फल का; **च**=तथा; **मृत्योः**=मृत्यु (अशुभ फल) का; **च**=तथा; **सूर्यम्**=

सूर्य देवता; **आत्मानम्**=परमात्मा; **ईमहि**=शरण की याचना करते हैं; **इति**=इस प्रकार से।

अनुवाद

[इस मन्त्र के द्वारा प्लक्षद्वीप के वासी परब्रह्म की उपासना करते हैं।]

हम सूर्य देवता की शरण ग्रहण करें जो परम प्रकाशित, पुराणपुरुष श्रीभगवान् के प्रतिबिम्ब हैं। विष्णु ही एकमात्र आराध्य हैं। वही वेद हैं, वही धर्म हैं और वही शुभाशुभ फलों के मूल हैं।

तात्पर्य

भगवान् विष्णु मृत्यु के भी परमेश्वर हैं, जैसा कि भगवद्गीता में पुष्टि की गई है (**मृत्युः सर्वहरश्चाहम्**)। शुभ तथा अशुभ इन दोनों प्रकार के कार्यों के नियन्ता भगवान् विष्णु हैं। ऐसा माना जाता है कि शुभ कार्य विष्णु के सम्मुख होते हैं और अशुभ कार्य उनकी पीठ पीछे। शुभ तथा अशुभ कार्य सारे विश्व में एकसाथ पाये जाते हैं और भगवान् विष्णु इन दोनों के नियन्ता हैं। इस श्लोक के सम्बन्ध में श्रील मध्वाचार्य का कथन है—

सूर्यसोमाग्निवारीशविधातृषु यथाक्रमम्।
प्लक्षादिद्वीपसंस्थासु स्थितं हरिमुपासते॥

सम्पूर्ण सृष्टि में अनेक भूभाग, खेत, पहाड़ तथा सागर पाये जाते हैं और सर्वत्र ही श्रीभगवान् विभिन्न नामों से पूजे जाते हैं।

श्रील वीरराघव आचार्य ने श्रीमद्भागवत के इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है—इस जगत् के मूल कारण अवश्य ही पुरातन पुरुष हैं और जो भौतिक रूपान्तर से परे हैं। वे ही समस्त शुभ कार्यों के भोक्ता हैं और इस बद्ध जीवन तथा मुक्ति का कारण भी वे ही हैं। सूर्यदेव की गणना परम शक्तिशाली जीव अथवा जीवात्मा के रूप में की गई है जो उनके शरीर के एक अंग का प्रतिनिधित्व करते हैं। हम स्वभावतः शक्तिशाली जीवों के वश में हैं, अतः हम विभिन्न देवताओं की उपासना ऐसे जीवों के रूप में कर सकते हैं जो श्रीभगवान् के शक्तिशाली प्रतिनिधि हैं। यद्यपि इस मन्त्र में सूर्यदेवता की उपासना के लिए कहा गया है, किन्तु उनकी उपासना श्रीभगवान् के रूप में नहीं वरन् उनके शक्तिशाली प्रतिनिधि के रूप में की जाती है।

कठ उपनिषद् (१.३.१) में कहा गया है—

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके
गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।

छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति
पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेता ॥

"हे नाचिकेता ! सूक्ष्म जीवात्मा तथा परमात्मा ये विष्णु के दोनों प्रकाश (अंश) इस शरीर की हृदय-गुहा में स्थित हैं। इस गुहा में प्रवेश करके जीवात्मा कर्मों के फल का भोग करता है और परमात्मा साक्षी बनकर उसे भोग करने देता है। ब्रह्म-ज्ञानियों तथा वैदिक नियमों का पालन करने वाले गृहस्थों का यह कहना है कि इन दोनों में वैसा ही अन्तर है जैसा कि सूर्य तथा उसकी छाया में।"

श्वेताश्वतर उपनिषद (६.१६) में कहा गया है—

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिः-
ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः
संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥

"इस जगत् का सृष्टिकर्ता परमात्मा अपनी सृष्टि का कोना-कोना पहचानता है। यद्यपि वह इसका कारण है, किन्तु उसके प्रकट होने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह सर्वज्ञाता है। वह परमात्मा, समस्त दिव्य गुणों का स्वामी तथा इस जगत् के बन्धन और मोक्ष का भी स्वामी है।"

इसी प्रकार तैत्तिरीय उपनिषद् (२.८) में कहा गया है—

भीषास्माद्वातः पवते।
भीषोदेति सूर्यः।
भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च।
मृत्युर्धावति पञ्चम इति।

"परब्रह्म के भय से वायु बहती है, सूर्य उदय-अस्त होता है और अग्नि प्रज्ज्वलित होती है। उसी के भय से मृत्यु तथा स्वर्ग के राजा इन्द्र अपना-अपना कार्य करते रहते हैं।"

जैसा कि इस अध्याय में वर्णित है, प्लक्षद्वीप इत्यादि पाँच द्वीपों के वासी क्रमशः सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु तथा ब्रह्मा की उपासना करते हैं। यद्यपि वे इन पाँचों देवताओं की उपासना करते हैं, किन्तु वास्तव में वे समस्त जीवों के परमात्मा श्रीभगवान् विष्णु को ही उपासते हैं, जैसा कि इस श्लोक के इन शब्दों से प्रकट है—**प्रत्नस्य विष्णो रूपम**। विष्णु ब्रह्म हैं, अमृत हैं, मृत्यु हैं—वे परब्रह्म हैं और शुभ

तथा अशुभ वस्तुओं के मूल हैं। वे सबों के हृदय में स्थित हैं, जिनमें देवता भी सम्मिलित हैं। जैसा कि भगवद्गीता(७.२०) में कहा गया है—**कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः**—कामनाओं ने जिनके ज्ञान को हर लिया है, वे ही अन्य देवताओं की शरण ग्रहण करते हैं। जो महत्त्वाकांक्षाओं के कारण अंधे होते हैं, उन्हें अपनी आंकक्षाओं की पूर्ति के लिए देवताओं की उपासना की सलाह दी जाती है, किन्तु देवता उनकी मनोकामनाओं को पूरा नहीं कर पाते। सभी देवता उतना ही कर पाते हैं जितने की भगवान् विष्णु उन्हें आज्ञा देते हैं। जो अत्यधिक लालची होते हैं वे विष्णु को न पूजकर अनेक देवताओं की पूजा करते हैं, किन्तु वास्तव में वे भगवान् विष्णु की ही उपासना करते हैं, क्योंकि वे ही समस्त देवताओं के परमात्मा हैं।

प्लक्षादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहो बलं बुद्धिविक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिरविशेषेण वर्तते ॥ ६ ॥

प्लक्ष-आदिषु = प्लक्ष आदि द्वीपों में; **पञ्चासु** = पाँच; **पुरुषाणाम्** = निवासियों का; **आयुः** = दीर्घ जीवनकाल; **इन्द्रियाम्** = इन्द्रियों की पुष्टता; **ओजः** = शारीरिक बल; **सहः** = मनोबल; **बलम्** = शारीरिक शक्ति; **बुद्धिः** = बुद्धि; **विक्रम्** = शौर्य; **इति** = इस प्रकार; **च** = भी; **सर्वेषाम्** = सबों का; **औत्पत्तिकी** = अंतः भूत; **सिद्धिः** = सिद्धि; **अविशेषेण** = बिना किसी भेदभाव के; **वर्तते** = विद्यमान है।

अनुवाद

हे राजन्, प्लक्ष आदि पाँच द्वीपों में सभी वासियों को जन्म से ही आयु, मनोबल, इन्द्रियबल, शारीरिक बल, बुद्धि और शौर्य (पराक्रम) समान रूप से प्रकट रहते हैं।

प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृङ्क्ते ॥ ७ ॥

प्लक्षः = प्लक्षद्वीप; **स्व-समानेन** = विस्तार में समान; **इक्षु-रस** = गन्ने के रस के; **उदेन** = समुद्र से; **आवृतः** = घिरा हुआ; **यथा** = जिस प्रकार; **तथा** = उसी प्रकार; **द्वीपः** = अन्य द्वीप; **अपि** = भी; **शाल्मलः** = शाल्मल नामक; **द्विगुण-विशालः** = दुगने विस्तार का; **समानेन** = विस्तार में समान; **सुरा-उदेन** = मदिरा के सागर से; **आवृतः** = घिरा हुआ; **परिवृङ्क्ते** = विद्यमान है।

अनुवाद

प्लक्षद्वीप अपने ही समान विस्तार वाले इक्षुरस के समुद्र से घिरा हुआ है। इसी प्रकार उसके आगे उससे दुगने परिमाण वाला शाल्मलीद्वीप है जो उतने ही विस्तार वाले सुरासागर से घिरा हुआ है।

यत्र ह वै शाल्मली प्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलयमाहुर्भगवतश्छन्दः स्तुतः पतत्त्रिराजस्य सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥ ८ ॥

यत्र = जहाँ; **ह वै** = निश्चय ही; **शाल्मली** = शाल्मली वृक्ष; **प्लक्षायामा** = प्लक्ष वृक्ष जितना बड़ा (१०० योजन विस्तृत तथा ११०० योजन ऊँचा); **यस्याम्** = जिसमें; **वाव किल** = निस्सन्देह; **निलयम्** = निवासस्थान; **आहुः** = ऐसा कहते हैं; **भगवतः** = सर्वशक्तिमान् का; **छन्दः-स्तुतः** = जो वैदिक स्तुतियों द्वारा ईश्वर की उपासना करता है; **पतत्त्रि-राजस्य** = भगवान् विष्णु के वाहन पक्षिराज गरुड़; **सा** = वह वृक्ष; **द्वीप-हूतये** = द्वीप के नाम हेतु; **उपलक्ष्यते** = प्रसिद्ध है।

अनुवाद

शाल्मलीद्वीप में शाल्मली का एक वृक्ष है, जिससे इस द्वीप का यह नाम पड़ा। यह वृक्ष प्लक्ष वृक्ष के बराबर विस्तृत और ऊँचा है, अर्थात् १०० योजन मोटा तथा ११०० योजन ऊँचा है। विद्वानों का कथन है कि यह विशाल वृक्ष पक्षियों के राजा तथा विष्णु के वाहन गरुड़ का निवासस्थान है। यहाँ से वे भगवान् विष्णु की वैदिक स्तुति करते हैं।

तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत्सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनम-विज्ञातमिति ॥ ९ ॥

तत्-द्वीप-अधिपतिः = उस द्वीप का स्वामी; **प्रियव्रत-आत्मजः** = महाराज प्रियव्रत का पुत्र; **यज्ञ-बाहुः** = यज्ञबाहु है; **स्वसुतेभ्यः** = अपने पुत्रों के; **सप्तभ्यः** = सातों; **तत्-नामानि** = जिनके नाम उनके नामों के अनुसार हैं; **सप्त-वर्षाणि** = सातों वर्षों (भूखण्डों) को, **व्यभजत** = विभाजित; **सुरोचनम्** = सुरोचन; **सौमनस्यम्** = सौमनस्य; **रमणकम्** = रमणक; **देव-वर्षम्** = देववर्ष; **पारिभद्रम्** = पारिभद्र; **आप्यायनम्** = आप्यायन; **अविज्ञातम्** = अविज्ञात; **इति** = इस प्रकार।

अनुवाद

शाल्मलीद्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र यज्ञबाहु ने इस द्वीप को सात भागों में विभाजित करके उनका नाम अपने पुत्रों के नाम पर रख दिया। इन विभागों के नाम हैं—सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन तथा अविज्ञात।

तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः स्वरसः शतशृङ्गो वामदेवः कुन्दो मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति। अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राकेति ॥१०॥

तेषु=इन भागों में; **वर्ष-अद्रयः**=पर्वत; **नद्यः च**=नदियाँ भी; **सप्त एव**=संख्या में सात; **अभिज्ञाताः**=जानी गई; **स्वरसः**=स्वरस; **शत-शृंगः**=शतशृंग; **वाम-देवः**=वामदेव; **कुन्दः**=कुन्द; **मुकुन्दः**=मुकुन्द; **पुष्प-वर्षः**=पुष्पवर्ष; **सहस्र-श्रुतिः**=सहस्रश्रुति; **इति**=इस प्रकार; **अनुमतिः**=अनुमति; **सिनीवाली**=सिनीवाली; **सरस्वती**=सरस्वती; **कुहू**=कुहू; **रजनी**=रजनी; **नन्दा**=नन्दा; **राका**=राका; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

इन सातों विभागों में सात पर्वत हैं, जिनके नाम स्वरस, शतशृंग, वामदेव, कुन्द, मुकुन्द, पुष्पवर्ष, तथा सहस्रश्रुति हैं उनमें सात नदियाँ भी हैं जिनके नाम अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा तथा राका हैं। ये आज भी विद्यमान हैं।

तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधरवीर्यधरवसुन्धरेषन्धरसंज्ञा भगवन्तं वेदमयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते ॥११॥

तत्-वर्ष-पुरुषाः=उन वर्षों के निवासी; **श्रुतधर**=श्रुतधर; **वीर्यधर**=वीर्यधर; **वसुन्धर**=वसुन्धर; **इषन्धर**=इषन्धर; **संज्ञा**=के नाम से विख्यात; **भगवन्तम्**=श्रीभगवान्; **वेद-मयम्**=वैदिक ज्ञान से सुपरिचित; **सोमम्-आत्मानम्**=सोम नामक जीवात्मा द्वारा प्रदर्शित; **वेदेन**=वैदिक नियमों के पालन से; **यजन्ते**=उपासना करते हैं।

अनुवाद

इन द्वीपों के वासी श्रुतिधर, वीर्यधर, वसुन्धर तथा इषन्धर नामों से विख्यात

हैं और वे वर्णाश्रम धर्म का कठोरता से पालन करते हुए श्रीभगवान् के सोम नामक विस्तार की, जो साक्षात् चन्द्रदेव हैं, उपासना करते हैं।

स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः ।
प्रजानां सर्वासां राजान्धः सोमो न आस्त्विति ॥१२॥

स्व-गोभिः =अपनी प्रकाशमय किरणों के विस्तार से; **पितृ-देवेभ्यः** =अपने पितरों तथा देवता गणों को; **विभजन्** =विभाजित करके; **कृष्ण-शुक्लयोः** =कृष्ण तथा शुक्ल पक्षों में; **प्रजानाम्** =निवासियों का; **सर्वासाम्** =सभी, **राजा** =राजा; **अन्धः** =अन्न; **सोमः** =चन्द्रदेव; **नः** =हम पर; **आस्तु** =अनुकूल रहे; **इति** =इस प्रकार।

अनुवाद

[शाल्मलीद्वीप के वासी चन्द्रदेवता की आराधना निम्नलिखित शब्दों से करते हैं।]

पितरों तथा देवताओं को अन्न देने के उद्देश्य से चन्द्रदेव ने मास को शुक्ल तथा कृष्ण नामक दो पक्षों में विभाजित किया है। वह काल का विभाजन करने वाला और ब्रह्माण्ड के वासियों का अधिपति है। अतः हम यह प्रार्थना करते हैं कि वह हमारा अधिपति तथा पथप्रदर्शक बना रहे। हम उसे नमस्कार करते हैं।

एवं सुरोदाद्बहिस्तद्द्विगुणः समानेनावृतो घृतोदेन यथापूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन् कुशस्तम्बो देवकृतस्तद्द्वीपाख्याकरो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति ॥१३॥

एवम् =इस प्रकार; **सुरोदात्** =सुरासागर से; **बहिः** =बाहर; **तद्द्विगुणः** =उसका दुगुना; **समानेन** =विस्तार में समान; **आवृतः** =घिरा हुआ; **घृत-उदेन** =घृत सागर के द्वारा; **यथा-पूर्वः** =शाल्मलीद्वीप के ही समान; **कुश-द्वीप** =कुशद्वीप; **यस्मिन्** =जिसमें; **कुश-स्तम्बः** =कुश नामक घास; **देव-कृतः** =श्रीभगवान् की परमेच्छा से उत्पन्न; **तत्-द्वीप-आख्या-करः** =द्वीप का नामकरण करके; **ज्वलनः** =अग्नि; **इव** =सदृश; **अपरः** =अन्य; **स्व-शष्प-रोचिषा** =अंकुरित दूब के ऐश्वर्य से; **दिशः** =समस्त दिशाएँ; **विराजयति** =प्रकाशित करता है।

अनुवाद

सुरा सागर से आगे कुशद्वीप नामक अन्य द्वीप है जो सुरासागर से दूना अर्थात् ८,००,००० योजन विस्तृत है। जिस प्रकार शाल्मली द्वीप सुरासागर से घिरा है

उसी प्रकार कुशद्वीप अपने तुल्य विस्तार वाले घृतसागर से घिरा है। इस द्वीप में कुशघास के झाड़ पाये जाते हैं, इसीलिए यह नाम पड़ा है। यह कुशघास परमेश्वर की इच्छा के अनुसार देवताओं द्वारा उत्पन्न की गई है और द्वितीय अग्नि जैसी दृष्टिगोचर होती है, किन्तु इसकी ज्वालाएँ अत्यन्त मृदु तथा मनोहर हैं। इसके नव-अंकुर (शिखर) समस्त दिशाओं को प्रकाशित करने वाले हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में दिये गये विवरण से चन्द्रमा की ज्वालाओं की प्रकृति के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है। सूर्य के समान चन्द्रमा को भी ज्वालाओं से पूर्ण होना चाहिए, क्योंकि उसके विना प्रकाश नहीं हो सकता। किन्तु चन्द्रमा की ज्वालाओं को सूर्य से भिन्न, अतएव मृदु एवं मनोहारी होना चाहिए। ऐसा हमारा मत है। आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार चन्द्रमा धूल से भरा हुआ है जो श्रीमद्‌भागवत के श्लोकों में मान्य नहीं है। इस श्लोक के सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का कहना है—**सुशष्पाणि सुकोमलशिखाश्तेषां रोचिषा**—कुश घास समस्त दिशाओं को प्रकाशित करती है, किन्तु इसकी ज्वालाएँ अत्यन्त मृदु एवं मनोहारी हैं। इससे चन्द्रमा में स्थित ज्वालाओं के सम्बन्ध में कुछ अनुमान प्राप्त होता है।

तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजन् हिरण्यरेता नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवाम-देवनामभ्यः ॥१४॥

तत्-द्वीप-पतिः = उस द्वीप का स्वामी; **प्रैयव्रतः** = महाराज प्रियव्रत का पुत्र; **राजन्** = हे राजा; **हिरण्यरेता** = हिरण्यरेता; **नाम** = नामक; **स्वम्** = उसका अपना; **द्वीपम्** = द्वीप; **सप्तभ्यः** = सातों; **स्व-पुत्रेभ्यः** = अपने पुत्रों को; **यथा-भागम्** = हिस्से के अनुसार; **विभज्य** = विभाजित करके; **स्वयम्** = स्वयं; **तपः आतिष्ठत** = तप में लग गया; **वसु** = वसु को; **वसुदान** = वसुदान; **दृढ़रुचि** = दृढ़रुचि; **नाभि-गुप्त** = नाभिगुप्त; **स्तुत्य-व्रत** = स्तुत्यव्रत; **विविक्त** = विविक्त; **वाम-देव** = वामदेव; **नामभ्यः** = नामक।

अनुवाद

हे राजन्! इस द्वीप के राजा प्रियव्रत के दूसरे पुत्र हिरण्यरेता थे। उन्होंने इसके सात विभाग किये और उसके एक-एक विभाग को अपने सातों पुत्रों वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत; विविक्त और वामदेव को दे दिये। राजा स्वयं गृहस्थ जीवन से विरक्त होकर तप करने लगे।

तेषां वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्त सप्तैव चक्रश्चतुःशृङ्गः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युता मन्त्रमालेति ॥१५॥

तेषाम् = उन पुत्रों के; **वर्षेषु** = भूभागों (वर्षों) में; **सीमा-गिरयः** = सीमान्त पर्वत; **नद्यः च** = और नदियाँ भी; **अभिज्ञाताः** = ज्ञात; **सप्त** = सात; **सप्त** = सात; **एव** = निश्चय ही; **चक्रः** = चक्र; **चतुः-शृंगः** = चतुःशृंग; **कपिलः** = कपिल; **चित्र-कूटः** = चित्रकूट; **देवानीकः** = देवानीक; **ऊर्ध्व-रोमा** = ऊर्ध्वरोमा; **द्रविणः** = द्रविण; **इति** = इस प्रकार; **रस-कुल्या** = रसकुल्या; **मधु-कुल्या** = मधुकुल्या; **मित्र-विन्दा** = मित्रवृन्दा; **श्रुत-विन्दा** = श्रुतविन्दा; **देव-गर्भा** = देवगर्भा; **घृत-च्युता** = घृतच्युता; **मन्त्र-माला** = मन्त्रमाला; **इति** = इस प्रकार।

अनुवाद

इन सातों द्वीपों में सात सीमान्त पर्वत हैं, जिनके नाम चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा तथा द्रविण हैं। इसी प्रकार सात नदियाँ हैं जिनके नाम रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा; श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता तथा मंत्रमाला हैं।

यासां पयोभिः कुशद्वीपौकसः कुशलकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञा भगवन्तं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥१६॥

यासाम् = जिनके; **पयोभिः** = जल से; **कुश-द्वीप-ओकसः** = कुशद्वीप के वासी; **कुशल** = कुशल; **कोविद** = कोविद; **अभियुक्त** = अभियुक्त; **कुलक** = कुलक; **संज्ञाः** = नामक; **भगवन्तम्** = श्रीभगवान् को; **जातवेद** = अग्नि देवता; **स-रूपिणम्** = स्वरूप को प्रकट करके; **कर्म-कौशलेन** = अनुष्ठानों में कुशलता के कारण; **यजन्ते** = आराधना करते हैं।

अनुवाद

कुशद्वीप के वासी कुशल, कोविद, अभियुक्त, तथा कुलक नामों से विख्यात हैं। वे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के सदृश हैं। उक्त नदियों के जल में स्नान करके ये सभी वासी पवित्र होते हैं। वे वैदिक शास्त्रों के अनुसार अनुष्ठानों को सम्पन्न करने में कुशल हैं। इस प्रकार वे भगवान् की अग्नि देवता के रूप में उपासना करते हैं।

परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्ज्ञातवेदोऽसि हव्यवाट् ।
देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यजेति ॥१७॥

परस्य=परमेश्वर की; **ब्रह्मणः**=ब्रह्म का; **साक्षात्**=प्रकट रूप में, साक्षात्; **जात-वेदः**=हे अग्निदेव; **असि**=आप हैं; **हव्यवाट्**=अन्न तथा घृत की आहुति के वाहक; **देवानाम्**=समस्त देवताओं के; **पुरुष-अंगानाम्**=जो परम पुरुष के अंग हैं; **यज्ञेन**=यज्ञों के द्वारा; **पुरुषम्**=परम पुरुष को; **यज**=यज्ञ करें; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

[यह वह मन्त्र है, जिसके द्वारा कुशद्वीप के वासी अग्निदेव की पूजा करते हैं।] हे अग्निदेव! आप श्रीभगवान् के अंश रूप हैं, और उन तक समस्त हवियों को पहुँचाते हैं। अतः हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि हम देवताओं को जो भी यज्ञ-सामग्री अर्पण कर रहे हैं, उसे आप श्रीभगवान् को अर्पित करें, क्योंकि वे ही असली भोक्ता हैं।

तात्पर्य

समस्त देवता श्रीभगवान् के सेवक हैं, अतः यदि कोई देवताओं की उपासना करता है तो वे परमेश्वर के सेवकों की भाँति उन तक समस्त हवियों को पहुँचाते हैं, जिस प्रकार कर-संग्राहक नागरिकों से कर वसूल कर सरकारी कोष में पहुँचाते हैं। देवता इन हवियों को स्वीकार नहीं कर सकते, वे उन्हें श्रीभगवान् तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। जैसा कि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कहा है—**यस्य प्रसादाद् भगवत्-प्रसादः**—चूँकि गुरु श्रीभगवान् का प्रतिनिधि होता है, अतः उसे जो भी अर्पित किया जाता है उसे वह ईश्वर तक पहुँचाता है। इसी प्रकार से समस्त देवता श्रीभगवान् के आज्ञाकारी सेवकों की भाँति समस्त हवियों को उन तक पहुँचाते हैं। यदि यह समझ कर देवताओं की उपासना की जाय तो कोई हानि नहीं है, किन्तु यदि कोई यह सोचे कि देवता श्रीभगवान् के तुल्य हैं तो इसे हम **हृतज्ञान** अर्थात् ज्ञान की हानि (**कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः**) कहेंगे। अतः जो देवताओं को वास्तविक वर देने वाला समझते हैं वे त्रुटि करते हैं।

तथा घृतोदाद्बहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चो नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिर्वर्तक आस्ते ॥१८॥

तथा=और इसी प्रकार; **घृत-उदात्**=घृत सागर से; **बहिः**=बाहर, परे; **क्रौंच द्वीपः**=क्रौंचद्वीप नामक अन्य द्वीप; **द्विगुणः**=दुगुना बड़ा; **स-मानेन**=समान विस्तार का; **क्षीर-उदेन**=दुग्ध सागर से; **परितः**=चारों ओर; **उप-क्लृप्तः**=घिरा हुआ; **वृतः**=घिरा हुआ; **यथा**=सदृश; **कुशद्वीपः**=कुशद्वीप; **घृत-उदेन**=घृत सागर से; **यस्मिन्**=जिसमें; **क्रौंच नाम**=क्रौंच नामक; **पर्वत-राजः**=पर्वतों का राजा; **द्वीप-नाम**=द्वीप का नाम; **निर्वर्तकः**=लिया जाता है; **आस्ते**=विद्यमान है।

अनुवाद

घृतसागर से परे क्रौंचद्वीप नाम का अन्य द्वीप है जिसका विस्तार घृतसागर से दुगुना अर्थात् १६,००,००० योजन है। जिस प्रकार कुशद्वीप घृतसागर से घिरा हुआ है उसी प्रकार क्रौंचद्वीप अपने ही समान विस्तार वाले दुग्ध-सागर (क्षीरसागर) से घिरा हुआ है। क्रौंचद्वीप में क्रौंच नामक एक विशाल पर्वत है, जिसके कारण इस द्वीप का यह नाम पड़ा।

योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितम्बकुञ्जोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥१९॥

यः=जो; **असौ**=वह (पर्वत); **गुह-प्रहरणः**=भगवान् शिव के पुत्र कार्तिकेय के प्रहार द्वारा; **उन्मथित**=मथा हुआ; **नितम्ब-कुंजः**=ढालों पर के वृक्ष तथा वनस्पतियाँ; **अपि**=यद्यपि; **क्षीर-उदेन**=क्षीर सागर से; **आसिच्यमानः**=सदैव सिंचित होकर; **भगवता**=सर्वशक्तिमान् द्वारा; **वरुणेन**=वरुण नाम देवता के द्वारा; **अभिगुप्तः**=सुरक्षित; **विभयः बभूव**=निर्भय हो गया है।

अनुवाद

यद्यपि कार्तिकेय के शस्त्र प्रहार से क्रौंच पर्वत के ढालों की वनस्पतियाँ विनष्ट हो गई थीं, किन्तु चारों ओर से क्षीरसागर द्वारा सिंचित होने एवं वरुण देव के द्वारा संरक्षित होने से यह पर्वत पुनः निर्भीक हो गया है।

तस्मिन्नपि प्रैयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान् वर्षपान्निवेश्य स्वयं भगवान् भगवतः परमकल्याण-यशस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविन्दमुपजगाम ॥२०॥

तस्मिन्=उस द्वीप में; **अपि**=भी; **प्रैयव्रत**=महाराज प्रियव्रत का पुत्र; **घृत-**

पृष्ठः = घृतपृष्ठ; **नाम** = नामक; **अधिपतिः** = स्वामी, राजा; **स्वे** = अपने; **द्वीपे** = द्वीप में; **वर्षाणि** = भूभाग; **सप्त** = सात; **विभज्य** = विभाजित करके; **तेषु** = उनमें से प्रत्येक में; **पुत्र-नामषु** = अपने पुत्रों के नाम वाले; **सप्त** = सात; **रिक्था-दान्** = पुत्र; **वर्षपान्** = वर्षों के स्वामी; **निवेश्य** = नियुक्त करके; **स्वयम्** = स्वयं; **भगवान्** = अत्यन्त शक्तिमान्; **भगवतः** = श्रीभगवान् का; **परम-कल्याण-यशसः** = जिसका यश परम कल्याणकारी है; **आत्म-भूतस्य** = समस्त आत्माओं की आत्मा; **हरेः चरण-अरविन्दम्** = हरि के चरण-कमल में; **उपजगाम** = शरण ली।

अनुवाद

इस द्वीप के अधिपति महाराज प्रियव्रत के अन्य पुत्र थे जिनका नाम घृतपृष्ठ था और जो अत्यन्त ज्ञानी थे। उन्होंने भी अपने देश को सात भागों में विभाजित करके उनके नाम अपने सातों पुत्रों के अनुसार किया और स्वयं गृहस्थ जीवन से विरक्त होकर परम कल्याणकारी, समस्त आत्माओं की आत्मा श्रीभगवान् के पादारविन्दों में शरण ली। इस प्रकार वे सिद्धि को प्राप्त हुए।

आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्धमानो भोजन उपबर्हिणो नन्दो नन्दनः सर्वतोभद्र इति अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती रूपवती पवित्रवती शुक्लेति ॥२१॥

आमः = आम; **मधु-रुहः** = मधुरुह; **मेघ-पृष्ठः** = मेघपृष्ठ; **सुधामा** = सुधामा; **भ्राजिष्ठः** = भ्राजिष्ठ; **लोहितार्णः** = लोहितार्ण; **वनस्पतिः** = वनस्पति; **इति** = इस प्रकार; **घृतपृष्ठ-सुताः** = घृतपृष्ठ के पुत्र; **तेषाम्** = इन पुत्रों के; **वर्ष-गिरयः** = देश की सीमा विभाजन करने वाले पर्वत; **सप्त** = सात; **सप्त** = सात; **एव** = भी; **नद्यः** = नदियाँ; **च** = तथा; **अभिख्याताः** = सुप्रसिद्ध; **शुक्लः वर्धमानः** = शुक्ल तथा वर्धमान; **भोजनः** = भोजन; **उपबर्हिणः** = उपबर्हिण; **नन्दः** = नन्द; **नन्दनः** = नन्दन; **सर्वतः-भद्रः** = सर्वतोभद्र; **इति** = इस प्रकार; **अभया** = अभया; **अमृतौघा** = अमृतौघा; **आर्यका** = आर्यका; **तीर्थवती** = तीर्थवती; **रूपवती** = रूपवती; **पवित्रावती** = पवित्रावती; **शुक्ला** = शुक्ला; **इति** = इस प्रकार।

अनुवाद

महाराज घृतपृष्ठ के पुत्रों के नाम आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण तथा वनस्पति थे। उनके द्वीप में सात पर्वत थे जो सात देशों की सीमाओं

को सूचित करने वाले थे और सात नदियाँ भी थीं। पर्वतों के नाम हैं—शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपर्बर्हिण, नन्द, नन्दन तथा सर्वतोभद्र। नदियों के नाम अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, रूपवती, पवित्रावती तथा शुक्ला हैं।

यासामम्भः पवित्रममलमुपयुञ्जानाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनाञ्जलिना यजन्ते ॥२२॥

यासाम्=सभी नदियों का; **अम्भः**=जल; **पवित्रम्**=अत्यन्त पावन; **अमलम्**=अत्यन्त निर्मल; **उपयुञ्जानाः**=उपयोग करते हुए; **पुरुष**=पुरुष; **ऋषभ**=ऋषभ; **द्रविण**=द्रविण; **देवक**=देवक; **संज्ञाः**=नामों वाले; **वर्ष-पुरुषाः**=उन वर्षों के निवासी; **आपः मयम्**=जल के स्वामी वरुण; **देवम्**=उपास्य श्रीविग्रह के रूप में; **अपाम्**=जल का; **पूर्णेन**=पूर्ण; **अञ्जलिना**=अंजुली से; **यजन्ते**=आराधना करते हैं।

अनुवाद

क्रौंच द्वीप के निवासी चार वर्णों में विभाजित हैं—पुरुष, ऋषभ, द्रविण तथा देवक। वे जल के स्वामी वरुण के चरणारविन्दों पर इन पवित्र नदियों को जलांजलि अर्पित करके श्रीभगवान् की पूजा करते हैं।

तात्पर्य

विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—**आपोमयः अश्मयम्**—क्रौंच द्वीप के विभिन्न वर्णों के लोग बद्ध अंजलि द्वारा पवित्र नदियों का जल प्रस्तर या लोहे के बने श्रीविग्रह **पर** अर्पित करते हैं।

आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः सुवः।
ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुव इति ॥२३॥

आपः=हे जल; **पुरुष-वीर्याः**=श्रीभगवान् की शक्ति से युक्त; **स्थ**=आप हैं; **पुनन्तीः**=पवित्र करने वाले; **भूः**=भूःलोक; **भुवः**=भुवःलोक; **सुवः**=स्वःलोक; **ताः**=वह जल; **नः**=हम सब को; **पुनीत**=पवित्र करता है; **अमीव-घ्नीः**=पापों का नाश करने वाला; **स्पृशताम्**=स्पर्श करने वालों के; **आत्मना**=अपने पद के कारण; **भुव**=देह; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

[क्रौंच द्वीप के निवासी इस मन्त्र से उपासना करते हैं।]

हे नदियों के जल, आपको श्रीभगवान् से शक्ति प्राप्त है। अतः आप भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक को पवित्र करते हैं। अपने वैधानिक पद के कारण आप पापों को ग्रहण करते हैं। इसीलिए हम आपका स्पर्श करते हैं। आप हमें पवित्र करते रहें।

तात्पर्य

भगवद्गीता (७.४) में श्रीकृष्ण का कथन है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, ऐसे यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी भिन्ना (अपरा) प्रकृति है।"

जिस प्रकार उष्मा तथा प्रकाश नामक सूर्य की शक्तियाँ इस ब्रह्माण्ड में कार्यशील हैं और प्रत्येक वस्तु को कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं, उसी प्रकार परमेश्वर की शक्ति सम्पूर्ण सृष्टि में कार्यशील है। शास्त्रों में वर्णित विशिष्ट नदियाँ भी श्रीभगवान् की शक्तियाँ हैं और जो व्यक्ति इनमें स्नान करते हैं वे पवित्र होते रहते हैं। सचमुच अनेक लोग गंगा में स्नान करने से रोगमुक्त होते हैं। इसी प्रकार क्रौंच द्वीप के निवासी नदियों में स्नान करके पवित्र होते हैं।

एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतो यस्मिन् शाको नाम महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति ॥२४॥

एवम्=इस प्रकार; **पुरस्तात्**=परे; **क्षीर-उदात्**=क्षीर सागर से; **परितः**=चारों ओर; **उपवेशितः**=स्थित; **शाक-द्वीपः**=शाकद्वीप नामक अन्य द्वीप; **द्वा-त्रिंशत्**=बत्तीस; **लक्ष**=लाख; **योजन**=योजन; **आयामः**=विस्तार वाला; **समानेन**=समान लम्बाई वाला; **च**=और; **दधि-मण्ड-उदेन**=मट्ठे के समान जल वाले समुद्र द्वारा; **परितः**=आवृत; **यस्मिन्**=जिसमें; **शाकः**=शाक; **नाम**=नामक; **महिरुहः**=वृक्ष; **स्व-क्षेत्र-व्यपदेशकः**=जिससे द्वीप का यह नाम पड़ा; **यस्य**=जिसका; **ह**=निस्सन्देह; **महा-सुरभि**=अत्यधिक भीनी; **गंधः**=सुगन्ध; **तम् द्वीपम्**=वह द्वीप; **अनुवासयति**=महकता रहता है।

अनुवाद

क्षीर समुद्र से आगे शाकद्वीप है जिसका विस्तार ३२,००,००० योजन

(२,५६,००,००० मील) है। जिस प्रकार क्रौंचद्वीप क्षीरसागर से घिरा है उसी प्रकार शाकद्वीप अपने ही समान विस्तार वाले मट्ठे के समुद्र से घिरा है। शाकद्वीप में एक विशाल शाक वृक्ष है जिससे इस द्वीप का यह नाम पड़ा। यह वृक्ष अत्यन्त सुगन्धित है। इससे सारा द्वीप महकता रहता है।

तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान् पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूप-विश्वधारसंज्ञान्निधाप्याधिपतीन् स्वयं भगवत्यनन्त आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश॥२५॥

तस्य अपि=उस द्वीप का भी; **प्रैयव्रतः**=महाराज प्रियव्रत का पुत्र; **एव**=निश्चय ही; **अधिपतिः**=राजा; **नाम्ना**=नामक; **मेधा-तिथिः**=मेधातिथि; **सः अपि**=वह भी; **विभज्य**=विभाजित करके; **सप्त वर्षाणि**=द्वीप के सात विभाग; **पुत्र-नामानि**=पुत्रों के नाम; **तेषु**=उनमें; **स्व-आत्मजान्**=अपने पुत्रों; **पुरोजव**=पुरोजव; **मनोजव**=मनोजव; **पवमान**=पवमान; **धूम्रानीक**=धूम्रानीक; **चित्ररेफ**=चित्ररेफ; **बहु-रूप**=बहुरूप; **विश्वधार**=विश्वधार; **संज्ञान्**=नाम वाले; **निधाप्य**=प्रतिष्ठित करके; **अधिपतीन्**=शासक, राजा; **स्वयम्**=स्वयं; **भगवति**=श्रीभगवान् में; **अनन्ते**=अनन्त रूप में; **आवेशित-मतिः**=ध्यानमग्न; **तपः-वनम्**=तपोवन में; **प्रविवेश**=प्रवेश किया।

अनुवाद

इस द्वीप के स्वामी प्रियव्रत के ही एक पुत्र मेधातिथि थे। उन्होंने भी अपने द्वीप को सात भागों में विभाजित करके उनका नाम अपने पुत्रों के नाम पर रखा और उन्हें उस द्वीप का राजा बना दिया। इन पुत्रों के नाम हैं—पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप तथा विश्वधार। इस द्वीप को विभाजित करके अपने पुत्रों को उनका राजा बनाकर मेधातिथि स्वयं विरक्त हो गये और अपने मन को श्रीभगवान् के चरणारविन्दों में लगाने के उद्देश्य से तपोवन में प्रवेश किया।

एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव ईशान उरुशृङ्गो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति अनघाऽऽयुर्दा उभयस्पृष्टिरपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिर्निजधृतिरिति॥२६॥

एतेषाम् = इन समस्त विभागों की; **वर्ष-मर्यादा** = सीमा रेखा के रूप में; **गिरयः** = बड़ी-बड़ी पहाड़ियाँ; **नद्यः च** = तथा नदियाँ भी; **सप्त** = सात; **सप्त** = सात; **एव** = निस्सन्देह; **ईशानः** = ईशान; **उरुशृंगः** = उरुशृंग; **बल-भद्रः** = बलभद्र; **शत-केसर** = शतकेसर; **सहस्र-स्रोतः** = सहस्रस्रोत; **देव-पालः** = देवपाल; **महानसः** = महानस; **इति** = इस प्रकार; **अनघा** = अनघा; **आयुर्दा** = आयुर्दा; **उभयस्पृष्टि** = उभयस्पृष्टि; **अपराजिता** = अपराजिता; **पंचपदी** = पंचपदी; **सहस्र-स्रुतिः** = सहस्र-स्रुति; **निज-धृतिः** = निजधृति; **इति** = इस प्रकार।

अनुवाद

इन द्वीपों में भी सात मर्यादा पर्वत तथा सात ही नदियाँ हैं। पर्वतों के नाम ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्र-स्रोत, देवपाल तथा महानस हैं तथा नदियाँ अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रस्रुति तथा निज-धृति हैं।

तद्वर्षपुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्तं वाय्वात्मकं प्राणायामविधूतरजस्तमसः परमसमाधिना यजन्ते ॥२७॥

तत्-वर्ष-पुरुषाः = उस वर्ष के निवासी; **ऋत-व्रत** = ऋतव्रत; **सत्य-व्रत** = सत्यव्रत; **दान-व्रत** = दानव्रत; **अनुव्रत** = अनुव्रत; **नामानः** = इन (चार) नाम वाले; **भगवन्ताम्** = श्रीभगवान्; **वायु-आत्मकम्** = वायु देवता के रूप में; **प्राणायाम्** = प्राणायाम द्वारा; **विधूत** = निर्मल बनाया; **रजः-तमसः** = रजोगुण तथा तमोगुण; **परम-समाधिना** = परम समाधि द्वारा; **यजन्ते** = उपासना करते हैं।

अनुवाद

उन द्वीपों के वासी भी ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत तथा अनुव्रत—इन चार वर्णों में विभक्त हैं जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के समान हैं। वे प्राणायाम तथा योग साधते हैं और समाधि द्वारा वायु रूप में श्रीभगवान् की उपासना करते हैं।

अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः।
अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥२८॥

अन्तः-प्रविश्य = अन्तःकरण में प्रवेश करके; **भूतानि** = समस्त जीवित प्राणी; **यः** = जो; **बिभर्ति** = पालन करता है; **आत्म-केतुभिः** = अन्तः वायु की क्रियाओं (प्राण, अपान इत्यादि) द्वारा; **अन्तर्यामी** = अन्तस्थ परमात्मा; **ईश्वरः** = परमेश्वर;

साक्षात् = साक्षात्; **पातु** = पालन करे; **नः** = हमारा; **यत् वशे** = जिसके वश में; **स्फुटम्** = दृश्य जगत्।

अनुवाद

[शाकद्वीप के निवासी वायु रूप में श्रीभगवान् की उपासना निम्नलिखित शब्दों से करते हैं]

हे परम पुरुष! देह के भीतर परमात्मा रूप में स्थित आप विभिन्न वायुओं तथा प्राण की विभिन्न क्रियाओं का संचालन करने वाले तथा समस्त जीवात्माओं का पालन करने वाले हैं। हे ईश्वर, हे परमात्मा, हे दृश्य जगत् के नियामक! आप सभी प्रकार के संकटों से हमारी रक्षा करें।

तात्पर्य

योगीजन प्राणायाम नामक योग-क्रिया के बल से शरीर के भीतर वायु को रोक कर शरीर को स्वस्थ रखते हैं। इस प्रकार योगी समाधि दशा को प्राप्त होते हैं और अपने हृदय प्रदेश में श्रीभगवान् को देखने का प्रयास करते हैं। अपने हृदय प्रदेश में श्रीभगवान् को अन्तर्यामी रूप में देखकर उसमें तल्लीन रहने के लिए समाधि की अवस्था प्राप्त करना आवश्यक है जो प्राणायाम के माध्यम से सम्भव है।

एवमेव दधिमण्डोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समन्तत उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतो यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवतः कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितम् ॥२९॥

एवम् एव = इस प्रकार; **दधि-मण्ड-उदात्** = मट्ठे के सागर से; **परतः** = परे; **पुष्कर-द्वीपः** = पुष्कर द्वीप नामक अन्य द्वीप; **ततः** = उस (शाकद्वीप) की अपेक्षा; **द्वि-गुण-आयामः** = जिसका विस्तार दुगुना है; **समन्ततः** = चारों दिशाओं में; **उपकल्पितः** = घिरा हुआ; **समानेन** = समान विस्तार वाला; **स्वादु-उदकेन** = मधुर जल वाले; **समुद्रेन** = समुद्र से; **बहिः** = बाहर से; **आवृतः** = घिरा हुआ; **यस्मिन्** = जिसमें; **बृहत्** = विशाल; **पुष्करम्** = कमल पुष्प; **ज्वलन-शिखा** = प्रज्ज्वलित अग्नि की ज्वालाओं सदृश; **अमल** = निर्मल; **कनक** = स्वर्ण; **पत्र** = पत्तियाँ; **अयुत-अयुतम्** = लाखों अथवा दस करोड़; **भगवतः** = अत्यन्त शक्तिमान्; **कमल-आसनस्य** = ब्रह्मा का, जिनका आसन कमल है; **अध्यासनम्** = आसन; **परिकल्पितम्** = माना जाता है।

अनुवाद

मट्ठे के समुद्र से आगे पुष्कर नाम का अन्य द्वीप है जो इस समुद्र से दुगुने

विस्तार वाला अर्थात् ६४,००,००० योजन है। यह द्वीप अपने ही समान विस्तार वाले मधुर जल के सागर से घिरा हुआ है। पुष्कर द्वीप में अग्नि की ज्वालाओं के समान देदीप्यमान दस करोड़ स्वर्णिम पंखुड़ियों वाला विशाल कमल का पुष्प है, जो सर्वशक्तिमान् तथा भगवान् कहलाने वाले ब्रह्मा का आसन माना जाता है।

तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीनवर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरिष्टात्सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परिभ्रमति ॥३०॥

तत्-द्वीप-मध्ये = उस द्वीप के मध्य में; **मानसोत्तर** = मानसोत्तर; **नाम** = नामक; **एकः** = एक; **एव** = निस्सन्देह; **अर्वाचीन** = इस ओर; **प्राचीन** = उस ओर; **वर्षयोः** = वर्षों (भूभागों) के; **मर्यादा** = सीमा सूचक; **अचलः** = पर्वत; **अयुत** = दस हजार; **योजन** = आठ मील तुल्य दूरी; **उच्छ्राय-आयामः** = जिसकी ऊँचाई तथा चौड़ाई; **यत्र** = जहाँ; **तु** = लेकिन; **चतसृषु** = चारों; **दिक्षु** = दिशाओं में; **चत्वारि** = चार; **पुराणि** = नगर; **लोक-पालानाम्** = लोकों के पालकों का; **इन्द्र-आदीनाम्** = इन्द्र आदि; **यत्** = जिसका; **उपरिष्टात्** = चोटी पर; **सूर्य-रथस्य** = सूर्य देवके रथ का; **मेरुम्** = मेरु पर्वत; **परिभ्रमतः** = परिक्रमा करते हुए; **सम्वत्सर-आत्मकम्** = एक सम्वत्सर वाला; **चक्रम्** = चक्र; **देवानाम्** = देवताओं का; **अहःरात्राभ्याम्** = दिन तथा रात्रि से; **परिभ्रमति** = चक्कर लगाता है।

अनुवाद

उस द्वीप के बीचोबीच, भीतरी तथा बाहरी ओर की सीमा बनाने वाला मानसोत्तर नाम का एक पर्वत है। यह दस हजार योजन ऊँचा और इतना ही लम्बा है। इसके ऊपर चारों दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों की पुरियाँ हैं। सूर्यदेव अपने रथ में आरूढ होकर इस पर्वत के ऊपर संवत्सर नामक परिधि में, जो मेरु पर्वत का चक्कर लगाती है, यात्रा करते हैं। उत्तर दिशा में सूर्य का पथ उत्तरायण और दक्षिण दिशा में दक्षिणायन कहलाता है। देवताओं के लिए एक दिशा में दिन होता है तो दूसरी ओर रात्रि।

तात्पर्य

सूर्य की गति की पुष्टि **ब्रह्मसंहिता** (५.५२) से भी होती है—**यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृत-कालचक्रः**। सूर्य छः मास तक सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में और छः मास

तक दक्षिण दिशा में चक्कर लगाता है। स्वर्गलोक के देवताओं के दिन और रात्रि की यही अवधियाँ हैं।

तद्द्वीपस्याप्यधिपतिः प्रैयव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ रमणकधातकि-नामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद्भगवत्कर्मशील एवास्ते ॥३१॥

तत्-द्वीपस्य=उस द्वीप का; **अपि**=भी; **अधिपतिः**=राजा; **प्रैयव्रतः**=महाराज प्रियव्रत का पुत्र; **वीतिहोत्रः नाम**=वीतिहोत्र नामक; **एतस्य**=उसके; **आत्मजौ**=अपने दो पुत्रों को; **रमणक**=रमणक; **धातकी**=तथा धातकी; **नामानौ**=नाम वाले; **वर्ष-पती**=दोनों वर्षों के स्वामी; **नियुज्य**=नियुक्त करके; **सः स्वयम्**=वह स्वयं; **पूर्वज-वत्**=अपने अन्य भाइयों के समान; **भगवत्-कर्म-शीलः**=श्रीभगवान् को प्रसन्न करने में लीन; **एव**=निस्सन्देह; **आस्ते**=लगा रहता है।

अनुवाद

इस द्वीप का अधिपति महाराज प्रियव्रत का पुत्र वीतिहोत्र था जिसके रमणक तथा धातकी नामक दो पुत्र हुए। उसने इन दोनों पुत्रों को इस द्वीप के दोनों सिरे दे दिये और स्वयं अपने अग्रज मेधातिथि के समान श्रीभगवान् की सेवा में तत्पर रहने लगा।

तद्वर्षपुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेण कर्मणाऽऽराधयन्तीदं चोदाहरन्ति ॥३२॥

तत्-वर्ष-पुरुषाः=उस द्वीप के वासी; **भगवन्तम्**=श्रीभगवान्; **ब्रह्म-रूपिणम्**=कमलासीन भगवान् ब्रह्मा के रूप में; **स-कर्मकेण**=भौतिक कामनाओं की पूर्ति हेतु; **कर्मणा**=वेदविहित अनुष्ठान करके; **आराधयन्ति**=आराधना करते हैं; **इदम्**=यह; **च**=तथा; **उदाहरन्ति**=जप करते हैं।

अनुवाद

इस द्वीप के वासी अपनी भौतिक कामनाओं की पूर्ति के लिए ब्रह्मा के रूप में श्रीभगवान् की आराधना करते हैं। वे इस प्रकार उनकी स्तुति करते हैं।

यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत्।
एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नम इति ॥३३॥

यत्=जो; **तत्**=वह; **कर्म-मयम्**=वैदिक कृत्यों के द्वारा प्राप्य; **लिंगम्**=स्वरूप; **ब्रह्म-लिंगम्**=जिससे परब्रह्म जाने जाते हैं; **जनः**=व्यक्ति; **अर्चयेत्**=अर्चना करनी चाहिए; **एकान्तम्**=एकब्रह्म में पूर्ण आस्था रखने वाला; **अद्वयम्**=अभिन्न; **शान्तम्**=शान्त; **तस्मै**=उन; **भगवते**=सर्वशक्तिमान् को; **नमः**=नमस्कार है; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

भगवान् ब्रह्मा कर्ममय कहलाते हैं, क्योंकि अनुष्ठानों को करके कोई भी उनका पद प्राप्त कर सकता है और उन्हीं से वैदिक अनुष्ठान-स्तुतियाँ प्रकट होती हैं। वे अविचल भाव से श्रीभगवान् की भक्ति करते हैं, अतः एक प्रकार से वे भगवान् से अभिन्न हैं। फिर भी उनकी उपासना एकान्तिक भाव से न करके द्वैत भाव से करनी चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि अपने को दास मानते हुए परम-ब्रह्म को ही परम आराध्य माने। अतः हम भगवान् ब्रह्मा को साक्षात् वेदज्ञान के रूप में नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य

इस श्लोक में आगत **कर्म-मयम्** शब्द महत्त्वपूर्ण है। वेदों का वचन है—**स्वधर्म निष्ठः शत जन्मभिः पुमान् विरिञ्चताम् एति**—जो एक सौ जन्मों तक वर्णाश्रम धर्म के नियमों का कठोरता से पालन करता है उसे ब्रह्मा-पद की प्राप्ति होती है। यद्यपि भगवान् ब्रह्मा अत्यन्त शक्तिमान् हैं, किन्तु वे कभी भी अपने को श्रीभगवान् से अभिन्न नहीं मानते, उन्हें यह ज्ञात है कि वे ईश्वर के शाश्वत दास हैं। चूँकि अभिन्न रूप से भगवान् तथा दास एक हैं, इसीलिए ब्रह्मा को भगवान् कहा गया है। भगवान् तो श्रीभगवान् कृष्ण हैं, किन्तु यदि कोई भक्त परम आस्था से उनकी सेवा करता है तो वैदिक साहित्य का उसे ज्ञान हो जाता है। इसीलिए ब्रह्मा को **ब्रह्मलिंग** कहा जाता है, जिससे यह बोध होता है कि उनका सम्पूर्ण स्वरूप वैदिक ज्ञानमय है।

ऋषिरुवाच

ततः परस्ताल्लोकालोकनामाचलो लोकालोकयोरन्तराले परित उपक्षिप्तः ॥३४॥

ततः=मधुर जल के सागर से; **परस्तात**=परे, आगे; **लोकालोक-नाम**=लोकालोक नामक; **अचलः**=पर्वत; **लोक-अलोकयोः** **अन्तराले**=प्रकाश तथा अन्धकार से पूर्ण देशों के मध्य में; **परितः**=चारों ओर; **उपक्षिप्तः**=विद्यमान है।

अनुवाद

इसके पश्चात् मधुर जल वाले सागर के आगे तथा इसको घेरने वाला लोकालोक

नामक पर्वत है जो देशों को सूर्य से प्रकाशित तथा अप्रकाशित इन दो भागों में विभाजित कर देता है।

यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्याऽऽदर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथञ्चित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्त्वपरिहृताऽऽसीत् ॥३५॥

यावत् = जहाँ तक; **मानसोत्तर-मेर्वोः अन्तरम्** = मानसोत्तर तथा मेरु के बीच की भूमि; **तावती** = वहाँ तक; **भूमिः** = भूमि; **काञ्चनी** = स्वर्ण निर्मित; **अन्या** = अन्य; **आदर्श-तल-उपमा** = जिसका तल दर्पण की तरह है; **यस्याम्** = जिस पर; **प्रहितः** = गिराई हुई; **पदार्थः** = वस्तु; **न** = नहीं; **कथञ्चित्** = किसी प्रकार से; **पुनः** = फिर; **प्रत्युपलभ्यते** = पाई जाती है; **तस्मात्** = इसीलिए; **सर्व-सत्त्व** = समस्त जीवात्माओं द्वारा; **परिहृता** = परित्यक्त; **आसीत** = था।

अनुवाद

मधुर जल के सागर से आगे सुमेरु पर्वत के मध्य से लेकर मानसोत्तर पर्वत की सीमा तक जितना अन्तर है उतनी भूमि है। उस भूभाग में अनेक जीवित प्राणी रहते हैं। उसके आगे लोकालोक पर्वत तक फैली हुई दूसरी भूमि है जो स्वर्णमय है। स्वर्णमय सतह के कारण यह दर्पण की तरह सूर्य प्रकाश को परावर्तित कर देता है, अतः इसमें गिरी हुई वस्तु पुनः नहीं दिखलाई पड़ती। फलतः सभी प्राणियों ने इस स्वर्णमयी भूमि का परित्याग कर दिया है।

लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोकस्यान्तर्वर्तिनावस्थाप्यते ॥३६॥

लोक = प्रकाश (अथवा वासियों) से; **अलोकः** = प्रकाशरहित (अथवा वासियों से विहीन); **इति** = इस प्रकार से; **समाख्या** = नाम; **यत्** = जो; **अनेन** = इस; **अचलेन** = पर्वत से; **लोक** = जीवात्माओं के देश; **अलोकस्य** = बिना प्राणियों वाले देश का; **अन्तर्वर्तिना** = मध्य में स्थित; **अवस्थाप्यते** = स्थित है।

अनुवाद

जीवात्माओं से युक्त तथा बिना प्राणियों वाले देशों के मध्य में एक विशाल पर्वत है जो इन दोनों को पृथक करता है, अतः लोकालोक नाम से विख्यात है।

स लोकत्रयान्ते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात्सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रीँल्लोकानावितन्वाना न कदाचित्पराचीना भवितुमुत्सहन्ते तावदुन्नहनायामः ॥३७॥

सः=वह पर्वत; **लोक-त्रय-अन्ते**=तीनों लोकों (भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक) के अन्त में; **परितः**=चारों ओर; **ईश्वरेण**=श्रीभगवान् कृष्ण द्वारा; **विहितः**=सृष्टि की; **यस्मात्**=जिससे; **सूर्य-आदीनाम्**=सूर्य लोक का; **ध्रुव-अपवर्गानाम्**=ध्रुव तथा अन्य निम्न नक्षत्रों तक; **ज्योतिः गणानाम्**=समस्त नक्षत्रों का; **गभस्तयः**=किरणें; **अर्वाचीनान्**=इस दिशा में; **त्रीन**=तीन; **लोकान्**=लोक; **आवितन्वानाः**=विस्तीर्ण; **न**=नहीं; **कदाचित्**=किसी समय; **पराचीनाः**=उस पर्वत के परे; **भवितुम्**=होने के; **उत्सहन्ते**=समर्थ हैं; **तावत्**=उतना; **उन्नहन-आयामः**=पर्वत की ऊँचाई की माप।

अनुवाद

श्रीकृष्ण की परमेच्छा से लोकालोक नामक पर्वत तीनों लोकों—भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक—की बाहरी सीमा के रूप में स्थापित किया गया है, जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सूर्य की किरणों का नियन्त्रण किया जा सके। सूर्य से लेकर ध्रुवलोक एवं सारे नक्षत्र इन तीनों लोकों में इस पर्वत के द्वारा निर्मित सीमा के अन्तर्गत अपनी किरणें बिखेरते हैं। चूँकि यह पर्वत ध्रुवलोक से भी अधिक ऊँचा है, अतः यह नक्षत्रों की किरणों को अवरुद्ध कर लेता है, जिससे वे कभी भी इसके बाहर प्रसरित नहीं हो पातीं।

तात्पर्य

लोकत्रय से हमारा प्रयोजन उन तीन लोकों—**भूः, भुवः तथा स्वः**—से है जिनमें यह ब्रह्माण्ड विभाजित है। इन लोकों को घेरने वाली आठ दिशाएँ हैं, जिनके नाम हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, उत्तरपूर्व (ईशान), दक्षिणपूर्व (अग्नि) उत्तर पश्चिम (वायु) तथा दक्षिण पश्चिम (नैऋत्य)। लोकालोक पर्वत की स्थापना समस्त लोकों की बाह्य सीमा में इसलिए की गई, जिससे सूर्य तथा अन्य नक्षत्रों की किरणें समस्त ब्रह्माण्ड में समान रूप से वितरित हों।

सूर्य की किरणें ब्रह्माण्ड के विभिन्न लोकों में जिस प्रकार वितरित होती हैं, इसका यह वर्णन अत्यन्त वैज्ञानिक है। शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित् को यह विश्व-विवरण जैसा अपने पूर्वजों से सुना था कह सुनाया। उनको बताये हुए पाँच हजार वर्ष हुए, किन्तु यह ज्ञान बहुत काल पहले से उपलब्ध था और श्रीशुकदेव गोस्वामी ने इसे परम्परा से प्राप्त किया। परम्परा से प्राप्त होने से यह ज्ञान पूर्ण है। इसके

विपरीत आधुनिक विज्ञान का इतिहास कुछ सौ वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। अतः यदि आधुनिक वैज्ञानिक श्रीमद्भागवत के अन्य तथ्यों को न भी स्वीकार करें तो भी वे दीर्घकाल से चली आने वाली नक्षत्रविज्ञान सम्बन्धी गणनाओं को कैसे अस्वीकार कर सकते हैं ? श्रीमद्भागवत से प्रभूत सूचना प्राप्त की जा सकती है। किन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों को अन्य लोकों के सम्वन्ध में कोई ज्ञान नहीं है और वास्तविकता तो यह है कि जिस लोक में हम रह रहे हैं उससे भी वे ठीक से परिचित नहीं हो पाये।

एतावाँल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ॥३८॥

एतावान् = इतना; **लोक-विन्यासः** = विभिन्न लोकों का वितरण; **मान** = परिमाप; **लक्षण** = लक्षण, चिह्न; **संस्थाभिः** = तथा उनकी विभिन्न स्थितियाँ; **विचिन्तितः** = वैज्ञानिक गणनाओं द्वारा निश्चित की गई; **कविभिः** = विद्वानों के द्वारा; **सः** = वह; **तु** = लेकिन; **पञ्चाशत्-कोटि** = पचास करोड़ योजन; **गणितस्य** = गणना करने पर; **भू-गोलस्य** = भूगोलक नामक लोक का; **तुरीय-भागः** = चतुर्थांश; **अयम्** = यह; **लोकालोक-अचलः** = लोकालोक नामक पर्वत।

अनुवाद

ऐसे विद्वानों ने, जो त्रुटि, भ्रम तथा वंचना से मुक्त हैं, प्रमाण, लक्षण और स्थिति के अनुसार लोकों का इतना ही विस्तार बतलाया है। उन्होंने विचार-विमर्श के बाद यह स्थापना की है कि सुमेरु तथा लोकालोक पर्वत के मध्य की दूरी ब्रह्माण्ड के व्यास की चतुर्थांश अर्थात् १२,५०,००,००० (साढ़े बारह करोड़) योजन है।

तात्पर्य

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने लोकालोक पर्वत की स्थिति, सूर्य गोलक की गतियों तथा सूर्य एवं ब्रह्माण्ड की परिधि के बीच की दूरी के सम्बन्ध में सही-सही ज्योतिषीय वैज्ञानिक सूचना प्रस्तुत की है। किन्तु ज्योतिर्वेद द्वारा इन गणनाओं में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का अंग्रेजी में अनुवाद कर पाना कठिन है। अतः पाठकों को सन्तुष्ट करने के लिए हम श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा संस्कृत में दिए गये कथन को यथावत् उद्धृत कर रहे हैं—

स तु लोकालोकस्तु भूगोलकस्य भूसम्बन्धाण्डगोलकस्येत्यर्थः। सूर्यस्य एव भुवोऽप्य अण्डगोलकयोर्मध्य वर्तित्वात् खगोलमिव भूगोलमपि पंचाशत्कोटि-योजनप्रमाणं तस्य तुरीयभागः सार्द्धद्वादशकोटियोजनविस्तारोच्छ्राय इत्यर्थः। भूस्तु

चतुस्त्रिंशलक्षोनपञ्चाशतकोटिप्रमाणा ज्ञेया। यथा मेरुमध्यान्मानसोत्तरमध्यपर्यन्तं सार्द्धसप्तपञ्चाश ल्लक्षोत्तरकोटियोजनप्रमाणम्। मानसोत्तरमध्यात् स्वादूदकसमुद्र-पर्यन्तं षण्णवतिलक्षयोजनप्रमाणं ततः काञ्चनीभूमिः सार्धसप्तपञ्चाशल्लक्षोत्तर-कोटियोजनप्रमाणा एवमेकतो मेरुलोकालोकयोरन्तरालमेकादशशल्लक्षाधिक-चतुष्कोटिपरिमितमन्यतोऽपि तथत्येतो लोकालोकाल्लोक पर्यन्तं स्थानं द्वाविंशति-लक्षोत्तराष्टकोटिपरिमितं लोकालोकाद्बहिरप्येकतः एतावदेव अन्यतोऽप्य एतावदेव यद्वक्ष्यते, योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोका-चलादित्येकतो लोकालोकः सार्धद्वादशकोटियोजनपरिमाणः अन्यतोऽपि स तथेत्येवं चतुस्त्रिंशल्लक्षोनपञ्चाशत्कोटिप्रमाणा भूः साब्धिद्वीपपर्वता ज्ञेया। एतेवाण्डगोलकात् सर्वतो दिक्षु सप्तदशलक्षयोजनावकाशे वर्तमाने सति पृथिव्याः शेषनागेन धारणं दिग्गजैश्च निश्चलीकरणं सार्थकं भवेदन्यथा तु व्याख्यान्तरे पञ्चाशतकोटिप्रमाणत्वाद् अण्डगोलकलग्नत्वे तत् तत् सर्वम् अकिंचित्करं स्यात् चाक्षुषे मन्वन्तरे चाकस्मात् मज्जनं श्रीवराहदेवेनोत्थापनं च दुर्घटं स्यादित्यधिकं विवेचनीयम्।

तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाखिलजगद्गुरुणाधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः ॥३६॥

तत्-उपरिष्टात्=लोकालोक पर्वत की चोटी पर; **चतसृष आशासु**=चारों दिशाओं में; **आत्म-योनिना**=भगवान् ब्रह्मा द्वारा; **अखिल-जगद्गुरुणा**=समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु; **अधिनिवेशिताः**=स्थापित; **ये**=वे सब; **द्विरद-पतयः**=हाथियों में श्रेष्ठ; **ऋषभः**=ऋषभ; **पुष्कर-चूडः**=पुष्करचूड; **वामनः**=वामन; **अपराजितः**=अपराजित; **इति**=इस प्रकार; **सकल-लोक-स्थिति-हेतवः**=विश्व के अन्तर्गत विभिन्न लोकों के पालन के कारण।

अनुवाद

लोकालोक पर्वत के ऊपर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के परम-गुरु भगवान् ब्रह्मा के द्वारा स्थापित गजों में श्रेष्ठ चार गज-पति हैं। इन गजों के नाम हैं—ऋषभ, पुष्करचूड़, वामन तथा अपराजित। ये ब्रह्माण्ड के लोकों को धारण करने वाले हैं।

तेषां स्वविभूतीनां लोकपालानां च विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान् परममहा-पुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनो विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्ट-महासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधो-

पशोभितैर्निजभुजदण्डैः सन्धारयमाणस्तस्मिन् गिरिवरे समन्तात्सकललोकस्वस्तय आस्ते ॥४०॥

तेषाम् = उनमें से; **स्व-विभूतीनाम्** = जो उनके व्यक्तिगत प्रकाश तथा सेवक हैं; **लोक-पालानाम्** = जिन पर विश्व के व्यापारों की देख-रेख का भार है; **च** = तथा; **विविध** = नाना प्रकार; **वार्य-उपबृंहणाय** = शक्तियों के प्रसार हेतु; **भगवान्** = श्रीभगवान्; **परम-महा-पुरुष** = सभी प्रकार के ऐश्वर्य के आद्य स्वामी, श्रीभगवान्; **महाविभूति-पतिः** = समस्त अकल्पनीय शक्तियों के स्वामी; **अन्तर्यामी** = परमात्मा; **आत्मनः** = अपना; **विशुद्ध-सत्त्वम्** = प्रकृति के गुणों से निष्कलुष अस्तित्त्व वाला; **धर्म-ज्ञान-वैराग्य** = धर्म, ज्ञान तथा वैराग्य का; **ऐश्वर्य-आदि** = समस्त प्रकार के ऐश्वर्य का; **अष्ट** = आठ; **महा-सिद्धि** = तथा महान् सिद्धियाँ; **उपलक्षणम्** = गुणमय; **विष्वक्सेन-आदिभिः** = विष्वक्सेन आदि अपने प्रकाश द्वारा; **स्व-पार्षद-प्रवरैः** = अपने श्रेष्ठ सहायकों; **परिवारितः** = घिरे हुए; **निज** = अपना; **वर-आयुध** = विभिन्न प्रकार के शस्त्र अस्त्रों द्वारा; **उपशोभितैः** = अलंकृत होकर; **निज** = स्व; **भुज-दंडैः** = बलिष्ट भुजाओं द्वारा; **संधारयमाणः** = इस रूप को प्रकट करके; **तस्मिन्** = उस पर; **गिरि-वरे** = विशाल पर्वत; **समन्तात** = चारों ओर; **सकल-लोक-स्वस्तये** = समस्त लोकों के कल्याण हेतु; **आस्ते** = है।

अनुवाद

श्रीभगवान् समस्त दिव्य ऐश्वर्य तथा चिदाकाश के स्वामी हैं। यह प्रत्येक प्राणी के परमात्मा परम पुरुष श्रीभगवान् हैं। स्वर्ग के राजा इन्द्र के अधीन देवतागण इस भौतिक जगत् के कार्यों का निरीक्षण करते हैं। विभिन्न लोकों के प्राणियों के लाभ हेतु तथा उन हाथियों तथा देवताओं की शक्ति को बढ़ाने के लिए भगवान् स्वयं उस पर्वत की चोटी पर निष्कलुष शरीर धारण करके प्रकट होते हैं। अपने निजी प्रकाश तथा विष्वक्सेन जैसे सहायकों से घिरे रह कर वे अपने पूर्ण ऐश्वर्य (यथा ज्ञान तथा धर्म) एवं अपनी शक्तियों (यथा अणिमा, लघिमा तथा महिमा) को प्रदर्शित करते हैं। वे सुअलंकृत हैं और अपने चारों भुजाओं में आयुध धारण किये हुए हैं।

आकल्पमेवं वेषं गत एष भगवानात्मयोगमायया विरचितविविधलोकयात्रागोपीयायेत्यर्थः ॥४१॥

आकल्पम् = कल्प के अन्त तक; **एवम्** = इस प्रकार; **वेषम्** = वेष; **गतः** = स्वीकार किया; **एषः** = यह; **भगवान्** = श्रीभगवान्; **आत्म-योग-मायया** = अपनी

योगमाया से; **विरचित**=सम्पन्न; **विविध-लोक-यात्रा**=विभिन्न लोकों का जीवन-यापन; **गोपीयाय**=पालन करने भर को; **इति**=इस प्रकार; **अर्थ**=प्रयोजन।

अनुवाद

श्रीभगवान् के विविध रूप, यथा नारायण तथा विष्णु विभिन्न आयुधों से अलंकृत हैं। श्रीभगवान् अपनी योगमाया से उत्पन्न समस्त लोकों का पालन करने के लिए इन रूपों को प्रकट करते हैं।

तात्पर्य

भगवद्गीता (४.६) में भगवान् श्रीकृष्ण का वचन है—**संभवाम्यात्ममायया**—मैं अपनी आन्तरिक शक्ति से प्रकट होता हूँ। **आत्ममाया** शब्द से ईश्वर की अपनी शक्ति **योगमाया** का निर्देश हुआ है। अपनी योगमाया से भौतिक तथा वैकुण्ठ जगत् दोनों की सृष्टि करने के पश्चात् वे विष्णु तथा देवताओं के विभिन्न रूपों में प्रकाशित होकर इसका पालन करते हैं।

**योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचलात्।
ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥४२॥**

यः=वह जो; **अन्तः-विस्तारः**=लोकालोक पर्वत की आन्तरिक दूरी; **एतेन**=इससे; **हि**=ही; **अलोक-परिमाणम्**=अलोक वर्ष का विस्तार; **च**=तथा; **व्याख्यातम्**=वर्णित; **यत्**=जो; **बहिः**=बाहर की ओर; **लोकालोक-अचलात्**=लोकालोक पर्वत से आगे; **ततः**=वह; **परस्तात्**=परे, आगे; **योगेश्वर-गतिम्**=ब्रह्माण्ड के आवरणों को भेदने के लिए योगेश्वर (कृष्ण) का मार्ग; **विशुद्धाम्**=भौतिक कलुष से रहित; **उदाहरन्ति**=उनका कथन है।

अनुवाद

हे राजन्! लोकालोक पर्वत के आगे अलोकवर्ष है जो पर्वत के भीतरी विस्तार के बराबर अर्थात् १२,५०,००,००० (साढ़े बारह करोड़) योजन तक विस्तीर्ण है। अलोक वर्ष के परे भौतिक जगत् से मुक्ति के इच्छुक व्यक्तियों का गन्तव्य है। इसको प्रकृति के भौतिक गुण कलुषित नहीं कर पाते, अतः यह परम शुद्ध है। ब्राह्मण के पुत्रों को वापस लाते समय श्रीकृष्ण अर्जुन को इसी स्थान से होकर ले गये।

**अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम्।
सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥४३॥**

अण्ड-मध्य-गतः =ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित; **सूर्यः** =सूर्य गोलक; **द्याव-अभूम्योः** =भूर्लोक तथा भुवर्लोक नामक दो लोक; **यत्** =जो; **अन्तरम्** =के मध्य; **सूर्य** = सूर्य का; **अण्ड-गोलयोः** =तथा ब्रह्माण्ड गोलक; **मध्ये** =मध्य में; **कोट्यः** =एक करोड़; **स्युः** =हैं; **पञ्च-विंशतिः** =पच्चीस।

अनुवाद

सूर्य इस ब्रह्माण्ड के मध्य में, भूर्लोक तथा भुवर्लोक के मध्यवर्ती भाग में स्थित है, जिसे अन्तरिक्ष कहते हैं। सूर्य तथा ब्रह्माण्ड की परिधि के बीच की दूरी पच्चीस कोटि योजन है।

तात्पर्य

कोटि शब्द का अर्थ करोड़ है तथा **योजन** आठ मील के बराबर होता है। इस ब्रह्माण्ड का व्यास पचास करोड़ योजन है। चूँकि सूर्य मध्य में स्थित है अतः सूर्य से ब्रह्माण्ड के सिरे तक की दूरी पच्चीस करोड़ योजन आँकी गई है।

मृतेऽण्ड एष एतस्मिन् यदभूत्ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः।
हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्याण्डसमुद्भवः ॥४४॥

मृते =मृत; **अण्डे** =गोलक में; **एषः** =यह; **एतस्मिन्** =इसमें; **यत्** =जो; **अभूत्** =सृष्टि के समय स्वयं प्रविष्ट हुआ; **ततः** =उससे; **मार्तण्ड** =मार्तण्ड; **इति** =इस प्रकार; **व्यपदेशः** =नाम; **हिरण्य-गर्भः** =हिरण्यगर्भ नाम से विख्यात; **इति** =इस प्रकार; **यत्** =क्योंकि; **हिरण्य-अण्ड-समुद्भवः** =उनकी देह हिरण्यगर्भ से उत्पन्न हुई।

अनुवाद

सूर्यदेव वैराज भी कहलाते हैं अर्थात् समस्त जीवात्माओं के लिए सम्पूर्ण भौतिक शरीर। ब्रह्माण्ड की सृष्टि के समय ब्रह्माण्ड के अण्डे के भीतर प्रवेश करने के कारण मार्तण्ड भी कहलाते हैं। हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) से भौतिक शरीर प्राप्त करने के कारण वह हिरण्यगर्भ भी कहलाते हैं।

तात्पर्य

ब्रह्मा का पद परम पूर्णता प्राप्त जीवों के लिए है। ऐसे जीवों के अभाव में विष्णु भगवान् अपना विस्तार ब्रह्मा के रूप में करते हैं, किन्तु ऐसा विरले ही होता है। फलतः दो प्रकार के ब्रह्मा हैं—कभी वह सामान्य जीवात्मा के रूप में रहते हैं तो कभी श्रीभगवान् के रूप में। यहाँ पर सामान्य ब्रह्मा का उल्लेख हुआ है। ब्रह्मा

चाहे जिस रूप में हों वे वैराज ब्रह्मा तथा हिरण्यगर्भ ब्रह्मा कहे जाते हैं, इसीलिए सूर्यदेव को भी वैराज ब्रह्मा के रूप में माना गया है।

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा।
स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥४५॥

सूर्येण=सूर्यदेव द्वारा; **हि**=ही; **विभज्यन्ते**=विभाजित हैं; **दिशः**=दिशाएँ; **खम्**=आकाश; **द्यौः**=स्वर्गलोक; **मही**=पृथ्वीलोक; **भिदा**=अन्य विभाग; **स्वर्ग**=स्वर्ग; **अपवर्गौ**=मुक्ति के लिए स्थान; **नरकाः**=नरकलोक; **रसौकांसि**=यथा अतल; **च**=भी; **सर्वशः**=सभी।

अनुवाद

हे राजन्! सूर्यदेव तथा सूर्यलोक ब्रह्माण्ड की समस्त दिशाओं को विभाजित करते हैं। सूर्य के ही कारण हम समझ पाते हैं कि आकाश, स्वर्गलोक, यह संसार तथा पाताललोक क्या हैं। सूर्य के ही कारण हम जान पाते हैं कि भोग या मोक्ष के स्थान कौन-कौन से हैं और कौन से नरक तथा अतल आदि लोक हैं।

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम्।
सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥४६॥

देव=देवताओं; **तिर्यक्**=निम्न पशुओं; **मनुष्याणाम्**=तथा मनुष्यों का; **सरीसृप**=कीट तथा सर्प; **स-वीरुधाम्**=तथा पेड़-पौधे; **सर्व-जीव-निकायानाम्**=समस्त जीव समूहों का; **सूर्यः**=सूर्यदेव; **आत्मा**=प्राण तथा आत्मा; **दृक्**=नेत्र; **ईश्वरः**=भगवान्।

अनुवाद

सूर्यलोक से सूर्यदेव द्वारा प्रदत्त उष्मा तथा प्रकाश पर ही समस्त जीवात्माएँ, जिनमें देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, रेंगनेवाले जीव, लताएँ तथा वृक्ष सम्मिलित हैं, निर्भर हैं। सूर्य की ही उपस्थिति में सभी प्राणी देख सकते हैं, इसीलिए वह दृग्-ईश्वर अर्थात् दृष्टि के ईश्वर कहलाते हैं।

तात्पर्य

इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का कथन है—**सूर्य आत्मा आत्मत्वेनोपास्यः**। इस ब्रह्माण्ड में सूर्य ही समस्त प्राणियों का जीवन और आत्मा है। इसीलिए वह उपास्य है। हम सूर्यदेव की उपासना गायत्री मंत्र के जप (**ॐ भूर्भुवः**

स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि) द्वारा करते हैं। सूर्य इस ब्रह्माण्ड का उसी प्रकार जीवन और आत्मा है जिस प्रकार श्रीभगवान् इस समस्त सृष्टि के हैं। हमें ज्ञात है कि वैराज, हिरण्यगर्भ ने सूर्य नामक विशाल भौतिक गोलक में प्रवेश किया। अतः तथाकथित वैज्ञानिकों का यह कथन कि वहाँ कोई नहीं वास करता, असत्य है। श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है कि उन्होंने सर्वप्रथम सूर्यदेव को गीता का उपदेश दिया (**इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्**) अतः सूर्य रिक्त नहीं है। इसमें जीवात्माएँ निवास करती हैं और इसका प्रधान श्रीविग्रह वैराज अथवा विवस्वान् है। पृथ्वी तथा सूर्य में यही अन्तर है कि सूर्य अग्निमय लोक है, किन्तु वहाँ के प्राणी अनुकूल शरीर धारण करके बिना कठिनाई के निवास कर सकते हैं।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने समुद्रवर्षसंनिवेशपरिमाणलक्षणो विंशोऽध्यायः ॥२०॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, "ब्रह्माण्ड रचना का विश्लेषण" शीर्षक नामक बीसवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त भाष्य समाप्त हुआ।

इक्कीसवाँ अध्याय

सूर्य की गति का वर्णन

इस अध्याय में सूर्य की गतियों का वर्णन हुआ है। सूर्य स्थिर नहीं है, यह अन्य ग्रहों की भाँति गतिमान है। सूर्य की गतियों से दिन और रात्रि का निर्धारण होता है। जब सूर्य विषुवत रेखा के उत्तर यात्रा करता रहता है तो वह दिन में अत्यन्त मन्द तथा रात्रि में अत्यन्त तेजी से गति करता है, जिससे दिन बड़े और रातें छोटी होती हैं। इसी प्रकार जब सूर्य विषुवत रेखा के दक्षिण रहता है तो इसके विपरीत होता है—दिन छोटे तथा रातें लम्बी होती हैं। जब सूर्य कर्कट राशि में प्रवेश करके सिंह राशि से होता हुआ धनु राशि में पहुँचता है तो उसके इस पथ को दक्षिणायन कहा जाता है। इसी प्रकार जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करके कुम्भ राशि से होता हुआ मिथुन राशि में पहुँचता है तो इस पथ को उत्तरायण कहते हैं। जब सूर्य मेष तथा तुला राशियों में रहता है तो दिन और रात समान होते हैं।

मानसोत्तर पर्वत में चार देवताओं का निवास है। सुमेरु पर्वत के पूर्व स्थित देवधानी में राजा इन्द्र का तथा सुमेरु के दक्षिण स्थित संयमनी में मृत्यु के अधीक्षक यमराज का वास है। इसी प्रकार सुमेरु के पश्चिम निम्लोचनी में वर्षा के स्वामी वरुण का आवास है। सुमेरु के उत्तर में विभावरी है जहाँ चन्द्र देवता निवास करता है। इन सभी स्थानों में सूर्य की गति के कारण प्रातः, मध्याह्न, सूर्यास्त तथा अर्धरात्रि होती है। सूर्योदय के स्थान के ठीक पीछे सूर्यास्त होता है। इसी प्रकार जहाँ मध्याह्न है उसके ठीक पीछे की ओर के प्राणी अर्धरात्रि का अनुभव करते हैं। सूर्य अन्य समस्त ग्रहों समेत जिनमें चन्द्रमा तथा अन्य नक्षत्र प्रमुख हैं उदय और अस्त होता रहता है।

सम्पूर्ण कालचक्र सूर्यदेव के रथ के चक्र पर अवस्थित है। यह चक्र संवत्सर कहलाता है। सूर्य के रथ को खींचने वाले सातों अश्व गायत्री, वृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् तथा पंक्ति कहलाते हैं। वे अरुणदेव नामक देवता द्वारा ९,००,००० योजन चौड़े जुएँ में जोते जाते हैं। इस प्रकार यह रथ आदित्यदेव अथवा सूर्यदेव को ले जाता है। सूर्यदेव के समक्ष सदैव स्तुति करते हुए वालिखिल्य नामक साठ हजार ऋषि रहते हैं। प्रत्येक मास सूर्यदेव के माध्यम से विभिन्न नामों से श्रीभगवान् की आराधना करने वाले चौदह गंधर्व, अप्सराएँ तथा सात श्रेणियों

में विभक्त अनेक देवता हैं। इस प्रकार सूर्यदेव १६,००४ मील प्रति क्षण की चाल से इस ब्रह्माण्ड की ६,५१,००,००० योजन की प्रदक्षिणा करते हैं।

श्रीशुक उवाच

एतावानेव भूवलयस्य संनिवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः ॥ १ ॥

श्रीशुकः उवाच=श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; **एतावान्**=इतना; **एव**=ही; **भू-वलयस्य संनिवेशः**=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की योजना; **प्रमाण-लक्षतः**=लक्षणों तथा माप के अनुसार (पचास करोड़ योजन लम्बाई तथा चौड़ाई); **व्याख्यातः**=अनुमान किया गया।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—हे राजन्! मैंने यहाँ तक आपसे विद्वानों के अनुमानों के आधार पर ब्रह्माण्ड के व्यास (पचास करोड़ योजन) तथा इसके सामान्य लक्षणों का वर्णन किया है।

एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनां ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसन्धितम् ॥ २ ॥

एतेन=इस अनुमान के आधार पर; **हि**=निस्सन्देह; **दिवः**=स्वर्गलोक का; **मण्डल-मानम्**=गोलक का परिमाण (माप); **तत्-विदः**=इसको जानने वाले विद्वज्जन; **उपदिशन्ति**=उपदेश देते हैं; **यथा**=जिस प्रकार; **द्वि-दलयोः**=दो अर्द्ध-भागों में; **निष्पाव-आदीनाम्**=दाने के, यथा गेहूँ के; **ते**=दो विभागों का; **अन्तरेण**=बीच के स्थान में; **अन्तरिक्षम्**=आकाश या बाह्य-आकाश; **तत्**=दोनों के द्वारा; **उभय**=दोनों ओर; **सन्धितम्**=जहाँ दोनों भाग जुड़े हैं।

अनुवाद

जिस प्रकार गेहूँ के दाने को दो भागों में विभाजित कर देने पर निचले भाग के परिमाण (आकार) का ज्ञान होने पर ऊपरी भाग का पता लगाया जाता है उसी प्रकार भूगोलवेत्ताओं का कहना है कि इस ब्रह्माण्ड के ऊपरी भाग की माप को तभी समझा जा सकता है, जब निचले भाग की माप ज्ञात हो। भूलोक तथा द्युलोक के बीच का आकाश अन्तरिक्ष अथवा बाह्य-आकाश कहलाता है। यह भूलोक तथा द्युलोक को जोड़ता है।

यन्मध्यगतो भगवांस्तपताम्पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥ ३ ॥

यत् = जिस (मध्यावकाश) का; **मध्य-गतः** = मध्य में स्थित होने से; **भगवान्** = सर्वशक्तिमान्; **तपताम् पतिः** = सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को तपाने वालों का स्वामी; **तपनः** = सूर्यः; **आतपेन** = ताप से; **त्रि-लोकीम्** = तीनों लोकों को; **प्रतपति** = तप्त करता है; **अवभासयति** = प्रकाशित करता है; **आत्म-भास** = अपनी भास्कर किरणों से; **सः** = वह; **एषः** = सूर्यगोलक; **उदगयन** = विषुवत रेखा के उत्तर की ओर गमन का; **दक्षिण-अयन** = विषुवत रेखा के दक्षिण गमन का; **वैषुवत** = अथवा विषुवत रेखा पार करने का; **संज्ञाभिः** = विभिन्न नामों से; **मान्द्य** = मन्दता से; **शैघ्र्य** = शीघ्रता से; **समानाभिः** = तथा समानता से; **गतिभिः** = गति से; **आरोहण** = ऊपर जाने; **अवरोहण** = नीचे जाने को; **समान** = मध्य में स्थित रहने की; **स्थानेषु** = स्थितियों में; **यथा-सवनम्** = श्रीभगवान् की आज्ञानुसार; **मकर-आदिषु** = मकर आदि; **राशिषु** = विभिन्न राशियों में; **अहः-रात्राणि** = दिन तथा रात्रियाँ; **दीर्घ** = लम्बे; **ह्रस्व** = छोटे; **समानानि** = समान; **विधत्ते** = करता है।

अनुवाद

उस अन्तरिक्ष के मध्य में ताप उत्पन्न करने वाले समस्त ग्रहों का राजा परम तेजवान सूर्य है जो अपने प्रकाश से समस्त ब्रह्माण्ड को तप्त करता है और उसको वास्तविक स्वरूप प्रदान करता है। यह समस्त जीवात्माओं को प्रकाश प्रदान करता है, जिससे वे देख पाते हैं। श्रीभगवान् की आज्ञानुसार वह उत्तरायण, दक्षिणायन होकर या विषुवत रेखा को पार करते हुए मन्द, शीघ्र और मध्यम गतियों से घूमता हुआ समयानुसार मकरादि राशियों में ऊँचे-नीचे और समान स्थानों में जाकर दिन-रात को बड़ा, छोटा या समान बनाता है।

तात्पर्य

ब्रह्मसंहिता (५.५२) में भगवान् ब्रह्मा की स्तुति है—

यच्चक्षुरेषा सविता सकलग्रहाणां
राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः।

यस्याज्ञया भ्रमति संवृतकालचक्रो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

"मैं उन आदिदेव भगवान् श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ, जिनके नियन्त्रण में ईश्वर के नेत्र माने जाने वाले सूर्य भी काल की स्थिर कक्ष्या में घूमते हैं। सूर्य समस्त लोकों के राजा हैं और उनमें असीम ताप तथा प्रकाश-शक्ति है।" यद्यपि सूर्य को भगवान् अर्थात् सर्वशक्तिमान् कहा गया है और सचमुच ही यह इस ब्रह्माण्ड का सर्वशक्तिमान् ग्रह है फिर भी इसे गोविन्द अर्थात् श्रीकृष्ण का आदेश-पालन करना होता है। सूर्यदेव अपनी परिधि से एक इंच भी नहीं विचलित हो सकते। इसलिए प्रत्येक क्षेत्र में श्रीभगवान् के परमादेश का पालन होता है। सम्पूर्ण भौतिक प्रकृति उनके आदेश का पालन करती है। किन्तु अज्ञानवश हम प्रकृति की क्रियाओं के पीछे श्रीभगवान् के परमादेश को नहीं समझ पाते। जैसा कि भगवद्गीता में पुष्टि की गई है—**मयाध्यक्षेण प्रकृतिः**—अर्थात् यह भौतिक प्रकृति ईश्वर के आदेशों का पालन करती है, जिससे सभी वस्तुओं का नियमन होता है।

यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाहोरात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभादिषु पञ्चसु च राशिषु चरति तदाहान्येव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥ ४ ॥

यदा=जब; **मेष-तुलयोः**=मेष तथा तुला राशियों में; **वर्तते**=सूर्य रहता है; **तदा**=उस समय; **अहः-रात्राणि**=दिन तथा रातें; **समानानि**=समान अवधि की; **भवन्ति**=होती हैं; **यदा**=जब; **वृषभ-आदिषु**=वृषभ, मिथुन आदि; **पञ्चासु**=पाँच; **च**=भी; **राशिषु**=राशियों में; **चरति**=घूमता है; **तदा**=उस समय; **अहानि**=दिन; **एव**=ही; **वर्धन्ते**=बढ़ते हैं; **ह्रसति**=घटते हैं; **च**=भी; **मासि मासि**=प्रत्येक मास में; **एक-एका**=एक; **घटिका**=आधा घंटा; **रात्रिषु**=रातों में।

अनुवाद

जब सूर्य मेष या तुला राशि पर आता है तो दिन और रात समान हो जाते हैं। जब यह वृषभ आदि पाँचों राशियों पर चलता है तो दिन (मकर तक) बढ़ता जाता है और तब प्रति मास आधा घंटा घटता रहता है, जब तक दिन तथा रात्रि पुनः (तुला में) समान नहीं हो जाते।

यदा वृश्चिकादिषु पञ्चसु वर्तते तदाहोरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ॥ ५ ॥

यदा=जब; **वृश्चिक-आदिषु**=वृश्चिक इत्यादि; **पञ्चसु**=पाँच; **वर्तते**=रहता है; **तदा**=उस काल; **अहः-रात्राणि**=दिन तथा रात; **विपर्ययाणि**=इसके विपरीत (दिन घटता और रात बढ़ती है); **भवन्ति**=होते हैं।

अनुवाद

जब सूर्य वृश्चिक आदि पाँच राशियों से होकर निकलता है तो दिन घटता है (जब तक मकर राशि पर नहीं होता) और फिर क्रमशः मास प्रति मास बढ़ता जाता है जब तक दिन और रात समान नहीं हो जाते (मेष पर)।

यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यावदुदगयनं रात्रयः ॥ ६ ॥

यावत्=जब तक; **दक्षिण-अयनम्**=सूर्य दक्षिण को चला जाता है; **अहानि**=दिन; **वर्धन्ते**=बढ़ते हैं; **यावत्**=जब तक; **उदगयनम्**=सूर्य उत्तर को जाता है (उत्तरायण); **रात्रयः**=रातें।

अनुवाद

सूर्य के दक्षिणायन होने तक दिन बढ़ते रहते हैं और उत्तरायण होने तक रातें लम्बी होती जाती हैं।

एवं नव कोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तर-गिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति तस्मिन्नैन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥ ७ ॥

एवम्=इस प्रकार; **नव**=नौ; **कोटयः**=करोड़; **एक-पंचाशत्**=इक्यावन; **लक्षाणि**=लाख; **योजनानाम्**=योजनों का; **मानसोत्तर-गिरि**=मानसोत्तर पर्वत का; **परिवर्तनस्य**=परिक्रमा का; **उपदिशन्ति**=वे (विद्वान्) उपदेश देते हैं; **तस्मिन्**=उस (पर्वत) पर; **ऐंद्रीम्**=इन्द्र की; **पुरीम्**=पुरी, नगर; **पूर्वस्मात्**=पूर्व दिशा में; **मेरोः**=सुमेरु पर्वत की; **देवधानीम्**=देवधानी; **नाम**=नामक; **दक्षिणतः**=दक्षिण दिशा में; **याम्याम्**=यमराज का; **संयमनीम्**=संयमनी; **नाम**=नामक; **पश्चात्**=पश्चिम दिशा में; **वारुणीम्**=वरुण का; **निम्लोचनीम्**=निम्लोचनी; **नाम**=नामक; **उत्तरतः**=उत्तर दिशा में; **सौम्याम्**=चन्द्रमा का; **विभावरीम्**=विभावरी; **नाम**=नामक; **तासु**=इन सबों में; **उदय**=सूर्योदय; **मध्याह्न**=दोपहर;

अस्तमय=सूर्यास्त; **निशीथानि**=अर्धरात्रि; **इति**=इस प्रकार; **भूतानाम्**= जीवात्माओं का; **प्रवृत्ति**=क्रियाशीलता का; **निवृत्ति**=तथा क्रियाशीलता का अन्त; **निमित्तानि**=कारण; **समय-विशेषेण**=विशेष समय द्वारा; **मेरोः**=सुमेरु पर्वत का; **चतुः-दिशम्**=चारों दिशाएँ।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी आगे बोले—हे राजन्! जैसा पहले कह चुका हूँ पण्डितों का कथन है कि मानसोत्तर पर्वत के चारों ओर सूर्य का परिक्रमा पथ ९,५१,००,००० (नौ करोड़ इक्यावन लाख) योजन है। मानसोत्तर पर्वत पर मेरु के पूर्व की ओर इन्द्र की देवधानी, दक्षिण में यमराज की संयमनी, पश्चिम में वरुण की निम्लोचनी तथा उत्तर में चन्द्रमा की विभावरी नामक पुरियाँ स्थित हैं। इन सभी पुरियों में मेरु के चारों ओर विशिष्ट कालों में सूर्योदय, मध्याह्न, सूर्यास्त तथा अर्धरात्रि होती रहती है और तदनुसार समस्त जीवात्माएँ अपने-अपने कार्यों में संलग्न अथवा निवृत होती रहती हैं।

तत्रत्यानां दिवसमध्यङ्गत एव सदाऽऽदित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥ ८ ॥ यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्यन्देनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनुपश्येरन् ॥ ९ ॥

तत्रत्यानाम=मेरु पर्वत पर रहने वाली जीवात्माओं के लिए; **दिवस-मध्यङ्गतः** =मध्याह्नकालीन; **एव**=ही; **सदा**=सदैव; **आदित्यः**=सूर्य; **तपति**=तप्त करता है; **सव्येन**=वाम दिशा को; **अचलम्**=सुमेरु पर्वत; **दक्षिणेन**=दक्षिण को (दक्षिण को बहते पवन से प्रेरित होकर सूर्य दक्षिण को जाता है); **करोति**=चलता है; **यत्र** =जहाँ कि; **उदेति**=उदय होता है; **तस्य**=उस स्थान का; **ह**=निश्चय ही; **समान-सूत्र-निपाते**=सर्वथा विपरीत दिशा वाले विन्दु पर ठीक दूसरी ओर; **निम्लोचति** =सूर्यास्त होता है; **यत्र**=जहाँ; **क्वचन**=कहीं; **स्यन्देन**=पसीने से; **अभितपति** =तपता है (मध्याह्न में); **तस्य**=उसका; **ह**=ही; **एषः**=यह (सूर्य); **समान-सूत्र-निपाते**=एकदम विपरीत विन्दु पर ठीक दूसरी ओर; **प्रस्वापयति**=सूर्य सुलाता है (अर्द्धरात्रि में); **तत्र**=वहाँ; **गतम्**=गया हुआ; **न पश्यन्ति**=नहीं देखते; **ये**=जो; **तम्**=सूर्यास्त; **समनुपश्येरन्**=देखते हुए।

अनुवाद

सुमेरु पर्वत पर रहने वाले प्राणी मध्याह्न के समय सदा ही अत्यन्त तप्त होते

हैं, क्योंकि सूर्य सदैव उनके सिर के ऊपर रहता है। यद्यपि सूर्य घड़ी की विपरीत दिशा में सुमेरु पर्वत को अपने बाईं ओर छोड़ता हुआ चलता है, किन्तु यह घड़ी की दिशा में भी घूमता है जिससे पर्वत उसके दाईं ओर छूटता जाता है, क्योंकि उस पर दक्षिणावर्त पवन का प्रभाव पड़ता है। जहाँ सर्वप्रथम उदय होता सूर्य दिखता है, उसके ठीक दूसरी ओर वह अस्त होता दिखता है और यदि मध्याह्न के समय जिस विन्दु पर सूर्य स्थित रहता है, उससे होकर एक सीधी रेखा खींची जाय तो इस रेखा के दूसरे सिरे के प्राणी मध्यरात्रि का अनुभव कर रहे होंगे। इसी प्रकार यदि अस्ताचल के प्राणी अपने ठीक दूसरी ओर स्थित देशों में जायें तो उन्हें सूर्य उस दिशा में नहीं मिलेगा।

यदा चैन्द्र्याः पुर्याः प्रचलते पञ्चदशघटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥१०॥

यदा=जब; **च**=तथा; **ऐन्द्र्याः**=इन्द्र की; **पुर्याः**=पुरी से; **प्रचलते**=चलता है, गति करता है; **पंचदश**=पन्द्रह; **घटिकाभिः**=आधे घंटे की अवधि (वस्तुतः चौबीस मिनट); **याम्याम्**=यमराज के आवास तक; **सपाद-कोटि-द्वयम्**=सवा दो करोड़; **योजनानाम्**=योजनों का; **सार्द्ध**=तथा आधा; **द्वादश-लक्षाणि**=बारह लाख; **साधिकानि**=पचीस हजार अधिक; **च**=तथा; **उपयाति**=ऊपर से जाता है।

अनुवाद

सूर्य इन्द्र की पुरी देवधानी से यमराज की पुरी संयमनी तक पन्द्रह घड़ियों (छः घंटे) में कुल मिलाकर २,३७,७५,००० योजन की यात्रा करता है।

तात्पर्य

साधिकानि शब्द से **पंचविंशति-सहस्राधिकानि** अथवा २५,००० योजन की दूरी का अर्थ निकलता है। इस प्रकार इन दोनों पुरियों की दूरी जिसकी सूर्य यात्रा करता है दो करोड़ पचास लाख एवं साढ़े बारह लाख योजन है। यह दूरी २,३७,७५,००० योजन अथवा १९,०२,००,००० मील है। सूर्य की पूरी परिक्रमा इस दूरी की चौगुनी अर्थात् ९,५१,००,००० योजन (७६,०८,००,००० मील) है।

एवं ततो वारुणीं सौम्यामैन्द्रीं च पुनस्तथान्ये च ग्रहाः सोमादयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यन्ति सह वा निम्लोचन्ति ॥११॥

एवम्=इस प्रकार; **ततः**=वहाँ से; **वारुणीम्**=वरुण की पुरी तक; **सौम्याम्**

=पुरी जहाँ चन्द्रमा निवास करता है; **ऐन्द्रीम् च**=और वह पुरी जहाँ इन्द्र निवास करता है; **पुनः**=फिर; **तथा**=इस तरह; **अन्ये**=अन्य; **च**=भी; **ग्रहाः**=ग्रह; **सोमा-आदयः**=चन्द्रमा इत्यादि; **नक्षत्रैः**=नक्षत्रों के; **सह**=साथ; **ज्योतिः-चक्रे**=स्वर्गीय गोलक में; **समभ्युद्यन्ति**=उदय होते हैं; **सह**=के साथ; **वा**=अथवा; **निम्लोचन्ति**=अस्त होते हैं।

अनुवाद

सूर्य यमराज की पुरी से वरुण की पुरी निम्लोचनी पहुँचता है और फिर वहाँ से चन्द्रदेव की पुरी विभावरी से होते हुए पुनः इन्द्रपुरी पहुँच जाता है। इसी प्रकार चन्द्रमा अन्यत्र नक्षत्रों तथा ग्रहों सहित ज्योतिश्चक्र में उदित और अस्त होता रहता है।

तात्पर्य

भगवद्गीता (१०.२१) में श्रीकृष्ण कहते हैं, **नक्षत्राणां अहं शशी**—"मैं नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ।" इससे यह सूचित होता है कि चन्द्रमा अन्य नक्षत्रों के समान है। वैदिक साहित्य से विदित होता है कि इस ब्रह्माण्ड में एक ही सूर्य है जो गतिवान है। वैदिक साहित्य से इस पाश्चात्य सिद्धान्त की पुष्टि नहीं हो पाती कि आकाश के सभी ज्योतिपुंज विभिन्न सूर्य हैं। न ही हम यह मान सकते हैं कि ये नक्षत्र अन्य ब्रह्माण्डों के सूर्य हैं, क्योंकि प्रत्येक ब्रह्माण्ड के चारों ओर भौतिक तत्त्वों के अनेक स्तर हैं और इस प्रकार अनेक ब्रह्माण्ड संपुंजित हैं, किन्तु तो भी हम एक ब्रह्माण्ड से दूसरे को नहीं देख पाते। तात्पर्य यह है कि हम केवल इसी ब्रह्माण्ड के भीतर देख सकते हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड का एक ब्रह्मा होता है और अन्य ग्रहों पर भी देवता हैं, किन्तु सूर्य केवल एक है।

एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥१२॥

एवम्=इस प्रकार; **मुहूर्तेन**=एक मुहूर्त (४८ मिनट) में; **चतुः-त्रिंशत्**=चौंतीस; **लक्ष**=लाख; **योजनानि**=योजन; **अष्ट-शत-अधिकानि**=आठ सौ और; **सौरः रथः**=सूर्यदेव का रथ; **त्रयी-मयः**=जो गायत्री मंत्र द्वारा पूजित है; **असौ**=वह; **चतसृषु**=चारों; **परिवर्तते**=घूमता है; **पुरीषु**=विभिन्न पुरियों से होकर।

अनुवाद

इस प्रकार त्रयीमय अर्थात् ॐ भूर्भुवः स्वः शब्दों द्वारा पूजित सूर्यदेव का रथ ऊपर वर्णित चारों पुरियों से होकर एक मुहूर्त में ३४,००,८०० योजन (२,७२,०६,४०० मील) की गति से घूमता रहता है।

यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति तस्याक्षो मेरोर्मूर्धनि कृतो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्रचक्रवद् भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥१३॥

यस्य=जिसका; **एकम्**=एक; **चक्रम्**=चक्र; **द्वादश**=बारह; **अरम्**=अरे, तीलियाँ; **षट्**=छः; **नेमि**=नेमि (रिम); **त्रि-नाभि**=नाभि (हब) के तीन खंड, (आँवन); **संवत्सर-आत्मकम्**=संवत्सर स्वरूप; **अक्षः**=धुरी (एक्सल); **मेरोः**= सुमेरु पर्वत का; **मूर्धनि**=चोटी पर; **कृतः**=स्थिर; **मानसोत्तरे**=मानसोत्तर पर्वत पर; **कृत**=जड़ा हुआ, लगा; **इतर-भागः**=दूसरा सिरा; **यत्र**=जहाँ; **प्रोतम्**= लगा हुआ; **रवि-रथ-चक्रम्**=सूर्यदेव के रथ का चक्र; **तैल-यन्त्र-चक्रवत्**=कोल्हू के समान; **भ्रमत्**=घूमते हुए; **मानसोत्तर-गिरौ**=मानसोत्तर पर्वत पर; **परिभ्रमति** =घूमता है।

अनुवाद

सूर्यदेव के रथ में एक ही चक्र है जिसे संवत्सर कहते हैं। बारहों महीने इसके बारह अरे, छह ऋतुएँ, छः नेमियाँ (हाल) तथा तीन चातुर्मास इसके तीन भागों में विभाजित आँवनें (नाभि) हैं। चक्र को धारण करने वाले धुरे का एक सिरा सुमेरु पर्वत की चोटी पर और दूसरा सिरा मानसोत्तर पर्वत पर टिका है। इसमें लगा यह पहिया कोल्हू की भाँति निरन्तर मानसोत्तर पर्वत के ऊपर चक्कर लगाता है।

तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन सम्मितस्तैलयन्त्राक्षवद् ध्रुवे कृतोपरिभागः ॥१४॥

तस्मिन् अक्षे=उस धुरे में; **कृत-मूलः**=जिसका मूल भाग लगा है; **द्वितीय**= दूसरा; **अक्षः**=धुरा; **तुर्यमानेन**=चौथाई; **सम्मितः**=मापा गया; **तैल-यन्त्र-अक्ष-वत्** =कोल्हू के धुरे के समान; **ध्रुवे**=ध्रुवलोक तक; **कृत**=लगा हुआ; **उपरि-भागः** =ऊपरी भाग।

अनुवाद

कोल्हू के समान यह धुरी एक दूसरी धुरी में लगी है जो इसकी चौथाई लम्बी (३९,३७,५०० योजन अथवा ३,१५,००,००० मील) है। इस द्वितीय धुरी का ऊपरी भाग वायु की रस्सी द्वारा ध्रुवलोक से संलग्न है।

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभागविशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तारुणयोजिता वहन्ति देवमादित्यम् ॥१५॥

रथ-नीडः = रथ का भीतरी भाग; **तु** = लेकिन; **शत्-त्रिशत-लक्ष-योजन-आयतः** = ३६,००,००० योजन लम्बा; **तत्-तुरीय-भाग** = इसका चौथाई भाग (९,००,००० योजन); **विशाल.** = चौड़ाई वाला; **तावान्** = तथा इतना ही; **रवि-रथ-युगः** = घोड़ों के लिए जुआँ; **यत्र** = जहाँ; **हयाः** = घोड़े; **छन्दः-नामानः** = वैदिक छन्दों के विभिन्न नाम वाले; **सप्त** = सात; **अरुण-योजिताः** = अरुणदेव द्वारा नाधे गये; **वहन्ति** = ले जाते हैं; **देवम्** = देवता; **आदित्यम्** = सूर्यदेव ।

अनुवाद

हे राजन् ! सूर्य के रथ का भीतरी भाग ३६,००,००० योजन लम्बा तथा इसका एक चौथाई चौड़ा है। रथ के घोड़ों के नाम गायत्री आदि वैदिक छन्दों पर रखे गये हैं और उन्हें अरुणदेव ऐसे जुएँ में जोतता है जो ९,००,००० योजन चौड़ा है। यह रथ सदैव सूर्यदेव को लेकर चलता है।

तात्पर्य

विष्णु पुराण में कहा गया है—

गायत्री च वृहत्युष्णिग् जगती त्रिष्टुपेव च ।
अनुष्टुप्-पंक्तिरित्युक्ताश्छंदांसि हरयो रवेः ॥

सूर्यदेव के रथ में जुते सातों घोड़े गायत्री, वृहति, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् तथा पंक्ति कहलाते हैं। विभिन्न वैदिक छन्द सूर्य के रथ को खींचने वाले सातों अश्वों के परिचायक हैं।

पुरस्तात्सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किलास्ते ॥१६॥

पुरस्तात् = सम्मुख; **सवितुः** = सूर्यदेव के; **अरुणः** = अरुण नामक देवता; **पश्चात्** = पीछे देखता हुआ; **च** = तथा; **नियुक्तः** = संलग्न; **सौत्ये** = रथ के; **कर्मणि** = कार्य में; **किल** = निश्चय ही; **आस्ते** = रहता है।

अनुवाद

यद्यपि अरुणदेव सूर्यदेव के सम्मुख बैठ कर रथ को हाँकते तथा घोड़ों को वश में रखते हैं तो भी वह पीछे की ओर सूर्यदेव को देखते रहते हैं।

तात्पर्य

वायुपुराण में घोड़ों की स्थिति का वर्णन हुआ है—

सप्ताश्वरूपच्छन्दांसि वहन्ते वामतो रविम्।
चक्रपक्षनिबद्धानि चक्रेवाक्षः समाहितः॥

यद्यपि अरुणदेव सबसे आगे के आसन पर आसीन होकर घोड़ों को हाँकते हैं, किन्तु वे अपनी बाईं ओर से पीछे मुड़कर सूर्यदेव को देखते रहते हैं।

तथा वालखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति ॥१७॥

तथा = वहाँ; **वालिखिल्याः** = वालिखिल्य; **ऋषयः** = ऋषिगण; **अंगुष्ठ-पर्व-मात्राः** = अँगूठे के आकार वाले; **षष्टि-सहस्राणि** = साठ हजार; **पुरतः** = सामने; **सूयम्** = सूर्यदेव; **सु-उक्त-वाकाय** = सुस्पष्ट बोलने के लिए; **नियुक्ताः** = नियुक्त किये गये; **संस्तुवन्ति** = स्तुति करते है।

अनुवाद

अँगूठे के आकार वाले, वालिखिल्य नामक साठ हजार ऋषिगण, सूर्य के आगे रहकर उनका स्वस्तिवाचन करते हैं।

तथान्ये च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाःसप्त चतुर्दश मासि मासि भगवन्तं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथङ्नाना नामानः पृथक्कर्मभिर्द्वन्द्वश उपासते ॥१८॥

तथा = इसी प्रकार; **अन्ये** = अन्य; **च** = भी; **ऋषयः** = ऋषिगण; **गन्धर्व-अप्सरसः** = गन्धर्व तथा अप्सराएँ; **नागाः** = नाग (सर्प); **ग्रामण्यः** = यक्ष; **यातुधानाः** = राक्षसगण; **देवाः** = देवता; **इति** = इस प्रकार; **एक-एकशः** = एक एक करके; **गणाः** = समूह; **सप्त** = सात; **चतुर्दश** = चौदह; **मासि मासि** = प्रत्येक महीने; **भगवन्तम्** = सर्वशक्तिमान् देवता; **सूर्यम्** = सूर्य को; **आत्मानम्** = ब्रह्माण्ड का प्राण; **नाना** = अनेक; **नामानम्** = नाम वाला; **पृथक्** = भिन्न; **नाना-नामानः** = विभिन्न नाम वाला; **पृथक्** = भिन्न; **कर्मभिः** = अनुष्ठानों द्वारा; **द्वन्द्वशः** = दो के समूहों में, जोड़ों में; **उपासते** = उपासना करते हैं।

अनुवाद

इसी प्रकार मुनि, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, यक्ष, राक्षस तथा देवतागण जो संख्या में चौदह हैं, किन्तु दो-दो के जोड़े में विभाजित हैं, प्रतिमास नया नाम धारण करके अनेक नामधारी, सर्वाधिक शक्तिमान् देवता सूर्य के रूप में श्रीभगवान् की आराधना करने के लिए निरन्तर विभिन्न कर्मकाण्डों से उपासना करते रहते हैं।

तात्पर्य

विष्णुपुराण में कहा गया है—

स्तुवन्ति मुनयः सूर्यं गन्धर्वैर्गीयते पुरः।
नृत्यन्तोऽप्सरसो यान्ति सूर्यस्यानु निशाचराः॥

वहन्ति पन्नगा यक्षैः क्रियतेऽभिषुसंग्रहः।
वालिखिल्यास्तथैवैनं परिवार्य समासते॥

सोऽयं सप्तगणः सूर्यमंडले मुनिसत्तम।
हिमोष्ण वारिवृष्टीनां हेतुत्वे समयं गतः॥

सूर्यदेवता की आराधना करते समय गन्धर्व उनके समक्ष गाते हैं, अप्सराएँ रथ के समक्ष नाचती हैं, निशाचर रथ का पीछा करते हैं, पन्नग रथ को सजाते हैं, यक्ष रथ की रक्षा करते हैं और वालिखिल्य नामक ऋषिगण सूर्यदेव को घेर कर स्तुति करते हैं। चौदह सहयोगियों के सात जोड़े ब्रह्माण्ड भर में हिम, ताप तथा वर्षा का उचित समय निश्चित करते हैं।

लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्र योजनानि स भुङ्क्ते ॥१९॥

लक्ष-उत्तरम्=१,००,००० अधिक; **सार्ध**=५०,००,००० सहित; **नव-कोटि-योजन**=९,००,००,००० योजन का; **परिमण्डलम्**=परिधि; **भू-वलयस्य**=पृथ्वी गोलक का, भूमण्डल; **क्षणेन**=एक क्षण में; **सगव्यूति-उत्तरम्**=दो कोस (चार मील) अधिक; **द्वि-सहस्र-योजनानि**=२,००० योजन; **सः**=सूर्यदेव; **भुंक्ते**=तै करता है।

अनुवाद

हे राजन् ! भूमण्डल की परिक्रमा करते हुए सूर्यदेव एक क्षण में २,००० योजन तथा दो कोस (१६,००४ मील) की गति से ६,५१,००,००० योजन की दूरी तै करते हैं।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चम-स्कन्धे ज्योतिश्चक्रसूर्यरथमण्डलवर्णनं नामैकविंशोऽध्याय ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, "सूर्य की गति का वर्णन" शीर्षक नामक इक्कीसवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त भाष्य समाप्त हुआ।

बाइसवाँ अध्याय

ग्रहों की कक्ष्याएँ

इस अध्याय में ग्रहों की कक्ष्याओं का वर्णन मिलता है। चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों की गतियों के अनुसार इस ब्रह्माण्ड के जीव शुभ तथा अशुभ स्थान ग्रहण करते हैं। इसे नक्षत्रों का प्रभाव कहा जाता है।

सूर्यदेव समस्त ब्रह्माण्ड के व्यापारों को, विशेष रूप से ताप, प्रकाश, ऋतु परिवर्तन आदि को नियन्त्रित करते हैं और नारायण के विस्तार (अंश) माने जाते हैं। वे ऋग्, यजुर् तथा साम—इन तीन वेदों को प्रस्तुत करने वाले हैं, इसलिए त्रयीमय कहलाते हैं जो भगवान् नारायण का ही रूप है। कभी-कभी सूर्यदेव को **सूर्य नारायण** भी कहा जाता है। सूर्यदेव बारह विभागों में अपना विस्तार करके छहों ऋतुओं का नियन्त्रण करते हैं। वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए योगी तथा कर्मीजन अपने-अपने लाभ के लिए हठ या अष्टांग योग अथवा अग्निहोत्र यज्ञ द्वारा सूर्य नारायण की आराधना करते हैं। सूर्यदेव सदा श्रीभगवान् नारायण के सम्पर्क में रहते हैं। ब्रह्माण्ड भूलोक तथा भुवर्लोक के मध्य में स्थित अन्तरिक्ष में रहकर सूर्य बारह राशियों के कालचक्र में घूमता हुआ राशि के अनुसार भिन्न-भिन्न नाम धारण करता है। चन्द्रमा के अनुसार मास दो पक्षों में विभाजित है। इसी प्रकार सौर गणनाओं के अनुसार सूर्य को एक राशि में जितना समय लगता है वह मास है, दो मास मिलकर ऋतु बनाते हैं और बारह मासों का एक वर्ष होता है। आकाश का सम्पूर्ण क्षेत्रफल दो अर्धों में विभक्त है जिनमें से प्रत्येक अयन कहलाता है जो सूर्य द्वारा छः मास में तै किया गया मार्ग है। सूर्य कभी तीव्र गति से चलता है, कभी मन्द गति से और कभी मध्यम गति से। इस प्रकार वह स्वर्ग, मर्त्य तथा अन्तरिक्ष —इन तीन लोकों की यात्रा करता है। ज्ञानीजन इन कक्ष्याओं को संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर तथा वत्सर नामों से अभिहित करते हैं।

चन्द्रमा सूर्य की किरणों से १,००,००० योजन ऊपर स्थित है। स्वर्ग तथा पितृलोक में दिन तथा रात की गणना चन्द्रमा के घटने-बढ़ने के अनुसार की जाती है। चन्द्रमा से २,००,००० योजन की दूरी पर कुछ नक्षत्र स्थित हैं, और इन नक्षत्रों के ऊपर शुक्रग्रह है जो ब्रह्माण्ड के समस्तवासियों के लिए कल्याणप्रद है। शुक्रग्रह से २,००,००० योजन ऊपर बुध ग्रह है जो कभी कल्याणप्रद होता है तो कभी अशुभ। बुध ग्रह से

२,००,००० योजन ऊपर अंगारक (मंगल) है जिसका प्रभाव प्रतिकूल होता है। अंगारक से भी २,००,००० योजन ऊपर वृहस्पति ग्रह है जो सुपात्र ब्राह्मणों के लिए सर्वदा अनुकूल होता है। वृहस्पति ग्रह के ऊपर शनि नामक अत्यन्त अशुभ ग्रह है। इसके भी परे विश्व का कल्याण मनाने वाले ऋषियों से युक्त सात नक्षत्रों का एक पुंज है। ये सातों नक्षत्र ध्रुवलोक की परिक्रमा करते हैं जो भगवान् विष्णु का वास है।

राजोवाच

यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीमहीति ॥ १ ॥

राजा उवाच=राजा (महाराज परीक्षित्) ने पूछा; **यत्**=जो; **एतत्**=इस; **भगवतः**=सर्वशक्तिमान्; **आदित्यस्य**=सूर्य (सूर्यनारायण) का; **मेरुम्**=सुमेरु पर्वत; **ध्रुवम् च**=तथा ध्रुवलोक; **प्रदक्षिणेन**=दाहिने रखकर; **परिक्रामतः**=परिक्रमा करते हुए; **राशीनाम्**=राशियों का; **अभिमुखम्**=की ओर मुख करके; **प्रचलितम्**=गति करते हुए; **च**=तथा; **अप्रदक्षिणम्**=बाँयें रख कर; **भगवता**=आपके द्वारा; **उपवर्णितम्**=वर्णित; **अमुष्य**=उसका; **वयम्**=हम (श्रोता); **कथम्**=किस प्रकार; **अनुमिमीमहि**=तर्क तथा निर्णय द्वारा स्वीकार करें; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

राजा परीक्षित् ने श्रीशुकदेव गोस्वामी से पूछा—हे भगवन्! आपने पहले ही इस सत्य की पुष्टि की है कि परम शक्तिमान् सूर्यदेव ध्रुवलोक तथा सुमेरु पर्वत को अपने दाएँ रखकर ध्रुवलोक की परिक्रमा करते हैं, तो भी वे राशियों की ओर मुख किये रहते हैं और सुमेरु तथा ध्रुवलोक को अपने बाएँ भी रखते हैं, अतः हम तर्क तथा निर्णय द्वारा किस प्रकार स्वीकार करें कि एक ही समय सूर्यदेव सुमेरु तथा ध्रुवलोक को दाएँ तथा बाएँ दोनों ओर रखते हुए चलते हैं?

स होवाच

यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वप्युपलभ्यमानत्वादेवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां

तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रान्तरे राश्यन्तरे चोपलभ्यमानत्वात् ॥ २ ॥

सः = शुकदेव गोस्वामी; **ह** = अत्यन्त स्पष्ट; **उवाच** = उत्तर दिया; **यथा** = जिस प्रकार; **कुलाल-चक्रेण** = कुम्हार का चाक; **भ्रमता** = घूमते हुए; **सह** = साथ; **भ्रमताम्** = जो चारों ओर घूमते हुए, घूमने वाले; **तत्-आश्रयाणाम्** = उस (चक्र) में स्थित होकर; **पिपीलिका-आदीनाम्** = छोटी-छोटी चींटियों की; **गतिः** = गति; **अन्या** = दूसरा; **एव** = ही; **प्रदेश-अन्तरेषु** = विभिन्न स्थानों में; **अपि** = भी; **उपलभ्यमानत्वात्** = अनुभवगम्य होने के कारण; **एवम्** = इसी प्रकार; **नक्षत्र-राशिभिः** = नक्षत्रों तथा राशियों द्वारा; **उपलक्षितेन** = देखा जाकर; **काल-चक्रेण** = कालचक्र के साथ; **ध्रुवम्** = ध्रुवलोक नामक नक्षत्र; **मेरुम्** = सुमेरु पर्वत; **च** = तथा; **प्रदक्षिणेन** = दाईं ओर; **परिधावता** = चारों ओर घूमते हुए; **सह** = साथ; **परिधावमानानाम्** = परिक्रमा करने वालों का; **तत्-आश्रयाणाम्** = जिनका आश्रय कालचक्र है; **सूर्य-आदीनाम्** = सूर्य आदि; **ग्रहाणाम्** = ग्रहों का; **गतिः** = गति; **अन्या** = अन्य; **एव** = निश्चय ही; **नक्षत्र-अन्तरे** = विभिन्न नक्षत्रों में; **राशि-अन्तरे** = विभिन्न राशियों में; **च** = तथा; **उपलभ्यमानत्वात्** = देखे जाने के कारण।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया—जब कुम्हार के घूमते हुए चाक पर छोटी-छोटी चींटियाँ बैठी रहती हैं तो वे उसके साथ-साथ घूमती हैं, किन्तु उनकी गति चाक की गति से भिन्न होती है, क्योंकि कभी वे चाक के एक भाग में दिखती हैं तो कभी दूसरे भाग पर। इसी प्रकार राशियाँ तथा नक्षत्र सुमेरु तथा ध्रुवलोक को अपने दाईं ओर रखकर कालचक्र के साथ घूमते हैं और सूर्य तथा अन्य ग्रह चींटी के तुल्य उनके साथ-साथ घूमते हैं। तो भी वे विभिन्न कालों में विभिन्न राशियों तथा नक्षत्रों में देखे जाते हैं। इससे सूचित होता है कि उनकी गति राशियों तथा कालचक्र से सर्वथा भिन्न है।

स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिष्वृतुषु यथोपजोषमृतुगुणान् विदधाति ॥ ३ ॥

स = वह; **एषः** = यह; **भगवान्** = परम शक्तिमान्; **आदि-पुरुषः** = आदि-पुरुष; **एव** = ही; **साक्षात्** = प्रत्यक्षतः; **नारायणः** = श्रीभगवान् नारायण; **लोकानाम्** = अन्य लोकों का; **स्वस्तये** = लाभ हेतु; **आत्मानम्** = स्वयं; **त्रयी-मयम्** = तीन वेदों से युक्त

(साम, यजुर् तथा ऋग्); **कर्म-विशुद्धिः**=कर्मों की शुद्धि; **निमित्तम्**=कारणस्वरूप; **कविभिः**=महान् सन्तों द्वारा; **अपि**=भी; **च**=तथा; **वेदेन**=वैदिक ज्ञान से; **विजिज्ञास्यमानः**=पूछे जाने पर; **द्वादश-धा**=बारह विभागों में; **विभज्य**=विभाजित होकर; **षट्सु**=छः में; **वसन्त-आदिषु**=वसन्त आदि; **ऋतुषु**=ऋतुओं में; **यथा-उपजोषम्**=अपने पूर्व कर्मों के भोग के अनुसार; **ऋतु-गुणान्**=विभिन्न ऋतुओं के गुण; **विदधाति**=विधान करता है।

अनुवाद

दृश्य जगत् के आदि कारण भगवान् नारायण हैं। अब वैदिक ज्ञान से भली भाँति परिचित महान साधुजनों ने परम पुरुष की स्तुति की तो वे इस भौतिक जगत् में समस्त लोकों का हित करने तथा कर्मों की शुद्धि के लिए सूर्य के रूप में अवतरित हुए। उन्होंने स्वयं को बारह भागों में विभाजित करके वसन्तादि ऋतुओं की सृष्टि की। इस प्रकार उन्होंने ताप, शीत इत्यादि ऋतु सम्बन्धी गुणों की सृष्टि की।

तमेतमिह पुरुषास्त्रय्या विद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा उच्चावचैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजन्तोऽञ्जसा श्रेयः समधिगच्छन्ति ॥ ४ ॥

तम्=उस (श्रीभगवान्) को; **एतम्**=यह; **इह**=इस मर्त्यलोक में; **पुरुषः**=सभी मनुष्य; **त्रय्या**=तीन विभागों वाले; **विद्यया**=वैदिक ज्ञान से; **वर्ण-आश्रम-आचार**=वर्णाश्रम धर्म; **अनुपथाः**=अनुसरण करते हुए; **उच्च-अवचैः**=वर्णाश्रम-धर्म (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) में पद के अनुसार उच्च या निम्न; **कर्मभिः**=अपने कर्मों द्वारा; **आम्नातैः**=प्रदत्त; **योग-वितानैः**=ध्यान तथा अन्य योग-क्रियाओं से; **च**=तथा; **श्रद्धया**=अत्यन्त श्रद्धा सहित; **यजन्तः**=आराधना करते हुए; **अञ्जसा**=बिना कठिनाई के; **श्रेयः**=जीवन का परम लाभ; **समधिगच्छन्ति**=प्राप्त करते हैं।

अनुवाद

चारों वर्ण तथा चारों आश्रम के लोग सामान्यतः सूर्यदेव के रूप में श्रीभगवान् नारायण की उपासना करते हैं। वे अत्यन्त श्रद्धा के साथ वेदत्रयी द्वारा प्रतिपादित छोटे-बड़े कर्मों के अनुसार तथा योग क्रिया द्वारा परमात्मास्वरूप श्रीभगवान् की आराधना करते हैं। इस प्रकार सुगमतापूर्वक परम पद को प्राप्त करते हैं।

अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावापृथिव्योरन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादश मासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान् संवत्सरावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा

नक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमुपदिशन्ति यावता षष्ठमंशं भुञ्जीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥ ५ ॥

अथ=अतः; **सः**=वह; **एषः**=यह; **आत्म**=प्राणशक्ति; **लोकानाम्**=तीनों लोकों का; **द्याव-आ-पृथिव्योः-अन्तरेण**=ब्रह्माण्ड के ऊपरी तथा निचले भागों के मध्य; **नभःवलयस्य**=अन्तरिक्ष का; **काल-चक्र-गतः**=काल के चक्र में आसीन; **द्वादश मासान्**=बारह महीने; **भुंक्ते**=तै करता है; **राशि-संज्ञान्**=राशियों के नाम धर; **संवत्सर-अवयवान्**=पूरे वर्ष के अंग; **मासः**=एक मास; **पक्ष-द्वयम्**=दो पखवारे; **दिवा**=दिन; **नक्तम् च**=तथा रात्रि; **इति**=इस प्रकार; **सपाद-ऋक्ष-द्वयम्**=ज्योतिष-गणना के अनुसार दो तथा चौथाई (सवा दो) नक्षत्र; **उपदिशन्ति**=उपदेश देते हैं; **यावता**=जितने समय से; **षष्ठम् अंशम्**=अपनी कक्ष्या का छठवाँ भाग; **भुञ्जीता**=तै करता है; **सः**=वह भाग; **वै**=निस्संदेह; **ऋतुः**=ऋतु; **इति**=इस प्रकार; **उपदिश्यते**=उपदेशित होता है; **संवत्सर-अवयवः**=वर्ष का भाग।

अनुवाद

सूर्यदेव जो नारायण अथवा विष्णु हैं, समस्त लोकों की आत्मा हैं। वे इस ब्रह्माण्ड के ऊपरी तथा निचले भागों (पृथ्वी तथा द्युलोक) के मध्य अन्तरिक्ष में स्थित हैं। कालचक्र में स्थित होकर बारह मासों को तै करते हुए सूर्य बारह राशियों के सम्पर्क में आकर उनके अनुसार बारह भिन्न-भिन्न नाम ग्रहण करते हैं। इन बारह मासों का योगफल संवत्सर अथवा पूरा वर्ष कहलाता है। चन्द्र गणना के अनुसार चन्द्रमा के घटने-बढ़ने के दो पक्ष मिल कर एक मास बनाते हैं। पितृलोक ग्रह पर यही काल एक दिन तथा रात के तुल्य है। ज्योतिष गणना के अनुसार एक मास सवा दो नक्षत्र के बराबर होता है। जब सूर्य दो मास यात्रा कर लेता है तो एक ऋतु बीतती है इसलिए ऋतु के अनुसार होने वाले परिवर्तनों को वर्ष-देह का अंग माना जाता है।

अथ च यावतार्धेन नभोवीथ्यां प्रचरति तं कालमयनमाचक्षते ॥ ६ ॥

अथ=अब; **च**=भी; **यावता**=जितने समय से; **अर्धेन**=आधा; **नभः-वीथ्याम्**=अन्तरिक्ष में; **प्रचरति**=सूर्य चलता है; **तम्**=वह; **कालम्**=समय, **अयनम्**=अयन; **आचक्षते**=कहलाता है।

अनुवाद

इस प्रकार आधे अन्तरिक्ष को पार करने में सूर्य को जितना समय लगता है वह अयन कहलाता है [उत्तरी या दक्षिणी दिशा में]।

अथ च यावन्नभोमण्डलं सह द्यावापृथिव्योर्मण्डलाभ्यां कार्त्स्न्येन स ह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर्मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः समामनन्ति ॥ ७ ॥

अथ=अब; **च**=भी; **यावत्**=जब तक; **नभः-मण्डलम्**=उच्च तथा निम्न लोक (ध्रुवलोक तथा पृथ्वीलोक) के मध्य का अन्तरिक्ष; **सह**=के साथ; **द्याव**=ऊपरी जगत् का; **आपृथित्योः**=निम्न जगत् का; **मण्डलाभ्याम्**=गोलक; **कार्त्स्न्येन**=पूर्णतः; **सः**=वह; **ह**=निस्संदेह; **भुंजीत**=तै करता है; **ताम्**=वह; **कालम्**=काल, समय; **संवत्सरम्**=संवत्सर; **परिवत्सरम्**=परिवत्सर; **इडावत्सरम्**=इडावत्सर; **अनुवत्सरम्**=अनुवत्सर; **वत्सरम्**=वत्सर; **इति**=इस प्रकार; **भानोः**=सूर्य का; **मान्द्य**=धीमा, मन्द; **शैघ्रय**=तीव्र; **सम**=समान; **गतिभिः**=गतियों के द्वारा; **समामनन्ति**=अनुभवी विद्वान् वर्णन करते हैं ।

अनुवाद

सूर्यदेव की तीन प्रकार की गतियाँ हैं—मन्द, तीव्र और समान । इन तीनों गतियों से स्वर्ग, पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष गोलकों के चारों ओर यात्रा करने में जितना समय लगता है उसे ज्ञानीजन संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर तथा वत्सर—इन पाँच नामों से वर्णन करते हैं ।

तात्पर्य

सौर ज्योतिष गणना के अनुसार प्रत्येक वर्ष पंचांग वर्ष से छः दिन बड़ा होता है, किन्तु चन्द्र गणना से प्रत्येक वर्ष छः दिन छोटा । अतः सूर्य तथा चन्द्र की गतियों से सौर तथा चन्द्र वर्षों में बारह दिनों का अन्तर होता है । संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर तथा वत्सर के बीतने पर पाँचवें वर्ष में दो अधिक मास होते हैं । इससे छठा संवत्सर बनता है, किन्तु संवत्सर अधिक होने से सौर गणनाएँ उपर्युक्त पाँच नामों के अनुसार की जाती हैं ।

एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्टाल्लक्षयोजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्तिं पक्षाभ्यां मासभुक्तिं सपादर्क्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभुक्तिमग्रचारी द्रुततरगमनो भुङ्क्ते ॥ ८ ॥

एवम्=इस प्रकार; **चन्द्रमा**=चाँद; **अर्क-गभस्तिभ्यः**=सूर्य प्रकाश की किरणों से; **उपरिष्टात्**=ऊपर; **लक्ष-योजनतः**=१,००,००० योजन से; **उपलभ्यमानः**=

स्थित रह कर; **अर्कस्य** = सूर्य का; **संवत्सर-भुक्तिम्** = भोग का व्यतीत हुआ एक वर्ष; **पक्षाभ्याम्** = दो पक्षों के द्वारा; **मास-भुक्तिम्** = व्यतीत एक मास; **सपाद-ऋक्षाभ्याम्** = सवा दो दिन से; **दिनेन** = एक दिन से; **एव** = केवल; **पक्ष-भुक्तिम्** = पक्ष की अवधि; **अग्रचारी** = आगे चलने वाला; **द्रुत-तर-गमनः** = अधिक तेजी से चलते हुए; **भुंक्ते** = तै कर लेता है।

अनुवाद

सूर्य-प्रकाश की किरणों से १,००,००० योजन ऊपर चन्द्रमा है जो सूर्य से अधिक तीव्र गति से यात्रा करता है वह दो चन्द्र पक्षों में सौर संवत्सर के समान दूरी तै कर लेता है। इसी प्रकार सवा दो दिन में सूर्य के एक मास के तुल्य और एक दिन में सूर्य के एक पक्ष के बराबर दूरी तै कर लेता है।

तात्पर्य

जब हम इस तथ्य पर विचार करते हैं कि चन्द्रमा सूर्य की किरणों से १,००,००० योजन या ८,००,००० मील की दूरी पर स्थित है तो यह अत्यन्त विस्मयजनक लगता है कि चन्द्रमा तक की यात्राएँ कैसे सम्भव हो सकती हैं। अत्यन्त दूर स्थित होने के कारण चन्द्रमा तक अन्तरिक्ष यान कैसे पहुँच सकते हैं यह संदेहास्पद रहस्य है। आधुनिक वैज्ञानिक गणनाएँ एक के बाद एक बदलती रहती हैं, अतः वे अनिश्चित हैं। हमें वैदिक गणनाओं को ही स्वीकार करना होगा। ये गणनाएँ स्थायी हैं। प्राचीन ज्योतिष-गणनाएँ वैदिक साहित्य में अंकित हैं और आज भी सही हैं। वैदिक अथवा आधुनिक गणनाओं में से कौन अच्छी हैं, यह औरों के लिए रहस्यपूर्ण क्यों न हो, हमारे विचार से वैदिक गणनाएँ ही सही हैं।

अथ चापूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणां क्षीयमाणाभिश्च कलाभिः पितॄणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्चैकमेकं नक्षत्रं त्रिंशता मुहूर्तैर्भुङ्क्ते ॥ ९ ॥

अथ = इस प्रकार; **च** = भी; **आपूर्यमाणाभिः** = क्रमशः बढ़ते हुए; **च** = तथा; **कलाभिः** = चन्द्रमा की कलाओं; **अमराणाम्** = देवताओं का; **क्षीयमाणाभिः** = क्रमशः घटते रहने से; **च** = तथा; **कलाभिः** = चन्द्र कलाओं से; **पितॄणाम्** = पितृलोक-वासियों का; **अहः-रात्राणि** = दिन तथा रात; **पूर्व-पक्ष-अपर-पक्षाभ्याम्** = कृष्ण तथा शुक्ल पक्ष से; **वितन्वानः** = वितरित करते हुए; **सर्वजीव-निवः** = समस्त जीवात्माओं का; **प्राणः** = जीवन, प्राण; **जीवः** = जीव; **च** = भी; **एकम्-एकम्** = एक के बाद एक; **नक्षत्रम्** = तारा-समूह; **त्रिंशता** = तीस; **महूर्तैः** = मुहूर्तों से; **भुंक्ते** = तै करता है।

अनुवाद

जब चन्द्रमा बढ़ता है (शुक्ल पक्ष में) तो इसका प्रकाशमय अंश प्रतिदिन बढ़ता जाता है, जिससे देवताओं के लिए दिन और पितरों के लिए रात्रि उत्पन्न होती है। किन्तु जब चन्द्रमा घटता रहता है (कृष्ण पक्ष में) तो देवताओं के लिए रात्रि और पितरों के लिए दिन उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार तीस मुहूर्तों में (पूरे एक दिन में) चन्द्रमा प्रत्येक नक्षत्र से होकर गुजरता है। चन्द्रमा रात्रि की शीतलता प्रदान करके अन्नों की वृद्धि करता है, इसीलिए चन्द्रदेव को समस्त जीवात्माओं का प्राण माना जाता है। फलस्वरूप उसे इस ब्रह्माण्ड में वास करने वाला प्राणी, जीव, कहा गया है।

य एष षोडशकलः पुरुषो भगवान्मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्राणाध्यायनशीलत्वात्सर्वमय इति वर्णयन्ति ॥१०॥

यः = जो; **एषः** = यह; **षोडश-कलः** = सोलह कलाओं वाला (पूर्ण चन्द्रमा); **पुरुषः** = पुरुष; **भगवान्** = श्रीभगवान् से प्राप्त महान् शक्ति वाला; **मनः-मयः** = मन का प्रधान श्रीविग्रह; **अन्न-मयः** = अन्नों की शक्ति का स्रोत; **अमृत-मयः** = अमृतमय; **देव** = समस्त देवताओं का; **पितृ** = समस्त पितृलोक वासियों का; **मनुष्य** = समस्त मानवगण; **भूत** = समस्त जीवात्माएँ; **पशु** = समस्त जानवर; **पक्षि** = पक्षियों का; **सरीसृप** = रेंगने वाले जन्तुओं का; **विरुधान्** = समस्त लताओं तथा वृक्षों का; **प्राण** = प्राणवायु; **अपि** = निश्चय ही; **आयन-शीलत्वात्** = पोषण करने से; **सर्वमयः** = सर्वव्यापी; **इति** = इस प्रकार; **वर्णयन्ति** = ज्ञानी लोग वर्णन करते हैं।

अनुवाद

समस्त शक्तियों से पूर्ण होने के कारण चन्द्रमा श्रीभगवान् के प्रभाव का सूचक है। प्रत्येक व्यक्ति के मन का प्रमुख श्रीविग्रह होने के कारण चन्द्रमा मनोमय कहलाता है। वह अन्नमय भी कहलाता है क्योंकि समस्त लताओं तथा वृक्षों को शक्ति प्रदान करता है। समस्त जीवात्माओं का प्राणाधार होने से वह अमृतमय भी कहा जाता है। चन्द्रमा समस्त देवताओं, पितरों, मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, सरीसृपों, वृक्षों, लताओं तथा अन्य जीवात्माओं को प्रसन्न करने वाला है। सभी प्राणी चन्द्रमा की उपस्थिति से संतुष्ट रहते हैं फलतः वह "सर्वमय" भी कहलाता है।

तत उपरिष्टाद्द्विलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालायन ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताष्टाविंशतिः ॥११॥

ततः=चन्द्रमा के उस भाग से; **उपरिष्टात्**=ऊपर; **द्वि-लक्ष-योजनतः**=२,००,००० योजन; **नक्षत्राणि**=अनेक नक्षत्र; **मेरुम्**=सुमेरु पर्वत; **दक्षिणेन एव**=दक्षिण दिशा में; **काल-अयने**=कालचक्र में; **ईश्वर-योजितानि**=श्रीभगवान् द्वारा जोता गया; **सह**=साथ; **अभिजिता**=अभिजित् नामक नक्षत्र; **अष्टविंशतिः**=अट्ठाइस।

अनुवाद

चन्द्रमा से २,००,००० योजन ऊपर कई नक्षत्र स्थित हैं। श्रीभगवान् ने उन्हें कालचक्र में संयुक्त कर रखा है, अतः ये सुमेरु पर्वत को दाईं ओर रखते हुए घूमते रहते हैं और इनकी गति सूर्य से सर्वथा भिन्न होती है। अभिजित् सहित कुल अट्ठाइस नक्षत्र हैं।

तात्पर्य

यहाँ जिन नक्षत्रों का उल्लेख हुआ है वे सूर्य से १६,००,००० मील (२,००,००० योजन) ऊपर हैं। इस प्रकार वे पृथ्वी से ४०,००,००० मील ऊपर हुए।

तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः पश्चात्सहैव वार्कस्य शैघ्र्यमान्द्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति लोकानां नित्यदानुकूल एव प्रायेण वर्षयंश्चारेणानुमीयते न वृष्टिविष्टम्भग्रहोपशमनः ॥१२॥

ततः=इन नक्षत्रों से; **उपरिष्टात्**=ऊपर; **उशना**=शुक्र; **द्वि-लक्ष-योजनतः**=२,००,००० योजन; **उपलभ्यते**=अनुभव किया जाता है; **पुरतः**=सामने; **पश्चात्**=पीछे; **सह**=साथ-साथ; **एव**=निस्सन्देह; **वा**=तथा; **अर्कस्य**=सूर्य का; **शैघ्र्य**=तीव्र; **मान्द्य**=मन्द; **साम्याभिः**=समान; **गतिभिः**=गतियों से; **अर्कवत्**=सूर्य के ही समान; **चरति**=घूमता है; **लोकानाम्**=इस ब्रह्माण्ड के समस्त लोकों का; **नित्यदा**=अनवरत; **अनुकूलः**=अनुकूल; **एव**=निस्सन्देह; **प्रायेण**=प्रायः; **वर्षयन्**=वर्षा करके; **चारेण**=बादल उठाकर; **अनुमीयते**=देखा जाता है; **सः**=वह (शुक्र); **वृष्टि-विष्टम्भ**=वर्षा के लिए बाधास्वरूप; **ग्रह-उपशमनः**=उपशमनकारी ग्रह।

अनुवाद

इन नक्षत्रों से २,००,००० योजन (१६,००,००० मील) ऊपर शुक्र ग्रह है जो

सूर्य की ही भाँति तीव्र, मन्द तथा समान गतियों से घूमता है। वह कभी सूर्य के पीछे, कभी सामने और कभी उसी के साथ-साथ रहता है। वह वर्षा में विघ्न डालने वाले ग्रहों को शान्त करने वाला है, अतः इसकी उपस्थिति में वर्षा होती है और इस ब्रह्माण्ड के समस्त जीवों के अनुकूल माना जाता है। इसे ज्ञानीजनों ने स्वीकार किया है।

उशनसा बुधो व्याख्यातस्तत उपरिष्टाद् द्विलक्षयोजनतो बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृद्यदार्काद् व्यतिरिच्येत तदातिवाताभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते ॥१३॥

उशनसा=शुक्र से; **बुधः**=बुध; **व्याख्यातः**=जिसकी व्याख्या हो गई हो; **ततः**=उस (शुक्र) से; **उपरिष्टात्**=ऊपर; **द्वि-लक्ष-योजनतः**=२,००,००० योजन अर्थात् १६,००,००० मील; **बुधः**=बुध ग्रह; **सोम-सुतः**=चन्द्रमा का पुत्र; **उपलभ्यमानः**=अवस्थित है; **प्रायेण**=प्रायः; **शुभ-कृत**=ब्रह्माण्ड के वासियों के लिए शुभ; **यदा**=जब; **अर्कात्**=सूर्य से; **व्यतिरिच्येत**=पृथक किया जाता है; **तदा**=उस समय; **अतिवात**=चक्रवात तथा अन्य विघ्न; **अभ्र**=बादल; **प्राय**=प्रायः; **अनावृष्टि आदि**=अनावृष्टि इत्यादि; **भयम्**=भय; **आशंसते**=बढ़ाता है।

अनुवाद

बुध को शुक्र के ही समान बताया गया है, क्योंकि यह कभी सूर्य के पीछे, कभी सामने और कभी-कभी उसके साथ-साथ घूमता है। यह शुक्र से १६,००,००० मील अथवा पृथ्वी से ७२,००,००० मील ऊपर स्थित है। यह चन्द्रमा का पुत्र होने से विश्व के वासियों का मंगल करने वाला है, किन्तु जब यह सूर्य के साथ नहीं घूमता होता तो यह चक्रवात, अंधड़, अनियमित वर्षा तथा जल रहित बादलों की सूचना देता है। इस प्रकार अवर्षा या अतिवर्षा के कारण यह भयावह परिस्थित उत्पन्न करता है।

अत ऊर्ध्वमङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन्द्वादशानुभुङ्क्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥१४॥

अतः=इससे; **ऊर्ध्वम्**=ऊपर; **अंगारकः**=मंगल; **अपि**=भी; **योजन-लक्ष-द्वितये**=२,००,००० योजन अर्थात् १६,००,००० मील की दूरी पर; **उपलभ्यमानः**

=स्थित है; **त्रिभिः त्रिभिः**=तीन-तीन करके; **पक्षैः**=पक्ष; **एक-एकशः**=एक के पश्चात् एक; **राशीन्**=राशियाँ; **द्वादश**=बारह; **अनुभुंक्ते**=से पार करता है; **यदि**=यदि; **न**=नहीं; **वक्रेन**=वक्र सहित; **अभिवर्तते**=निकट पहुँचता है; **प्रायेण**=प्रायः; **अशुभ-ग्रहः**=प्रतिकूल, अमंगलकारी ग्रह; **अघ-शंसः**=कष्ट उत्पन्न करने वाला।

अनुवाद

बुध से १६,००,००० मील ऊपर अथवा पृथ्वी से ८८,००,००० मील ऊपर मंगलग्रह है। यदि यह वक्रगति से न चले तो एक-एक राशि को तीन-तीन पक्षों में पार करता हुआ क्रमशः बारहों राशियों में से यात्रा करता है। यह प्रायः वर्षा तथा अन्य प्रभावों के रूप में प्रतिकूल अवस्थाएँ उत्पन्न करता है।

तत उपरिष्टाद् द्विलक्षयोजनान्तरगता भगवान् बृहस्पतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सरं परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात्प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ॥१५॥

ततः=वह (मंगल); **उपरिष्टात्**=ऊपर; **द्वि-लक्ष-योजन-अन्तरगताः**=२,००,००० योजन अर्थात् १६,००,००० मील की दूरी पर स्थित; **भगवान्**=सर्वाधिक शक्तिमान् ग्रह; **वृहस्पतिः**=वृहस्पति; **एक-एकस्मिन्**=एक के पश्चात् एक; **राशौ**=राशि में; **परिवत्सरम् परिवत्सरम्**=प्रति परिवत्सर तक; **चरति**=चलता है; **यदि**=यदि; **न**=नहीं; **वक्रः**=वक्र; **स्यात्**=हो जाता है; **प्रायेण**=प्रायः; **अनुकूलः**=शुभ; **ब्राह्मण-कुलस्य**=इस ब्रह्माण्ड के ब्राह्मणजनों के लिए।

अनुवाद

मंगल से २,००,००० योजन अथवा पृथ्वी से १,०४,००,००० मील ऊपर वृहस्पति नामक ग्रह स्थित है जो एक परिवत्सर में एक राशि की यात्रा करता है। यदि यह वक्रगति से न चले तो यह ब्राह्मणों के लिए अत्यन्त अनुकूल रहता है।

तत उपरिष्टाद्योजनलक्षद्वयात्प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान् विलम्बमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशान्तिकरः ॥१६॥

ततः=वह (वृहस्पति); **उपरिस्तात्**=ऊपर; **योजन-लक्ष-द्वयात्**=२,००,००० योजन (१६,००,००० मील) की दूरी से; **प्रतीयमानः**=अवस्थित है; **शनैश्चरः**= शनिश्चर ग्रह; **एक-एकस्मिन्**=एक के पश्चात् एक; **राशौ**=राशि में; **त्रिंशत मासान्** =तीस महीनों तक; **विलम्बमानः**=विलम्ब करते हुए, रुकते हुए; **सर्वान्**=सभी बारह राशियाँ; **एव**=ही; **अनुपर्येति**=को पार करता है; **तावद्भिः**=उतने; **अनुवत्सरैः**=अनुवत्सरों से; **प्रायेण**=प्रायः; **हि**=निस्सन्देह; **सर्वेषाम्**=समस्त वासियों के लिए; **अशान्तिकरः**=अत्यधिक कष्टकारक।

अनुवाद

वृहस्पति से २,००,००० योजन अर्थात् १६,००,००० मील और पृथ्वी से १२,००,००,००० मील ऊपर शनिग्रह स्थित है जो तीस-तीस मास में प्रत्येक राशि से होकर जाता है और तीस अनुवत्सरों में सम्पूर्ण राशिवृत्त पूरा करता है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिए अत्यन्त अशुभ है।

तत उत्तरस्मादृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥१७॥

ततः=शनि ग्रह; **उत्तरस्मात्**=ऊपर; **ऋषयः**=ऋषिगण; **एकादश-लक्ष-योजन-अन्तरे**=११,००,००० योजन की दूरी पर; **उपलभ्यन्ते**=अवस्थित हैं; **ये**=सभी; **एव**=ही; **लोकानाम्**=ब्रह्माण्ड के समस्त निवासियों के लिए; **शम्**=शुभ; **अनुभावयन्तः**=सदैव सोचते हैं; **भगवतः**=श्रीभगवान् का; **विष्णोः**=भगवान् विष्णु; **यत्**=जो; **परमम् पदम्**=परम धाम; **प्रदक्षिणम्**=दायें रख कर; **प्रक्रमन्ति** =परिक्रमा करते हैं।

अनुवाद

शनिग्रह से ११,००,००० योजन अर्थात् ८८,००,००० मील (अथवा पृथ्वी से २,०८,००,००० मील) ऊपर सप्तर्षि अवस्थित हैं जो सदैव ब्रह्माण्ड के समस्त प्राणियों की मंगल कामना करते रहते हैं। वे भगवान् विष्णु के परम धाम ध्रुवलोक की प्रदक्षिणा करते हैं।

तात्पर्य

श्रील मध्वाचार्य ने ब्रह्माण्ड पुराण से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

ज्ञानानन्दात्मनो विष्णुः शिशुमारवपुष्य अथ।
ऊर्ध्वलोकेषु स व्याप्त आदित्याद्यास तदाश्रिता॥

ज्ञान तथा दिव्य आनन्द के स्रोत भगवान् विष्णु ने ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च तल पर स्थित सातवें स्वर्ग में शिशुमार का रूप धारण किया। सूर्य आदि अन्य सभी ग्रह इस शिशुमार लोक के अधीन अवस्थित हैं।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चम स्कन्धे ज्योतिश्चक्रवर्णने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, "ग्रहों की कक्ष्याएँ" शीर्षक नामक बाइसवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त भाष्य समाप्त हुआ।

तेइसवाँ अध्याय

शिशुमार चक्र

इस अध्याय में बताया गया है कि सभी ग्रह किस प्रकार ध्रुवतारा अथवा ध्रुवलोक का आश्रय ग्रहण करते हैं। इसमें इसका भी वर्णन है कि सभी ग्रह श्रीभगवान् के बाह्यशरीर के अन्य विस्तार शिशुमार के रूप में हैं। इस ब्रह्माण्ड के भीतर भगवान् विष्णु का आवास ध्रुवलोक सप्तनक्षत्रों से १३,००,००० लाख योजन की दूरी पर स्थित है। ध्रुवलोक ग्रह मंडल में अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, कश्यप तथा धर्म नामक नक्षत्र सम्मिलित हैं और ये सभी नक्षत्र परम भक्त ध्रुव को आदर की दृष्टि से देखते हैं। सभी नक्षत्र काल द्वारा प्रेरित होकर ध्रुवलोक के चारों ओर उसी प्रकार चक्कर लगाते हैं, जिस प्रकार एक केन्द्रीय खंभे में बंधे हुए बैल। जो भगवान् के विश्वरूप अर्थात् **विराट् पुरुष की** आराधना करते हैं वे इस समग्र चक्कर लगाते हुए ग्रह मंडल को शिशुमार नामक जन्तु मानते हैं। यह काल्पनिक शिशुमार ईश्वर का अन्य रूप है। इसका शिर नीचे की ओर है और यह कुण्डलीबद्ध सर्प की भाँति प्रतीत होता है। इसकी पूँछ के सिरे पर ध्रुवलोक, पूँछ के मध्य में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र तथा धर्म और पूँछ के ऊपरी भाग में धाता तथा विधाता स्थित हैं। इसके कटि भाग में सात महर्षि हैं। शिशुमार का पूरा शरीर दक्षिण-मुखी है और यह नक्षत्रों की कुण्डली के समान लगता है। इस कुण्डली के दाईं ओर अभिजित् से लेकर पुनर्वसु पर्यन्त चौदह प्रमुख नक्षत्र हैं। बाईं ओर भी पुष्य से उत्तराषाढ़ा पर्यन्त चौदह नक्षत्र हैं। पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्र शिशुमार के दाहिने तथा बाएँ कूल्हे पर और आर्द्रा तथा अश्लेषा नक्षत्र दाहिने तथा बाएँ पैरों पर अवस्थित हैं। वैदिक ज्योतिषियों की गणनाओं के अनुसार अन्य नक्षत्र भी शिशुमार चक्र की विभिन्न दिशाओं में स्थित हैं। योगीजन ध्यानावस्थित होने के लिए शिशुमार चक्र की आराधना करते हैं। इसी को **कुंडलिनी चक्र** भी कहा जाता है।

श्रीशुक उवाच

अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजान्तरतो यत्तद्विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना

कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥ १ ॥

श्री-शुकः उवाच=श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; **अथ**=तदनन्तर; **तस्मात्**=सप्त नक्षत्रों के गोलक से; **परतः**=परे; **त्रयोदश-लक्ष-योजन-अन्तरतः**=१३,००,००० योजन के अन्तर पर; **यत्**=जो; **तत्**=वह; **विष्णोः परमम् पदम्**=भगवान् विष्णु का परम धाम, अथवा भगवान् विष्णु के चरणकमल; **अभिवदन्ति**=ऋग्वेद के मंत्र स्तुति करते हैं; **यत्र**=जिस पर; **ह**=निस्सन्देह; **महाभागवतः**=परमभक्त; **ध्रुवः**=महाराज ध्रुव; **औत्तानपादिः**=महाराज उत्तानपाद के पुत्र; **अग्निना**=अग्निदेव द्वारा; **इन्द्रेन**=स्वर्गलोक के राजा इन्द्र द्वारा; **प्रजापतिना**=प्रजापति द्वारा; **कश्यपेन**=कश्यप द्वारा; **धर्मेण**=धर्मराज द्वारा; **च**=भी; **समकाल-युग्भिः**=एक ही समय संलग्न; **स-बहु-मानम्**=सदैव आदरपूर्वक; **दक्षिणतः**=दाहिनी ओर; **क्रियमाणः**=चक्कर लगाया जाकर; **इदानीम्**=इस समय; **अपि**=भी; **कल्प-जीविनाम्**=कल्पान्त तक विद्यमान् जीवात्माओं का; **आजीव्यः**=आजीविका, प्राणाधार; **उपास्ते**=बना रहता है; **तस्य**=उसका; **इह**=यहाँ; **अनुभावः**=सेवा कार्य की महानता; **उपवर्णितः**=पहले ही वर्णित (श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में)।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—हे राजन् ! सप्तर्षियों के नक्षत्रों से १३,००,००० योजन ऊपर विद्वानों द्वारा बताया गया भगवान् विष्णु का धाम है। वहाँ पर अब भी महाराज उत्तानपाद के पुत्र, परम भक्त महाराज ध्रुव वास करते हैं जो इस सृष्टि के अन्त तक रहने वाली समस्त जीवात्माओं के प्राणाधार हैं। वहाँ पर इन्द्र, अग्नि, प्रजापति, कश्यप तथा इन्द्र सभी समवेत होकर उनका आदर करते हैं और नमस्कार करते हैं। वे उनकी प्रदक्षिणा उनके दाईं ओर रह कर करते हैं। मैं पहले ही महाराज ध्रुव के यशस्वी कार्यों का वर्णन (श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध में) कर चुका हूँ।

स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टम्भ ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ॥ २ ॥

सः=ध्रुव महाराजा का वह लोक; **हि**=निस्सन्देह; **सर्वेषाम्**=सबों का; **ज्योतिः-गणानाम्**=ज्योतिर्गण; **ग्रह-नक्षत्र-आदीनाम्**=ग्रह, नक्षत्र इत्यादि का; **अनिमिषेण**=न विश्राम लेने वाला; **अव्यक्त**=अवर्णनीय; **रंहसा**=जिसका बल; **भगवता**=सर्व शक्तिमान्; **कालेन**=काल द्वारा; **भ्राम्यमाणानाम्**=घुमाया जाकर; **स्थाणुः**

इव = ठूँठ की भाँति; **अवष्टम्भः** = आधार-स्तम्भ; **ईश्वरेण** = श्रीभगवान् की इच्छा से; **विहितः** = स्थापित; **शाश्वत्** = अनवरत; **अवभासते** = प्रकाशित होता रहता है ।

अनुवाद

श्रीभगवान् की परम इच्छा से स्थापित ध्रुवलोक समस्त नक्षत्रों तथा ग्रहों के आधार-स्तम्भ के रूप में निरन्तर प्रकाशमान रहता है । सदा जागते रहने वाला अदृश्य सर्वशक्तिमान् काल इन ज्योतिर्गणों को अहर्निश ध्रुवतारे के चारों ओर घुमाता रहता है ।

तात्पर्य

यहाँ पर यह स्पष्टतः व्यक्त हुआ है कि सभी ज्योतिर्गण, नक्षत्र तथा ग्रह परम काल के प्रभाव से चक्कर लगाते रहते हैं । यह काल श्रीभगवान् की दूसरी विशेषता है । प्रत्येक प्राणी काल के वशीभूत है, किन्तु श्रीभगवान् इतने सदय हैं और महाराज ध्रुव को इतना चाहते हैं कि उन्होंने समस्त ज्योतिर्पिण्डों को ध्रुवलोक के अधीन कर रखा है और ऐसी व्यवस्था की है कि काल उनके अधीन अथवा उनके सहयोग से कार्य करता है । वास्तव में प्रत्येक कार्य श्रीभगवान् की इच्छा और निर्देश से चालित है, किन्तु अपने भक्त ध्रुव को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्राणी बनाने के उद्देश्य से ही काल को भी उनके अधीन कर रखा है ।

यथा मेढीस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्त्येवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नन्तर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलम्ब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति नभसि यथा मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति ॥ ३ ॥

यथा = जिस प्रकार; **मेढीस्तम्भे** = आधार-स्तम्भ में; **आक्रमण-पशवः** = कोल्हू चलाने वाले बैल; **संयोजिताः** = नाधे जाकर; **त्रिभिः-त्रिभिः** = तीन-तीन करके; **सवनैः** = गतियों के द्वारा; **यथा-स्थानम्** = अपने-अपने स्थानों पर; **मण्डलानि** = मंडल, चक्कर; **चरन्ति** = पार करते हैं; **एवम्** = उसी प्रकार; **भ-गणाः** = सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति आदि ज्योतिर्गण; **ग्रह-आदयः** = विभिन्न ग्रह; **एतस्मिन्** = इसमें; **अन्तः-बहिः-योगेन** = भीतरी अथवा बाहरी चक्कर के साथ सम्बन्ध होने से; **किल-चक्रे** = अनन्त कालचक्र में; **आयोजिताः** = बँधा हुआ; **ध्रुवम्** = ध्रुवलोक; **एव**

=निश्चय ही; **अवलम्ब्य**=आधार बनाकर; **वायुना**=वायु द्वारा; **उदीर्यमाणाः**=खींचा जाकर; **आ-कल्प-अन्तम्**=कल्पान्त तक; **परिचङ्क्रमन्ति**=चारों ओर चक्कर लगाता है; **नभसि**=आकाश में; **यथा**=सदृश; **मेघाः**=घने बादल; **श्येन-आदयः**=बाज जैसे पक्षी; **वायु-वशाः**=वायु द्वारा चालित; **कर्म-सारथयः**=कर्म रूपी सारथी; **परिवर्तन्ते**=चारों ओर घूमते हैं; **एवम्**=इस प्रकार; **ज्योतिः-गणाः**=आकाश के ग्रह, नक्षत्र ज्योति-पिण्ड; **प्रकृति**=प्राकृतिक; **पुरुष**=तथा परम-पुरुष, कृष्ण का; **संयोग-अनुगृहीताः**=संयुक्त प्रयत्नों के द्वारा ग्रहण किया हुआ; **कर्म-निर्मित**=कर्मों के द्वारा उत्पन्न; **गतयः**=जिसकी गतियाँ; **भुवि**=भूमि पर; **न**=नहीं; **पतन्ति**=गिरते हैं।

अनुवाद

यदि बैलों को एक साथ नाधकर उन्हें एक केन्द्रीय आधार-स्तम्भ से बाँधकर दाँव पर घुमाया जाता है तो वे अपनी स्थिति से हटे बिना चक्कर लगाते रहते हैं—पहला बैल स्तम्भ के निकट रहता है, दूसरा बीच में और तीसरा बाहर की ओर। इसी प्रकार सभी ग्रह तथा सैकड़ों हजारों नक्षत्र भी ध्रुवतारे के चारों ओर ऊपर तथा नीचे स्थित अपनी-अपनी कक्ष्याओं में घूमते रहते हैं। वे अपने पूर्व कर्मों के अनुसार श्रीभगवान् द्वारा प्रकृति-यन्त्र में बाँधे जाकर वायु द्वारा ध्रुवलोक के चारों ओर घुमाए जाते हैं और इस प्रकार कल्पान्त तक घूमते रहेंगे। ये ग्रह आकाश के भीतर वायु में वैसे ही तैरते हैं, जिस प्रकार हजारों टन जल से लदे बादल वायु में तैरते हैं अथवा अपने पूर्व कर्मों के कारण बड़े-बड़े बाज आकाश में ऊँचाई तक उड़ते रहते हैं और भूमि पर कभी नहीं गिरते।

तात्पर्य

इस श्लोक के विवरण के अनुसार सैकड़ों नक्षत्र तथा सूर्य, चन्द्र, बुध, वृहस्पति, शुक्र जैसे वृहद् नक्षत्र न तो गुरुत्वाकर्षण के नियम द्वारा अथवा आधुनिक वैज्ञानिकों की अन्य किसी कल्पना द्वारा हो संपुंजित हैं। ये समस्त नक्षत्र एवं ग्रह श्रीभगवान् गोविन्द अथवा कृष्ण के दासस्वरूप हैं और उनकी ही आज्ञा से अपने-अपने रथों में आरूढ़ होकर अपनी-अपनी कक्ष्याओं में घूमते रहते हैं। इन कक्ष्याओं की उपमा प्रकृति प्रदत्त यन्त्रों से की गई है जो महाराज ध्रुव द्वारा शासित ध्रुवलोक के चारों ओर चक्कर लगा कर श्रीभगवान् के आदेशों का पालन करने वाले हैं। इसको पुष्टि ब्रह्मसंहिता (५.५२) में इस प्रकार की गई है—

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहानां
राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः।

यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

"मैं उन आदि पुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ, जिनके आदेश से ईश्वर के चक्षु रूप सूर्य भी शाश्वत काल की स्थिर कक्ष्या में घूमते हैं। सूर्य समस्त नक्षत्रों के राजा हैं और उनमें उष्मा तथा प्रकाश की असीम शक्ति है।" ब्रह्मसंहिता के इस श्लोक से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि सबसे बड़ा एवं सर्व शक्तिमान् ग्रह सूर्य भी स्थिर कक्ष्या अथवा कालचक्र के अन्तर्गत श्रीभगवान् की आज्ञा से घूमता है। गुरुत्वाकर्षण या विज्ञानियों के अन्य काल्पनिक सिद्धान्तों से इसका कोई सरोकार नहीं है।

भौतिक विज्ञानी श्रीभगवान् के शासन से दूर रह कर नक्षत्रों की गति के लिए नाना प्रकार की कल्पनाएँ करते हैं। किन्तु श्रीभगवान् का आदेश सर्वप्रमुख है। ग्रहों के प्रमुख देवता पुरुष हैं और श्रीभगवान् भी पुरुष हैं। श्रीभगवान् अपने अधीन पुरुषों को, जो विभिन्न नामधारी देवता हैं, अपनी परम इच्छा का पालन करने का आदेश देते हैं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (९.१०) से होती है जिसमें श्रीकृष्ण का वचन है—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

"हे कुन्तीपुत्र ! यह प्रकृति (माया) मेरी अध्यक्षता में कार्य करती हुई सम्पूर्ण चराचर प्राणियों को उत्पन्न करती है। इसी कारण इस दृश्य जगत् का बारम्बार सृजन एवं संहार होता है।"

नक्षत्रों की कक्ष्याएँ उन शरीरों के समान हैं, जिनके भीतर जीवात्मा विद्यमान है क्योंकि दोनों ही श्रीभगवान् द्वारा संचालित यन्त्र हैं। जैसा कि श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (१८.६१) में कहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

"हे अर्जुन, परमेश्वर प्राणीमात्र के हृदय में स्थित है। वही देहरूपी यन्त्र में आरूढ़ सब जीवों को अपनी माया शक्ति के द्वारा घुमा रहा है।" यह यन्त्र, चाहे शरीर-यन्त्र, कक्ष्यायन्त्र अथवा कालचक्र हो वे सभी श्रीभगवान् के ही आदेशानुसार कार्य करते हैं। श्रीभगवान् तथा भौतिक प्रकृति दोनों ही मिलकर न केवल इस ब्रह्माण्ड का वरन् इससे परे लाखों ब्रह्माण्डों का पालन करने वाले हैं।

इस श्लोक में इस प्रश्न का भी उत्तर प्राप्त है कि नक्षत्र तथा ग्रह किस प्रकार

तैर रहे हैं। गुरुत्वाकर्षण का इसमें कोई हाथ नहीं है, वरन् नक्षत्र तथा ग्रह वायु के द्वारा तैर पाते हैं। इसी कारण आकाश में बड़े-बड़े बादल और बड़े-बड़े बाज पक्षी उड़ पाते हैं। आधुनिक वायुयान, यथा ७४७ जेटयान भी इसी प्रकार कार्य करते हैं—वे वायु को नियन्त्रित करके, आकाश में ऊँचाई पर तैरते हैं और नीचे नहीं गिरते हैं। इस प्रकार से वायु का नियन्त्रण पुरुष और प्रकृति के सहयोग के द्वारा सम्भव हो पाता है। प्रकृति और पुरुष माने जाने वाले श्रीभगवान् के सहयोग से इस ब्रह्माण्ड के सारे कार्यकलाप सुचारु रूप से चलते रहते हैं। ब्रह्मसंहिता (५.४४) में प्रकृति का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधन शक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"बहिरंगाशक्ति माया, जो चित् शक्ति की छाया तुल्य है, उसकी सभी लोग दुर्गा के रूप में, जो इस संसार के सृजन, पालन तथा संहार करने वाली शक्ति है, आराधना करते हैं। मैं उन आदि पुरुष गोविन्द का भजन करता हूँ, जिनकी इच्छा से दुर्गा अपने सारे कार्य करती हैं। प्रकृति जो परमेश्वर की बहिरंगाशक्ति दुर्गा अर्थात् नारी शक्ति के नाम से भी अभिहित है जो इस ब्रह्माण्ड रूपी दुर्ग की रक्षा करती है। दुर्गा शब्द का अर्थ दुर्ग भी है। यह ब्रह्माण्ड एक दुर्ग के समान है, जिसमें समस्त बद्धजीव रखे गये हैं और वे तब तक इससे छुटकारा नहीं पा सकते जब तक श्रीभगवान् की दया-दृष्टि न हो। भगवद्‌गीता (४. ९) में श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"हे अर्जुन! मेरा आविर्भाव और कर्म दिव्य है। इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्व से जानता है वह देह को त्याग कर संसार में फिर जन्म नहीं लेता, वरन् मेरे सनातन धाम को प्राप्त हो जाता है।" इस प्रकार केवल श्रीकृष्णभावना से अथवा श्रीभगवान् की कृपा से मुक्ति प्राप्त हो सकती है अर्थात् इस ब्रह्माण्ड रूपी दुर्ग से छुटकारा पाकर आध्यात्मिक जगत् में जाया जा सकता है।

यह भी महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि बड़े से बड़े ग्रहों के प्रमुख अधिष्ठाता देवताओं को जो उच्च स्थान प्राप्त है, वह उनके पूर्वजन्मों में किये गये पुण्य कर्मों के फलस्वरूप है। इसका संकेत **कर्म-निर्मित-गतयः** शब्दों से मिलता है। उदाहरणार्थ, हम पहले यह बता चुके हैं कि चन्द्रमा जीव कहलाता है क्योंकि वह हम जैसा जीवात्मा है,

किन्तु अपने पुण्य कर्मों के कारण उसे चन्द्रदेव का पद प्रदान किया गया है। इसी प्रकार समस्त देवता गण जीवात्माएँ हैं जिन्हें विभिन्न पदों पर आरूढ़ किया गया है। इनमें से सर्वप्रमुख सूर्य के अधिष्ठाता देवता सूर्यनारायण को ही श्रीभगवान् का अवतार माना जाता है। ध्रुवलोक के प्रमुख देवता महाराज ध्रुव भी जीवात्मा हैं। इस प्रकार से आत्मा दो प्रकार के हैं—परमात्मा अर्थात् श्रीभगवान् तथा सामान्य जीवात्मा या जीव (**नित्यो नित्यानां चेत्तनश्चेतनानाम्**)। समस्त देवता ईश्वर की सेवा में संलग्न रहते हैं और केवल ऐसी व्यवस्था से ही ब्रह्माण्ड के सारे कार्य चलते हैं।

जहाँ तक इस श्लोक में वर्णित श्येनों (बाज पक्षियों) का प्रश्न है, यह माना जाता है कि ऐसे विशाल बाज हैं जो हाथी का शिकार कर सकते हैं। वे इतनी ऊँचाई पर उड़ते हैं कि वे एक ग्रह से दूसरे ग्रह की यात्रा कर सकते हैं। वे एक ग्रह से उड़ कर दूसरे तक पहुँचते हैं और उड़ते समय अंडे देते हैं जिनसे पक्षी उत्पन्न होते हैं। संस्कृत में ऐसे बाज पक्षियों को **श्येन** कहा जाता है। आधुनिक परिस्थितियों में इतने बड़े श्येन तो नहीं दिखते, किन्तु ऐसे विशाल पक्षी ज्ञात हैं जो बन्दरों को पकड़ कर गिरा देते हैं और मार कर खा जाते है। इसी प्रकार ऐसे भी पक्षी ज्ञात हैं जो हाथियों पर आक्रमण करके उन्हें मार डालते हैं।

श्येन तथा बादलों के ये दो उदाहण यह बताने के लिए पर्याप्त हैं कि वायु के द्वारा उड़ना तथा तैरना कैसे सम्भव होता है। इसी प्रकार ग्रह भी तैरते हैं, क्योंकि भौतिक प्रकृति श्रीभगवान् के आदेशानुसार वायु को संचालित करती है। ऐसा सोचा जा सकता है कि ऐसा संयोजन गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के कारण होता है, किन्तु प्रत्येक दशा में हमें यह स्वीकार करना होगा कि समस्त सिद्धान्तों के बनाने वाले श्रीभगवान् ही हैं। इन पर नामधारी वैज्ञानिकों का किसी प्रकार नियन्त्रण नहीं होता। विज्ञानी झूठें ही यह घोषणा कर सकते हैं कि ईश्वर नहीं है, किन्तु यह वास्तविकता नहीं है।

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति ॥ ४ ॥

केचन=कुछ योगी अथवा ज्योतिर्विद्; **एतत्**=यह; **ज्योतिः-अनीकम्**=नक्षत्रों तथा ग्रहों का विशाल चक्र; **शिशुमार-संस्थानेन**=यह चक्र मानो शिशुमार (सूँस) हो; **भगवतः**=श्रीभगवान्; **वासुदेवस्य**=भगवान् वासुदेव, श्रीकृष्ण; **योग-धारणायाम्**=ध्यानमग्न; **अनुवर्णयन्ति**=बताते हैं।

अनुवाद

नक्षत्रों तथा ग्रहों से युक्त यह विराट् यन्त्र जल में शिशुमार (सूँस मछली) के

स्वरूप से समानता रखने वाला है। कभी-कभी इसे वासुदेव श्रीकृष्ण का अवतार माना जाता है। दृश्य होने के कारण बड़े-बड़े योगी वासुदेव के इस रूप का ध्यान करते हैं।

तात्पर्य

योगी जैसे दिव्य पुरुष जिनके मनों में ईश्वर का स्वरूप नहीं अँट पाता वे विराट् पुरुष का ध्यान धरते हैं। अतः वे इस काल्पनिक शिशुमार को आकाश में वैसा ही तैरते हुए देखते हैं जिस प्रकार सूँस जल में तैरता है। वे इसे श्रीभगवान् का विराट् रूप मानकर ध्यान करते हैं।

यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितस्तस्य लाङ्गूले प्रजापतिरग्निरिन्द्रो धर्म इति पुच्छमूले धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयः। तस्य दक्षिणावर्तकुण्डलीभूतशरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयन्ति दक्षिणायनानि तु सव्ये। यथा शिशुमारस्य कुण्डलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसंख्या भवन्ति। पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगङ्गा चोदरतः॥ ५॥

यस्य=जिसके; **पुच्छ-अग्रे**=पूँछ के सिरे पर; **अवाक्-शिरसः**=जिसका सिर नीचे की ओर है; **कुण्डली-भूत-देहस्य**=जिसका शरीर कुण्डलीबद्ध है; **ध्रुवः**=ध्रुव-लोक में ध्रुव महाराज; **उपकल्पितः**=स्थित है; **तस्य**=उसका; **लांगूले**=पूँछ पर; **प्रजापतिः**=प्रजापति का; **अग्निः**=अग्नि; **इन्द्रः**=इन्द्र; **धर्मः**=धर्म; **इति**=इस प्रकार; **पुच्छ-मूले**=पूँछ के मूल भाग पर; **धाता-विधाता**=धाता तथा विधाता नामक देवतागण; **च**=भी; **कट्याम्**=कटि भाग पर; **सप्त-ऋषयः**=सप्तर्षिगण; **तस्य**=उसके; **दक्षिण-आवर्त-कुण्डली-भूत-शरीरस्य**=जिसका शरीर दक्षिण की ओर घूमती हुई कुण्डली के समान है; **यानि**=जो; **उदगयनानि**=उत्तरी पथ को बताने वाले; **दक्षिण-पार्श्वे**=दाहिनी ओर; **तु**=लेकिन; **नक्षत्राणि**=नक्षत्रगण; **उपकल्पयन्ति**=स्थित हैं; **दक्षिण-आयनानि**=पुष्य से उत्तराषाढ़ा तक चौदह नक्षत्र जो उत्तरी पथ को बताते हैं; **तु**=लेकिन; **सव्ये**=बाईं ओर; **यथा**=जिस प्रकार; **शिशुमारस्य**=सूँस का; **कुंडला-भोग-सन्निवेशस्य**=जिसका शरीर कुण्डली सदृश प्रतीत होता है; **पार्श्वयोः**=पार्श्वों में; **उभयोः**=दोनों; **अपि**=ही; **अवयवाः**=शरीर के अंग; **समसंख्याः**=समान संख्या के (१४); **भवन्ति**=हैं; **पृष्ठे**=पीठ पर; **तु**=निस्सन्देह; **अजवीथी**=दक्षिण पथ को बताने वाले प्रथम तीन नक्षत्र (मूला,

पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराषाढ़ा); **आकाश-गंगा**=आकाशगंगा; **च**=भी; **उदरतः**= पेट पर।

अनुवाद

यह शिशुमार कुण्डली मारे हुए है और इसका सिर नीचे की ओर है। इसकी पूँछ के सिरे पर ध्रुव नामक लोक स्थित है। पँछ के मध्य भाग में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र तथा धर्म नामक देवताओं के लोक स्थित हैं और पूँछ के मूल भाग में धाता और विधाता देवताओं के लोक हैं। उसके कटिप्रदेश में वशिष्ट, अंगिरा इत्यादि सातों ऋषि हैं। कुण्डलीबद्ध शिशुमार का शरीर दाहिनी ओर मुड़ता है, जिसमें अभिजित् से लेकर पुनर्वसु पर्यन्त चौदह नक्षत्र स्थित हैं। इसके बाईं ओर पुष्य से लेकर उत्तराषाढ़ा पर्यन्त चौदह नक्षत्र हैं। इस प्रकार दोनों ओर समान संख्या में नक्षत्र होने से इसका शरीर सन्तुलित है। शिशुमार के पृष्ठ भाग में अजवीथि नामक नक्षत्रों का समूह है और उदर में आकाश-गंगा है।

पुनर्वसुपुष्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषे च दक्षिणवामयोः पश्चिमयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिणवामयोर्नासिकयोर्यथासंख्यं श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठा मूलं च दक्षिणवामयोः कर्णयोर्मघादीन्यष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववङ्क्रिषु युञ्जीत तथैव मृगशीर्षादीन्युदगयनानि दक्षिणपार्श्ववङ्क्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुञ्जीत शतभिषाज्येष्ठे स्कन्धयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ॥ ६ ॥

पुनर्वसु=पुनर्वसु नामक नक्षत्र; **पुष्यौ**=तथा पुष्य नक्षत्र; **दक्षिण-वामयोः**= दाहिने तथा बाएँ; **श्रोणयोः**=कटि तट; **आर्द्रा**=आर्द्रा नामक नक्षत्र; **अश्लेषे**= अश्लेषा नक्षत्र; **च**=भी; **दक्षिण-वामयोः**=दाएँ तथा बाएँ; **पश्चिमयोः**=पीछे; **पादयोः**=पैर; **अभिजित्-उत्तराषाढ़े**=अभिजित् तथा उत्तराषाढ़ नक्षत्र; **दक्षिण-वामयोः**=दाएँ तथा बाएँ; **नासिकयोः**=नथुने; **यथा-संख्यम्**=संख्या-क्रम से; **श्रवण-पूर्वाषाढ़े**=श्रवणा तथा पूर्वाषाढ़ा नामक नक्षत्र; **दक्षिण-वामयोः**=दाएँ तथा बाएँ; **लोचनयोः**=नेत्र; **धनिष्ठा मूलम् च**=तथा धनिष्ठा और मूला नामक नक्षत्र; **दक्षिण-वामयोः**=दाएँ तथा बाएँ; **कर्णयोः**=कान; **मघा-आदीनि**=मघा इत्यादि नक्षत्र; **अष्ट नक्षत्राणि**=आठ नक्षत्र; **दक्षिण-आयनानि**=जो दक्षिण पथ को बताते हैं; **वाम-पार्श्व**=बाईं ओर; **वंक्रिषु**=पसलियों पर; **युञ्जीत**=रख सकते हैं; **तथा एव**=इसी प्रकार; **मृग-शीर्ष-आदीनि**=मृगशीर्ष आदि; **उदगयनानि**=उत्तरी पथ को बताते हुए; **दक्षिण-पार्श्व-वंक्रिषु**=दाहिनी ओर; **प्रातिलोम्येन**=विपरीत क्रम में;

प्रयुञ्जीत = रख सकते हैं; **शतभिषा** = शतभिषा; **ज्येष्ठे** = ज्येष्ठा; **स्कंधयोः** = दोनों कन्धों पर; **दक्षिण-वामयोः** = दाएँ तथा बाएँ; **न्यसेत** = रखना चाहिए ।

अनुवाद

शिशुमार चक्र के दाहिने तथा बाएँ कटि तटों पर पुनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्र हैं। इसके दाएँ तथा बाएँ पैरों पर आर्द्रा एवं अश्लेषा; इसके दाएँ तथा बाएँ नथुनों पर क्रमशः अभिजित् तथा उत्तराषाढ़ा; इसके दाएँ तथा बाएँ नेत्रों पर श्रवणा तथा पूर्वाषाढ़ा और इसके दाएँ तथा बाएँ कानों पर धनिष्ठा तथा मूल स्थित हैं। मघा आदि दक्षिणायन के आठ नक्षत्र बाईं पसलियों पर और उत्तरायण के मृगशिरा से पूर्वभाद्र पर्यन्त आठ नक्षत्र दाईं ओर की पसलियों पर स्थित हैं। शतभिषा तथा ज्येष्ठा— ये दो नक्षत्र क्रमशः दाहिने और बाएँ कन्धों पर स्थित हैं।

उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमो मुखेषु चाङ्गारकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चन्द्रो नाभ्यामुशना स्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥ ७ ॥

उत्तरा-हनौ = ऊपरी जबड़े पर; **अगस्तिः** = अगस्ति नामक नक्षत्र; **अधरा-हनौ** = निचले जबड़े पर; **यमः** = यमराज; **मुखे** = मुख पर; **च** = भी; **अंगारकः** मंगल; **शनैश्चरः** = शनि; **उपस्थे** = लिंगप्रदेश में; **बृहस्पतिः** = वृहस्पति; **ककुदि** = गर्दन के पीछे भाग पर; **वक्षसि** = वक्ष (छाती) पर; **आदित्य** = सूर्य; **हृदये** = हृदय में; **नारायणः** = भगवान् नारायण; **मनसि** = मन में; **चन्द्रः** = चन्द्रमा; **नाभ्याम्** = नाभि में; **उशना** = शुक्र; **स्तनयोः** = दोनों स्तनों पर; **अश्विनौ** = अश्विनद्वय (अश्विनी कुमार); **बुधः** = बुध; **प्राणापानयोः** = प्राण तथा अपान नामक श्वासों में; **राहुः** = राहु ग्रह; **गले** = गर्दन पर; **केतवः** = केतुगण; **सर्व-अंगेषु** = सम्पूर्ण शरीर पर; **रोमौ** = रोओं में; **सर्वे** = सभी; **तारागणाः** = असंख्य तारे ।

अनुवाद

शिशुमार की ऊपरी ठोड़ी पर अगस्ति, निचली ठोड़ी पर यमराज, मुँह में मंगल, उपस्थ में शनि, गर्दन (ककुद) पर बृहस्पति, छाती पर सूर्य, हृदय में नारायण, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र तथा स्तनों में अश्विनी कुमार स्थित हैं। प्राण और अपान नामक प्राण वायु में बुध, गले में राहु तथा समस्त शरीर पर केतु और रोमों में समस्त तारागण स्थित हैं।

एतदु हैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः सन्ध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहीति ॥ ८ ॥

एतत् = यह; **उ ह** = निस्सन्देह; **एव** = ही; **भगवतः** = श्रीभगवान्; **विष्णोः** = भगवान् विष्णु का; **सर्व-देवता-मयम्** = समस्त देवताओं से युक्त; **रूपम्** = स्वरूप; **अहः-अहः** = सदैव; **सन्ध्यायाम्** = प्रातः, दोपहर तथा शाम को; **प्रयतः** = ध्यान धरते हुए; **वाग्यतः** = शब्दों (वाणी) पर नियन्त्रण करते हुए; **निरीक्षमाणः** = निरीक्षण करते हुए; **उपतिष्ठेत्** = उपासना करनी चाहिए; **नमः** नमस्कार; **ज्योतिः-लोकाय** = समस्त ग्रहों के आधारस्वरूप को; **कालायनाय** = परम काल के रूप में; **अनिमिषाम्** = देवताओं के; **पतये** = स्वामी को; **महा-पुरुषाय** = परम-पुरुष को; **अभिधीमहि** = चिन्तन करें; **इति** = इस प्रकार।

अनुवाद

हे राजन्! इस प्रकार से वर्णित शिशुमार के शरीर को भगवान् श्रीविष्णु का बाह्य रूप मानना चाहिए। प्रत्येक प्रातः, दोपहर तथा सायंकाल शिशुमार रूप भगवान् के रूप का मौन होकर दर्शन करना चाहिए और इस मन्त्र से उपासना करनी चाहिए—"हे कालरूप धारण करने वाले भगवान्, हे विभिन्न कक्ष्याओं में घूमने वाले ग्रहों के आश्रय, हे समस्त देवों के स्वामी, हे परम पुरुष! मैं आपको नमस्कार करता हूँ और आपका ध्यान धरता हूँ।"

ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं
पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम्।
नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं
नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥ ९ ॥

ग्रह-ऋक्ष-तारा-मयम् = समस्त नक्षत्रों तथा ग्रहों युक्त; **आधिदैविकम्** = समस्त देवताओं के अधिपति; **पाप-अपहम्** = पापों को नाश करने वाले; **मंत्र-कृताम्** = जो उपर्युक्त मंत्र का जप करते हैं; **त्रि-कालम्** = तीनों काल; **नमस्यतः** = नमस्कार करते हुए; **स्मरतः** = स्मरण करते हुए; **वा** = अथवा; **त्रि-कालम्** = तीन बार; **नश्येत** = नाश करता है; **तत्-काल-जम्** = उस समय उत्पन्न; **आशु** = शीघ्रता से; **पापम्** = समस्त पापों को।

अनुवाद

शिशुमार चक्ररूपी परमेश्वर विष्णु का शरीर समस्त देवताओं, नक्षत्रों तथा ग्रहों का आश्रय है। जो व्यक्ति परम पुरुष की आराधना हेतु नित्य तीन बार—प्रातः, दोपहर तथा सायंकाल इस मन्त्र का जप करता है वह समस्त पापों से अवश्य ही मुक्त हो जाता है। यदि कोई इस रूप में उनको केवल नमस्कार करे या दिन में तीन बार स्मरण करे तो उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

तात्पर्य

ब्रह्माण्ड के ग्रहों के सम्पूर्ण विवरण का सार-समाहार करते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि जो कोई इस विराट्रूप या विश्वरूप का ध्यान करने में समर्थ है और दिन में उसका तीन बार स्मरण करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। उनका अनुमान है कि ध्रुवलोक सूर्य से ३८,००,००० योजन ऊपर स्थित है। ध्रुवलोक से भी १,००,००,००० योजन ऊपर महर्लोक और इससे २,००,००,००० योजन ऊपर जनलोक, फिर इससे ८,००,००,००० योजन ऊपर तपोलोक और इससे भी १२,००,००,००० योजन ऊपर सत्यलोक स्थित है। इस प्रकार सूर्य से सत्यलोक की दूरी २३,३८,००,००० योजन अथवा १,८७,०४,००,००० मील है। सत्यलोक से भी २,६२,००,००० योजन ऊपर वैकुण्ठलोक प्रारम्भ होता है। विष्णु पुराण के अनुसार सूर्य से ब्रह्माण्ड का आवरण २६,००,००,००० योजन (२,०८,००,००,००० मील) दूर है। सूर्य से पृथ्वी तक की दूरी १,००,००० योजन है और पृथ्वी के नीचे ७०,००० योजन दूरी पर सात निम्नलोक हैं, जिनके नाम हैं—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल। इन लोकों से ३०,००० योजन नीचे गर्भोदक सागर में शेषनाग शयन कर रहे हैं। यह सागर २४,९८,००,००० योजन गहरा है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड का समग्र व्यास लगभग ५०,००,००,००० योजन है।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चम स्कन्धे शिशुमारसंस्थावर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, "शिशुमार चक्र" शीर्षक नामक तेइसवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त तात्पर्य समाप्त हुआ।

चौबीसवाँ अध्याय

नीचे के स्वर्गीय लोकों का वर्णन

इस अध्याय में सूर्य से नीचे १०,००० योजन दूरी पर स्थित राहु ग्रह तथा अतल एवं अन्य निम्न लोकों का वर्णन किया गया है। राहु सूर्य तथा चन्द्रमा के नीचे स्थित है। यह इन दोनों ग्रहों (लोकों) एवं पृथ्वी के मध्य में है। जब राहु सूर्य तथा चन्द्रमा को ढक लेता है तो पूर्ण अथवा आंशिक ग्रहण लगते हैं।

राहु से भी १०,००,००० योजन नीचे सिद्धों, चारणों तथा विद्याधरों के लोक और इनसे भी नीचे यक्षलोक तथा राक्षसलोक स्थित हैं। इन सब ग्रहों के नीचे पृथ्वी है, और इसके भी नीचे ७०,००० योजन पर निम्नतरलोक—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल लोक हैं। इन निम्नतर ग्रहों में असुर तथा राक्षसगण अपनी पत्नियों तथा सन्तानों समेत वास करते हैं और अगले जन्मों की परवाह किये बिना सदैव ही इन्द्रियभोग में लिप्त रहते हैं। इन लोकों में सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता। इन्हें सर्पों के फणों की मणियाँ प्रकाशित करती हैं जिससे वहाँ अन्धकार नहीं रह पाता। इन लोकों के वासी न तो वृद्ध होते हैं, और न रोग सताता है। वे किसी कारण से होने वाली मृत्यु से भयभीत नहीं हैं। यदि वे भयभीत हैं तो केवल काल से जो श्रीभगवान् ही है।

अतललोक में अँगड़ाते असुर (दैत्य) से तीन प्रकार की स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं—जिन्हें **स्वैरिणी** (स्वतन्त्र), **कामिनी** (कामोन्मत्त) तथा **पुंश्चली** (पुरुषों द्वारा वशीभूत) कहते हैं। अतल से नीचे वितल है जहाँ भगवान् शिव अपनी पत्नी गौरी के साथ निवास करते हैं। वितल के नीचे परम भाग्यशाली बलि महाराज का आवास है। भगवान् वामनदेव ने उनकी कठिन तपस्या से प्रसन्न होकर बलि महाराज पर कृपा की। वे उनके साथ यज्ञस्थल पर गये और तीन पग भूमि माँगकर उसी बहाने उनकी सारी सम्पत्ति ले ली। सर्वस्व देने के लिए बलि महाराज के तैयार हो जाने पर भगवान् उनसे परम प्रसन्न हुए फलस्वरूप वे उनके द्वारपाल बन गये। बलि महाराज का वर्णन श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध में हुआ है।

जब भगवान् किसी भक्त को भौतिक सुख प्रदान करते हैं तो वह वास्तविक वरदान नहीं होता। अपने ऐश्वर्य के गर्व में भूले हुए देवतागण ईश्वर से केवल भौतिक सुख के लिए प्रार्थना करते हैं। किन्तु प्रह्लाद महाराज जैसे भक्तगण भौतिक सुख

की कामना नहीं करते। भौतिक सुख की क्या बात, वे भौतिक बन्धन से मुक्ति तक की कामना नहीं करते, यद्यपि पवित्र नाम के अशुद्ध जप करने से भी मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

सुतललोक के नीचे तलातल है, जो मय-असुर का वास है। भगवान् शंकर के वरदान से यह असुर भौतिक दृष्टि से अत्यन्त सुखी है, किन्तु उसे कभी आत्मिक सुख प्राप्त नहीं हो पाता। तलातल से भी नीचे महातल है जहाँ सैकड़ों-हजारों फणों वाले अनेक सर्प हैं। महातल के नीचे रसातल और उससे भी नीचे पाताललोक है जहाँ नाग वासुकी अपने साथियों सहित वास करता है।

श्रीशुक उवाच

अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चालभत भगवदनुकम्पया स्वयसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हस्तस्य तात जन्म कर्माणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥ १ ॥

श्री-शुकः उवाच=श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले; **अधस्तात्**=नीचे; **सवितुः**=सूर्य गोलक; **योजन**=आठ मील के बराबर की दूरी; **अयुते**=दस हजार; **स्वर्भानुः**= राहु नामक ग्रह; **नक्षत्रवत्**=नक्षत्र के समान; **चरति**=घूमता है; **इति**=इस प्रकार; **एके**=कुछ पुराणवेत्ता; **यः**=जो; **असौ**=वह; **अमरत्वम्**=देवताओं के सदृश जीवन; **ग्रहत्वम्**=किसी प्रमुख ग्रह की सो स्थिति; **च**=और; **अलभत**=प्राप्त की गई; **भगवत्-अनुकम्पया**=श्रीभगवान् की दया से; **स्वयम्**=स्वयं, साक्षात्; **असुर-अपसदः** =असुरों में से निम्नतम; **सैंहिकेयः**=सिंहिका का पुत्र होने से; **हि**=निस्सन्देह; **अ-तत् अर्हः**=उस पद के लिए सुयोग्य; **तस्य**=उसका; **तात**=हे राजन्; **जन्म** =जन्म; **कर्माणि**=क्रियाएँ; **च**=भी; **उपरिष्टात्**=बाद में; **वक्ष्यामः**=मैं कहूँगा।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी बोले—हे राजन्! कुछ पौराणिकों का कथन है कि सूर्य से १०,००० योजन नीचे राहु नामक ग्रह है जो नक्षत्रों की भाँति घूमता है। इस ग्रह का अधिष्ठाता देवता, जो सिंहिका का पुत्र और समस्त असुरों में दुर्जेय है और इस पद के लिए सर्वथा अयोग्य होने पर भी श्रीभगवान् की कृपा से उसे प्राप्त कर सका है। मैं उसके विषय में आगे कहूँगा।

यददस्तरणेर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तद्व्यवधानकृद्वैरानुबन्धः सूर्याचन्द्रमसावभिधावति ॥ २ ॥

यत्=जो; **अदः**=वह; **तरणेः**=सूर्य का; **मण्डलम्**=गोलक; **प्रतपतः**=जो सदैव उष्मा प्रदान करता है; **तत्**=वह; **विस्तरतः**=विस्तार में; **योजन**=आठ मील की दूरी; **अयुतम्**=दस हजार; **आचक्षते**=उनका अनुमान है; **द्वादश-सहस्रम्**=बीस हजार योजन; **सोमस्य**=चन्द्रमा का; **त्रयोदश**=तीस; **सहस्रम्**=एक हजार; **राहोः**=राहु नामक ग्रह का; **यः**=जो; **पर्वणि**=अवसर पर; **तत्-व्यवधान-कृत**=जिसने अमृत वितरण के समय सूर्य तथा चन्द्रमा के लिए अवरोध उत्पन्न किया; **वैर-अनुबन्धः**=वैर भाव; **सूर्या**=सूर्य; **चन्द्रमसौ**=तथा चन्द्रमा; **अभिधावति**=पूर्णिमा तथा अमावस्या के समय उनका पीछा करता है।

अनुवाद

उष्मा के स्रोत सूर्य गोलक का विस्तार १०,००० योजन है। चन्द्रमा २०,००० योजन और राहु ३०,००० योजन तक विस्तृत है। अमृत वितरण के समय राहु ने सूर्य तथा चन्द्रमा के मध्य आसीन होकर उनके बीच विद्वेष उत्पन्न करना चाहा। राहु, सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों के प्रति शत्रुभाव रखता है। इसीलिए वह सदा अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन उनको ढकने का प्रयत्न करता रहता है।

तात्पर्य

जैसा कि यहाँ बताया गया है सूर्य १०,००० योजन तक और चन्द्रमा इससे दूना विस्तीर्ण है। यहाँ **द्वादश** शब्द का अर्थ दस का दो गुना अर्थात् बीस मानना चाहिए। विजयध्वज के मत से राहु को चन्द्रमा का दो गुना अर्थात् ४०,००० योजन तक विस्तीर्ण होना चाहिए। किन्तु भागवत के इस विरोधाभास से सहमत होने के लिए वे राहु के सम्बन्ध में निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत करते हैं—**राहुसोमरवीणां तु मण्डला द्विगुणोक्तिताम्**—जिसका अर्थ है कि राहु चन्द्रमा से दुगना बड़ा है और चन्द्रमा सूर्य से दुगना है। यह निष्कर्ष टीकाकार विजयध्वज का है।

तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानमभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदन्ति लोकाः ॥ ३ ॥

तत् = वह स्थिति; **निशम्य** = सुनकर; **उभयत्र** = सूर्य तथा चन्द्र दोनों के चारों ओर; **अपि** = निस्सन्देह; **भगवता** = श्रीभगवान् द्वारा; **रक्षणाय** = उनकी रक्षा हेतु; **प्रयुक्तम्** = संलग्न; **सुदर्शनम्** = श्रीकृष्ण का चक्र; **नाम** = नामक; **भागवतम्** = अत्यन्त विश्वासपात्र भक्त; **दयितम्** = अत्यन्त प्रिय; **अस्त्रम्** = आयुध; **तत्** = वह; **तेजसा** = अपने तेज से; **दुर्विषहम्** = असह्य गर्मी; **मुहुः** = वारम्बार; **परिवर्तमानम्** = सूर्य तथा चन्द्र की परिक्रमा करता हुआ; **अभ्यवस्थितः** = स्थित; **मुहूर्तम्** = एक मुहूर्त (४८ मिनट) के लिए; **उद्विजमानः** = जिसका मन चिन्ताओं से पूर्ण है; **चकितः** = चकित, डरा हुआ; **हृदयः** = हृदय; **आरात्** = सुदूर स्थान तक; **एव** = ही; **निवर्तते** = भागता है; **तत्** = वह स्थिति; **उपरागम्** = ग्रहण; **इति** = इस प्रकार; **वदन्ति** = कहते हैं; **लोकाः** = लोग।

अनुवाद

सूर्य तथा चन्द्र देवताओं से राहु के आक्रमण को सुन कर उनकी रक्षा हेतु भगवान् श्रीविष्णु अपना सुदर्शन चक्र चलाते हैं। यह चक्र भगवान् का अत्यन्त प्रिय भक्त और प्रिय पात्र है। अवैष्णवों के वध हेतु इसका प्रचण्ड तेज राहु के लिए असह्य है, अतः वह डर कर भाग जाता है। जब राहु चन्द्र या सूर्य को सताता है तो ग्रहण लगता है।

तात्पर्य

भगवान् श्रीविष्णु अपने भक्तों के, जिन्हें देवता भी कहा जाता है, सदैव ही रक्षक हैं। प्रधान देवता विष्णु के अत्यन्त आज्ञाकारी होते हैं, यद्यपि उन्हें भी इन्द्रिय-भोग चाहिए और इसीलिए वे देवता या ईश्वरतुल्य माने जाते हैं। राहु सूर्य तथा चन्द्र पर आक्रमण करता है, किन्तु वे भगवान् विष्णु द्वारा रक्षित हैं। भगवान् विष्णु के चक्र से भयभीत रहने के कारण राहु सूर्य या चन्द्र के समक्ष एक मुहूर्त से अधिक समय तक ठहर नहीं पाता। जब राहु सूर्य या चन्द्रमा के प्रकाश को रोक लेता है तो यह घटना ग्रहण कहलाती है। पृथ्वी के वैज्ञानिकों का चन्द्रमा तक जाने का प्रयास राहु के आक्रमण के समान आसुरी है। निस्सन्देह उनके प्रयत्न विफल होंगे क्योंकि कोई भी सूर्य या चन्द्रमा में सरलता से प्रवेश नहीं कर सकता। राहु के आक्रमण के समान ही ऐसे प्रयास निष्फल सिद्ध होंगे।

ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव ॥ ४ ॥

ततः = राहु ग्रह से; **अधस्तात्** = नीचे; **सिद्ध-चारण** = सिद्धलोक तथा चारणलोक का; **विद्याधरानाम्** = तथा विद्याधरों के ग्रहों के; **सदनानि** = आवास; **तावत्-मात्र** = केवल उतनी ही दूरी (८०,००० मील); **एव** = निस्सन्देह।

अनुवाद

राहु से १०,००० योजन नीचे सिद्धलोक, चारणलोक तथा विद्याधरलोक नामक लोक हैं।

तात्पर्य

कहा जाता है कि सिद्धलोक के वासियों को योगियों की सिद्धियाँ प्राप्त हैं, जिससे वे वायुयान अथवा इसी प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग किये बिना ही एक लोक से दूसरे लोक की यात्रा कर सकते हैं।

ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षः पिशाचप्रेतभूतगणानां विहाराजिरमन्तरिक्षं यावद्वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यन्ते ॥ ५ ॥

ततः अधस्तात्=सिद्ध, चारण तथा विद्याधर लोकों से नीचे; **यक्ष-रक्षः-पिशाच-प्रेत-भूत-गणानाम्**=यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत आदि के; **विहार-अजिरम्**=भोग-विलास का स्थान; **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष या आकाश में; **यावत्**=जहाँ तक; **वायुः**=वायु; **प्रवाति**=बहती है; **यावत्**=जहाँ तक; **मेघाः**=मेघ; **उपलभ्यन्ते**=देखे जाते हैं।

अनुवाद

अन्तरिक्ष में विद्याधरलोक, चारणलोक तथा सिद्धलोक के नीचे यक्षों, राक्षसों, पिशाचों, भूतों आदि के भोगविलास के स्थान हैं। जहाँ तक वायु प्रवाहित होती है और आकाश में बादल तिरते हैं, वहाँ तक अन्तरिक्ष का विस्तार है। इसके ऊपर वायु नहीं है।

ततोऽधस्ताच्छतयोजनान्तर इयं पृथिवी यावद्धंसभासश्येन सुपर्णादयः पतत्त्रिप्रवरा उत्पतन्तीति ॥ ६ ॥

ततः अधस्तात्=उससे भी नीचे; **शत-योजन**=एक सौ योजन; **अन्तरे**=दूरी पर; **इयम्**=यह; **पृथिवी**=पृथ्वी; **यावत्**=जितना ऊँचा; **हंस**=हंस पक्षी; **भास**=गिद्ध; **श्येन**=बाज; **सुपर्णादयः**=तथा अन्य पक्षीगण; **पतत्त्रि-प्रवरः**=पक्षियों में श्रेष्ठ; **उत्पतन्ति**=उड़ सकती हैं; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

यक्षों तथा राक्षसों के आवासों के नीचे १०० योजन की दूरी पर पृथ्वी ग्रह है।

इसकी ऊपरी सीमा उतनी ऊँचाई तक है जहाँ तक हंस, गिद्ध, बाज तथा अन्य बड़े-बड़े पक्षी उड़ सकते हैं।

उपवर्णितं भूमेर्यथासंनिवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात् सप्त भूविवरा एकैकशो योजनायुतान्तरेणायामविस्तारेणोपक्लृप्ता अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पातालमिति ॥ ७ ॥

उपर्वाणतम्=पूर्वकथित; **भूमेः**=पृथ्वी का; **यथा-संनिवेश-अवस्थानम्**=विभिन्न स्थानों की योजना के अनुसार; **अवनेः**=पृथ्वी का; **अपि**=निश्चय ही; **अधस्तात्**=नीचे; **सप्त**=सात; **भू-विवराः**=अन्य लोक; **एक-एकशः**=क्रम से, ब्रह्माण्ड की ऊपरी सीमा तक; **योजन-अयुत-अन्तरेण**=दस हजार योजन के अन्तर पर; **आयाम-विस्तारेण**=चौड़ाई तथा लम्बाई में; **उपक्लृप्ताः**=स्थित; **अतलम्**=अतल नामक; **वितल**=वितल; **सुतलम्**=सुतल; **तलातलम्**=तलातल; **महातलम्**=महातल; **रसातलम्**=रसातल; **पातालम्**=पाताल; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

हे राजन्! इस पृथ्वी के भी नीचे सात अन्य लोक हैं जो अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल के नाम से विख्यात हैं। मैं पृथ्वी लोक की स्थिति का वर्णन पहले ही कर चुका हूँ। सातों अधोलोकों की लम्बाई तथा चौड़ाई पृथ्वी के ही समान आँकी गई है।

एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानन्दभूतिविभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्त-कलत्रापत्यबन्धुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसन्ति ॥ ८ ॥

एतेषु=इनमें से; **हि**=निश्चय ही; **बिल-स्वर्गेषु**=अधः-स्वर्ग लोकों में; **स्वर्गात्**=स्वर्गलोकों की अपेक्षा; **अपि**=भी; **अधिक**=बढ़कर; **काम-भोग**=इन्द्रियभोग का सुख; **ऐश्वर्य-आनन्द**=ऐश्वर्यजन्य आनन्द; **भूति**=प्रभाव; **विभूतिभिः**=वस्तुओं तथा सम्पत्ति से; **सु-समृद्ध**=उन्नत; **भवन**=घर; **उद्यान**=उपवन, बगीचे; **आक्रीड-विहारेषु**=इन्द्रियतृप्ति के लिए नाना प्रकार के स्थानों में; **दैत्य**=दैत्य, असुर; **दानव**=भूत-प्रेत; **काद्रवेयाः**=सर्प; **नित्य**=शाश्वत; **प्रमुदित**=अत्यधिक प्रसन्न;

अनुरक्त=लगाव के कारण; **कलत्र**=पत्नी को; **अपत्य**=सन्तान; **बन्धु**=पारिवारिक जन; **सुहृत्**=मित्रगण; **अनुचराः**=सेवक; **गृह-पतयः**=गृहस्वामी, घर का मुखिया; **ईश्वरात्**=देवताओं के तुल्य अधिक सक्षम जनों की अपेक्षा; **अपि**=भी; **अप्रतिहत-कामाः**=जिनकी कामेच्छा रोके नहीं रुकती; **माया**=मायामय; **विनोदाः**=जो सुख का अनुभव करते हैं; **निवसन्ति**=रहते हैं ।

अनुवाद

बिल स्वर्ग (नीचे के स्वर्ग) कहलाने वाले इन सातों लोकों में अत्यन्त सुन्दर घर, उद्यान तथा क्रीड़ास्थलियाँ हैं जो स्वर्गलोक से भी अत्यन्त ऐश्वर्यशाली हैं क्योंकि असुरों के विषय-भोग, सम्पत्ति तथा प्रभाव के मानदण्ड ऊँचे हैं । इन लोकों के वासी दैत्य, दानव तथा नाग कहलाते हैं और वे गृहस्थों की भाँति रहते हैं । उनकी पत्नियाँ, सन्तानें, मित्र तथा उनका समाज मायामय भौतिक सुख में मग्न रहता है । भले ही देवताओं के ऐन्द्रिय-सुख में बाधा आए, किन्तु इन लोकों के वासी अबाध-जीवन व्यतीत करते हैं । इस प्रकार उन्हें मायामय सुख में अत्यधिक लिप्त माना जाता है ।

तात्पर्य

प्रह्लाद महाराज के कथनानुसार भौतिक सुख **मायासुख** कहलाता है । वैष्णव सदैव ऐसे झूठे सुख से जीवों को मुक्ति दिलाने के लिए चिन्तित रहता है । प्रह्लाद महाराज कहते हैं, **मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्**—ये मूर्ख (विमूढ़) क्षणिक भौतिक सुख में लिप्त रहते हैं । चाहे स्वर्गलोक हो या अधोलोक अथवा मर्त्यलोक, मनुष्य सर्वत्र क्षणिक सुख में लिप्त रहते हैं और यह भूल जाते हैं कि यथासमय उन्हें अपना शरीर बदलना होगा और जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा रोग के आवागमन में पड़ना होगा । अगले जन्म की परवाह किये बिना नितान्त भौतिकवादी अपने लघु जीवन-काल में आनन्द-भोग करने में मस्त रहना चाहते हैं । ऐसे विमूढ़ भौतिक-वादियों को वास्तविक सुख प्रदान करने के लिए वैष्णव सदैव उत्सुक रहता है ।

येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नानामणिप्रवर-प्रवेकविरचितविचित्रभवनप्राकारगोपुरसभाचैत्यचत्वरायतनादिभिर्नागासुरमि-थुनपारावतशुकसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलङ्कृताश्चका-सति ॥ ९ ॥

येषु=उन अधोलोकों में; **महा-राज**=हे राजन्; **मयेन**=मयदानव के द्वारा; **मायाविना**=वास्तुकला में दक्ष; **विनिर्मिताः**=निर्मित किया हुआ; **पुरः**=पुरियाँ;

नाना-मणि-प्रवर=बहुमूल्य मणियों का; **प्रवेक**=श्रेष्ठतम; **विरचित**=निर्मित; **विचित्र**=आश्चर्यजनक; **भवन**=घर; **प्राकार**=भित्तियाँ; **गोपुर**=द्वार; **सभा**=सभागार; **चैत्य**=मन्दिर; **चत्वर**=पाठशालाएँ; **आयतन-आदिभिः**=होटलों या मनोरंजन-शालाओं आदि से युक्त; **नाग**=सर्प के सदृश शरीर वाले जीवों का; **असुर**=असुरों या अनीश्वरवादी व्यक्तियों का; **मिथुन**=युग्मों द्वारा; **पारावत**=कबूतर; **शुक**=तोता; **सारिका**=मैना; **आकीर्ण**=समूहित; **कृत्रिम**=बनावटी; **भूमिभिः**=भूमि से; **विवर-ईश्वर**=लोकों के अधिपतियों के; **गृह-उत्तमैः**=उत्तम घरों से; **समलंकृताः**=अलंकृत; **चकासति**=चमचमाते रहते हैं।

अनुवाद

हे राजन् ! कृत्रिम स्वर्ग में, जिन्हें बिल-स्वर्ग कहते हैं, मय नामक एक महादानव है जो अत्यन्त दक्ष वास्तुकार एवं शिल्पी है। उसने अनेक अलंकृत पुरियों का निर्माण किया जहाँ अनेक विचित्र भवन, प्राचीर, द्वार, सभाभवन, मन्दिर, आँगन तथा मन्दिर-प्राचीर एवं विदेशियों के रहने के होटल तथा आवास हैं। इन ग्रहों के अधिपतियों के भवनों को अत्यन्त मूल्यवान् रत्नों से निर्मित किया गया है। ये भवन नागों तथा असुरों के अतिरिक्त अनेक कबूतरों, तोतों तथा अन्य पक्षियों से परिपूर्ण हैं। कुल मिलाकर ये कृत्रिम स्वर्गिक पुरियाँ अत्यन्त आकर्षक ढंग से अलंकृत की गई हैं।

उद्यानानि चातितरां मनइन्द्रियानन्दिभिः कुसुमफलस्तबकसुभगकिसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां लताङ्गालिङ्गितानां श्रीभिः समिथुनविविधविहङ्गमजलाशयानाममलजलपूर्णानां झषकुलोल्लङ्घनक्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पल लोहितशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वनादिभिरिन्द्रियोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥१०॥

उद्यानानि=बाग तथा पार्क; **च**=भी; **अतितराम्**=अत्यधिक; **मनः**=मन को; **इन्द्रिय**=तथा इन्द्रियों को; **आनन्दिभिः**=आनन्द प्रदान करने वाले; **कुसुम**=फूलों से; **फल**=फलों के; **स्तबक**=गुच्छे; **सुभग**=अत्यन्त सुन्दर; **किसलय**=नई टहनियाँ; **अवनत**=नीचे झुकी; **रुचिर**=आकर्षक; **विटप**=शाखाओं वाले; **विटपिनाम्**=वृक्षों के; **लता-अंग-आलिंगितानाम्**=लताओं के अंगों द्वारा चुम्बित; **श्रीभिः**=सुन्दरता से; **स-मिथुन**=जोड़ों में; **विविध**=अनेक प्रकार के; **विहंगम**=पक्षियों द्वारा; **जल-आशयानाम्**=जलागारों के; **अमल-जल-पूर्णानाम्**=निर्मल जल से पूर्ण; **झष-कुल-उल्लंघन**=विभिन्न प्रकार की मछलियों के कूदने से; **क्षुभित**=

विक्षुब्ध; **नीर**=जल में; **नीरज**=कमलपुष्पों के; **कुमुद**=कुमुदिनी; **कुवलय**= कुवलय नामक पुष्प; **कह्लार**=कह्लार नामक पुष्प; **नील-उत्पल**=नीले कमल; **लोहित**=लाल; **शत-पत्र-आदि**=सौ पंखड़ियों वाले कमलपुष्प इत्यादि; **वनेषु**= वनों में; **कृत-निकेतनानाम्**=उन पक्षियों का जिन्होंने अपने घोंसले बना लिए हैं; **एक-विहार-आकुल**=बेरोक सुख से पूर्ण; **मधुर**=अत्यधिक मीठा; **विविध**=नाना प्रकार के; **स्वन-आदिभिः**=कम्पनों से; **इन्द्रिय-उत्सवैः**=इन्द्रिय सुख मनाने वाले; **अमरलोक-श्रियम्**=देवताओं के लोकों की सुन्दरता; **अतिशयितानि**=मात करने वाले।

अनुवाद

कृत्रिम स्वर्गों के बाग-बगीचे स्वर्गलोक के उद्यानों की शोभा को मात करने वाले हैं। उन उद्यानों के वृक्ष लताओं से आलिंगित होकर फलों तथा फूलों से लदी शाखाओं के भार से झुके रहते हैं, जिसके कारण वे अतीव सुन्दर लगते हैं। यह सुन्दरता किसी को भी आकृष्ट करने वाली और मन को भोगेच्छा से प्रफुल्लित करने वाली है। वहाँ अनेक जलाशय एवं झीले हैं जिनका जल निर्मल, पारदर्शी तथा मछलियों के कूदने से क्षुब्ध रहता है और कुमुदिनी, कुवलय, कह्लार तथा नील एवं लाल कमल के पुष्पों से सुसज्जित रहता है, झीलों में चक्रवाक के जोड़े तथा अन्य अनेक जलपक्षी विहार करते और प्रसन्न होकर कलरव करते हैं जिसे सुनकर मन और इन्द्रियों को अत्यन्त अह्लाद होता है।

यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥११॥

यत्र=जहाँ; **ह वाव**=निश्चय ही; **न**=नहीं; **भयम्**=भय, डर; **अहः-रात्र-आदिभिः**=दिन और रात के कारण; **काल-विभागैः**=काल के विभाग; **उपलक्ष्यते**=अनुभव किया जाता है।

अनुवाद

चूँकि उन अधोलोकों में सूर्य का प्रकाश नहीं जाता, काल दिन तथा रात में विभाजित नहीं है जिसके फलस्वरूप काल से उत्पन्न भय नहीं रहता।

यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ॥१२॥

यत्र=जहाँ; **हि**=निस्सन्देह; **महा-अहि**=बड़े-बड़े सर्पों का; **प्रवर**=सर्वश्रेष्ठ; **शिरः-मणयः**=फनों पर स्थित मणियाँ; **सर्वम्**=सभी; **तमः**=अन्धकार; **प्रबाधन्ते**=दूर भगाती हैं।

अनुवाद

वहाँ अनेक बड़े-बड़े सर्प वास करते हैं जिनके फनों की मणियों के प्रकाश से अन्धकार दूर भाग जाता है।

न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति वयोऽवस्थाश्च भवन्ति ॥१३॥

न=नहीं; **वा**=या; **एतेषु**=इन लोकों में; **वसताम्**=वसने वालों का; **दिव्य**=विस्मयकारी; **औषधि**=जड़ी बूटियों का; **रस**=रस; **रसायन**=तथा अमृत; **अन्न**=खाने से; **पान**=पीने से; **स्नान-आदिभिः**=स्नान आदि करने से; **आधयः**=मानसिक क्लेश; **व्याधयः**=रोग, व्याधियाँ; **वली**=झुर्रियाँ; **पलित**=पके केश; **जरा**=वृद्धावस्था; **आदयः**=आदि; **च**=तथा; **देह-वैवर्ण्य**=शारीरिक कान्ति का म्लान पड़ना; **दौर्गन्ध्य**=दुर्गन्ध; **स्वेद**=पसीना; **क्लम**=थकान; **ग्लानिः**=शक्ति-क्षय; **इति**=इस प्रकार; **वयः अवस्थाः**=आयु के बढ़ने के कारण उत्पन्न शोचनीय दशाएँ; **च**=भी; **भवन्ति**=हैं।

अनुवाद

चूँकि इन लोकों के निवासी जड़ी-बूटियों के रस तथा रसायन का पान करते और उनमें स्नान करते हैं अतः वे सभी प्रकार की चिन्ताओं और व्याधियों से मुक्त रहते हैं। न तो उनके केश सफेद होते हैं, न झुर्रियाँ पड़ती हैं, न अशक्य होते हैं। उनकी शारीरिक कान्ति कभी मलिन नहीं पड़ती, उनके पसीने से दुर्गन्ध नहीं आती और न तो उन्हें थकान, न ही शक्ति अथवा वृद्धावस्थाजन्य उत्साह का अभाव सताता है।

न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात् ॥१४॥

न हि=नहीं; **तेषाम्**=उनका; **कल्याणानाम्**=जो स्वभाव से शुभ होते हैं; **प्रभवन्ति**=प्रभाव डालने में सक्षम; **कुतश्चन**=कहीं से भी; **मृत्युः**=मृत्यु; **विना**=के सिवा; **भगवत्-तेजसः**=श्रीभगवान् की शक्ति का; **चक्र-अपदेशात्**=सुदर्शन चक्र से।

अनुवाद

वे अत्यन्त कुशलपूर्वक रहते हैं और काल रूप श्रीभगवान् के सुदर्शन चक्र के अतिरिक्त अन्य किसी साधन द्वारा मृत्यु से भयभीत नहीं हैं।

तात्पर्य

भौतिक अस्तित्व का यही दोष है। अधोलोकों में प्रत्येक वस्तु सुघर रीति से व्यवस्थित है। वहाँ सुन्दर आवास हैं, मोहक वायुमण्डल है और वहाँ शारीरिक क्लेश या मानसिक व्याधियाँ नहीं हैं। तो भी जो वहाँ रहते हैं उन्हें अपने कर्मों के अनुसार दूसरा जन्म ग्रहण करना होता है। मन्द बुद्धि वाले पुरुष सुखोन्मुखी भौतिकवादी सभ्यता के इस दोष को नहीं समझ सकते। कोई कितना ही क्यों न अपनी इन्द्रियों को भाने वाली परिस्थितियाँ उत्पन्न कर ले, किन्तु अन्ततः उसे मृत्यु सामना करना पड़ता है। आसुरी सभ्यता के लोग अपनी परिस्थितियों को अत्यन्त सुखद बनाने का प्रयास करते हैं, किन्तु वे मृत्यु को नहीं रोक पाते। सुदर्शन चक्र के प्रभाव से उनका यह भौतिक सुख स्थायी नहीं रह सकता।

यस्मिन् प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव स्रवन्ति पतन्ति च ॥१५॥

यस्मिन् = जहाँ; **प्रविष्टे** = प्रवेश करने पर; **असुर-वधूनाम्** = उन असुर वधुओं का; **प्रायः** = प्रायः; **पुंसवनानि** = गर्भ; **भयात्** = भयवश; **एव** = ही; **स्रवन्ति** = बाहर सरकते हैं; **पतन्ति** = गिर पड़ते हैं; **च** = तथा।

अनुवाद

जब सुदर्शन चक्र उन प्रदेशों में पहुँचता है तो उसके तेज से असुरों की गर्भिणी स्त्रियों का गर्भपात हो जाता है।

अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्य इति या वै बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंलापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयन्ति

यस्मिन्नुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमित्ययुतमहागजबलमात्मानमभिमन्यमानः कत्थते मदान्ध इव ॥१६॥

अथ=अब; **अतले**=अतल नामक लोक पर; **मय-पुत्रः असुरः**=मय का असुर-पुत्र; **बलः**=बल; **निवसति**=वास करता है; **येन**=जिसके द्वारा; **ह वा**=निस्सन्देह; **इह**=इसमें; **सृष्टाः**=रचना की; **षट्णवतिः**=छियानबे; **मायाः**=माया के प्रकार; **काश्चन्**=कोई; **अद्य अपि**=आज भी; **मायाविनः**=मायावी लोग (यथा सोना बनाने वाले); **धारयन्ति**=उपयोग करते हैं; **यस्य**=जिसका; **च**=भी; **जृम्भमाणस्य**=अँगड़ाई लेते हुए; **मुखतः**=मुख मार्ग से; **त्रयः**=तीन; **स्त्री-गणाः**=स्त्रियों के प्रकार; **उदपद्यन्त**=उत्पन्न हुए; **स्वैरिण्यः**=स्वैरिणी (जो अपनी ही जाति में व्याह करती है); **कामिन्यः**=कामिनी (जो कामवश किसी भी जाति के पुरुष से व्याह कर लेती है); **पुंश्चल्यः**=पुंश्चली (जो एक पति को छोड़कर दूसरा पति बनाना चाहती है); **इति**=इस प्रकार; **यः**=जो; **वै**=निश्चय ही; **बिल-अयनम्**=अधो-लोक, बिल-स्वर्ग; **प्रविष्टम्**=प्रवेश करके; **पुरुषम्**=नर; **रसेन**=रस द्वारा; **हाटक-आख्येन**=हाटक नामक मादक जड़ी से बना हुआ; **साधयित्वा**=विषयभोग के लिए सक्षम बनाकर; **स्व-विलास**=अपने इन्द्रियभोग के लिए; **अवलोकन**=चितवन से; **अनुराग**=कामी; **स्मित**=मन्द हास से; **संलाप**=बातचीत से; **उपगूहन-आदिभिः**=आलिंगन आदि से; **स्वैरम्**=अपनी इच्छानुसार; **किल**=निस्सन्देह; **रमयन्ति**=रमण करते हैं; **यस्मिन्**=जो; **उपयुक्ते**=उपभोग करने पर; **पुरुषः**=पुरुष; **ईश्वरः अहम्**=मैं ही सर्वशक्तिमान् पुरुष हूँ; **सिद्धः अहम्**=मैं ही सिद्ध पुरुष हूँ; **इति**=इस प्रकार; **अयुत**=दस हजार; **महा-गज**=बड़े-बड़े हाथियों को; **बलम्**=शक्ति; **आत्मानम्**=अपने आप; **अभिमन्यमानः**=गर्व से पूर्ण होकर; **कत्थते**=कहते हैं; **मदान्धः**=अहंकार से अन्धा; **इव**=सदृश।

अनुवाद

हे राजन् ! अब मैं तुमसे अतललोक से प्रारम्भ करके एक एक करके समस्त अधोलोकों का वर्णन करूँगा। अतललोक में मयदानव का पुत्र बल नामक असुर है जिसने छियानबे प्रकार की माया रच रखी है। कुछ नामधारी योगी तथा स्वामी आज भी लोगों को ठगने के लिए इस माया का प्रयोग करते हैं। बल असुर के अँगड़ाई लेने से ही तीन प्रकार की उत्पन्न स्त्रियाँ स्वैरिणी, कामिनी तथा पुंश्चली के नाम से ख्यात हैं। स्वैरिणियाँ अपने ही वर्ग के पुरुषों से व्याह करना पसन्द करती हैं, कामिनियाँ किसी भी वर्ग के पुरुष से व्याह कर लेती हैं और पुंश्चलाएँ अपना पति बदलती रहती हैं। यदि कोई पुरुष अतललोक में प्रवेश करता है तो ये स्त्रियाँ तुरन्त ही उसे बन्दी बना कर उसे हाटक नामक जड़ी से बनाये गये मादक पेय को

पीने के लिए बाध्य कर देती हैं। इस पेय से मनुष्य में काम-शक्ति जाग्रत होती है, जिसका उपयोग वे अपने सम्भोग हेतु करती हैं। स्त्रियाँ उसे अपनी मोहक चितवन, प्रेमालाप, मन्द मुस्कान तथा आलिंगन आदि के द्वारा मोह लेती हैं। इस प्रकार वे इच्छानुकूल आत्मतृप्ति करती हैं। कामशक्ति बढ़ने के कारण मनुष्य अपने को दस हजार हाथियों से भी बली और पूर्ण मानने लगता है। निस्सन्देह मद के कारण मोहग्रस्त होकर वह सर पर खड़ी मृत्यु की अवहेलना करके अपने आपको ईश्वर समझने लगता है।

ततोऽधस्ताद्वितले हरो भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षद्भूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवो भवान्या सह मिथुनीभूत आस्ते यतः प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकी नाम भवयोर्वीर्येण यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वना समिध्यमान ओजसा पिबति तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धारयन्ति ॥ १७ ॥

ततः=अतललोक; **अधस्तात्**=के नीचे; **वितले**=वितललोक में; **हरः**=भगवान् शिव; **भगवान्**=सर्वशक्तिमान्; **हाटकेश्वरः**=स्वर्ण का स्वामी; **स्व-पार्षद**=अपने पार्षदों से; **भूत-गण**=जो भूत जैसे प्राणी हैं; **आवृतः**=घिर कर; **प्रजापति-सर्ग**=भगवान् ब्रह्मा की उत्पत्ति; **उपबृंहणाय**=जनसंख्या बढ़ाने के उद्देश्य से; **भवः**=भगवान् शिव; **भवान्या सह**=अपनी पत्नी भवानी सहित; **मिथुनी-भूतः**=कामक्रीड़ा में रत हुए; **आस्ते**=रहते हैं; **यतः**=उस लोक (वितल) से; **प्रवृत्ता**=निकल कर; **सरित-प्रवरा**=बड़ी नदी; **हाटकी**=हाटकी; **नाम**=नाम की; **भवयोः वीर्येण**=भगवान् शिव तथा भवानी के वीर्य एवं रज से; **यत्र**=जहाँ; **चित्र-भानुः**=अग्निदेवता; **मातरिश्वना**=वायु द्वारा; **समिध्यमानः**=तेजी से प्रज्ज्वलित किये जाने पर; **ओजसा**=अत्यधिक शक्ति के साथ; **पिबति**=पीता है; **तत्**=वह; **निष्ठ्यूतम्**=फूत्कार करते हुए थूकना; **हाटक-आख्यम्**=हाटक नाम का; **सुवर्णम्**=सोना; **भूषणेन**=अनेक प्रकार के आभूषणों द्वारा; **असुर-इन्द्र**=महान् असुरों के; **अवरोधेषु**=घरों में; **पुरुषः**=नर; **सह**=साथ; **पुरुषीभिः**=उनकी पत्नियाँ तथा स्त्रियाँ; **धारयन्ति**=धारण करती हैं।

अनुवाद

अतललोक के नीचे वितल है जहाँ स्वर्ण खानों के स्वामी भगवान् शिव अपने

गणों, भूतों तथा अन्य जीवों के साथ रहते हैं। पिता रूप भगवान् शिव माता रूप भवानी के साथ विहार करते हैं और उनके वीर्य से हाटकी नामक नदी उत्पन्न होती है। जब वायु द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है तो वह इस नदी को पी जाती है और बाहर थूक देने पर हाटक नामक स्वर्ण उत्पन्न होता है। इस लोक के वासी असुर अपनी पत्नियों सहित इस स्वर्ण के बने आभूषणों से अपने को अलंकृत करते हैं और इस प्रकार से वे अत्यन्त सुखपूर्वक रहते हैं।

तात्पर्य

ऐसा प्रतीत होता है कि भव तथा भवानी अर्थात् भगवान् शिव तथा उनकी पत्नी के सम्भोग करने पर जो वीर्य निकलता है उसे अग्नि में तपाने पर स्वर्ण उत्पन्न किया जा सकता है। कहा जाता है कि मध्ययुग के कीमियागर निम्न धातु से सोना बनाना जानते थे और श्रील सनातन गोस्वामी का भी कथन है कांसे को पारद से अभिकृत करने पर सोना बन सकता है। श्रील सनातन गोस्वामी का यह उल्लेख निम्न वर्ग के पुरुषों को ब्राह्मण बनाने के प्रसंग में हुआ है। उनका कथन है—

यथा कांचनतां याति कांस्यं रस विधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वम् जायते नृणाम्॥

"जिस प्रकार कांसे को पारे से अभिकृत करके उसे सोने में बदला जा सकता है उसी प्रकार निम्न कुल में उत्पन्न मनुष्य को वैष्णव कार्यों में लगाकर ब्राह्मण बनाया जा सकता है।" अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ द्वारा म्लेक्षों तथा यवनों को उचित ढंग से मोड़ कर तथा उन्हें मांसाहार, मादक द्रव्य, व्यभिचार तथा द्यूत-क्रीड़ा से विरत करके ब्राह्मणों में परिणत करने का प्रयास किया जा रहा है। जो कोई इन चार पाप कर्मों का परित्याग करके **हरे कृष्ण महामन्त्र** का जप करता है वह दीक्षा द्वारा शुद्ध ब्राह्मण बन सकता है। ऐसा श्रील सनातन गोस्वामी का प्रस्ताव है।

इसके अतिरिक्त, यदि कोई इस श्लोक से संकेत पाकर यह सीख ले कि कांसे तथा पारे को मिलाकर किस प्रकार जारण और द्रावण करना चाहिए तो वह सस्ता सोना तैयार कर सकता है। यद्यपि मध्ययुग के कीमियागरों ने स्वर्ण बनाने का प्रयास किया, किन्तु वे असफल रहे क्योंकि शायद उन्होंने सही निर्देशों का पालन नहीं किया।

ततोऽधस्तात्सुतले उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोचनात्मजो बलिर्भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वा वटुवामनरूपेण पराक्षिप्तलोकत्रयो भगवदनुकम्पयैव पुनः प्रवेशित

इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेव भगवन्तमाराधनीयमपगतसाध्वस आस्तेऽधुनापि ॥१८॥

ततः अधस्तात् = वितललोक के नीचे; **सुतले** = सुतललोक में; **उदार-श्रवाः** = अत्यन्त प्रसिद्ध; **पुण्यश्लोकः** = अत्यन्त पवित्र एवं चिन्मय भावना में अग्रसर; **विरोचन-आत्मजः** = विरोचन का पुत्र; **बलिः** = बलि महाराज; **भगवता** = श्रीभगवान् के द्वारा; **महा-इन्द्रस्य** = स्वर्ग के राजा इन्द्र का; **प्रियम्** = कुशलता; **चिकीर्षमाणेन** = करने की कामना रखने वाला; **आदितेः** = अदिति से; **लब्ध-कायः** = अपना शरीर प्राप्त करके; **भूत्वा** = प्रकट होकर; **वटु** = ब्रह्मचारी; **वामन-रूपेण** = वामन के रूप में; **पराक्षिप्त** = ऐंठ लिया; **लोक-त्रयः** = तीनों लोक; **भगवत्-अनुकम्पया** = श्रीभगवान् की कृपा से; **एव** = ही; **पुनः** = फिर; **प्रवेशितः** = प्रवेश करने के लिए बाध्य किया; **इन्द्र-आदिषु** = स्वर्ग के राजा जैसे देवताओं के मध्य में; **अविद्यमानया** = अनुपस्थित रहकर; **सुसमृद्धया** = ऐसे ऐश्वर्य से अत्यन्त धनी बनकर; **श्रिया** = सौभाग्य से; **अभिजुष्टः** = आशीष प्राप्त करके; **स्व-धर्मेण** = भक्ति करके; **आराधयन्** = आराधना करके; **तम्** = उसको; **एव** = निश्चय ही; **भगवन्तम्** = श्रीभगवान्; **आराधनीयम्** = अत्यन्त आराध्य; **अपगत-साध्वसः** = भयरहित; **आस्ते** = रहता है; **अधुना अपि** = आज भी।

अनुवाद

वितल के नीचे सुतल नामक अन्य लोक है जहाँ महाराज विरोचन के पुत्र बलि महाराज रहते हैं जो अत्यन्त पवित्र राजा के रूप में विख्यात हैं और वहाँ आज भी निवास करते हैं। स्वर्ग के राजा इन्द्र के कल्याण हेतु भगवान् विष्णु अदिति के पुत्र वामन ब्रह्मचारी के रूप में प्रकट हुए और केवल तीन पग पृथ्वी माँग कर महाराज बलि को छल कर तीनों लोक प्राप्त किया। सर्वस्व दान देने पर बलि से प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें उनका राज्य लौटा दिया और इन्द्र से भी ऐश्वर्यवान् बना दिया। आज भी सुतललोक में श्रीभगवान् की आराधना करते हुए बलि महाराज भक्ति करते हैं।

तात्पर्य

श्रीभगवान् को उत्तमश्लोक कहा गया है जिसका अर्थ है, "जिसकी आराधना श्रेष्ठतम चुने संस्कृत श्लोकों से की जाती है" तथा बलि महाराज सरीखे उनके भक्तों की भी पुण्यश्लोक अर्थात् करुणा बढ़ाने वाले श्लोकों के रूप में आराधना की जाती है। बलि महाराज ने अपना सर्वस्व, अपनी सम्पत्ति, अपना राज्य यहाँ तक कि अपना शरीर भी भगवान् को अर्पित कर दिया (**सर्वात्म-निवेदने बलिः**)। भगवान् ब्राह्मण भिक्षुक के रूप में बलि महाराज के सम्मुख प्रकट हुए और बलि महाराज ने

जो कुछ भी उनके पास था, वह सब कुछ दे डाला। फिर भी, वे दरिद्र नहीं हुए, वे श्रीभगवान् को अपना सर्वस्व अर्पित करके सफल भक्त बन गये और भगवान् के आशीष से उन्हें सब कुछ वापस मिल गया। इसी प्रकार जो लोग श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन के कार्यों को बढ़ावा देने के लिए और इसके उद्देश्यों को पूरा करने के लिए दान देते हैं वे कभी घाटे में नहीं रहते, उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण के आशीर्वाद से सब कुछ वापस मिल जायेगा। दूसरी ओर जो अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ के लिए धन संग्रह करते हैं उन्हें चाहिए कि उसमें से भगवान् की दिव्य सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में एक पाई भी खर्च न करें।

नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत्तद्भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीव-भूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादरसमाहितमनसा सम्प्रतिपादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्बिलनिलयैश्वर्यम् ॥१९॥

नो=न; **एव**=निस्सन्देह; **एतत्**=यह; **साक्षात्कारः**=प्रत्यक्ष फल; **भूमि-दानस्य**=भूमिदान का; **यत्**=जो; **तत्**=वह; **भगवति**=श्रीभगवान् के प्रति; **अशेष-जीव-निकायानाम्**=असंख्य जीवात्माओं का; **जीव-भूत-आत्म-भूते**=जिनका जीवन एवं परम-आत्मा; **परम-आत्मनि**=परम नियन्ता; **वासुदेवे**=भगवान् वासुदेव (श्रीकृष्ण); **तीर्थ-तमे**=तीर्थों में श्रेष्ठ; **पात्रे**=सुयोग्य प्राप्तकर्ता; **उपपन्ने**=पहुँच कर; **परया**=सर्वोच्च; **श्रद्धया**=श्रद्धा द्वारा; **परम-आदर**=अतीव सम्मान सहित; **समाहित-मनसा**=अत्यन्त मनोयोग से; **सम्प्रतिपादितस्य**=प्रदान किया गया; **साक्षात्**=प्रत्यक्षतः; **अपवर्ग-द्वारस्य**=मुक्ति का द्वार; **यत्**=जो; **बिल-निलय**=बिल स्वर्ग का, कृत्रिम स्वर्गलोकों का; **ऐश्वर्यम्**=ऐश्वर्य।

अनुवाद

हे राजन्! बलि महाराज ने श्रीभगवान् वामनदेव को अपना सर्वस्व दान कर दिया, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अपने दान के कारण उन्हें बिल-स्वर्ग में इतना महत् ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। समस्त जीवात्माओं के जीवनमूल श्रीभगवान् प्रत्येक व्यक्ति के अन्तस्थल में मित्र परमात्मा के रूप में निवास करते हैं और उन्हीं के आदेश से प्रत्येक जीव इस जगत् में सुख या दुःख का भोग करता है। भगवान् के दिव्य गुणों पर रीझ कर बलि महाराज ने अपना सर्वस्व उनके चरण-कमलों में अर्पित कर दिया। किन्तु उनका लक्ष्य भौतिक लाभ प्राप्त करना नहीं था, वे तो शुद्ध भक्त बनना चाहते थे। शुद्ध भक्त के लिए मुक्ति के द्वार स्वतः

खुले रहते हैं। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि केवल अपने दान के कारण बलि महाराज को इतना ऐश्वर्य प्राप्त हो सका। जब कोई प्रेमवश शुद्ध भक्त बन जाता है तो उसे भी भगवदिच्छा से अच्छा स्थान प्राप्त होता है। किन्तु कभी यह नहीं समझना चाहिए कि भक्ति के परिणामस्वरूप किसी को सांसारिक ऐश्वर्य प्राप्त होता है। भक्ति का असली फल तो श्रीभगवान् के प्रति शुद्ध प्रेम का प्रकट होना है जो समस्त परिस्थितियों में बना रहता है।

यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन् पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥२०॥

यस्य=जिसका; **ह वाव**=निस्सन्देह; **क्षुत**=भूखे होने पर; **पतन**=गिरना; **प्रस्खलन-आदिषु**=लड़खड़ाना आदि; **विवशः**=असहाय होकर; **सकृत्**=एक बार; **नाम अभिगृणन्**=भगवान् के पवित्र नाम का जप करते हुए; **पुरुषः**=व्यक्ति; **कर्म-बन्धनम्**=कर्मों का बन्धन; **अञ्जसा**=पूर्णतया; **विधुनोति**=धो देता है; **यस्य**=जिसका; **ह**=निश्चय ही; **एव**=इस प्रकार; **प्रतिबाधनम्**=विकर्षण; **मुमुक्षवः**=मुक्ति के इच्छुक प्राणी; **अन्यथा**=अन्यथा; **एव**=निश्चय ही; **उपलभन्ते**=अनुभव करने का प्रयत्न करते हैं।

अनुवाद

यदि भूख से व्याकुल होने, गिरने अथवा ठोकर खाने पर कोई भी इच्छा अथवा अनिच्छा से एक बार भी भगवान् का पवित्र नाम लेता है तो वह सहसा अपने पूर्व कर्मों के प्रभावों से मुक्त हो जाता है। कर्मी लोग भौतिक कार्यों में फँस कर योग साधना में अनेक कष्ट उठाते हैं और अन्य लोग भी वैसी ही स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

तात्पय

यह आवश्यक नहीं है कि श्रीभगवान् की भक्ति करने के पूर्व मनुष्य को अपनी सारी सम्पत्ति उन्हें अर्पित की जाय और बन्धन से मुक्त हो लिया जाय। भक्त को किसी प्रकार के प्रयत्न के विना ही स्वतः मुक्ति प्राप्त होती है। बलि महाराज को उनकी सारी सम्पत्ति इसलिए नहीं वापस मिली कि उन्होंने श्रीभगवान् को दान दिया था। जो भी समस्त भौतिक कामनाओं एवं वरदानों से मुक्त होकर प्रत्येक सुअवसर को भगवान् की देन समझता है उसकी भगवत्सेवा में कभी बाधा नहीं पहुँचती। मुक्ति तथा भुक्ति तो भक्ति के आनुषंगिक फल मात्र हैं। भक्त को मुक्ति के लिए अलग से कुछ नहीं करना होता। श्रीविल्वमंगल ठाकुर का कथन है कि **मुक्तिः स्वयं**

मुकुलितांजलि: सेवतेऽस्मान्—भगवान् के भक्त को मुक्ति के लिए अलग से प्रयत्न नहीं करना पड़ता क्योंकि मुक्ति सदैव उसकी सेवा के लिए उद्यत रहती है ।

इस प्रसंग में श्रीचैतन्यचरितामृत (अन्त्य ३.१७७-१८८) में भगवन्नाम जप के प्रभाव की पुष्टि हरिदास ठाकुर द्वारा वर्णित है—

केह बले,—'नाम हैते हय पापक्षय' ।
केह बले,—'नाम हैते जीवेर मोक्षहय' ।।

कुछ लोगों का कहना है कि भगवान् का पवित्र नाम लेने से पापमय जीवन के समस्त प्रभावों से मुक्त हुआ जा सकता है और कुछ का कहना है कि भगवन्नाम जप से भौतिक बन्धन से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है ।

हरिदास कहेन,—"नामेर एइ दुइ फल नय ।
नामेर फले कृष्णपदे प्रेम उपजय ।।

किन्तु हरिदास ने कहा है कि भगवन्नाम के जप का मनोवांछित फल भौतिक बन्धन से मुक्ति प्राप्त करना या पापमय जीवन के फलों से मुक्त होना नहीं है । भगवन्नाम के जप का वास्तविक परिणाम सुप्त श्रीकृष्णभावना को जाग्रत करना है ।

आनुषंगिक फल नामेर—'मुक्ति', 'पापनाश' ।
ताहार दृष्टान्त .यैछे सूर्येर प्रकाश ।।

हरिदास ठाकुर ने कहा है कि पाप-कर्मों के फलों से मुक्ति तथा स्वतन्त्रता तो भगवन्नाम जप के आनुषंगिक फल हैं । यदि कोई शुद्धभाव से भगवन्नाम जप करता है तो उसे श्रीभगवान् की प्रिय सेवा का पद प्राप्त होता है । इस प्रसंग में हरिदास ने नाम शक्ति की तुलना सूर्यप्रकाश से की है ।

एइ श्लोकेर अर्थ कर पंडितेर गण ।"
सबे कहे,—'तुमि कह अर्थ-विवरण' ।।

उन्होंने समस्त सुधी जनों के समक्ष एक श्लोक रखा किन्तु उन सबों ने उन्हीं से श्लोक का भावार्थ पूछा—

हरिदास कहेन,—"यैछे सूर्येर उदय ।
उदय ना हैते आरम्भे तमेर हय क्षय ।।

हरिदास ने कहा कि ज्योंही सूर्य उदय होने लगता है तो रात्रि का अन्धकार सूर्य-प्रकाश दिखने के पूर्व ही भागने लगता है ।

चौर-प्रेत-राक्षसादिर भय हय नाश।
उदय हैले धर्म-कर्म-आदि परकाश॥

सूर्योदय के पहले ही प्रातःकालीन प्रकाश के भय से रात्रि के समय होने वाले चोरों, भूतों तथा राक्षसों के उत्पात विनष्ट हो जाते हैं और जब धूप निकल आती है तो मनुष्य अपने कार्यों में लग जाता है।

ऐछे नामोदयारम्भे पाप-आदिर क्षय।
उदय कैले कृष्णपदे हय प्रमोदय॥

इसी प्रकार पवित्र नाम का शुद्ध रूप में जप करने के पूर्व ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है और शुद्ध रीति से जप करने पर वह श्रीकृष्ण का प्रेमी बन जाता है।

'मुक्ति' तुच्छ-फल हय नामाभास हैते।
ये मुक्ति भक्त ना लय, से कृष्ण चाहे दिते॥"

यदि श्रीकृष्ण मुक्ति प्रदान करें भी तो भक्त उसे कभी स्वीकार नहीं करता। मुक्ति तो नामाभास अर्थात् पूर्ण प्रकाश दृष्टिगोचर होने के पूर्व ही पवित्र नाम के प्रकाश की झलक से ही प्राप्त हो सकती है।

नामाभास नाम अपराध अर्थात् अपराध करते हुए नाम जप करने तथा शुद्ध जप के मध्य की अवस्था है। भगवान् के नाम-जप की तीन अवस्थाएँ हैं। प्रथम अवस्था में नाम जप करते हुए प्राणी दस प्रकार के अपराध करता है। दूसरी अवस्था नामाभास है जिसमें अपराध बन्द हो जाते हैं और प्राणी विशुद्ध जप की दशा को अग्रसर होता है। तृतीय अवस्था में जब प्राणी पापमुक्त होकर हरे कृष्ण मन्त्र का जप करता है तो श्रीकृष्ण के प्रति उसका सुप्त प्रेम जाग्रत हो उठता है। यही सिद्धि है।

तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥२१॥

तत्=वह; **भक्तानाम्**=भक्तों का; **आत्म-वताम्**=सनक तथा सनातन जैसे आत्मज्ञानी पुरुषों का; **सर्वेषाम्**=सबों का; **आत्मनि**=आत्मा रूप श्रीभगवान् तक; **आत्म-दे**=जो बिना हिचक के अपने आप को दे देता है; **आत्मतया**=जो परम आत्मा है, परमात्मा; **एव**=निस्सन्देह।

अनुवाद

प्रत्येक प्राणी के हृदय में परमात्मा के रूप में स्थित श्रीभगवान् नारद जैसे भक्तों के हाथों बिके हुए हैं। दूसरे शब्दों में, श्रीभगवान् ऐसे ही भक्तों को प्यार करते हैं

और जो उन्हें शुद्ध भाव से प्यार करते हैं वे उसके हाथों बिक जाते हैं। यहाँ तक कि महान् आत्मसाक्षात्कार करने वाले योगी, यथा चारों अश्विनी कुमार भी अपने अन्तर् में परमात्मा का साक्षात्कार करके दिव्य आनन्द प्राप्त करते हैं।

तात्पर्य

श्रीभगवान् बलि महाराज के द्वारपाल इसलिए नहीं बने कि उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था वरन् इसलिए कि वे ईश्वर के प्रेमी के रूप में सिद्धि प्राप्त कर चुके थे।

न वै भगवान्नूनममुष्यानुजग्राह यदुत पुनरात्मानुस्मृतिमोषणं मायामय-भोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥२२॥

न=नहीं; वै=निस्सन्देह; **भगवान्**=श्रीभगवान्; **नूनम्**=निश्चय ही; **अमुष्य**=बलि महाराज को; **अनुजग्राह**=अनुग्रह किया; **यत्**=क्योंकि; **उत**=निश्चय ही; **पुनः**=फिर; **आत्म-अनुस्मृति**=श्रीभगवान् के स्मरण का; **मोषणम्**=लूटने वाला; **माया-मय**=माया का एक गुण; **भोग-ऐश्वर्यम्**=भौतिक ऐश्वर्य; **एव**=निश्चय ही; **आतनुत**=विस्मृत; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

श्रीभगवान् ने बलि महाराज को भौतिक सुख तथा ऐश्वर्य प्रदान करके अपना अनुग्रह प्रदर्शित नहीं किया क्योंकि इनसे ईश्वर की प्रेमाभक्ति भूल जाती है। भौतिक ऐश्वर्य का परिणाम यह होता है कि फिर भगवान् में मन नहीं लगता।

तात्पर्य

दो प्रकार के ऐश्वर्य होते हैं—एक जो कर्मों से जन्य है और भौतिक है तथा दूसरा आध्यात्मिक है। शरणागत जीव श्रीभगवान् पर पूर्णतः आश्रित होता है और उसे इन्द्रिय भोग के लिए भौतिक ऐश्वर्य की कामना नहीं रहती। अतः यदि शुद्ध भक्त के पास विपुल ऐश्वर्य दिखे तो वह उसके कर्म के कारण नहीं होता वरन् उसकी भक्ति के कारण होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उसे यह पद इसलिए प्राप्त है, क्योंकि भगवान् चाहते हैं कि वह सरलतापूर्वक एवं वैभवपूर्ण ढंग से उनकी सेवा कर सके। नवदीक्षित भक्त पर भगवान् विशेष दयालु रहते हैं, क्योंकि आर्थिक दृष्टि से वह निर्धन हो जाता है। यह भगवत्कृपा ही है अन्यथा नवदीक्षित भक्त ऐश्वर्य प्राप्त करके भगवान् की सेवा भूल जाता है। यदि भगवान् किसी महान् भक्त को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं तो इसे परम अवसर ही मानना चाहिए।

देवताओं द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्य से भक्त भगवान् को भूल जाता है, किन्तु बलि महाराज को भगवान् के प्रति भक्ति बनाये रखने के लिए ऐश्वर्य का वरदान मिला था। उनकी भक्ति को माया छू तक नहीं गई थी।

यत्तद्भगवतानधिगतान्योपायेन याच्ञाच्छलेनापहृतस्वशरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च सम्प्रतिमुक्तो गिरिदर्यां चापविद्ध इति होवाच ॥२३॥

यत्=जो; **तत्**=वह; **भगवता**=श्रीभगवान् द्वारा; **अनधिगत-अन्य-उपायेन**=जिसे अन्य साधनों से नहीं देखा जा सकता; **याच्ञा-छलेन**=याचना (भिक्षा) के बहाने; **अपहृत**=ठगा गया; **स्व-शरीर-अवशेषित**=केवल अपना शरीर शेष रह जाने पर; **लोक-त्रयः**=तीनों लोक; **वरुण-पाशैः**=वरुण के पाश द्वारा; **च**=तथा; **सम्प्रति-मुक्तः**=पूर्णतया बँधा हुआ; **गिरि-दर्याम्**=पर्वत की गुफा में; **च**=तथा; **अपविद्धः**=रोका जाकर; **इति**=इस प्रकार; **ह**=निस्सन्देह; **उवाच**=कहा।

अनुवाद

जब श्रीभगवान् को बलि महाराज का सर्वस्व ले लेने की कोई युक्ति न सूझी तो उन्होंने भिक्षा माँगने के बहाने तीनों लोक माँग लिए। इस प्रकार उनका शरीरमात्र शेष बच रहा, किन्तु तो भी भगवान् सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने बलि महाराज को वरुण पाश से बन्दी बना लिया और एक पर्वत की गुफा में ले जाकर फेंक दिया। यद्यपि बलि महाराज का सर्वस्व ले लिया गया और उन्हें बन्दी बना कर गुफा में डाल दिया गया था तो भी महान् भक्त होने के कारण वे इस प्रकार बोले।

नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविन्द्रो यस्य सचिवो मन्त्राय वृत एकान्ततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचतात्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यमतिगम्भीरवयसः कालस्य मन्वन्तर-परिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदम् ॥२४॥

नूनम्=निश्चय ही; **बत**=धिक्!; **अयम्**=यह; **भगवान्**=अत्यन्त विद्वान्; **अर्थेषु**=आत्महित के लिए; **न**=नहीं; **निष्णातः**=परम अनुभवी; **यः**=जो; **असौ**=स्वर्ग का राजा; **इन्द्रः**=इन्द्र; **यस्य**=जिसका; **सचिवः**=मुख्य आमात्य, मंत्री; **मन्त्राय**=मन्त्रणा के लिए, सलाह के लिए; **वृतः**=चुना हुआ; **एकान्ततः**=अकेला; **बृहस्पतिः**=बृहस्पति; **तम्**=उसको; **अतिहाय**=उपेक्षा करके; **स्वयम्**=स्वयं; **उपेन्द्रेण**=उपेन्द्र (भगवान् वामनदेव) की सहायता से; **आत्मानम्**=मुझसे;

अयाचत=प्रार्थना की; **आत्मनः**=अपने लिए; **च**=तथा; **आशिषः**=आशीर्वाद (तीनों लोक); **नो**=नहीं; **एव**=ही; **तत्-दास्यम्**=भगवान् की सप्रेम सेवा; **अति**=अत्यधिक; **गम्भीर-वयसः**=अपार अवधि वाला; **कालस्य**=काल का; **मन्वन्तर-परिवृत्तम्**=मनु के जीवन के अन्त होने पर परिवर्तित; **कियत्**=क्या लाभ ?; **लोक-त्रयम्** =तीनों लोक; **इदम्**=इन।

अनुवाद

धिक् ! स्वर्ग का राजा इन्द्र कितना दयनीय है कि अत्यन्त विद्वान् और शक्तिमान् होकर तथा बृहस्पति को अपना प्रधान सचिव बनाकर के भी आध्यात्मिक उन्नति के विषय में सर्वथा अज्ञानी है। बृहस्पति भी बुद्धिमान् नहीं है क्योंकि उसने अपने शिष्य इन्द्र को उचित शिक्षा नहीं दी। भगवान् वामनदेव इन्द्र के द्वार पर खड़े हुए थे, किन्तु उनसे इन्द्र ने दिव्य सेवा का वरदान न माँग कर उन्हें मेरे द्वार पर अपने इन्द्रिय भोग के लिए तीन लोकों की प्राप्ति के लिए भिक्षा हेतु भेज दिया। तीनों लोकों की प्रभुता अत्यन्त महत्त्वहीन है क्योंकि मनुष्य के पास चाहे जितना भी ऐश्वर्य क्यों न रहे वह एक मन्वन्तर तक ही चलता है, जो अनन्त काल का एक क्षुद्रांश मात्र है।

तात्पर्य

बलि महाराज इतने शक्तिशाली थे कि उन्होंने इन्द्र से युद्ध करके तीनों लोकों पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इन्द्र अत्यन्त बुद्धिमान् था, अतः उसने भगवान् से वामनदेव को अपनी भक्ति में संलग्न न करके अपने लिए ऐसे धन-धान्य की याचना के लिए कहा जो एक मन्वन्तर में समाप्त हो जाता है। मनु की आयु बहत्तर युग आँकी गई है। एक युग में ४३,००,००० वर्ष होते हैं, अतः मनु का जीवनकाल ३०,९६,००,००० वर्ष हुआ। देवताओं का भौतिक ऐश्वर्य एक मन्वन्तर तक ही रहता है। काल दुस्तर है ! नियतकाल, भले ही लाखों वर्ष क्यों न हो, तुरन्त बीत जाता है। देवताओं का ऐश्वर्य काल की सीमाओं के भीतर ही रहता है। अतः बलि महाराज को यह पछतावा रहा कि अत्यन्त विद्वान् होते हुए भी इन्द्र अपनी बुद्धि का समुचित उपयोग नहीं कर पाया, क्योंकि वामनदेव से भगवान् की भक्ति न माँग कर इन्द्र ने उनका उपयोग भौतिक सम्पत्ति माँगने के लिए किया। यद्यपि इन्द्र बुद्धिमान् था और उसका प्रधान सचिव बृहस्पति भी बुद्धिमान् था, किन्तु, इनमें से किसी ने भी भगवान् वामनदेव की प्रेमाभक्ति करने का वर नहीं माँगा। अतः बलि महाराज इन्द्र पर पश्चात्ताप करते हैं।

यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे न तु स्वपित्र्यं यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतोपरते खलु स्वपितरि ॥२५॥

यस्य=जिसका (श्रीभगवान् का); **अनुदास्यम्**=सेवा; **एव**=निश्चय ही; **अस्मत्**=हमारा; **पिता-महः**=पितामह, बाबा; **किल**=निस्सन्देह; **वव्रे**=स्वीकृत; **न**=नहीं; **तु**=लेकिन; **स्व**=अपना; **पित्र्यम्**=पैतृक सम्पत्ति; **यत्**=जो; **उत्**=निश्चय ही; **अकुतः-भयम्**=निर्भीकता; **पदम्**=पद, स्थान; **दीयमानम्**=प्रदान किये जाने पर; **भगवतः**=श्रीभगवान् की अपेक्षा; **परम्**=अन्य; **इति**=इस प्रकार; **भगवता**=श्रीभगवान् द्वारा; **उपरते**=बध किये जाने पर; **खलु**=निस्संदेह; **स्व-पितरि**=अपना पिता।

अनुवाद

बलि महाराज ने कहा—मेरे पितामह प्रह्लाद महाराज ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने आत्महित पहचाना। उनके पिता हिरण्यकशिपु की मृत्यु के पश्चात् भगवान् नृसिंहदेव ने प्रह्लाद को उनके पिता का साम्राज्य प्रदान करने के साथ ही भौतिक बन्धनों से मुक्ति प्रदान करनी चाही, किन्तु प्रह्लाद ने इनमें से किसी को भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सोचा कि मुक्ति तथा भौतिक ऐश्वर्य भक्ति में बाधक हैं, अतः श्रीभगवान् से ऐसे वरदान प्राप्त कर लेना भगवान् का वास्तविक अनुग्रह नहीं है। फलस्वरूप कर्म तथा ज्ञान के फलों को न स्वीकार करते हुए प्रह्लाद महाराज ने भगवान् से केवल उनके दास की भक्ति में अनुरक्त रहने का वर माँगा।

तात्पर्य

श्रीचैतन्य महाप्रभु का उपदेश है कि शुद्ध भक्त अपने को परमेश्वर के दास का भी दासानुदास माने (**गोपीभर्तुः पादकमलयोर दासदासानुदासः**)। वैष्णव दर्शन में किसी को प्रत्यक्ष दास नहीं बनना चाहिए। प्रह्लाद महाराज को ऐश्वर्यपूर्ण पद तथा ब्रह्मा में तदाकार होने की स्वच्छन्दता जैसे आशीर्वाद प्राप्त थे, किन्तु उन्होंने इन्हें अस्वीकार कर दिया। उन्होंने भगवान् के दासों के भी दास की सेवा में रत रहना श्रेयस्कर समझा। इसीलिए बलि महाराज ने कहा है कि चूँकि उनके पितामह प्रह्लाद महाराज ने भौतिक ऐश्वर्य तथा बन्धन से मुक्ति जैसे श्रीभगवान् के आशीर्वादों को ठुकरा दिया था, इसलिए वे आत्महित को भलीभाँति जानने वाले थे।

तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वास्मद्विधः परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति ॥२६॥

तस्य=प्रह्लाद महाराज का; **महा-अनुभावस्य**=जो सिद्ध भक्त थे; **अनुपथम्**=पथ; **अमृजित-कषायः**=भौतिकता से दूषित पुरुष; **कः**=क्या; **वा**=अथवा; **अस्मात्-विधः**=हमारे तुल्य; **परिहीण-भगवत्-अनुग्रहः**=श्रीभगवान् के अनुग्रह बिना; **उपजिगमिषति**=अनुसरण करना चाहता है; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

बलि महाराज ने कहा—हमारे तुल्य पुरुष, जो अब भी भौतिक सुखों में लिप्त हैं, जो तीनों गुणों से दूषित हैं और जिन पर श्रीभगवान् के अनुग्रह का अभाव है, वे भला कैसे ईश्वर के सिद्ध भक्त प्रह्लाद महाराज के परम मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं ?

तात्पर्य

कहा जाता है कि आत्मसाक्षात्कार के लिए मनुष्य को भगवान् ब्रह्मा, देवर्षि नारद, भगवान् शिव तथा प्रह्लाद महाराज जैसे महापुरुषों का अनुसरण करना चाहिए। यदि पूर्व आचार्यों तथा विद्वानों के पदचिह्नों पर चला जाय तो भक्ति का मार्ग बिल्कुल ही कठिन नहीं है, किन्तु जो गुणों के द्वारा कलुषित हो चुके हैं उनके लिए चल पाना कठिन है। यद्यपि बलि महाराज अपने पितामह के पदचिह्नों का अनुसरण कर रहे थे, किन्तु अपनी विनयशीलतावश यह सोच रहे थे कि वे ऐसा नहीं कर रहे है। भक्ति के नियमों का पालन करने वाले सिद्ध भक्तों की यह विशेषता है कि वे अपने को सामान्य व्यक्ति समझते हैं। यह विनयशीलता का दिखावा नहीं है; एक वैष्णव वास्तव में इसी प्रकार सोचता है, फलस्वरूप अपने परम पद को कभी स्वीकार नहीं करता।

तस्यानुचरितमुपरिष्टाद्विस्तरिष्यते यस्य भगवान् स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निजजनानुकम्पितहृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजनायुतायुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥२७॥

तस्य=बलि महाराज का; **अनुचरितम्**=चरित्र, वर्णन; **उपरिष्टात्**=बाद के, परवर्ती (आठवें स्कंध में); **विस्तारिष्यते**=विस्तार से वर्णन किया जायेगा; **यस्य**=जिसका; **भगवान्**=श्रीभगवान्; **स्वयम्**=स्वयं; **अखिल-जगत्-गुरुः**=तीनों लोकों के गुरु; **नारायणः**=साक्षात् नारायण; **द्वारि**=द्वार पर; **गदा-पाणिः**=हाथ में गदा लिये हुए; **अवतिष्ठते**=खड़े रहते हैं; **निज-जन-अनुकम्पित-हृदयः**—जिनका हृदय अपने भक्तों के प्रति सदैव दया से पूर्ण रहता है; **येन**=जिसके द्वारा; **अंगुष्ठेन**=बड़े अँगूठे से; **पदा**=अपने पाँव का; **दश-कन्धरः**=दश सिरों वाला, रावण; **योजन-अयुत-अयुतम्**=अस्सी हजार मील की दूरी; **दिक्-विजये**=बलि महाराज पर विजय प्राप्त करने हेतु; **उच्चाटितः**=फेंक दिया।

अनुवाद

शुकदेव गोस्वामी बोले—हे राजन्! भला मैं बलि महाराज के चरित्र का कैसे

गुणगान कर सकता हूँ ? तीनों लोकों के स्वामी श्रीभगवान्, जो अपने भक्त पर अत्यन्त दयालु हैं, महाराज बलि के द्वार पर गदा धारण किये खड़े रहते हैं। जब पराक्रमी असुर रावण बलि महाराज पर विजय पाने के लिए आया तो वामनदेव ने उसे अपने पैर के अँगूठे से अस्सी हजार मील दूरी पर फेंक दिया। मैं बलि महाराज के चरित्र का विस्तृत वर्णन आगे (आठवें स्कंध में) करूँगा।

ततोऽधस्तात्तलातले मयो नाम दानवेन्द्रस्त्रिपुराधिपतिर्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशं चिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्तत्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो विगतसुदर्शनभयो महीयते ॥२८॥

ततः = सुतल नामक लोक; अधस्तात् = नीचे; तलातले = तलातल नामक लोक में; मयः = मय; नाम = नाम का; दानव-इन्द्रः = दानव, दानवों का राजा; त्रिपुर-अधिपतिः = तीनों पुरियों का ईश्वर; भगवता = सर्वशक्तिमान् द्वारा; पुरारिणा = भगवान् शिव, जिन्हें त्रिपुरारी कहा जाता है; त्रिलोकी = तीनों लोकों का; शम् = सौभाग्य; चिकीर्षुणा = कामना करने वाला; निर्दग्ध = जला हुआ; स्व-पुर-त्रयः = जिसकी तीनों पुरियाँ; तत्-प्रसादात् = भगवान् शिव के अनुग्रह से; लब्ध = प्राप्त किया गया; पदः = राज्य; मायाविनाम् आचार्यः = समस्त मायावियों के स्वामी; महा-देवेन = भगवान् शिव के द्वारा; परिरक्षितः = सुरक्षित; विगत सुदर्शन-भयः = जो श्रीभगवान् तथा उनके सुदर्शन चक्र से भयभीत नहीं है; महीयते = आराधित है।

अनुवाद

सुतल लोक के नीचे तलातल नामक अन्य लोक है जो मय दानव द्वारा शासित है। मय इन्द्रजाल की शक्तियों से पूर्ण, समस्त मायावियों के आचार्य (स्वामी) रूप में विख्यात है। एक बार भगवान् शिव ने, जिन्हें त्रिपुरारी कहा जाता है, तीनों लोकों के लाभ के लिए मय के तीनों राज्यों में अग्नि लगा दी, किन्तु जब बाद में प्रसन्न हुए तो उसका राज्य लौटा दिया। तब से भगवान् शिव मय दानव की रक्षा करते हैं, इसीलिए वह सोचता है कि उसे श्रीभगवान् के सुदर्शन चक्र का भय नहीं है।

ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियसुषेणादिप्रधाना महाभोगवन्तः पतत्त्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बसङ्गेन क्वचित्प्रमत्ता विहरन्ति ॥२९॥

ततः=तलातल लोक से; **अधस्तात्**=नीचे; **महातले**=महातल नामक लोक में; **काद्रवेयाणाम्**=कद्रू की सन्तानों का; **सर्पाणाम्**=जो सर्प हैं; **न एक-शिरसाम्**=जो अनेक फनों वाले हैं; **क्रोध-वशः**=सदैव क्रोध के वशीभूत; **नाम**=नामक; **गणः**=गण, समूह; **कुहक**=कुहक; **तक्षक**=तक्षक; **कालिय**=कालिय; **सुषेण**=सुषेण; **आदि**=इत्यादि; **प्रधानाः**=प्रमुख; **महा-भोगवन्तः**=समस्त प्रकार के भोगों में लिप्त; **पतत्रि-राज-अधिपतेः**=समस्त पक्षियों के अधिपति, गरुड़ से; **पुरुष-वाहात्**=श्रीभगवान् को ले जाने वाला; **अनवरतम्**=निरन्तर; **उद्विजमानाः**=भयभीत; **स्व**=अपने आप; **कलत्र-अपत्य**=स्त्रियों तथा सन्तानों; **सुहृत्**=मित्र; **कुटुम्ब**=कुटुम्बीजन; **संगेन**=साथ में; **क्वचित्**=कभी-कभी; **प्रमत्ताः**=क्रुद्ध; **विहरन्ति**=विहार करते हैं, खेलते हैं।

अनुवाद

तलातल के नीचे का लोक महातल कहलाता है। यह सदैव क्रुद्ध रहने वाले अनेक फनों वाले कद्रू की सर्प-सन्तानों का आवास है। इन सर्पों में कुहक, तक्षक, कालिय तथा सुषेण प्रमुख हैं। महातल के सारे सर्प भगवान् विष्णु के वाहन गरुड़ के भय से सदैव आतंकित रहते हैं, किन्तु फिर भी उनमें से कुछ अपनी पत्नियों, सन्तानों, मित्रों तथा कुटुम्बियों के साथ-साथ विहार करते रहते हैं।

तात्पर्य

यहाँ यह बताया गया है कि महातल लोक के सर्प अत्यन्त शक्तिशाली तथा अनेक फनों वाले होते हैं। वे अपनी स्त्रियों तथा पुत्रों के साथ रहते हुए अपने को परम सुखी मानते हैं, यद्यपि उन्हें गरुड़ का भय बना रहता है जो उनको नष्ट करने के लिए आता है। यही भौतिक जीवन का विधान है। भले ही कोई कितनी ही कठिन परिस्थिति में क्यों न रहे, तो भी वह अपनी पत्नी, पुत्र, मित्र तथा कुटुम्बीजनों के मध्य अपने को सुखी मानता है।

ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहतबलावलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमयेन्द्रदूत्या वाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद्बिभ्यति ॥३०॥

ततः अधस्तात्=महातल के भी नीचे; **रसातले**=रसातल में; **दैतेयाः**=दिति

के पुत्रों; **दानवाः**=दनु के पुत्र; **पणयः नाम**=पणि नामक; **निवात-कवचाः**=निवात कवच; **कालेयाः**=कालेय; **हिरण्य-पुरवासिनः**=हिरण्य-पुरवासी; **इति**=इस प्रकार; **विबुध-प्रत्यनीकाः**=देवताओं के शत्रु; **उपत्याः**=जन्म के; **महा-ओजसः**=अत्यन्त ओजस्वी; **महा-साहसिनः**=अत्यन्त क्रूर; **भगवतः**=भगवान् का; **सकल-लोक-अनुभावस्य**=जो समस्त लोकों के लिए मंगलकारी है; **हरेः**=श्रीभगवान् का; **एव**=निश्चय ही; **तेजसा**=सुदर्शन चक्र से; **प्रतिहत**=पराजित; **बल**=शक्ति; **अवलेपाः**=तथा गर्व (शारीरिक बल के कारण); **बिल-ईशयाः**=सर्प; **इव**=सदृश; **वसन्ति**=रहते हैं; **ये**=जो; **वै**=निस्सन्देह; **सरमया**=सरमा द्वारा; **इन्द्र-दूत्या**=इन्द्र की दूती; **वाग्भिः**=शब्दों से; **मन्त्र-वर्णाभिः**=मन्त्रों के रूप में; **इन्द्रात्**=राजा इन्द्र से; **बिभ्यति**=डरते हैं।

अनुवाद

महातल के नीचे रसातल नामक लोक है जो दिति तथा दनु के आसुरी पुत्रों का निवास है। ये पणि, निवात-कवच, कालेय तथा हिरण्य-पुरवासी कहलाते हैं। ये देवताओं के शत्रु हैं और सर्पों की भाँति बिलों में रहते हैं। ये जन्म से ही अत्यन्त शक्तिशाली एवं क्रूर हैं और अपनी शक्ति का गर्व होने पर भी वे समस्त लोकों के अधिपति श्रीभगवान् के सुदर्शन चक्र द्वारा सदैव पराजित होते हैं। जब इन्द्र की दूती सरमा शाप देती है तो महातल के सर्प असुर इन्द्र से अत्यन्त भयभीत हो उठते हैं।

तात्पर्य

कहा जाता है कि इन सर्पासुरों एवं इन्द्र के बीच घमासान युद्ध हुआ। इन्द्र की दूती सरमा से जब इन पराजित असुरों को भेंट हुई तो वह मंत्र का जप कर रही थी, अतः वे इससे डर गये और रसातल नामक लोक में निवास कर रहे हैं।

ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शङ्खकुलिकमहाशङ्खश्वेतधनञ्जयधृतराष्ट्रशङ्खचूडकम्बलाश्वतरदेवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसन्ति येषामु ह वै पञ्चसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥३१॥

ततः अधस्तात्=रसातल के नीचे; **पाताले**=पाताल लोक में; **नाग-लोक-पतयः**=नागलोकों के स्वामी; **वासुकि**=वासुकि से; **प्रमुखाः**=अग्रणी; **शंख**=शंख; **कुलिक**=कुलिक; **महा-शंख**=महाशंख; **श्वेत**=श्वेत; **धनञ्जय**=धनञ्जय; **धृतराष्ट्र**

=धृतराष्ट्र; **शंख-चूड**=शंखचूड़; **कम्बल**=कम्बल; **अश्वतर**=अश्वतर; **देव-दत्त**=देवदत्त; **आदयः**=आदि; **महा-भोगिनः**=अत्यन्त भोगी; **महा-अमर्षाः**= प्रकृति से अत्यन्त ईर्षालु; **निवसन्ति**=रहते हैं; **येषाम्**=जिनका; **उ ह**=निश्चय ही; **वै**=निस्संदेह; **पंच**=पाँच; **सप्त**=सात; **दश**=दस; **शत**=एक सौ; **सहस्र** =एक हजार; **शिरषाणाम्**=फनों वालों का; **फणासु**=उन फणों पर; **विरचिताः** स्थिर; **महा-मणयः**=अत्यन्त मूल्यवान् मणि; **रोचिष्णवः**=तेज से पूर्ण; **पाताल-विवर**=पाताल लोक की गुफाएँ; **तिमिर-निकरम्**=अंधकार-राशि; **स्व-रोचिषा**= उनके फणों के तेज से; **विधमन्ति**=भगाते हैं।

अनुवाद

रसातल के नीचे पाताल या नागलोक नामक अन्य लोक हैं जहाँ नागलोक के स्वामी अनेक आसुरी सर्प रहते हैं, यथा—शंख, कुलिक, महाशंख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूड़, कम्बल, अश्वतर तथा देवदत्त। इनमें से वासुकि प्रमुख हैं। वे अत्यन्त क्रुद्ध रहते हैं और उनमें से कुछ के पाँच, कुछ के सात, कुछ के दस, कुछ के सौ और अन्यों के एक हजार फन होते हैं। इन फनों में बहुमूल्य मणि सुशोभित हैं और इन मणियों से निकला प्रकाश बिल-स्वर्ग के सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करता है।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चम-स्कन्धे राह्वादिस्थितिबिलस्वर्गमर्यादानिरूणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, "नीचे के स्वर्गीय लोकों का वर्णन" शीर्षक नामक चौवीसवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त भाष्य समाप्त हुआ।

पचीसवाँ अध्याय

भगवान् अनन्त की महिमा

इस अध्याय में शुकदेव गोस्वामी ने भगवान् शिव के उत्स अनन्त का वर्णन किया है। भगवान् अनन्त पाताल लोक के मूल में निवास करते हैं। वे भगवान् शिव के हृदय-देश में सदैव निवास करने वाले हैं और इस ब्रह्माण्ड का संहार करने में उनकी सहायता करते हैं। अनन्त बताते हैं कि इस विश्व का कैसे संहार हो इसलिए वे कभी-कभी **तामसी** अर्थात् तमोगुणी कहे जाते हैं। वे भौतिकभावना के अधिष्ठाता देव हैं और चूँकि वे समस्त जीवों को आकर्षित कर लेते हैं, इसलिए कभी-कभी भगवान् संकर्षण भी कहलाते हैं। यह समस्त भौतिक जगत् भगवान् संकर्षण के फनों पर टिका है। वह अपने शिरोभाग से भगवान् शिव को इस जगत् के संहार हेतु शक्ति प्रदान करते हैं। चूँकि संकर्षण श्रीभगवान् के स्वांश हैं, इसलिए अनेक भक्तजन उनकी प्रार्थना करते हैं और पाताललोक के समस्त सुर, असुर, गंधर्व, विद्याधर तथा सुधीजन उनको नमस्कार करते हैं। भगवान् उनसे मृदु वाणी बोलते हैं। इनका शरीर चिन्मय एवं अत्यन्त सुन्दर है। जो कोई किसी प्रामाणिक गुरु से इनके सम्बन्ध में सुनता है वह समस्त भवबन्धनों से छूट जाता है। सम्पूर्ण भौतिक शक्ति (माया) अनन्तदेव की योजना के अनुसार कार्यशील है। अतः उन्हें इस भौतिक सृष्टि का मूल कारण मानना चाहिए। उनके बल का कोई अन्त नहीं है, न ही असंख्य मुखों से उनका कोई वर्णन कर सकता है। इसीलिए वे अनन्त कहे जाते हैं। समस्त जीवों के प्रति दयालु होने के कारण उनका चिन्मय शरीर प्रकट हुआ। इस प्रकार शुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित् से अनन्तदेव के यश का वर्णन करते हैं।

श्रीशुक उवाच

तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्यातानन्त इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः सङ्कर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं यं सङ्कर्षणमित्याचक्षते ॥ १ ॥

श्री-शुकः उवाच=श्रीशुकदेव गोस्वामी वोले; **तस्य**=पाताललोक का; **मूल-देशे**=मूलभाग में; **त्रिशत्**=तीस; **योजन**=आठ मील की दूरी; **सहस्र-अन्तरे**=एक हजार (योजन) की दूरी पर; **आस्ते**=स्थित है; **यो**=जो; **वै**=निश्चय ही; **कला**=अंश भाग का अंश; **भगवतः**=श्रीभगवान् का; **तामसी**=अन्धकार से सम्बन्धित; **समाख्याता**=कहलाने वाला; **अनन्तः**=अनन्त; **इति**=इस प्रकार; **सात्वतीयाः**=भक्तगण; **द्रष्टृ-दृश्ययोः**=पदार्थ तथा आत्मा का; **संकर्षणम्**=परस्पर आकर्षित करने वाला; **अहम्**=मैं; **इति**=इस प्रकार; **अभिमान**=आत्म-सम्मान; **लक्षणम्**=लक्षण; **यम्**=जिसको; **संकर्षणम्**=संकर्षण; **इति**=इस प्रकार; **आचक्षते**=विद्वान् कहते हैं।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित् से कहा, हे राजन्! पाताल लोक से २,४०,००० मील नीचे श्रीभगवान् के अन्य अवतार निवास करते हैं। वे भगवान् अनन्त या भगवान् संकर्षण के रूप में भगवान् विष्णु के अंश भाग हैं। वे सदैव दिव्य पद पर आसीन हैं, किन्तु तमोगुणी देवता भगवान् शिव के आराध्य होने के कारण कभी-कभी तामसी कहलाते हैं। भगवान् अनन्त बद्धजीवों के अहं तथा रजोगुण के प्रमुख देवता हैं। जब बद्धजीव यह सोचता है कि यह संसार भोग्य और मैं उसका भोक्ता हूँ तो यह जीवन-दृष्टि संकर्षण द्वारा प्रेरित होती है। इस प्रकार संसारी बद्धजीव स्वयं को ही परमेश्वर मानने लगता है।

तात्पर्य

मायावादी दार्शनिकों की तरह ही मनुष्यों का एक वर्ग है जो **अहं ब्रह्मास्मि** तथा **सोऽहं** वैदिक मन्त्रों का अर्थ "मैं ही परब्रह्म हूँ" तथा "मैं ईश्वर से अभिन्न हूँ" लगाता है। इस प्रकार की झूठी विचारधारा एक प्रकार का मोह है। इसका वर्णन श्रीमद्भागवत (५.५.८) में **जनस्य मोहोऽयमहं ममेति** के रूप में हुआ है। जैसा कि उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है इस झूठी विचारधारा के प्रमुख श्रीमूर्ति भगवान् संकर्षण हैं। श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (१५.१५) में इसकी पुष्टि की है—

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।

"मैं सब प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ और मुझसे ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति होती है।" ईश्वर सबों के हृदयों में संकर्षण रूप में स्थित हैं और जब कोई असुर अपने आपको परमेश्वर से एकाकार मानता है तो ईश्वर उसे उस अन्धकार में रहने देते हैं। यद्यपि ऐसा आसुरी जीव परमेश्वर का एक नगण्य विभिन्नांश मात्र होता है,

किन्तु जीव अपनी वास्तविक स्थिति को भूलकर अपने को परमेश्वर समझने लगता है। चूँकि ऐसी विस्मृति भगवान् संकर्षण द्वारा उत्पन्न की जाती है इसलिए कभी-कभी उन्हें **तामसी** कहा जाता है। तामसी शब्द से यह इंगित नहीं होता कि उनका भौतिक शरीर है। वे सदैव दिव्य हैं, किन्तु भगवान् शिव की परम-आत्मा होने के कारण संकर्षण कभी-कभी तामसी कहलाते हैं।

यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥ २ ॥

यस्य=जिसका; **इदम्**=यह; **क्षिति-मण्डलम्**=ब्रह्माण्ड; **भगवतः**=श्रीभगवान् का; **अनन्त-मूर्तेः**=अनन्तदेव के रूप में; **सहस्र-शिरसः**=एक हजार फनों वाले; **एकस्मिन्**=एक में; **एव**=केवल; **शीर्षणि**=फन; **ध्रियमाणम्**=रखा हुआ; **सिद्धार्थ इव**=(तथा) श्वेत सरसों के दाने के तुल्य; **लक्ष्यते**=दिखाई पड़ता है।

अनुवाद

शुकदेव गोस्वामी ने कहा—भगवान् अनन्त के सहस्र फनों में से एक के ऊपर रखा हुआ यह विशाल ब्रह्माण्ड श्वेत सरसों के दाने के समान प्रतीत होता है। भगवान् अनन्त के फन की तुलना में यह नगण्य है।

यस्य ह वा इदं कालेनोपसञ्जिहीर्षतोऽमर्षविरचितरुचिर-भ्रमद्भ्रुवोरन्तरेण साङ्कर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्षस्त्रिशिखं शूलमुत्तम्भयन्नुदतिष्ठत् ॥ ३ ॥

यस्य=जिसका; **ह वा**=निस्संदेह; **इदम्**=यह (जगत्); **कालेन**=कालक्रम से; **उपसंजिहीर्षतः**=संहार करने की कामना करते हुए; **अमर्ष**=क्रोध से; **विरचित**=निर्मित; **रुचिर**=अत्यन्त सुन्दर; **भ्रमत्**=घूमते हुए; **भ्रुवोः**=भृकुटियाँ; **अन्तरेण**=के भीतर से; **संकर्षणः नाम**=संकर्षण नामक; **रुद्रः**=भगवान् शिव के अवतार, रुद्र; **एकादश-व्यूहः**=ग्यारह विस्तारों वाला; **त्रि-अक्षः**=तीन नेत्र; **त्रि-शिखम्**=तीन नोकों वाले; **शूलम्**=त्रिशूल; **उत्तम्भयन्**=उठाते हुए; **उदतिष्ठत्**=उठा।

अनुवाद

प्रलयकाल उपस्थित होने पर जब भगवान् अनन्तदेव सम्पूर्ण सृष्टि का संहार करना चाहते हैं तो वे कुछ क्रुद्ध होते हैं। तब उनकी दोनों भृकुटियों के बीच से

त्रिशूल धारण किये हुए त्रिनेत्र रुद्र प्रकट होते हैं। यह रुद्र, जो संकर्षण कहलाते हैं ग्यारह रुद्रों अर्थात् भगवान् शिव के अवतारों का व्यूह होता है। वह सम्पूर्ण सृष्टि के संहार हेतु प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

प्रत्येक सृष्टि में जीवात्माओं को अवसर प्रदान किया जाता है कि वे बद्धजीवात्माओं के कार्यकलाप समाप्त कर लें। जब वे इस अवसर का दुरुपयोग करती हैं और भगवान् के धाम को वापस नहीं जातीं तो भगवान् संकर्षण क्रोधित होते हैं। क्रोध के कारण भगवान् संकर्षण की भृकुटियों से भगवान् शिव के अंश रूप ग्यारह रुद्र प्रकट होते हैं और वे सब मिलकर सम्पूर्ण सृष्टि का संहार कर देते हैं।

यस्याङ्घ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिषण्डमण्डलेष्वहिपतयः सह सात्वतर्षभैरेकान्तभक्तियोगेनावनमन्तः स्ववदनानि परिस्फुरत्कुण्डलप्रभामण्डितगण्डस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयन्ति ॥ ४ ॥

यस्य = जिसके; **अंघ्रि-कमल** = चरणकमल; **युगल** = जोड़ी; **अरुण-विशद** = चटक गुलाबी; **नख** = नाखूनों का; **मणि-षण्ड** = मणियों के समान; **मण्डलेषु** = गोलाकार पृष्ठों पर; **अहि-पतयः** = सर्पों के स्वामी; **सह** = साथ; **सात्वत-ऋषभैः** = श्रेष्ठ भक्त; **एकान्त-भक्ति-योगेन** = शुद्ध भक्ति के साथ; **अवनमन्तः** = नमस्कार करते हुए; **स्व-वदनानि** = अपने-अपने मुखों; **परिस्फुरत** = चमकते हुए; **कुण्डल** = कान की बालियों की; **प्रभा** = ज्योति से; **मण्डित** = अलंकृत; **गण्ड-स्थलानि** = जिनके गाल; **अति-मनोहराणि** = अत्यन्त सुन्दर; **प्रमुदित-मनसः** = प्रसन्न मन से; **खलु** = निस्सन्देह; **विलोकयन्ति** = देखते हैं।

अनुवाद

भगवान् संकर्षण के चरणकमलों के गुलाबी तथा पारदर्शी नाखून मानो दर्पण जैसी पालिश वाले बहुमूल्य मणि हैं। जब शुद्धभक्त तथा नागों के अधिपति अत्यन्त भक्तिभाव से उन्हें नमस्कार करते हैं तो उनके चरण-नखों में अपने सुन्दर मुखों की छाया देखकर अत्यन्त प्रमुदित हो उठते हैं। उनके गालों पर कान की बालियाँ दमकती हैं और उनकी मुखकान्ति अत्यन्त मोहक है।

यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चार्वङ्गवलयविलसितविशद विपुलधवलसुभगरुचिरभुजरजतस्तम्भेष्वगुरुचन्दनकुङ्कुमपङ्कानुलेप-

नावलिम्पमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजावेशरुचिरललितस्मितास्तद-नुरागमदमुदितमद विघूर्णितारुणकरुणावलोकनयनवदनारविन्दं सव्रीडं किल विलोकयन्ति ॥ ५ ॥

यस्य=जिसकी; **एव**=ही; **हि**=निस्संदेह; **नाग-राज-कुमार्यः**=नागराज की कुमारियाँ; **आशिषः**=आशीर्वाद; **आशासाना:**=आशावान होकर; **चारु**=सुन्दर; **अंग-वलय**=शरीर के गोले पर; **विलसित**=शोभित; **विशद**=निष्कलंक; **विपुल**=दीर्घ; **धवल**=श्वेत; **सुभग**=सौभाग्य सूचक; **रुचिर**=सुन्दर; **भुज**=भुजाओं पर; **रजत-स्तम्भेषु**=चाँदी के खम्भों के समान; **अगुरु**=सुगन्धित पदार्थ का; **चन्दन**=चन्दन का; **कुमकुम**=केशर का; **पंक**=चंदन से; **अनुलेपेन**=लेप से; **अवलिम्पमानाः**=लेपन करके; **तत्-अभिमर्शन**=अपने अंगों में स्पर्श द्वारा; **उन्मथित**=मथा हुआ; **हृदय**=हृदयों में; **मकर-ध्वज**=कामदेव का; **आवेश**=प्रवेश के कारण; **रुचिर**=अत्यन्त सुन्दर; **ललित**=नम्र; **स्मिताः**=मन्दहास करती हुई; **तत्**=उसका; **अनुराग**=अनुराग; **मद**=गर्व से; **मुदित**=प्रसन्न; **मद**=दया के गर्व से; **विघूर्णित**=घूमती हुई; **अरुण**=गुलाबी; **करुणावलोक**=करुण दृष्टि से; **नयन**=नेत्र; **वदन**=(तथा) मुख; **अरविन्दम्**=कमलपुष्प के सदृश; **स-व्रीडम्**=सलज्ज; **किल**=निस्सन्देह; **विलोकयन्ति**=देखते हैं।

अनुवाद

भगवान् अनन्त की आकर्षक दीर्घ भुजाएँ कंगनों से आकर्षक ढंग से अलंकृत और पूर्णतया अलौकिक हैं। श्वेत होने के कारण वे चाँदी के खम्भों सी प्रतीत होती हैं। जब भगवान् के शुभाशीर्वाद की इच्छुक नागराजों की कुमारियाँ उनकी बाहों में अगुरु, चन्दन तथा कुमकुम का लेप लगाती हैं तो उनके स्पर्श से उनके भीतर कामेच्छा जाग्रत हो उठती है। उनके मनोभावों को समझ कर जब भगवान् इन राजकुमारियों को कृपापूर्ण मुस्कान से देखते हैं तो वे यह सोच कर लजा जाती हैं कि वे उनके मनोभावों को जानते हैं। तब वे मनोहर मुसकान सहित भगवान् के मुखकमल को देखती हैं जो उनके भक्तों के प्यार से प्रमुदित तथा मद-विह्वल घूमती हुई लाल-लाल आँखों से सुशोभित रहता है।

तात्पर्य

जब स्त्री तथा पुरुष एक दूसरे के शरीर का स्पर्श करते हैं तो उनके मन में सहज ही काम-भावना जाग्रत होती है। इस श्लोक से ऐसा सूचित होता है कि अलौकिक देहों में भी ऐसी ही अनुभूति होती है। भगवान् अनन्त तथा उन्हें सुख देने

वाली नारियाँ दोनों ही के शरीर अलौकिक थे। इस प्रकार सभी अनुभूतियाँ मूलतः अलौकिक देह में विद्यमान् रहती हैं। वेदान्त सूत्र से इसकी पुष्टि होती है—**जन्माद्यस्य यतः।** श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की इस सम्बन्ध में टीका है कि **आदि** का अर्थ है **आदिरस** जिसका उद्भाव परमेश्वर से होता है। किन्तु अप्राकृत काम तथा प्राकृत काम में वैसा ही अन्तर है जैसा कि सोने तथा लोहे में। जो आत्मसाक्षात्कार में जितना ही सिद्ध होगा उसे राधा एवं कृष्ण के मध्य अथवा कृष्ण एवं व्रज की गोपियों के मध्य काम भावों का उतना ही ज्ञान हो सकता है। अतः जब तक कोई आत्मसाक्षात्कार में परम अनुभवी एवं सिद्ध नहीं होता उसे कृष्ण तथा गोपियों की काम भावनाओं की चर्चा करने के लिए वर्जित किया जाता है। किन्तु यदि कोई शुद्ध एवं निष्ठावान् भक्त हो तो गोपी एवं कृष्ण की काम-अनुभूतियों की चर्चा करते समय उसका हृदय पूर्णतया कामरहित होता है और आत्म-जीवन में तेजी से उन्नति करता है।

स एव भगवाननन्तोऽनन्तगुणार्णव आदिदेव उपसंहृतामर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥ ६ ॥

सः=वह; **एव**=निश्चय ही; **भगवान्**=श्रीभगवान्; **अनन्तः**=अनन्तदेव; **अनन्त-गुण-अर्णवः**=असीम दिव्य गुणों के सागर; **आदि-देवः**=आद्य भगवान् अथवा आद्य श्रीभगवान् से अभिन्न रूप; **उपसंहृत**=जिसने इन्द्रियनिग्रह किया है; **अमर्ष**=उसकी असहनशीलता का; **रोष**=(तथा) क्रोध; **वेगः**=वेग, शक्ति; **लोकानाम्**=सभी लोकों के मनुष्यों के; **स्वस्तये**=कल्याण हेतु; **आस्ते**=रहते हैं।

अनुवाद

भगवान् संकर्षण अनन्त गुणों के सागर हैं जिससे वे अनन्तदेव कहलाते हैं। वे श्रीभगवान् से अभिन्न हैं। इस जगत् के समस्त जीवों के कल्याण हेतु वे अपने क्रोध तथा असहनशीलता को रोके हुए अपने धाम में निवास करते हैं।

तात्पर्य

अनन्तदेव का मूल उद्देश्य इस भौतिक सृष्टि का लय है, किन्तु वे अपने रोष तथा अमर्ष को रोके रहते हैं। इस जगत् की सृष्टि बद्ध-जीवात्माओं को भगवान् के धाम जाने के लिए एक और अवसर प्रदान करने के लिए की जाती है, किन्तु अधिकांश जीव इस अवसर का लाभ नहीं उठाते। सृष्टि के बाद वे भौतिक जगत् पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते हैं। इन क्रियाओं से अनन्तदेव क्रुद्ध हो उठते हैं और सम्पूर्ण जगत् को विनष्ट कर देना चाहते हैं। किन्तु श्रीभगवान् होने के कारण वे

हम पर दयालु हैं और अपने रोष तथा अमर्ष को रोक लेते हैं। कभी-कभी ही वे अपना रोष प्रकट करते हैं और भौतिक जगत् का विनाश कर देते हैं।

ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकामृतेनाप्यायमानः स्वपार्षदविबुधयूथपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि कृतसुभगसुन्दरभुजो भगवान्माहेन्द्रो वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षामुदारलीलो बिभर्ति ॥ ७ ॥

ध्यायमानः=ध्यान किये जाते हुए; **सुर**=देवताओं को; **असुर**=असुर; **उरग**=सर्प; **सिद्ध**=सिद्धलोक के वासी; **गंधर्व**=गंधर्वलोक के वासी; **विद्याधर**=विद्याधर; **मुनि**=मुनि; **गणैः**=समूहों द्वारा; **अनवरत**=लगातार; **मद-मुदित**=मद से प्रसन्न; **विकृत**=चञ्चल; **विह्वल**=इधर-उधर घूमते हुए; **लोचनः**=जिनके नेत्र; **सु-ललित**=सुललित; **मुखरिक**=वाणी के; **अमृतेन**=अमृत से; **आप्यायमानः**=अच्छे लगने वाले; **स्व-पार्षद**=अपने सहयोगी; **विबुध-यूथ-पतीन्**=देवताओं के विभिन्न समूहों के प्रमुख; **अपरिम्लान**=कभी न म्लान होने वाले; **राग**=जिसकी कांति; **नव**=नवीन; **तुलसिका**=तुलसी की मंजरियों का; **आमोद**=सुगंधि से; **मधु-आसवेन**=तथा मधु (शहद); **माद्यन्**=मद युक्त होकर; **मधुकर-व्रात**=मधुमक्खियों का; **मधुर-गीत**=मीठे गाने से; **श्रियम्**=अधिक सुन्दर बनकर; **वैजयन्तीम्**=वैजयन्ती नामक हार; **स्वाम**=अपना; **वनमालाम्**=हार; **नील-वासाः**=नीले अम्बर से आवृत; **एक-कुण्डलः**=केवल एक कुण्डल धारण किये हुए; **हल-ककुदि**=हल की मुठिया पर; **कृत**=रखा हुआ; **सुभग**=शुभ; **सुन्दर**=सुन्दर; **भुजः**=हाथ; **भगवान्**=श्रीभगवान्; **महा-इन्द्रः**=स्वर्ग के राजा; **वारण-इन्द्रः**=हाथी; **इव**=सदृश; **काञ्चनीम्**=स्वर्णिम; **कक्षाम्**=मेखला; **उदार-लीलः**=दिव्य लीलाओं में संलग्न; **बिभर्ति**=पहनते हैं।

अनुवाद

शुकदेव गोस्वामी बोले—देवता, असुर, उरग (सर्पदेव), सिद्ध, गंधर्व, विद्याधर तथा अनेक सिद्ध सन्त भगवान् की निरन्तर प्रार्थना करते रहते हैं। मद के कारण भगवान् विह्वल प्रतीत होते हैं और उनके नेत्र पुष्पित फूलों की भाँति इधर-उधर गति करते हैं। वे अपने मुख से निकली मधुर वाणी से अपने पार्षदों, देवताओं के प्रमुखों को प्रसन्न करने वाले हैं। नीलाम्बर और कान में एक कुण्डल धारण किये

हुए वे अपनी पीठ पर हल को अपने दो सुघर हाथों से पकड़े हुए हैं। वे इन्द्र के समान श्वेत लगने वाले हैं, अपनी कटि में स्वर्णिम मेखला और गले में चिर नवीन तुलसी दलों की वैजयन्तीमाला धारण किये हैं। तुलसी दलों की मधु जैसी गन्ध से आकर्षित होकर मधुमक्खियाँ माला के चारों ओर मँडराती रहती हैं, जिससे माला और भी सुन्दर लगने लगती है। इस प्रकार भगवान् अपनी दिव्य लीलाओं में संलग्न रहते हैं।

य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्मवासनाग्रथितम् विद्यामयं हृदयग्रन्थिं सत्त्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयं गत आशु निर्भिनत्ति तस्यानुभावान् भगवान् स्वायम्भुवो नारदः सह तुम्बुरुणा सभायां-ब्रह्मणः संश्लोकयामास ॥ ८ ॥

यः=जो; **एषः**=यही; **एव**=इस प्रकार; **अनुश्रुतः**=प्रामाणिक गुरु से सुना जाकर; **ध्यायमानः**=ध्यान किया गया; **मुमुक्षूणाम्**=बद्ध जीवन से मुक्ति के आकांक्षी मनुष्यों का; **अनादि**=अनन्त; **काल**=काल; **कर्म-वासना**=कर्मों की कामना द्वारा; **ग्रथितम्**=दृढ़ता से बँधा हुआ; **अविद्या-मयम्**=माया शक्ति से युक्त; **हृदय-ग्रन्थिम्**=हृदय के भीतर की गाँठ; **सत्त्व-रजः-तमः-मयम्**=तीन गुणों से निर्मित; **अन्तः-हृदयम्**=हृदय के भीतर; **गतः**=स्थित; **आशु**=शीघ्र ही; **निर्भिनत्ति**=काटता है; **तस्य**=संकर्षण का; **अनुभावान्**=यश; **भगवान्**=अत्यन्त शक्तिमान्; **स्वायम्भुवः**=ब्रह्मा के पुत्र; **नारदः**=नारद मुनि; **सह**=के साथ; **तुम्बुरुणा**=तारयुक्त वाद्य-यन्त्र, तुम्बुरु; **सभायाम्**=सभा में; **ब्रह्मणः**=भगवान् ब्रह्मा का; **संश्लोकयाम् आस**=श्लोकों में वर्णित।

अनुवाद

यदि भौतिक जीवन से मुक्ति पाने के इच्छुक पुरुष परम्परा से प्राप्त गुरु के मुख से अनन्तदेव के यश को सुनते हैं और यदि वे संकर्षण का निरन्तर ध्यान धरते हैं तो भगवान् उनके हृदय में प्रवेश करते हुए रजोगुण के सारे कल्मष को दूर कर देते हैं और हृदय की उस कठिन ग्रन्थि को काट देते हैं जो कर्मों के द्वारा प्रकृति पर प्रभुत्व पाने की अभिलाषा के कारण अनन्त काल से दृढ़ता से बँधी हुई है। भगवान् ब्रह्मा के पुत्र नारद मुनि अपने पिता की सभा में अनन्तदेव के यश का सदैव गान करते हैं। वहाँ वे अपने द्वारा रचित शुभ श्लोकों का अपने तम्बूरे के साथ गान करते हैं।

तात्पर्य

भगवान् अनन्तदेव के इन वर्णनों में से कोई भी काल्पनिक नहीं हैं। वे सभी दिव्य आनन्द एवं ज्ञान से पूर्ण हैं। किन्तु जब तक कोई उन्हें परम्परागत प्रामाणिक गुरु से प्रत्यक्ष नहीं सुनता, उन्हें नहीं समझ पाता। इस ज्ञान को भगवान् ब्रह्मा ने नारद मुनि को दिया और महामुनि नारद अपने सखा तम्बूरे सहित इस ज्ञान को विश्व भर में वितरित करते हैं। कभी-कभी श्रीभगवान् को उत्तमश्लोक कहकर वर्णित किया जाता है। नारद मुनि भगवान् अनन्त की प्रशंसा में अनेक श्लोक बनाते हैं, इसलिए इस श्लोक में **संश्लोकयाम आस** शब्द का व्यवहार हुआ है।

गौड़ीय सम्प्रदाय के वैष्णव भगवान् ब्रह्मा से चली आने वाली परम्परा से सम्बद्ध हैं। भगवान् ब्रह्मा नारद के गुरुदेव हैं, नारद व्यासदेव के गुरु हैं तथा व्यासदेव ने श्रीमद्भागवत की रचना वेदान्त सूत्र की टीका के रूप में की। फलतः गौड़ीय सम्प्रदाय के समस्त भक्तगण श्रीमद्भागवत में वर्णित भगवान् अनन्त की क्रियाओं को प्रामाणिक मानते हैं और इस प्रकार उन्हें भगवान् के धाम में जाने का लाभ प्राप्त होता है। बद्धजीव के हृदय का कल्मष कूड़े के ढेर के समान है जो तीन प्रकार के गुणों द्वारा, विशेषतया रजो तथा तमो गुणों के द्वारा उत्पन्न होता है। यह कल्मष कामेच्छा एवं धन के लिए लोभ के रूप में प्रकट होता है। जैसा कि यहाँ पुष्टि की गई है, जब तक परम्परागत दिव्यज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता तब तक इस कल्मष से शुद्ध होने का कोई प्रश्न नहीं उठता।

उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः
सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन्।
यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्
नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥ ९ ॥

उत्पत्ति = सृजन का; **स्थिति** = धारण या पालन; **लय** = (तथा) संहार या प्रलय; **हेतवः** = मूल कारण; **अस्य** = इस जगत् का; **कल्पाः** = समर्थ होते हैं; **सत्त्व-आदयाः** = सत्त्वगुण आदि; **प्रकृति-गुणाः** = भौतिक प्रकृति के गुण; **यत्** = जिसकी; **ईक्षया** = दृष्टि मात्र से; **आसन्** = हो गया; **यत्-रूपम्** = जिसका स्वरूप; **ध्रुवम्** = अपरिमित; **अकृतम्** = बिना उत्पत्ति हुए; **यत्** = जो; **एकम्** = एक; **आत्मन्** = स्वयं में; **नाना** = अनेक; **अधात्** = प्रकट हुआ; **कथम्** = कैसे; **उ ह** = निश्चय ही; **वेद** = जान सकता है; **तस्य** = उसका; **वर्त्म** = पथ, मार्ग।

अनुवाद

श्रीभगवान् की दृष्टि पड़ने से ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के कारणस्वरूप प्राकृत गुण अपने-अपने कार्य में समर्थ होते हैं। परमात्मा अनन्त तथा अनादि हैं और एक होते हुए भी अपने आप को नाना रूपों में प्रकट करते हैं। भला ऐसे परमेश्वर के गुणों को मानव समाज कैसे जान सकता है?

तात्पर्य

वेदों से हमें ज्ञात होता है कि परमेश्वर भौतिक शक्ति पर दृष्टि डालते हैं **(स ऐक्षत)** तो तीन प्रकार के गुण प्रकट होते हैं और भौतिक जगत् उत्पन्न होता है। जब तक वे भौतिक शक्ति पर दृष्टिपात नहीं करते तब तक इस भौतिक जगत् की सृष्टि, पालन और लय की कोई सम्भावना नहीं रहती। ईश्वर सृष्टि के पहले से विद्यमान हैं फलतः वे सनातन और अपरिवर्तनशील हैं। अतः कोई कितना भी महान् वैज्ञानिक या दार्शनिक क्यों न हो, वह श्रीभगवान् के गुणों को कैसे जान सकता है?

चैतन्यभागवत (आदि खण्ड १.४८-५२ तथा १.५८-६९) के निम्नलिखित उद्धरण अनन्त के यश को बताने वाले हैं—

कि ब्रह्मा, कि शिव, कि सनकादि 'कुमार'।
व्यास, शुक, नारदादि, 'भक्त' नाम याँर॥

"भगवान् ब्रह्मा, भगवान् शिव, चारों कुमार (सनक, सनातन, सनन्दन तथा सनत्कुमार), व्यासदेव, शुकदेव गोस्वामी तथा नारद—ये सभी ईश्वर के शुद्ध भक्त अथवा सनातन दास हैं।

सबार पूजित श्री-अनन्त-महाशय।
सहस्र-वदन प्रभु—भक्ति-रसमय॥

"ये सभी विशुद्ध भक्तजन भगवान् श्रीअनन्त की आराधना करते हैं। वे सहस्र फनों वाले तथा समस्त भक्ति के आगार हैं।

आदिदेव, महा-योगी, 'ईश्वर', 'वैष्णव'।
महिमार अन्त इँहा ना जानये सब॥

"भगवान् अनन्त आदिपुरुष तथा महान् योगी हैं। उसके साथ ही वे भगवान् या वैष्णव के दास हैं। उनकी महिमा का कोई अन्त नहीं है, अतः उन्हें पूर्णतया नहीं समझा जा सकता।

सेवन शुनिला, एबे शुन ठाकुराल।
आत्म-तंत्रे येन-मते वैसेन पाताल॥

"मैं पहले ही ईश्वर के प्रति उनके सेवाभाव का वर्णन कर चुका हूँ, अब आप सुनें कि किस प्रकार पाताललोक से स्वयं में पूर्ण अनन्तदेव अवस्थित हैं।

श्री-नारद-गोसाईं 'तुम्बुरु' करि' संगे।
से .यश गायेन ब्रह्मा-स्थाने श्लोक-वंधे॥

"महामुनि नारद अपने कंधे पर तुम्बुरु धारण किये हुए भगवान् अनन्त की महिमा का सदैव गान करते रहते हैं। उन्होंने भगवान् की प्रशंसा में अनेक दिव्य श्लोकों की रचना की है।

सृष्टि, स्थिति, प्रलय, सत्त्वादि .यत गुण।
याँरा दृष्टि-पाते हय, .याय पुनः पुनः॥

"भगवान् अनन्त की दृष्टिमात्र से तीनों गुणों से सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय होते हैं। ये गुण पुनः पुनः प्रकट होते रहते हैं।

अद्वितीय-रूप, सत्य अनादि महत्त्व।
तथापि 'अनन्त' हय, के बूझे से तत्त्व?

"भगवान् अद्वितीय रूप तथा अनादि सत्य रूप हैं, अतः वे अनन्तदेव कहलाते हैं। भला हम उन्हें कैसे समझ सकते हैं?

सुधा-सत्त्व-मूर्ति प्रभु धरेन करुणाय।
.ये-विग्रहे सबार प्रकाश सुलीलाय॥

"उनका स्वरूप पूर्णतया सत् है और अपने अनुग्रहवश ही धारण करते हैं। इस भौतिक जगत् की समस्त क्रियाएँ केवल इसी रूप के द्वारा संचालित हैं।

.याँहारा तरंग शिखि' सिंह महावली।
निज-जन-मनो राँजे हञा कुतूहली॥

"वे अत्यन्त शक्तिशाली और अपने पार्षदों तथा भक्तों को प्रसन्न करने के लिए तत्पर रहते हैं।

.ये अनन्त-नामेर श्रवण-संकीर्तने ।
.ये-ते मते केने नाहि बोले .ये ते जने ।।

अशेष-जन्मेर बंध छिण्डे सेइ-क्षणे ।
अतएव वैष्णव ना छाड़े कभु ताने ।।

"यदि हम भगवान् अनन्तदेव की महिमा का सामूहिक कीर्तन करने में लग जावें तो जन्मजन्मान्तरों से एकत्र हमारे मनों के कल्मष तुरन्त धुल जायँ । अतः वैष्णव जन अनन्तदेव की महिमागान का अवसर हाथ से नहीं जाने देते ।

'शेष' ब-इ संसारेर गति नाहिं आर ।
अनन्तेर नामे सर्व-जीवेर उद्धार ।।

"भगवान् अनन्त शेष (अपरिमित छोर) कहलाते हैं क्योंकि वे इस भौतिक जगत् से होकर हमारे मार्ग का अन्त करने वाले हैं । उनकी महिमा के कीर्तन मात्र से प्रत्येक प्राणी मुक्त हो सकता है ।

अनन्त पृथिवी-गिरि समुद्र-सहिते ।
.ये-प्रभु धारेन गिरे पालन करिते ।।

"अनन्तदेव अपने सिर पर विशाल सागर तथा पर्वतों से युक्त लाखों ग्रहों वाले सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण करते हैं ।

सहस्र फणार एक-फणे 'विन्दु' .येन ।
अनन्त विक्रम, ना जानेन, 'आछे' हेन ।।

"वे इतने विराट् एवं शक्तिमान् हैं कि यह ब्रह्माण्ड उनके फणों पर जलविन्दु के समान रखा प्रतीत होता है । वे नहीं जान पाते कि यह कहाँ पर है ।

सहस्र-वदने कृष्ण-यश निरन्तर ।
गाइते आछेन आदि-देव मही-धर ।।

"श्रीअनन्तदेव अपने एक फण में ब्रह्माण्ड को धारण किये अपने सहस्रों मुखों से श्रीकृष्ण का यशोगान करते हैं ।

गायेन अनन्त, श्री-यशेर नाहिं अन्त ।
जय-भंग नाहि कारु, दोङ्हे—बलवन्त ।।

"यद्यपि वे अनन्तकाल से भगवान् श्रीकृष्ण का यशोगान करते रहे हैं, किन्तु उसका कोई अन्त नहीं है।

अद्यापिह 'शेष'-देव सहस्र-श्री-मुखे।
गायेन चैतन्य-यश अन्त नाहि देखे॥

"आज भी भगवान् अनन्त श्रीचैतन्यमहाप्रभु के यश का गान कर रहे हैं और इसका कोई अन्त नहीं है।"

मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं
संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र।
यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्या-
मादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः॥१०॥

मूर्तिम्=श्रीभगवान् के विविध रूप; **नः**=हमको; **पुरु-कृपया**=अत्यन्त कृपा-वश; **बभार**=प्रदर्शित किया; **सत्त्वम्**=अस्तित्व; **संशुद्धम्**=नितान्त दिव्य; **सत्-असत् इदम्**=कार्य-कारणरूप यह दृश्य जगत्; **विभाति**=प्रकाशित होता है; **तत्र**=जिसमें; **यत्-लीलाम्**=जिनकी लीलाएँ; **मृग-पतिः**=सिंह के समान समस्त जीवों का स्वामी; **आददे**=शिक्षा दी; **अनवद्याम्**=कल्मषहीन; **आदातुम्**=जीतने के लिए; **स्व-जन-मनांसि**=अपने भक्तों के मन में; **उदार-वीर्यः**=जो अत्यन्त उदार एवं शक्तिमान् है।

अनुवाद

श्रीभगवान् के भीतर स्थूल जगत् विद्यमान् है। अपने भक्तों पर अहैतुकी कृपा-वश वे विभिन्न दिव्य रूपों को प्रदर्शित करते हैं। परमेश्वर अत्यन्त उदार एवं योगी हैं। अपने भक्तों के मनों को जीतने तथा हृदयों को आनन्दित करने के लिए वे अनेक अवतारों में प्रकट होते हैं और अनेक लीलाएँ करते हैं।

तात्पर्य

श्रील जीवगोस्वामी ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है—"श्रीभगवान् समस्त कारणों के कारण रूप हैं। उनकी इच्छा से ही स्थूल अवयव परस्पर क्रिया-शील हैं। वे अपने शुद्ध भक्तों के हृदयों को प्रमुदित करने के लिए ही नाना अवतार धारण करते हैं। उदाहरणार्थ, अपने भक्त को प्रसन्न करने के लिए परमेश्वर ने पृथ्वी को गर्भोदक सागर से उठाने के लिए वराह का दिव्य अवतार धारण किया।

यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मा-

दार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।

हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं

कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥११॥

यत् = जिनका; **नाम** = पवित्र नाम; **श्रुतम्** = सुना हुआ; **अनुकीर्तयेत्** = जप सकता है; **अकस्मात्** = दैवयोग से; **आर्तः** = विपदाग्रस्त व्यक्ति; **वा** = अथवा; **यदि** = यदि; **पतितः** = पतित व्यक्ति; **प्रलम्भनात्** = हँसी से; **वा** = अथवा; **हन्ति** = नष्ट करता है; **अंहः** = पापी; **सपदि** = उस क्षण; **नृणाम्** = मानव समाज का; **अशेषम्** = अपरिमित; **अन्यम्** = दूसरे का; **कम्** = क्या; **शेषात्** = भगवान् शेष की अपेक्षा; **भगवतः** = श्रीभगवान्; **आश्रयेत्** = शरण में जाना चाहिए; **मुमुक्षुः** = मुक्तिकामी व्यक्ति ।

अनुवाद

यदि कोई आर्त या पतित व्यक्ति भी प्रामाणिक गुरु से भगवान् का पवित्र नाम सुनकर उसका जप करता है तो वह तुरन्त पवित्र हो जाता है । यदि वह हँसी में अथवा अकस्मात् भी भगवन्नाम का जप करता है तो वह तथा जो उसे सुनता है समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं । अतः भौतिक बन्धनों से छुटकारा चाहने वाला भगवान् शेष के नामजप से कैसे कतरा सकता है ? भला वह और किसकी शरण ग्रहण करे ?

मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो

भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ।

आनन्त्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः

को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥१२॥

मूर्धनि = शिर अथवा फन पर; **अर्पितम्** = स्थिर; **अणु-वत्** = अणु के समान; **सहस्र मूर्ध्नः** = सहस्र फनों वाले अनन्त का; **भू-गोलम्** = यह ब्रह्माण्ड; **स-गिरि-सरित्-समुद्र-सत्त्वम्** = अनेक पर्वतों, वृक्षों, समुद्रों तथा जीवात्माओं सहित; **अनन्त्यात्** = अनन्त होने से; **अनिमित-विक्रमस्य** = अपरिमेय शक्ति; **भूम्नः** = परमेश्वर; **कः** = कौन; **वीर्याणि** = शक्तियाँ; **अधि** = निस्सन्देह; **गणयेत** = गिन सकता है; **सहस्र-जिह्वः** = भले ही सहस्र जीभें क्यों न हों ।

अनुवाद

अपरिमित होने के कारण ईश्वर की शक्ति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनेक विशाल पर्वतों, नदियों, सागरों, वृक्षों तथा जीवात्माओं से पूर्ण यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उनके सहस्त्रों फनों में से एक के ऊपर अणु के समान टिका हुआ है। भला, सहस्त्र जिह्वाओं से भी उनकी महिमा का वर्णन कोई कर सकता है?

एवम्प्रभावो भगवाननन्तो
दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः।
मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो
यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥१३॥

एवम्-प्रभावः=इतना शक्तिशाली; **भगवान्**=श्रीभगवान्; **अनन्तः**=अनन्त; **दुरन्त-वीर्य**=अपार शौर्य; **उरु**=महान्; **गुण-अनुभावः**=दिव्य गुणों एवं यशों से युक्त; **मूले**=पादभाग में; **रसायाः**=निम्नतर लोकों को; **यः**=जो; **लीलया**=सरलतापूर्वक; **क्ष्माम्**=ब्रह्माण्ड; **स्थितये**=पालन हेतु; **बिर्भाति**=धारण करता है।

अनुवाद

उन शक्तिमान् भगवान् अनन्तदेव के महान् एवं यशस्वी गुणों का कोई अन्त नहीं है। वास्तव में उनका शौर्य अनन्त है। स्वयं पूर्ण होते हुए भी वे प्रत्येक वस्तु के आधार हैं। वे पाताललोक में वास करते हैं और इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण किये रहते हैं।

एता ह्येवेह नृभिरुपगन्तव्या गतयो यथाकर्मविनिर्मिता यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान् कामयमानैः ॥१४॥

एताः=ये सब; **हि**=निस्सन्देह; **एव**=ही; **इह**=इस ब्रह्माण्ड में; **नृभिः**=समस्त जीवों द्वारा; **उपगन्तव्याः**=उपलब्ध करने योग्य; **गतयः**=गन्तव्य; **यथा-कर्म**=अपने-अपने पूर्व कर्मों के अनुसार; **विनिर्मिताः**=उत्पन्न किये गये; **यथा-उपदेशम्**=जैसा उपदेश दिया गया; **अनुवर्णिताः**=तदनुसार वर्णित; **कामान्**=भौतिक सुख; **कामयमानैः**=कामना करने वालों के द्वारा।

अनुवाद

हे राजन्, मैंने अपने गुरु से जैसा सुना था, उसी रूप में मैंने बद्धजीवों के कर्मों एवं कामनाओं के अनुसार इस जगत् की सृष्टि का वर्णन आपसे किया। भौतिक कामनाओं से पूर्ण बद्धजीवों को विभिन्न लोकों में अनेक स्थान प्राप्त होते रहते हैं और इस प्रकार वे इसी भौतिक सृष्टि के भीतर रहे आते हैं।

तात्पर्य

इस प्रसंग में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का गीत है—

अनादि करम-फले,
पडि' भवार्णव जले, तरिबारे ना देखि उपाय।

"हे प्रभो, मैं यह नहीं जानता कि मेरा जीवन कब प्रारम्भ हुआ, किन्तु मुझे इसका अनुभव होता है कि मैं इस भवसागर में गिर गया हूँ। अब मैं यह भी देखता हूँ कि आपके चरणकमलों की शरण के अतिरिक्त उसमें से निकलने का कोई दूसरा उपाय नहीं है।" इसी प्रकार श्रीचैतन्यमहाप्रभु प्रार्थना करते हैं—

अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपंकजस्थितधूलीसदृशं विचिन्तय॥

"हे भगवन्, नन्द महाराज के पुत्र! मैं आपका चिरन्तन दास हूँ। न जाने कैसे इस भवसागर में गिर गया हूँ। अतः कृपा करके भौतिक जीवन की विषम स्थिति से मेरा उद्धार कीजिए।"

एतावतीर्हि राजन् पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत्कथयाम इति॥१५॥

एतावतीः=इतने प्रकार की; **हि**=ही; **राजन्**=हे राजन्!; **पुंसः**=मानव प्राणियों की; **प्रवृत्ति-लक्षणस्य**=प्रवृत्तियों द्वारा लक्षणीभूत; **धर्मस्य**=कार्य सम्पादन का; **विपाक-गतयः**=परिणामी गन्तव्य; **उच्च-अवचाः**=उच्च तथा निम्न; **विसदृशाः**=विभिन्न; **यथा-प्रश्नम्**=आपके प्रश्न के अनुसार; **व्याचख्ये**=मैंने वर्णन किया; **किम् अन्यत्**=और क्या; **कथयाम**=कहूँ; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

हे राजन् ! इस प्रकार मैंने आपको बता दिया कि मनुष्य किस प्रकार अपनी-अपनी इच्छाओं के अनुसार कार्य करते हैं और उसी के अनुसार उच्च या निम्न लोकों में भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं। आपने मुझसे ये बातें पूछीं और मैंने जिस प्रकार विद्वानों से इन्हें सुना था आपको सुना दिया और अब आगे क्या सुनाऊँ ?

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चमस्कन्धे भूमिविवरविध्युपवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, "भगवान् अनन्त की महिमा" शीर्षक नामक पचीसवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त भाष्य समाप्त हुआ।

छब्बीसवाँ अध्याय

नारकीय लोकों का वर्णन

इस अध्याय में यह बताया गया है कि पापी मनुष्य किस प्रकार विभिन्न नरकों में जाता है जहाँ यमराज के सहायक विविध प्रकार से उसे दण्ड देते हैं। जैसा कि भगवद्गीता (३.२७) में कहा गया है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

"सम्पूर्ण कर्म वास्तव में प्रकृति के गुणों द्वारा सम्पादित होते हैं; परन्तु गुणों से उत्पन्न अहंकार से मोहित जीवात्मा अपने को इनका कर्ता मान बैठता है।" मूढ़ पुरुष अपने आपको नियम से परे मानता है। वह सोचता है कि ईश्वर अथवा नियामक सिद्धान्त नहीं है और वह जो चाहे कर सकता है। इस प्रकार वह अनेक पापकर्म करता है जिसके कारण वह जन्म-जन्मान्तर विभिन्न नारकीय परिस्थितियों में रखा जाता है जिससे प्रकृति के नियमानुसार उसे दण्डित किया जा सके। प्रकृति के नियमों के वश में रह कर भी वह अज्ञानतावश अपने को स्वतन्त्र मानता है और उसकी यातना का यही मूल सिद्धान्त है। ये नियम तीन गुणों के प्रभाव में कार्य करते हैं और इसीलिए प्रत्येक मनुष्य भी तीन प्रकार के प्रभावों के अन्तर्गत कार्य करता है। अपने कर्मों के अनुसार वह इस जीवन में या अगले जीवन में यातना भोगता है। धार्मिक पुरुष नास्तिकों से भिन्न रीति से कार्य करते हैं, अतः वे भिन्न प्रकार से कर्मफल भोगते हैं।

शुकदेव गोस्वामी ने निम्नलिखित अट्ठाईस प्रकार के नरकों का वर्णन किया है—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टक-शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन तथा सूचीमुख।

यदि कोई व्यक्ति अन्य का धन, पत्नी, या सम्पत्ति को चुराता है तो उसे तामिस्र नरक में रखा जाता है। यदि कोई ठग कर पराई स्त्री का उपभोग करता है तो उसे अन्धतामिस्र नरक की कठिन यातना सहनी पड़ती है। वह मूढ़ पुरुष जो शरीर

में ही व्यस्त रह कर अन्य जीवात्माओं की हिंसा करके अपना तथा अपने परिवार का पालन करता है वह रौरव नरक में रखा जाता है। वहाँ पर उसके द्वारा वध किये गये पशु रुरु नामक प्रणियों के रूप में जन्म लेकर उसे पीड़ित करते रहते हैं। जो विभिन्न पशुओं तथा पक्षियों को मारकर पकाते हैं उन्हें यमराज के दूत कुम्भीपाक नरक में रखते हैं जहाँ उन्हें उबलते तेल में डाल दिया जाता है। ब्राह्मण का वध करने वाले को कालसूत्र नामक नरक में रखा जाता है जहाँ की भूमि समतल तथा ताम्र सदृश है और भट्ठी के समान गर्म रहती है। ब्राह्मणहन्ता इस प्रदेश में अनेक वर्षों तक जलता रहता है। धार्मिक नियमों का पालन न करने वाले तथा मनमानी करने वाले को असिपत्रवन नरक में रखा जाता है। जो अधिकारी ठीक से न्याय नहीं बरतता अथवा जो निर्दोष को दण्डित करता है उसे यमराज के दूत सूकरमुख नाम नरक में ले जाकर अत्यन्त क्रूरता से पीटते हैं।

भगवान् ने मनुष्य को उच्च अनुभूति प्रदान की है अतः वह अन्य जीवित प्राणियों के कष्टों तथा सुखों का अनुभव कर सकता है। अन्तःकरण से रहित होकर मनुष्य अन्य प्राणियों को कष्ट पहुँचाना चाहता है। यमराज के दूत ऐसे पुरुष को अन्धकूप में ले जाते हैं जहाँ पीड़ितों के द्वारा उसे उचित दण्ड दिया जाता है। जो व्यक्ति अतिथि का सत्कार नहीं करता, जो स्वयं भोजन करता है उसे कृमिभोजन नरक प्राप्त होता है जहाँ उसे असंख्य कीड़े-मकोड़े लगातार काटते हैं।

चोर को संदंश नरक की प्राप्ति होती है। अभोग्य स्त्री के साथ यौन सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति को तप्तसूर्मि नरक में भेजा जाता है। पशुओं के साथ संभोग करने वाले को वज्रकंटक-शाल्मली नरक में रखा जाता है। उच्चकुल में जन्म लेकर तदनुकूल कार्य न करने वाले व्यक्ति को रक्त, पूय, तथा मूत्र की वैतरणी नदी में रखा जाता है। पशु की भाँति रहने वाले व्यक्ति को पूयोद नरक एवं वन के पशुओं का क्रूरतापूर्वक वध करने वाले को प्राणरोध नरक में रखा जाता है। जो व्यक्ति धर्म के नाम पर पशु-हत्या करता है उसे विशासन नरक और जो अपनी पत्नी को अपना वीर्य पीने के लिए बाध्य करता है उसे लालाभक्ष नरक में भेजा जाता है। जो किसी के घर में आग लगाता है या किसी को विष देता है उसे सारमेयादन नामक नरक में रखा जाता है। झूठी गवाही देकर जीविका चलाने वाले को अवीचि नरक भोगना पड़ता है।

सुरापान करने वाले को अयःपान नरक में तथा जो बड़ों के प्रति आदरभाव नहीं प्रकट करता उसे क्षारकर्दम नरक में रखा जाता है। भैरव को नर-बलि देने वाले पुरुष को रक्षोगणभोजन तथा पालतू पशुओं को मारने वाले को शूलप्रोत नरकों में रखा जाता है। अन्यों को सताने वाले व्यक्ति को दंदशूक तथा जीवित प्राणी को गुफा के भीतर बन्द रखने वाले व्यक्ति को अवट-निरोधन नामक नरक में रखा जाता है। जो व्यक्ति अपने घर में अतिथि पर अनावश्यक क्रोध करता है उसे पर्यावर्तन

नरक में तथा धन से मदान्ध और धन संचय का चिन्तन करने वाले व्यक्ति को सूचीमुख नरक दिया जाता है।

इन नरकों के वर्णन के पश्चात् शुकदेव गोस्वामी बताते हैं कि पवित्र पुरुष किस प्रकार देवताओं के वास स्वर्गलोक को जाते हैं और पुण्यों के क्षीण होने पर किस प्रकार इस पृथ्वी पर पुनः आते हैं। अन्त में वे भगवान् के विराट् रूप का वर्णन करते हैं और उनके कार्यों की महिमा बताते हैं।

राजोवाच

महर्ष एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥ १ ॥

राजा उवाच=राजा बोला; **महर्षे**=हे महर्षि (शुकदेव गोस्वामी); **एतत्**=यह; **वैचित्र्यम्**=विचित्रता; **लोकस्य**=जीवात्माओं की; **कथम्**=किस प्रकार; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

राजा परीक्षित् ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा—हे महर्षि ! जीवात्माओं को विभिन्न भौतिक गतियाँ क्यों प्राप्त होती हैं ? कृपा करके मुझसे कहें।

तात्पर्य

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने विवेचना की है कि इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न नरकलोक गर्भोदक सागर से थोड़ा ऊपर स्थित हैं और वे वहीं रहे आते हैं। इस अध्याय में यह बताया गया है कि समस्त पापी लोग किस प्रकार इन नरक लोकों में जाते हैं और वहाँ पर यमराज के दूतों द्वारा प्रताड़ित किये जाते हैं। विभिन्न प्राणी अपने पूर्व कर्मों के अनुसार सुख या दुःख भोगते हैं।

ऋषिरुवाच

त्रिगुणत्वात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥ २ ॥

ऋषिः उवाच=महामुनि (शुकदेव गोस्वामी) बोले; **त्रि-गुणत्वात्**=तीन गुणों के कारण; **कर्तुः**=कर्ता का; **श्रद्धया**=श्रद्धा के कारण; **कर्म-गतयः**=कार्यों के कारण स्थितियाँ; **पृथक्**=भिन्न; **विधाः**=प्रकार; **सर्वाः**=सभी; **एव**=इस प्रकार; **सर्वस्य**=उन सबों का; **तारतम्येन**=विभिन्न मात्राओं में; **भवन्ति**=सम्भव होता है।

अनुवाद

महामुनि शुकदेव गोस्वामी बोले—हे राजन् ! इस जगत् में सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण में स्थित तीन प्रकार के कर्म होते हैं। चूँकि सभी मनुष्य इन तीन गुणों से प्रभावित होते हैं, अतः कर्मों के फल भी तीन प्रकार के होते हैं। जो सतोगुण के अनुसार कर्म करता है वह धार्मिक एवं सुखी होता है, जो रजोगुण में कर्म करता है उसे कष्ट तथा सुख मिश्रित रूप में प्राप्त होते हैं और जो तमोगुण के वश में कर्म करता है वह सदैव दुखी रहता है और पशुतुल्य जीवन-यापन करता है। विभिन्न गुणों के कारण भिन्न-भिन्न मात्रा में प्रभावित होने के कारण जीवात्माओं को विभिन्न गतियाँ प्राप्त होती हैं।

अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धाया वैसादृश्यात्कर्मफलं विसदृशं भवति या ह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥ ३ ॥

अथ=इस प्रकार; **इदानीम्**=अब; **प्रतिषिद्ध**=निषिद्ध; **लक्षणस्य**=लक्षणों वाला; **अधर्मस्य**=अपवित्र कार्यों का; **तथा**=उसी तरह का; **एव**=निश्चय ही; **कर्तुः**=कर्ता का; **श्रद्धायाः**=श्रद्धा का; **वैसादृश्यात्**=अन्तर के कारण; **कर्म-फलम्**=कर्मों का फल; **विसदृशम्**=भिन्न; **भवति**=होता है; **या**=जो; **हि**=निस्संदेह; **अनादि**=अनन्त काल से; **अविद्यया**=अज्ञानता के कारण; **कृत**=किया हुआ; **कामानाम्**=कामी जनों का; **तत्परिणाम-लक्षणाः**=ऐसी अपवित्र कामनाओं के फलों के लक्षण; **सृतयः**=जीवन की नारकीय दशाएँ; **सहस्रशः**=हजार प्रकार से; **प्रवृत्तः**=फलित; **तासाम्**=उनको; **प्राचुर्येण**=विस्तार से; **अनुवर्णयिष्यामि**=वर्णन करूँगा।

अनुवाद

जिस प्रकार से पवित्र कर्म करने से स्वर्गिक जीवन में विभिन्न गतियाँ प्राप्त होती हैं उसी प्रकार दुष्कर्म करने से नारकीय जीवन में विभिन्न गतियाँ प्राप्त होती हैं। तमोगुण से प्रेरित होने वाले दुष्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं और अपनी अज्ञानता की कोटि के अनुसार नारकीय जीवन में विभिन्न कोटियों में रखे जाते हैं। यदि कोई पागलपन के कारण तमोगुण में कार्य करता है तो उसे सबसे कम कष्ट भोगना पड़ता है। जो दुष्कर्म करता है, किन्तु पवित्र और अपवित्र कर्मों का अन्तर पहचानता है, उसे मध्यम कष्टकारक नरक में स्थान मिलता है। किन्तु जो नास्तिकतावश बिना समझे-बूझे दुष्कर्म करता है उसे निकृष्ट नारकीय जीवन बिताना पड़ता है। अनादिकाल से अज्ञानतावश प्रत्येक जीव अपने को अनेकानेक कामनाओं के कारण

हज़ारों प्रकार के नरकलोकों में ले जाया जाता रहा है। मैं यथाशक्ति उनका वर्णन करने का यत्न करूँगा।

राजोवाच

नरका नाम भगवन् किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति ॥ ४ ॥

राजा उवाच=राजा ने कहा; **नरकाः**=नारकीय प्रदेश; **नाम**=नामक; **भगवन्**=हे भगवन्!; **किम्**=क्या; **देश-विशेषाः**=कोई विशेष देश; **अथवा**=या; **बहिः**=बाह्य; **त्रि-लोक्याः**=तीनों लोक (ब्रह्माण्ड); **आहोस्वित**=अथवा; **अन्तराले**=ब्रह्माण्ड के भीतर मध्यवर्ती स्थानों में; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

राजा परीक्षित् ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा—भगवान्! क्या ये नरक ब्रह्माण्ड के बाहर, इसके भीतर या इसी लोक में भिन्न-भिन्न स्थानों पर हैं ?

ऋषिरुवाच

अन्तराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भूमेरुपरिष्टाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसन्ति ॥ ५ ॥

ऋषिः उवाच=ऋषि ने उत्तर दिया; **अन्तराले**=मध्यवर्ती स्थान में; **एव**=निश्चय ही; **त्रि-जगत्याः**=तीनों लोकों का; **तु**=लेकिन; **दिशि**=दिशा; **दक्षिणस्याम्**=दक्षिणी; **अधस्तात्**=नीचे; **भूमेः**=पृथ्वी पर; **उपरिष्टात्**=थोड़ा ऊपर; **च**=तथा; **जलात्**=गर्भोदक सागर से; **यस्याम्**=जिसमें; **अग्निष्वात्ता-आदयः**=अग्निस्वात्ता आदि; **पितृ-गणाः**=पितर; **दिशि**=दिशा; **स्वानाम्**=उनके अपने; **गोत्राणाम्**=परिवार के; **परमेण**=अत्यधिक; **समाधिना**=भगवान् के ध्यान में मग्न होकर; **सत्याः**=सत्य में; **एव**=निश्चय ही; **आशिषः**=आशीर्वाद; **आशासानाः**=कामना करने वाले; **निवसन्ति**=रहते हैं।

अनुवाद

महर्षि शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया—सभी नरकलोक तीनों लोकों तथा गर्भोदक सागर के मध्य में स्थित हैं। वे ब्रह्माण्ड के दक्षिण की ओर भूमण्डल के

नीचे तथा गर्भोदक सागर के जल से थोड़ा ऊपर स्थित हैं। पितृलोक भी इसी गर्भोदक सागर तथा अधः लोकों के मध्य के प्रदेश में स्थित है जिसमें अग्निष्वात्ता आदि समस्त पितृलोक के वासी परम समाधि में लीन होकर श्रीभगवान् का ध्यान करते हैं और सदैव अपने गोत्र (परिवारों) की मंगल कामना करते हैं।

तात्पर्य

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, हमारे लोक के नीचे सात अधःलोक हैं जिनमें सबसे निम्न लोक को पाताललोक कहा जाता है। पाताललोक के नीचे अन्य लोक हैं, जिन्हें नरकलोक कहते हैं। ब्रह्माण्ड के नीचे गर्भोदक सागर फैला हुआ है, अतः पाताललोक तथा गर्भोदक सागर के मध्य ही नरकलोक हैं।

यत्र ह वाव भगवान् पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु सम्परेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लङ्घितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥ ६ ॥

यत्र=जहाँ; **ह वाव**=निस्संदेह; **भगवान्**=सर्वशक्तिमान्; **पितृ-राजः**=यमराज, पितरों के राजा; **वैवस्वतः**=सूर्यदेव के पुत्र; **स्व-विषयम्**=अपना राज्य; **प्रापितेषु**=पहुँच जाने पर; **स्व-पुरुषैः**=अपने दूतों द्वारा; **जन्तुषु**=मानव प्राणी; **सम्परेतेषु**=मृत; **यथा-कर्म-अवद्यम्**=बद्धजीवन के नियमों तथा विधानों को उल्लंघन की गई मात्रा के अनुसार; **दोषम्**=दोष, त्रुटि; **एव**=निश्चय ही; **अनुल्लंघित-भगवत्-शासनः**=जो श्रीभगवान् के आदेश का कभी भी उल्लंघन नहीं करता; **सगणः**=अपने अनुचरों सहित; **दमम्**=दण्ड; **धारयति**=देता है।

अनुवाद

पितरों का राजा यमराज है जो सूर्यदेव का परम शक्तिशाली पुत्र है। वह अपने गणों सहित पितृलोक में रहता है और भगवान् द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करते हुए यमदूत समस्त पापियों को मृत्यु के पश्चात् उसके पास लाते हैं। वह उनके विशेष पापकर्मों के अनुसार अपना निर्णय देकर समुचित दंड हेतु अनेक नरकों में से किसी एक में भेज देता है।

तात्पर्य

यमराज कोई काल्पनिक या पौराणिक पात्र नहीं; वह अपने धाम पितृलोक का स्वामी है। नास्तिकवादी भले ही नरक में विश्वास न करते हों, किन्तु शुकदेव गोस्वामी नरक-लोकों की उपस्थिति की पुष्टि करते हैं। ये नरक गर्भोदक सागर

तथा पाताललोक के मध्य स्थित हैं। यमराज की नियुक्ति श्रीभगवान् ने यह देखने के लिए की है कि मानव प्राणी उनके नियमों का उल्लंघन न करे। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (४.१७) में की गई है—

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥

"कर्म की गूढ़ताओं को समझ पाना कठिन है, अतः मनुष्य को चाहिए कि वह कर्म, विकर्म तथा अकर्म के स्वरूप को भली भाँति जाने।" मनुष्य को चाहिए कि वह कर्म, विकर्म तथा अकर्म की प्रकृति को समझकर उसी के अनुसार कार्य करे। यही श्रीभगवान् का नियम है। जो बद्धजीव इस जगत् में इन्द्रियभोग के उद्देश्य से आये हैं, उन्हें कतिपय विधि-विधानों के अन्तर्गत इन्द्रियभोग करने दिया जाता है। यदि वे इन विधानों का उल्लंघन करते हैं तो न्याय होने के बाद उन्हें यमराज द्वारा दण्ड दिया जाता है। वह उन्हें नरकलोक में ले जाता है और श्रीकृष्णभावनामृत में पुनः वापस ले जाने का प्रयास करता है। किन्तु माया के वशीभूत होकर बद्धजीव तमोगुण से पूर्ण रहे आते हैं। इस प्रकार यमराज द्वारा पुनः पुनः दण्डित होकर भी वे होश नहीं सँभाल पाते और बारम्बार पापकर्म करते हुए भौतिक स्थिति में रहे आते हैं।

तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽन्धतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमन्धकूपः कृमिभोजनः सन्दंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयःपानमिति। किञ्च क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दन्दशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिर्नरका विविधयातनाभूमयः ॥७॥

तत्र=वहाँ; **ह**=निश्चय ही; **एके**=कोई-कोई; **नरकान्**=नरकों को; **एक-विंशतिम्**=इक्कीस; **गणयन्ति**=गिनते हैं; **अथ**=अतः; **तान्**=उनको; **ते**=तुमको; **राजन्**=हे राजन्; **नाम-रूप-लक्षणतः**=नामों, रूपों तथा लक्षणों के अनुसार; **अनुक्रमिष्यामः**=मैं क्रम से वर्णन करूँगा; **तामिस्रः**=तामिस्र; **अन्ध-तामिस्रः**=अन्धतामिस्र; **रौरवः**=रौरव; **महारौरवः**=महारौरव; **कुम्भी-पाकः**=कुम्भीपाक; **कालसूत्रम्**=कालसूत्र; **असि-पत्रवनम्**=असिपत्रवन; **सूकरमुखम्**=सूकरमुख; **अन्ध-कूपः**=अन्धकूप; **कृमि-भोजनः**=कृमिभोजन; **सन्दंशः**=सन्दंश; **तप्त-सूर्मिः**=तप्तसूर्मि; **वज्र-कण्टक-शाल्मली**=वज्रकंटक-शाल्मली; **वैतरणी**=वैतरणी; **पूयोदः**

=पूयोद; **प्राण-रोधः**=प्राणरोध; **विशसनम्**=विशसन; **लालाभक्षः**=लालाभक्ष; **सारमेयादनम्**=सारमेयादन; **अवीचिः**=अवीचि; **अयः-पानम्**=अयःपान; **इति**=इस प्रकार; **किंच**=कुछ और; **क्षार-कर्दमः**=क्षारकर्दम; **रक्षः-गण-भोजनः**=रक्षोगणभोजन; **शूल-प्रोतः**=शूलप्रोत; **दंद-शूकः**=दंदशूक; **अवट-निरोधनः**=अवटनिरोधन; **पर्यावर्तनः**=पर्यावर्तन; **सूची-मुखम्**=सूचीमुख; **इति**=इस तरह; **अष्ट-विंशतिः**=अट्ठाईस; **नरकाः**=नरकलोक; **विविध**=विभिन्न; **यातना-भूमयः**=नारकीय यातना वाले स्थल।

अनुवाद

कुछ विद्वान् नरक लोकों की कुल संख्या इक्कीस बताते हैं तो कुछ अट्ठाईस। हे राजन्! मैं क्रमशः उनके नाम, रूप तथा लक्षणों का वर्णन करूँगा। विभिन्न नरकों के नाम ये हैं—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तसूर्मि, वज्रकंटक-शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन तथा सूचीमुख। ये सभी लोक जीवात्माओं को दण्डित करने के लिए हैं।

तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते अनशनानुदपानदण्डताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जन्तुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्च्छामुपयाति तामिस्रप्राये ॥ ८ ॥

तत्र=उन नरक लोकों में; **यः**=जो व्यक्ति; **तु**=लेकिन; **परवित्त-अपत्य-कलत्राणि**=पराया धन, पत्नी तथा सन्तान; **अपहरति**=अपहरण करता है; **सः**=वह व्यक्ति; **हि**=निश्चय ही; **काल-पाश-बद्धः**=काल अथवा यमराज के रस्सों द्वारा बाँधा जाकर; **यम-पुरुषैः**=यमराज के दूतों द्वारा; **अति-भयानकैः**=अत्यन्त भयानक; **तामिस्रे नरके**=तामिस्र नामक नरक में; **बलात्**=बलपूर्वक; **निपात्यते**=फेंक दिया जाता है; **अनशन**=भूखों मारना; **अनुदपान**=बिना जल के; **दंड-ताडन**=डंडे से प्रताड़ित; **संतर्जन-आदिभिः**=डाट-फटकार आदि; **यातनाभिः**=कठोर दण्ड द्वारा; **यात्यमानः**=दण्डित होकर; **जन्तुः**=जीवात्मा; **यत्र**=जहाँ; **कश्मलम्**=दैन्य; **आसादितः**=प्राप्त करके; **एकदा**=कभी-कभी; **एव**=ही; **मूर्छाम्**=मूर्च्छा; **उपयाति**=प्राप्त करता है; **तामिस्र-प्राये**=नितान्त अन्धकार की स्थिति में।

अनुवाद

हे राजन् ! जो पुरुष दूसरों की वैध पत्नी, सन्तान या धन का अपहरण करता है, उसे मृत्यु के समय यमदूत काल के रस्सों में बाँधकर बलपूर्वक तामिस्र नामक नरक में डाल देते हैं। इस अन्धकारपूर्ण लोक में यमदूत पापी पुरुषों को डाटते और प्रताड़ित करते हैं। उसे भूखों रखा जाता है और पीने को पानी भी नहीं दिया जाता है। इस प्रकार यमराज के क्रुद्ध दूत उसे कठोर यातना देते हैं और वह इस यातना से कभी-कभी मूर्छित हो जाता है।

एवमेवान्धतामिस्रे यस्तु वञ्चयित्वा पुरुषं दारादीनुपयुङ्क्ते यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादन्धतामिस्रं तमुपदिशन्ति ॥ ९ ॥

एवम्=इस प्रकार; **एव**=ही; **अन्धतामिस्रे**=अन्धतामिस्र नरक में; **यः**=जो व्यक्ति; **तु**=लेकिन; **वंचयित्वा**=ठग कर; **पुरुषम्**=दूसरे व्यक्ति को; **दार-आदीन्**=पत्नी तथा संतान; **उपयुंक्ते**=भोग करता है; **यत्र**=जहाँ; **शरीरी**=शरीरधारी व्यक्ति; **निपात्यमानः**=बलपूर्वक फेंका जाकर; **यातना-स्थः**=अत्यन्त दयनीय स्थिति में रहकर; **वेदनया**=ऐसी वेदना से; **नष्ट-मतिः**=जिसकी बुद्धि नष्ट हो गई है; **नष्ट-दृष्टिः**=जिसकी दृष्टि क्षीण हो चुकी है; **च**=भी; **भवति**=हो जाता है; **यथा**=जितना कि; **वनस्पतिः**=वृक्ष; **वृश्च्यमान**=काटे जाने पर; **मूलः**=जिसकी जड़; **तस्मात्**=इस कारण; **अन्धतामिस्रम्**=अन्धतामिस्र; **तम्**=उसको; **उपदिशन्ति**=कहते हैं।

अनुवाद

जो व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को धोखा देकर उसकी स्त्री तथा सन्तान को भोगता है उसको अन्धतामिस्र नरक में स्थान मिलता है। वहाँ पर उसकी स्थिति जड़ से कटे हुए वृक्ष जैसी होती है। अंधतामिस्र में पहुँचने के पूर्व ही पापी जीव को अनेक कठिन यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। ये यातनाएँ इतनी कठोर होती हैं कि वह बुद्धि तथा दृष्टि दोनों को खो बैठता है। इसी कारण से सुधीजन इस नरक को अन्धतामिस्र कहते हैं।

यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन रौरवे निपतति ॥१०॥

यः=जो; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वा**=अथवा; **एतत्**=यह देह; **अहम्**=मैं; **इति**=इस प्रकार; **मम**=मेरा; **इदम्**=यह; **इति**=इस प्रकार; **भूत-द्रोहेण**=अन्य जीवात्माओं की ईर्ष्या से; **केवलम्**=अकेले; **स्व-कुटुम्बम्**=अपने कुटुम्बी जनों को; **एव**=केवल; **अनुदिनम्**=प्रतिदिन; **प्रपुष्णाति**=निर्वाह करता है; **सः**=ऐसा व्यक्ति; **तत्**=वह; **इह**=यहाँ; **विहाय**=छोड़कर; **स्वयम्**=स्वयं; **एव**=ही; **तत्**=उसका; **अशुभेन**=पाप द्वारा; **रौरवे**=रौरव नरक में; **निपतति**=गिर जाता है।

अनुवाद

ऐसा व्यक्ति जो अपने शरीर को "स्व" मान लेता है वह अपने शरीर तथा अपनी पत्नी और पुत्रों के शरीरों के पालन के लिए अहर्निश कठोर श्रम करता है। ऐसा करने में वह अन्य जीवात्माओं के प्रति हिंसा कर सकता है। ऐसे पुरुष को मृत्यु के समय अपना तथा अपने परिवार के देहों को त्यागना पड़ता है और अन्य प्राणियों के प्रति की गई हिंसा का कर्मफल यह मिलता है कि वह रौरव नामक नरक में फेंक दिया जाता है।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत (१०.८४.१३) में कहा गया है कि

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥

"जो तीन तत्त्वों (पित्त, श्लेष्मा तथा वायु) से भरे शरीर रूप थैले को "स्व" मान बैठता है, जो अपनी पत्नी तथा पुत्रों से घनिष्टतापूर्वक बँधा रहता है, जो अपनी भूमि को पूज्य मानता है, जो पवित्र तीर्थस्थानों के जल में स्नान करता है, किन्तु जो वास्तविक ज्ञानी पुरुषों से लाभ नहीं उठाता वह गधे या गाय से श्रेष्ठ नहीं है।" दो प्रकार के पुरुष इस जीवन की भौतिकता में मग्न रहते हैं। प्रथम प्रकार के पुरुष अज्ञानतावश अपने शरीर को "स्व" मान लेते हैं अतः वे निश्चय ही पशुतुल्य हैं (**स एव गो खरः**)। किन्तु दूसरे प्रकार का पुरुष न केवल सम्पत्ति को "स्व" मान लेता है वरन् अपने शरीरपालन के लिए नाना प्रकार के पापकर्म करता है। अपने परिवार तथा अपने लिए धन प्राप्त करने के लिए वह सबों को ठगता है और अन्यों से अकारण ईर्ष्या करता है। ऐसा व्यक्ति रौरव नरक में फेंक दिया जाता है। यदि कोई अपने शरीर को ही पशुओं की तरह स्वयं मानता है तो वह अधिक पापी नहीं होता। किन्तु यदि अपने शरीर पालन के लिए वृथा ही पापकर्म करता है तो उसे रौरव नरक में रखा जाता है। ऐसा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का मत है। यद्यपि पशुओं में जीवन के प्रति देहात्मबुद्धि है, किन्तु वे अपने लिए, अपने जोड़ों

या बच्चों के पालन के लिए कोई पाप नहीं करते। इसलिए पशुओं को नरक नहीं मिलता, किन्तु जब मनुष्य ईर्ष्या करता है और अपने शरीर पालन के लिए अन्यों को ठगता है तो उसे नारकीय अवस्था में रखा जाता है।

ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयातनामुपगतं त एव रुरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसन्ति तस्माद्रौरवमित्याहू रुरुरिति सर्पादतिक्रूरसत्त्वस्यापदेशः ॥११॥

ये=वे जो; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **यथा**=जितना कि; **एव**=ही; **अमुना**=उसके द्वारा; **विहिंसिताः**=पीड़ित किये गये; **जन्तवः**=जीवात्माएँ; **परत्र**=अगले जन्म में; **यम-यातनाम् उपगतम्**=यमराज द्वारा यातना पहुँचाये जाने पर; **ते**=वे जीवात्माएँ; **एव**=निस्संदेह; **रुरवः**=रुरु (एक ईर्ष्यालु पशु); **भूत्वा**=बनकर; **तथा**=उतना; **तम्**=उसको; **एव**=ही; **विहिंसन्ति**=पीड़ा पहुँचाते हैं; **तस्मात्**=इस कारण; **रौरवम्**=रौरव; **इति**=इस प्रकार; **आहुः**=विद्वानों का कथन है; **रुरुः**=रुरु नामक पशु; **इति**=इस प्रकार; **सर्पात्**=सर्प की अपेक्षा; **अति-क्रूर**=अत्यधिक निर्दय तथा ईर्ष्यालु; **सत्वस्य**=जीव का; **अपदेशः**=नाम।

अनुवाद

इस जीवन में ईर्ष्यालु व्यक्ति अनेक जीवात्माओं के प्रति हिंसा करता है। अतः मृत्यु के पश्चात् यमराज द्वारा नरक ले जाये जाने वाली पीड़ित जीवात्माएँ रुरु नामक पशु के रूप में प्रकट होकर उसे असह्य पीड़ा पहुँचाती हैं। विद्वान् लोग इसे ही रौरव नरक कहते हैं। रुरु सर्प से भी अधिक ईर्ष्यालु होता है और इस संसार में नहीं दिखाई पड़ता है।

तात्पर्य

श्रीधर स्वामी के अनुसार रुरु को भारश्रृंग (**अति-क्रूरस्य भारश्रृंगाख्य—सत्त्वस्य अपदेशः संज्ञा**) भी कहा जाता है। श्रील जीवगोस्वामी ने अपने ग्रन्थ **संदर्भ** में इसकी पुष्टि की है—**रुरु शब्दस्य स्वयं मुनिनैव टीका-विधानाल लोकेष्वप्रसिद्ध एवायं जन्तु-विशेषः**। इस प्रकार भले ही इस जगत् में रुरु दिखाई न पड़ते हों, लेकिन शास्त्रों से उनकी पुष्टि होती है।

एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहम्भरः ॥१२॥

एवम्=इस तरह; **एव**=ही; **महा-रौरवः**=महारौरव; **यत्र**=जहाँ; **निपतितम्**=फेंका जाकर; **पुरुषम्**=व्यक्ति; **क्रव्यादः नाम**=क्रव्याद नामक; **रुरवः**=रुरु पशु; **तम्**=उसको (दोषी पुरुष); **क्रव्येण**=उसके मांस-भक्षण हेतु; **घातयन्ति**=मारते हैं; **यः**=जो; **केवलम्**=केवल; **देहम्भरः**=अपने शरीर का पालन करते हैं।

अनुवाद

जो व्यक्ति अन्यों को पीड़ा पहुँचाकर अपने ही शरीर का पालन करता है उसे दण्डस्वरूप महारौरव नामक नरक दिया जाता है। इस नरक में क्रव्याद नामक रुरु पशु उसको काटते और उसका मांस खाते हैं।

तात्पर्य

ऐसा पशुतुल्य व्यक्ति जो देहात्मबुद्धि से रहता है उसे क्षमा नहीं किया जाता। उसे महारौरव नरक में रखा जाता है जहाँ उस पर क्रव्याद नामक रुरु पशु आक्रमण करते हैं।

यस्त्विह वा उग्रः पशून् पक्षिणो वा प्राणत उपरन्धयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके तप्ततैले उपरन्धयन्ति ॥१३॥

यः=वह व्यक्ति जो; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वा**=अथवा; **उग्रः**=अत्यन्त क्रूर; **पशून्**=पशु; **पक्षिणः**=पक्षी; **वा**=अथवा; **प्राणतः**=जीवित अवस्था में; **उपरन्धयति**=पकाता है; **तम्**=उसको; **अपकरुणम्**=अत्यन्त निष्ठुर; **पुरुष-आदैः**=जो पुरुष के मांस का भक्षण करते हैं; **अपि**=यहाँ तक कि; **विगर्हितम्**=त्यक्त; **अमुत्र**=अगले जन्म में; **यम-अनुचराः**=यमराज के दूत; **कुम्भीपाके**=कुम्भीपाक नरक में; **तप्त-तैले**=उबलते तेल में; **उपरन्धयन्ति**=पकाते हैं।

अनुवाद

क्रूर व्यक्ति अपने शरीर के पालन तथा अपने स्वाद की पूर्ति के लिए निरीह जीवित पशु तथा पक्षियों को राँधते हैं। ऐसे व्यक्तियों की मनुजाद (मनुष्य-भक्षक) भी भर्त्सना करते हैं। अगले जन्मों में वे यमदूतों के द्वारा कुम्भीपाक नरक में ले जाये जाते हैं, जहाँ वे उन्हें उबलते तेल में भून डालते हैं।

यस्त्विह ब्रह्मध्रुक् स कालसूत्रसंज्ञके नरके अयुतयोजनपरिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानान्तर्बहिःशरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥१४॥

यः=जो कोई; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **ब्रह्म-ध्रुक्**=ब्राह्मण की हत्या करने वाला; **सः**=ऐसा व्यक्ति; **कालसूत्र-संज्ञके**=कालसूत्र नामक; **नरके**=नरक में; **अयुत-योजन-परिमंडले**=अस्सी हजार मील की परिधि वाले; **ताम्र-मये**=ताम्र से बने; **तप्त**=गरम किये हुए; **खले**=समतल स्थल में; **उपरि-अधस्तात्**=ऊपर तथा नीचे; **अग्नि**=अग्नि द्वारा; **अर्काभ्याम्**=(तथा) सूर्य द्वारा; **अति-तप्यमाने**=अत्यधिक गरम किये जाने पर; **अभिनिवेशितः**=प्रविष्ट कराये जाने पर; **क्षुत्पिपासाभ्याम्**=भूख तथा प्यास से; **च**=तथा; **दह्यमान**=जलाया जाकर; **अन्तः**=भीतर से; **बहिः**=बाहर से; **शरीरः**=जिसका शरीर; **आस्ते**=रहता है; **शेते**=कभी-कभी लेटता है; **चेष्टते**=कभी-कभी अपने अंगों को हिलाता-डुलाता है; **अवतिष्ठति**=कभी-कभी खड़ा होता है; **परिधावति**=कभी-कभी इधर-उधर दौड़ता है; **च**=भी; **यावन्ति**=जितने; **पशु-रोमाणि**=पशु के शरीर के रोम; **तावत्**=उतनी दूरी तक; **वर्ष-सहस्राणि**=हजारों वर्ष।

अनुवाद

ब्राह्मण-हन्ता को कालसूत्र नामक नरक में रखा जाता है जिसकी परिधि अस्सी हजार मील की है और जो ताम्बे से बना है। इस लोक की ताम्र-सतह ऊपर से तपते सूर्य द्वारा और नीचे से अग्नि द्वारा तप्त होने से अत्यधिक गरम रहती है। इस प्रकार ब्राह्मण का बध करने वाला भीतर और बाहर से जलाया जाता है। भीतर-भीतर वह भूख तथा प्यास से और बाहर से सूर्य तथा ताम्र की सतह के नीचे की अग्नि से जलता रहता है। अतः वह कभी लेटता है, कभी बैठता है, कभी खड़ा होता है और कभी इधर-उधर दौड़ता है। इस प्रकार वह उतने हजार वर्षों तक यातना सहता रहता है जितनी कि पशु-शरीर में रोमों की संख्या होती है।

यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र हासावितस्ततो धावमान उभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वाङ्गो हा हतोऽस्मीति

परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महापाखण्डानुगतं फलं भुङ्क्ते ॥१५॥

यः=जो कोई; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=निस्संदेह; **निज-वेद-पथात्**=वेदों द्वारा बताये गये अपने पथ से; **अनापदि**=बिना आपात काल के; **अपगतः**=दूर हटा हुआ; **पाखण्डम्**=पाखंडवाद; **च**=तथा; **उपगतः**=पास पहुँचा हुआ; **तम्**=उसको; **असि-पत्रवनम्**=असिपत्रवन नामक नरक; **प्रवेश्य**=प्रविष्ट होकर; **कशया**=चाबुक से; **प्रहरन्ति**=पीटते हैं; **तत्र**=वहाँ; **ह**=ही; **असौ**=वह; **इतः ततः**=इधर-उधर; **धावमानः**=दौड़ते हुए; **उभयतः**=दोनों ओर; **धारैः**=तीक्ष्ण कोरों से; **ताल-वन-असि-पत्रैः**=ताड़ वृक्षों की तलवार जैसी पत्तियों से; **छिद्यमान्**=छिदकर; **सर्व-अंगः**=जिसका सम्पूर्ण शरीर; **हा**=हाय; **हतः**=मर गया; **अस्मि**=हूँ; **इति**=इस प्रकार; **परमया**=असह्य; **वेदनया**=पीड़ा से; **मूर्च्छितः**=मूर्च्छित, संज्ञाशून्य; **पदे पदे**=प्रति पग पर; **निपतति**=गिर पड़ता है; **स्व-धर्म-हा**=अपने धर्म के नियमों का हन्ता; **पाखण्ड-अनुगतम्-फलम्**=नास्तिक पथ ग्रहण करने का फल; **भुङ्क्ते**=भोगता है, सहता है।

अनुवाद

यदि कोई पुरुष किसी प्रकार की आपत्ति न आने पर भी वैदिक पथ से हटता है तो यमराज के दूत उसे असिपत्रवन नरक में ले जाकर कोड़ों से पीटते हैं। जब वह अत्यधिक पीड़ा से इधर-उधर दौड़ता है तो उसे अपने चारों ओर तलवार के समान तीक्ष्ण ताड़ वृक्षों की पत्तियाँ मिलती हैं। इस प्रकार पूरा शरीर क्षत-विक्षत होने से वह प्रति पग पर मूर्छित होता रहता है और चिल्लाता है, "अरे! अब मैं क्या करूँ। मैं किस प्रकार से बचूँ!" मान्य धार्मिक नियमों से विपथ होने का ऐसा ही दण्ड मिलता है।

तात्पर्य

वास्तव में केवल एक धार्मिक नियम है—**धर्मं तु साक्षाद् भवगत्प्रणीताम्**। श्रीभगवान् के आदेशों का पालन करना ही एकमात्र धार्मिक नियम है। दुर्भाग्यवश, इस कलियुग में, प्रत्येक व्यक्ति नास्तिक है। मनुष्य ईश्वर में विश्वास तक नहीं करते, उनके वचनों का पालन तो दूर रहा; **निज-वेद-पथ** का यह भी अर्थ हो सकता है—"किसी के अपने धार्मिक नियमों का समुच्चय।" प्रारम्भ में केवल एक वेद-पथ अर्थात् धार्मिक नियमों का समुच्चय था, अब अनेक हैं। कोई चाहे जिस धार्मिक नियमों के समुच्चय का पालन करे, मात्र बन्धन यह है कि उनका कठोरता से पालन करे। नास्तिक वह है जो वेदों को नहीं मानता। किन्तु यदि कोई भिन्न धर्म-पथ का

अनुसरण करता है तो इस श्लोक के अनुसार उसे चाहिए कि उसी का अनुसरण करे। कोई चाहे हिन्दू हो या मुसलमान अथवा ईसाई, उसे अपने धार्मिक नियमों का पालन करना चाहिए। किन्तु यदि कोई स्वतः अपने मन में अपना धर्म-पथ गढ़ लेता है या वह किसी भी धार्मिक नियम का पालन नहीं करता, तो उसे असिपत्रवन नामक नरक की यातना भोगनी पड़ती है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को किन्हीं धार्मिक नियमों का पालन करना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह पशु से किसी प्रकार श्रेष्ठ नहीं। ज्यों-ज्यों कलियुग आगे बढ़ रहा है, मनुष्य नास्तिक होते जा रहे हैं और तथाकथित धर्म-निरपेक्षता को ग्रहण कर रहे हैं। उन्हें इसका तनिक भी ज्ञान नहीं है कि असिपत्रवन में उन्हें दण्डित किया जायेगा।

यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान्नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेहेक्षुखण्ड आर्तस्वरेण स्वनयन् क्वचिन्मूर्च्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥१६॥

यः=जो कोई; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=निस्सन्देह; **राजा**=राजा; **राज-पुरुषः**=राजा का आदमी; **वा**=अथवा; **अदण्ड्ये**=अदण्डनीय को; **दण्डम्**=दण्ड; **प्रणयति**=देता है; **ब्राह्मणे**=ब्राह्मण को; **वा**=अथवा; **शरीर-दण्डम्**=शारीरिक दण्ड; **सः**=वह व्यक्ति, राजा अथवा राज्याधिकारी; **पापीयान्**=पापी मनुष्यों को; **नरके**=नरक में; **अमुत्र**=अगले जन्म में; **सूकरमुखे**=सूकरमुख नरक में; **निपतति**=गिरता है; **तत्र**=वहाँ; **अति-बलैः**=अत्यन्त बलशाली यमदूतों द्वारा; **विनिष्पिष्यमाणः**=कुचला जाकर; **अवयवः**=शरीर के विभिन्न अंग; **यथा**=सदृश; **एव**=ही; **इह**=यहाँ; **इक्षु-खण्डः**=गन्नों के टुकड़े; **आर्त-स्वरेण**=करुण स्वर से; **स्वनयन्**=चिल्लाते हुए; **क्वचित्**=कभी-कभी; **मूर्छितः**=मूर्छित होकर; **कश्मलम् उपगतः**=मोहग्रस्त होकर; **यथा**=सदृश; **एव**=निस्सन्देह; **इह**=यहाँ; **अदृष्ट-दोषः**=जो दोषी नहीं है; **उपरुद्धाः**=दण्ड हेतु बन्दी बनाया गया।

अनुवाद

अगले जन्म में यमदूत निर्दोष पुरुष या ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड देने वाले पापी राजा अथवा राज्याधिकारी को सूकरमुख नामक नरक में ले जाते हैं जहाँ उसे यमराज के दूत उसी प्रकार कुचलते हैं जिस प्रकार गन्ने को पेर कर रस निकाला जाता है। जिस प्रकार से निर्दोष व्यक्ति दण्डित होते समय चिल्लाता और मूर्छित

होता है ठीक उसी तरह पापी जीवात्मा भी आर्तनाद करता एवं मूर्छित होता है। निर्दोष व्यक्ति को दण्ड देकर पीड़ित करने का यही फल है।

यस्त्विह वै भूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्तपरव्यथो व्यथामाचरति स परत्रान्धकूपे तदभिद्रोहेण निपतति तत्र हासौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुण-मक्षिकादिभिर्ये के चाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहतनिद्रा-निर्वृतिरलब्धावस्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥१७॥

यः=जो कोई; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=निस्सन्देह; **भूतानाम्**=कुछ जीवात्माओं को; **ईश्वर**=परम नियन्ता द्वारा; **उपकल्पित**=बनाया गया; **वृत्तीनाम्**=जिनकी जीविका; **अविविक्त**=न जानते हुए; **पर-व्यथानाम्**=पर-पीड़ा; **स्वयम्**=अपने आप; **पुरुष-उपकल्पित**=श्रीभगवान् द्वारा निर्मित; **वृत्तिः**=जिसकी जीविका; **विविक्त**=जानते हुए; **पर-व्यथाः**=पर पीड़ा; **व्यथाम् आचरति**=तो भी पीड़ा पहुँचाता है; **सः**=ऐसा व्यक्ति; **परत्र**=अगले जन्म में; **अन्धकूपे**=अन्ध-कूप नरक में; **तत्**=उनको; **अभिद्रोहेण**=द्रोह करने से; **निपतति**=गिरता है; **तत्र**=वहाँ; **ह**=निस्सन्देह; **असौ**=वह व्यक्ति; **तैः जन्तुभिः**=उन-उन जीवों द्वारा; **पशु**=पशु; **मृग**=जंगली जानवर; **पक्षि**=पक्षी; **सरीसृपैः**=सर्प; **मशक**=मच्छर; **यूका**=जूँ; **मत्कुण**=कीड़े; **मक्षिक-आदिभिः**=मक्खी आदि; **ये के**=अन्य जितने; **च**=और; **अभिद्रुग्धाः**=दण्डित; **तैः**=उनके द्वारा; **सर्वतः**=सर्वत्र; **अभिद्रुह्यमाणः**=पीड़ा पहुँचाये हुए; **तमसि**=अन्धकार में; **विहत**=विक्षुब्ध; **निद्रा-निर्वृतिः**=जिनके वासस्थान; **अलब्ध**=प्राप्त न होने वाले; **अवस्थानः**=आवास; **परिक्रामति**=घूमता है; **यथा**=जिस प्रकार; **कु-शरीरे**=निम्न योनि के देह में; **जीवः**=जीव।

अनुवाद

श्रीभगवान् की योजना से खटमल तथा मच्छर जैसे निम्न श्रेणी के जीव मनुष्यों तथा अन्य पशुओं का रक्त चूसते हैं। इन तुच्छ प्राणियों को इसका ज्ञान नहीं है कि उनके काटने से मनुष्यों को पीड़ा होती होगी। किन्तु उच्च श्रेणी के मनुष्यों—यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य में चेतना विकसित रूप में होती है अतः वे जानते हैं कि प्राण लेना कितना कष्टदायक है। यदि ज्ञान प्रदत्त होने पर भी मनुष्य विवेकहीन तुच्छ प्राणियों को मारता या सताता है तो वह निश्चय ही पाप करता है। श्रीभगवान् ऐसे मनुष्य को अन्धकूप में रखकर दण्डित करते हैं जहाँ उसे वे

समस्त पक्षी तथा पशु, सर्प, मच्छर, जूं, कीड़े, मक्खियाँ तथा अन्य प्राणी, जिनको उसने अपने जीवनकाल में सताया था, उस पर चारों ओर से आक्रमण करते हैं और उसकी नींद हराम कर देते हैं। आराम न कर सकने के कारण वह अन्धकार में घूमता रहता है। इस प्रकार अन्धकूप में उसे वैसी ही यातना मिलती है जैसी कि निम्न योनि के प्राणी को।

तात्पर्य

इस शिक्षाप्रद श्लोक से हमें पता चलता है कि निम्न प्राणी प्रकृति के नियमानुसार मनुष्यों को तंग करने के लिए उत्पन्न किये गये हैं अतः वे दण्डनीय नहीं हैं। चूँकि मनुष्यों में चेतना विकसित है, अतः वे वर्णाश्रम धर्म के नियमों के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते अन्यथा भर्त्सना के पात्र होंगे। श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (४.१३) में कहा है—**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः**—"प्रकृति के त्रिगुणों और नियत कर्म के अनुसार चारों वर्ण मेरे द्वारा रचे गये हैं।" अतः समस्त मनुष्यों को चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—में विभाजित करना चाहिए और उन्हें निर्दिष्ट नियमों के अनुसार कार्य करना चाहिए। वे उससे तनिक भी विचलित नहीं हो सकते। इन नियमों में से एक के अनुसार उन्हें किसी पशु को, यहाँ तक कि जो मनुष्यों को सताते हैं उन्हें भी कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए। यदि शेर किसी पशु पर आक्रमण करके उसे मार कर उसका मांस खाता है तो वह पापमय नहीं है, किन्तु यदि मनुष्य भी ऐसा करे तो उसे दण्डित किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, वह मनुष्य जो अपनी विकसित चेतना का उपयोग नहीं करता वरन् उल्टे पशुवत् व्यवहार करता है वह अनेक नरकों में दण्ड पाता है।

यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किञ्चनोपनतमनिर्मितपञ्चयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो यावत्तद प्रत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते ॥१८॥

यः=कोई व्यक्ति जो; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वा**=अथवा; **असंविभज्य**=बिना बाँटे; **अश्नाति**=खाता है; **यत्किञ्चन**=जो भी; **उपनतम्**=श्रीकृष्ण की कृपा से प्राप्त; **अनिर्मित**=बिना किये हुए; **पंच-यज्ञः**=पाँच प्रकार के यज्ञ; **वायस**=कौवे; **संस्तुतः**=सम रूप में वर्णित; **सः**=ऐसा पुरुष; **परत्र**=अगले जन्म में; **कृमिभोजने**=कृमिभोजन लोक में; **नरक-अधमे**=अत्यन्त निकृष्ट नरक में; **निपतति**=गिरता है; **तत्र**=वहाँ; **शत-सहस्र-योजने**=१,००,००० योजन वाले; **कृमि-कुंडे**=कीड़ों के कुंड में; **स्वयम्**=स्वयं; **कृमिभिः**=अन्य कीड़ों के द्वारा; **एव**

=निश्चय ही; **भक्ष्यमाणः**=भक्षित होकर; **कृमि-भोजनः**=खाद्य कीड़े; **यावत्**= जहाँ तक; **तत्**=वह कुंड चौड़ा है; **अप्रत्त-अप्रहुत**=बिना बाँटा और बिना दिया हुआ भोजन; **अदः**=जो खाता है; **अनिर्वेशम्**=जिसने परिशोध नहीं किया; **आत्मानम्**=अपने आपको; **यातयते**=पीड़ा पहुँचाता है।

अनुवाद

जो मनुष्य कुछ भोजन मिलने पर उसे अतिथियों, वृद्ध पुरुषों तथा बच्चों को न बाँट कर स्वयं खा जाता है अथवा बिना पंचयज्ञ किये खाता है, उसे कौवे के समान मानना चाहिए। मृत्यु के बाद वह सबसे निकृष्ट नरक कृमिभोजन में रखा जाता है। इस नरक में एक लाख योजन विस्तृत तथा कीड़ों से परिपूर्ण कुंड है। वह इस कुंड में कीड़ा बनकर रहता है और दूसरे कीड़ों को खाता है और ये कीड़े उसे खाते हैं। जब तक वह पापी अपने पापों का प्रायश्चित नहीं करता तब तक वह कृमिभोजन के नारकीय कुंड में उतने वर्षों तक पड़ा रहता है, जितने योजन इस कुंड का विस्तार है।

तात्पर्य

भगवद्गीता (३.१३) में कहा गया है—

यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

"यज्ञ से बचे अन्न का भोजन करने वाले भगवद्भक्त सब पापों से मुक्त हो जाते हैं, किन्तु जो इन्द्रियतृप्ति के लिए भोजन बनाते हैं वे तो पाप ही खाते हैं।" हमें सारा भोजन श्रीभगवान् से प्राप्त है। **एको बहूनां यो विदधाति कामान्**—भगवान् हर एक को जीवन की आवश्यकताएँ प्रदान करते हैं, अतः हमें चाहिए कि उनके अनुग्रह को यज्ञ द्वारा स्वीकार करें। यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। निस्सन्देह जीवन का पूर्ण उद्देश्य यज्ञ करना है। श्रीकृष्ण के अनुसार (भगवद्गीता ३.९)—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥

"श्रीविष्णु के लिए यज्ञरूप में कर्म करना अनिवार्य है, अन्यथा कर्म से इस भौतिक जगत् में मनुष्य बँध जाता है। इसलिए हे कुन्तीपुत्र! श्रीविष्णु की प्रसन्नता के लिए निर्दिष्ट कर्म का आचरण कर। इस प्रकार करने से तू नित्य अनासक्त तथा बन्धनमुक्त रहेगा।" यदि हम यज्ञ करके दूसरों को प्रसाद वितरित नहीं करते तो हमारे जीवन को धिक्कार है। यज्ञ कर लेने तथा आश्रितों को—अर्थात् बच्चों,

ब्राह्मणों तथा वृद्धों को प्रसाद वितरित कर लेने के बाद ही हमें भोजन करना चाहिए। किन्तु यदि कोई केवल अपने लिए या अपने परिवार के लिए रसोई बनाता है तो वह और खाने वाले धिक्कार के योग्य हैं। मृत्यु के बाद उसे कृमिभोजन नरक में रखा जाता है।

यस्त्विह वै स्तेयेन बलाद्वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वापहरत्यन्यस्य वानापदि पुरुषस्तममुत्र राजन् यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिण्डैः सन्दंशैस्त्वचि निष्कुषन्ति ॥१९॥

यः=कोई व्यक्ति जो; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=निस्सन्देह; **स्तेयेन**=चोरी से; **बलात्**=बलपूर्वक; **वा**=अथवा; **हिरण्य**=सोना; **रत्न**=रत्न; **आदीनि**=इत्यादि; **ब्राह्मणस्य**=ब्राह्मण का; **वा**=अथवा; **अपहरति**=चुराता है; **अन्यस्य**=अन्यों का; **वा**=या; **अनापदि**=आपत्ति के समय नहीं; **पुरुष**=व्यक्ति; **तम्**=उसको; **अमुत्र**=अगले जीवन में; **राजन्**=हे राजन् !; **यम-पुरुषाः**=यमराज के दूत; **अयः मयैः**=लोहे से निर्मित; **अग्नि-पिंडैः**=अग्नि में तप्त किये गये गोलों से; **सन्दशैः**=संडसी से; **त्वचि**=चमड़ी पर; **निष्कुषन्ति**=टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं।

अनुवाद

हे राजन् ! जो पुरुष आपत्तिकाल न होने पर भी ब्राह्मण अथवा अन्य किसी का रत्न तथा सोना लूट लेता है वह सन्दंश नामक नरक में रखा जाता है। वहाँ पर उसकी चमड़ी संडसी से नोची जाती है और उसे लोहे के गरम गोलों से दाबा जाता है। इस प्रकार उसका पूरा शरीर खण्ड-खण्ड कर दिया जाता है।

यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या ॥२०॥

यः=जो कोई; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वा**=अथवा; **अगम्याम्**=अनुपयुक्त; **स्त्रियाम्**=स्त्री; **अगम्यम्**=अगम्य; **वा**=अथवा; **पुरुषम्**=पुरुष; **योषित्**=स्त्री; **अभिगच्छति**=संभोग के लिए पास जाते हैं; **तौ**=वे दोनों; **अमुत्र**=अगले जीवन में; **कशया**=कोड़ों से; **ताडयन्तः**=पीटते हुए; **तिग्मया**=अत्यन्त तप्त; **सूर्म्या**=मूर्ति द्वारा; **लोह-मय्या**=लोह से निर्मित; **पुरुषम्**=पुरुष;

आलिंगयन्ति=आलिंगन करते हैं; **स्त्रियम्**=स्त्री को; **च**=भी; **पुरुष-रूपया**=पुरुष के रूप में; **सूर्म्या**=मूर्ति द्वारा।

अनुवाद

यदि कोई पुरुष या स्त्री विपरीत लिंग वाले अगम्य सदस्य के साथ व्यभिचार करती है तो मृत्यु के बाद यमराज के दूत उसे तप्तसूर्मि नामक नरक में दण्ड देते हैं। वहाँ पर ऐसे पुरुष तथा स्त्रियाँ कोड़े से पीटी जाती हैं। पुरुष को तप्तलोह की बनी स्त्री प्रतिमा से और स्त्री को ऐसी ही पुरुष प्रतिमा से आलिंगित कराया जाता है। व्यभिचार के लिए ऐसा ही दण्ड है।

तात्पर्य

सामान्यत: पुरुष को अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री के साथ संभोग नहीं करना चाहिए। वैदिक नियमों के अनुसार पराई स्त्री मातृ तुल्य होती है और अपनी माँ, बहन तथा पुत्री के साथ भी प्रसंग करना वर्जित है। यदि कोई पराई स्त्री के साथ ऐसे अवैध सम्बन्ध रखता है तो यह कार्य अपनी माँ के साथ प्रसंग करने के तुल्य माना जाता है। ऐसे कार्य अत्यन्त पापमय हैं। यही नियम स्त्री पर भी लागू होता है। यदि वह अपने पति को छोड़कर पर-पति से संभोग कराती है तो यह कार्य अपने पिता या पुत्र के साथ यौन-सम्बन्ध रखने के तुल्य है। अवैध स्त्री-पुरुष प्रसंग सदैव वर्जित है और जो कोई ऐसा करता है उसे इस श्लोक में वर्णित दण्ड भोगना पड़ता है।

यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्रकण्टकशाल्मलीमारोप्य निष्कर्षन्ति ॥२१॥

य:=जो कोई; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=निस्सन्देह; **सर्व-अभिगम:**=अन्धाधुन्ध पशुओं तथा मनुष्यों के साथ मैथुन करता है; **तम्**=उसको; **अमुत्र**=अगले जन्म में; **निरये**=नरक में; **वर्तमानम्**=विद्यमान; **वज्रकण्टक-शाल्मलीम्**=वज्र के समान काँटों वाला सेमल वृक्ष; **आरोप्य**=चढ़ाकर; **निष्कर्षन्ति**=नीचे की ओर खींचते हैं।

अनुवाद

जो पुरुष अन्धाधुन्ध—यहाँ तक कि पशुओं के साथ भी—व्यभिचार करता है उसे मृत्यु के बाद वज्रकंटकशाल्मली नामक नरक में ले जाया जाता है। इस नरक में वज्र के समान कठोर काँटों से पूर्ण सेमल का वृक्ष है। यमराज के दूत पापी पुरुष को इस वृक्ष से लटका देते हैं और बलपूर्वक नीचे की ओर खींचते हैं जिससे काँटों के द्वारा उसका शरीर बुरी तरह चिथड़ जाता है।

तात्पर्य

कभी-कभी कामेच्छा इतनी उत्कट होती है कि मनुष्य गाय के साथ अथवा स्त्री कुत्ते के साथ व्यभिचार करती है। ऐसे पुरुषों तथा स्त्रियों को वज्रकंटकशाल्मली नरक में डाल दिया जाता है। श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन अवैध स्त्री-पुरुष प्रसंग को वर्जित करता है। इन श्लोकों से हम समझ सकते हैं कि अवैध प्रसंग कितना पापमय है। कभी-कभी मनुष्यों को नरक के इन वर्णनों पर विश्वास नहीं होता, किन्तु चाहे किसी को विश्वास हो अथवा नहीं, प्रत्येक कार्य का पालन प्रकृति के नियमों द्वारा किया जाना चाहिए।

ये त्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून् भिन्दन्ति ते सम्परेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरन्तो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यन्ते ॥२२॥

ये=जो पुरुष; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=निस्सन्देह; **राजन्याः**= राज परिवार के सदस्य अथवा क्षत्रिय; **राज-पुरुषाः**=राज्याधिकारी; **वा**=अथवा; **अपाखण्डाः**=यद्यपि श्रेष्ठ कुलों में जन्म लेता है; **धर्म-सेतून्**=निर्दिष्ट धार्मिक नियमों की मर्यादाएँ; **भिन्दन्ति**=उल्लंघन करते हैं; **ते**=वे; **सम्परेत्य**=मरने के पश्चात्; **वैतरण्याम्**=वैतरिणी नामक; **निपतन्ति**=गिर पड़ते हैं; **भिन्न मर्यादाः**= जिन्होंने विधि-विधानों को तोड़ दिया है; **तस्याम्**=उसमें; **निरय-परिखा-भूतायाम्** =नरक को घेरने वाली खाई; **नद्याम्**=नदी में; **यादः-गणैः**=हिंस्र जल के जीवों द्वारा; **इतः-ततः**=इधर-उधर; **भक्ष्यमाणाः**=खाया जाकर; **आत्मना**=शरीर से; **न**=नहीं; **वियुज्यमानाः**=विलग किया जाकर; **च**=तथा; **असुभिः**=प्राणवायु; **उह्यमानाः**=ले जाया जाकर; **स्व-अघेन**=अपने ही पाप कर्मों के द्वारा; **कर्म-पाकम्** =कुकर्मों का फल; **अनुस्मरन्तः**=स्मरण करते हुए; **विट**=मल; **मूत्र**=मूत्र; **पूय** =पीब; **शोणित**=रक्त; **केश**=बाल; **नख**=नाखून; **अस्थि**=हड्डियाँ; **मेदः**= मज्जा; **मांस**=मांस; **वसा**=चर्बी; **वाहिन्याम्**=नदी में; **उपतप्यन्ते**=सन्तप्त होते रहते हैं।

अनुवाद

जो मनुष्य श्रेष्ठ कुल—यथा क्षत्रिय, राज परिवार या अधिकारी वर्ग में जन्म ले करके धार्मिक नियमों की अवहेलना करता है और इस प्रकार से अधम बन जाता

है वह मृत्यु के समय वैतरणी नामक नरक की नदी में गिरता है। यह नदी नरक को घेरने वाली खाई के समान है और अत्यन्त हिंस्र जल के जीवों से पूर्ण है। जब पापी मनुष्य को वैतरणी नदी में फेंका जाता है तो जल के जीव उसे तुरन्त खाने लगते हैं और पापमय शरीर रोने के कारण वह नहीं बच पाता। वह निरन्तर अपने पापमय कर्मों का स्मरण करता है और मल, मूत्र, पीब, रक्त, केश, नख, हड्डी, मज्जा, मांस तथा चर्बी से भरी हुई उस नदी में अत्यधिक यातनाएँ पाता है।

ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्तलज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलापूर्णार्णवे निपतन्ति तदेवातिबीभत्सितमश्नन्ति ॥२३॥

ये=जो पुरुष; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=निस्सन्देह; **वृषलीपतयः**=शूद्राओं के पति; **नष्ट**=नष्ट; **शौच-आचार-नियमाः**=जिसकी शुचिता, आचरण तथा नियमित जीवन; **त्यक्त-लज्जाः**=लज्जारहित; **पशु-चर्याम्**=पशुओं का आचरण; **चरन्ति**=पालन करते हैं; **ते**=वे; **च**=भी; **अपि**=निस्सन्देह; **प्रेत्य**=मरकर; **पूय**=पीब; **विट**=मल; **मूत्र**=मूत्र; **श्लेष्मा**=श्लेष्मा; **मला**=लार; **पूर्ण**=भरा हुआ; **अर्णवे**=समुद्र में; **निपतन्ति**=गिरते हैं; **तत्**=वह; **एव**=एकमात्र; **अतिबीभत्सितम्**=अत्यन्त वीभत्स (घृणित); **अश्नन्ति**=भोजन करते हैं।

अनुवाद

शूद्रा स्त्रियों के निर्लज्ज पति पशुओं की भाँति रहते हैं, अतः उनमें आचरण, शुचिता या नियमित जीवन का अभाव रहता है। ऐसे व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् पूयोद नामक नरक में फेंक दिये जाते हैं जहाँ वे मल, मूत्र, पीब, श्लेष्मा, लार तथा अन्य वस्तुओं से पूर्ण समुद्र में रखे जाते हैं। जो शूद्र अपने को नहीं सुधार पाते वे इस सागर में गिरकर इन घृणित वस्तुओं को खाने के लिए बाध्य किये जाते हैं।

तात्पर्य

श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है—

कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, केवल विषेर बाण्ड
अमृत बलिया येबा खाय
नाना योनि सदा फिरे, कदर्य भक्षण करे
तार जन्म अधः-पते याय

उनका कथन है कि कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड मार्गों का अनुसरण करने वाले मनुष्य मानव जन्म का अवसर खोते हैं और जन्म-मरण के चक्र में घूमते रहते हैं। अतः सदैव सम्भावना बनी रहती है कि उसे पूयोद नरक में रखा जाय जहाँ उसे मल, मूत्र, पीब, श्लेष्मा, लार तथा अन्य घृणित पदार्थों को खाने के लिए बाध्य किया जाता है। यह उल्लेखनीय है कि यह श्लोक विशेष रूप से शूद्रों के सम्बन्ध में है। यदि कोई शूद्र रूप में जन्म लेता है तो उसे निरन्तर पूयोद सागर में लौट कर अत्यन्त घृणित पदार्थ खाने पड़ते हैं। अतः जन्मजात शूद्र से यह आशा की जाती है कि वह ब्राह्मण बने, यही मानव जीवन का अभिप्राय है। प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि वह ऊपर उठे। श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (४.१३) में कहा है—**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः**—"प्रकृति के त्रिगुणों और नियत कर्म के अनुसार चारों वर्ण मेरे द्वारा रचे गये हैं।" यदि कोई शूद्र पदवीधारी है तो उसे चाहिए कि वह अपनी स्थिति सुधार कर ब्राह्मण बने। किसी को भी, चाहे उसकी वर्तमान स्थिति जो भी हो, ब्राह्मण या वैष्णव पद तक पहुँचने के लिए रोकना नहीं चाहिए। वास्तव में हर एक को वैष्णव पद तक पहुँचना है। तब वह स्वतः ब्राह्मण हो जाता है। यह तभी सम्भव है जब श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार हो, क्योंकि हम प्रत्येक प्राणी को वैष्णव पद तक लाना चाहते हैं। जैसा कि श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (१८.६६) में कहा है—**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**—अन्य समस्त कार्यों को त्याग दो और केवल मेरी शरण में आओ। मनुष्य को चाहिए कि शूद्र, क्षत्रिय या वैश्य के कर्मों को त्याग कर वैष्णवों के कर्तव्यों को ग्रहण करे जिसमें ब्राह्मण के कार्यों का समावेश है। इसकी व्याख्या श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (९.३२) में इस प्रकार की है—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

"हे पार्थ! मेरी शरण होकर तो पापयोनि वाले, स्त्री, वैश्य और शूद्र भी परम गति को प्राप्त हो जाते हैं।" मानव जीवन का विशिष्ट उद्देश्य श्रीभगवान् के धाम को जाना है। यह सुविधा हर एक को मिलनी चाहिए, चाहे वह शूद्र हो या वैश्य, स्त्री हो या क्षत्रिय। श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही उद्देश्य है। किन्तु यदि कोई शूद्र बने रहने में सन्तुष्ट है तो उसे इस श्लोक के अनुसार यातना भोगनी होगी—**तद् एवातिविभत्सितम् अश्नन्ति।**

ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा अतीर्थे च मृगान्निघ्नन्ति तानपि सम्परेतॉंल्लक्ष्यभूतान् यमपुरुषा इषुभिर्विध्यन्ति ॥२४॥

ये=वे जो; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=या; **श्व**=कुत्तों का;

गर्दभ =तथा गधे; **पतयः** =स्वामी; **ब्राह्मण-आदयः** =ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य; **मृगया विहाराः** =वन में आखेट करने में रुचि दिखाने वाला; **अतीर्थे** =बताये हुए से इतर; **च** =भी; **मृगान्** =पशुओं को; **निघ्नन्ति** =मारते हैं; **तान्** =उनको; **अपि** =निस्सन्देह; **सम्परेतान्** =मर कर; **लक्ष्य-भूतान** =लक्ष्य बनकर; **यम-पुरुषाः** =यमराज के दूत; **इषुभिः** =तीरों द्वारा; **विध्यन्ति** =बींधते हैं।

अनुवाद

यदि इस जीवन में उच्च वर्ग का मनुष्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) कुत्ते, गधे तथा खच्चर पालता है और जंगल में आखेट करने तथा वृथा ही पशुओं को मारने में अत्यधिक रुचि लेता है तो मृत्यु के पश्चात् वह प्राणरोध नामक नरक में डाला जाता है। वहाँ पर यमराज के दूत उसे लक्ष्य बनाकर अपने तीरों से बेध डालते हैं।

तात्पर्य

पाश्चात्य देशों में, विशेषकर सामन्त जंगल में पशुओं का शिकार करने के लिए कुत्ते तथा घोड़े पालते हैं। चाहे पूर्व हो या पश्चिम, कलियुग में सामन्तवादी व्यक्ति जंगल में जाकर वृथा ही पशु-वध करते हैं। उच्च वर्ग के पुरुषों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) को ब्रह्मज्ञान का अनुशीलन करना चाहिए और शूद्रों को भी उस पद पर पहुँचने का अवसर देना चाहिए। यदि इसके बजाय वे आखेट में रत होते हैं तो वे इस श्लोक में वर्णित विधि से दण्डित होते हैं। वे यमदूतों के द्वारा न केवल वाणों से बिद्ध किये जाते हैं वरन् पीब, मूत्र तथा मल के सागर में रखे जाते हैं।

ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून् विशसन्ति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विशसन्ति ॥२५॥

ये =जो पुरुष; **तु** =लेकिन; **इह** =इस जीवन में; **वै** =निस्सन्देह; **दाम्भिकाः** =सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठा से गर्वित; **दम्भ-यज्ञेषु** =प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए किये गये यज्ञ में; **पशून्** =पशुओं को; **विशसन्ति** =मारते हैं; **तान्** =उनको; **अमुष्मिन् लोके** =अगले जगत् में; **वैशसे** =वैशस या विशसन; **नरके** =नरक में; **पतितान्** =गिरे हुए; **निरय-पतयः** =यमराज के दूत; **यातयित्वा** =प्रचुर पीड़ा प्रदान करके; **विशसन्ति** =मार डालते हैं।

अनुवाद

जो पुरुष इस जन्म में अपने विख्यात पद पर गर्व करता है और केवल प्रतिष्ठा के लिए पशुओं की बलि चढ़ाता है, उसे मृत्यु के पश्चात् वैशसन नामक नरक में

रखा जाता है। वहाँ यम के दूत उसे अपार कष्ट देकर अन्त में उसका वध कर देते हैं।

तात्पर्य

भगवद्गीता (६.४१) में श्रीकृष्ण कहते हैं—**शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते**—"योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यात्माओं के लोकों में अनेक वर्षों तक सुख को भोगकर सदाचारी धनवानों के कुल में जन्म लेता है।" ऐसा जन्म पाकर उसे चाहिए कि भक्तियोग को परिपूर्ण बनाये। किन्तु कुसंग के कारण वह यह भूल जाता है कि श्रीभगवान् ने ही उसे यह प्रतिष्ठित पद प्रदान किया है। वह अनेक प्रकार के यज्ञ यथा कालीपूजा या दुर्गापूजा करके इसका दुरुपयोग करता है और निरीह पशुओं की बलि चढ़ाता है। ऐसे पुरुष को किस प्रकार दण्डित किया जाता है उसका वर्णन इस श्लोक में हुआ है। इस श्लोक का एक शब्द **दम्भयज्ञेषु** महत्त्वपूर्ण है। यदि यज्ञ करते समय वैदिक शिक्षाओं का पालन नहीं किया जाता और केवल दिखावे के लिए पशुओं की बलि की जाती है तो वह मृत्यु के उपरान्त दण्ड का भागी है। कलकत्ते में ऐसे अनेक कसाईघर हैं, जिनमें ऐसा मांस बिकता है जो देवी काली में बलि चढ़ा होता है। शास्त्रों का मत है कि मास में एक बार देवी काली को छोटे बकरे की बलि की जा सकती है। यह कहीं नहीं उल्लिखित है कि मन्दिर-पूजा के बहाने कसाईघर चलाया जाय और वृथा ही नित्य पशुओं का वध किया जाय। जो ऐसा करते हैं उन्हें यहाँ पर वर्णित दण्ड भोगना पड़ता है।

यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेतः पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतःकुल्यायां पातयित्वा रेतः सम्पाययन्ति ॥२६॥

यः=जो कोई; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=निस्संदेह; **सवर्णाम्**=उसी जाति की; **भार्याम्**=अपनी पत्नी; **द्विजः**=उच्च जाति का व्यक्ति (यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य); **रेतः**=वीर्य; **पाययति**=पीने को बाध्य करता है; **काम-मोहितः**=काम से मोहित; **तम्**=उसको; **पाप-कृतम्**=पाप करते हुए; **अमुत्र**=अगले जन्म में; **रेतःकुल्यायाम्**=वीर्य की नदी में; **पातयित्वा**=फेंककर; **रेतः**=वीर्य; **सम्पाययन्ति**=पीने को बाध्य करते हैं।

अनुवाद

यदि कोई मूर्ख द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) भोगेच्छा से अपनी पत्नी को अपने वश में रखने के लिए उसे अपना वीर्य पीने को बाध्य करता है तो मृत्यु के पश्चात् उसे लालाभक्ष नरक में रखा जाता है। वहाँ उसे वीर्य की नदी में डाल कर वीर्य पीने को विवश किया जाता है।

तात्पर्य

अपना वीर्य पत्नी को पिलाने के लिए बाध्य करना इन्द्रजाल है, जिसे अत्यन्त कामी पुरुष अपनाते हैं। उनका कहना है कि ऐसा करने से पत्नी सदैव आज्ञाकारी बनी रहती है। सामान्यतः निम्न वर्ग के पुरुष ऐसा करते हैं, किन्तु यदि उच्च वर्ग में जन्मा व्यक्ति ऐसा करता है तो मृत्यु के पश्चात् लालाभक्ष नरक में ले जाया जाता है, जहाँ शुक्र नदी में डुबोकर उसे वीर्य पीने को बाध्य किया जाता है।

ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान् सार्थान् वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटा वा तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादन्ति ॥२७॥

ये=जो व्यक्ति; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=निस्संदेह; **दस्यवः**=चोर तथा डाकू; **अग्नि-दाः**=आग लगाने वाले; **गरदाः**=विष पिलाने वाले; **ग्रामान्**=गाँव; **सार्थान्**=वणिक वर्ग; **वा**=अथवा; **विलुम्पन्ति**=लूटते हैं; **राजानः**=राजा; **राज-भटाः**=अधिकारी जन; **वा**=अथवा; **तान्**=उनको; **च**=भी; **अपि**=निस्संदेह; **हि**=निश्चय ही; **परेत्य**=मरने पर; **यमदूताः**=यमराज के दूत गण; **वज्र-दंष्ट्राः**=बलशाली दाँतों वाले; **श्वानः**=कुत्ते; **सप्त-शतानि**=सात सौ; **विंशतिः**=बीस; **च**=और; **सर-भसम्**=तेजी से; **खादन्ति**=निगल जाते हैं।

अनुवाद

इस जगत् में कुछ लोगों का व्यवसाय ही लूटपाट करना है जो अन्यों के घरों में आग लगाते अथवा उन्हें विष देते हैं। यही नहीं, राज-अधिकारी भी कभी-कभी वणिक जनों का आयकर अदा करने के बहाने तथा अन्य विधियों से उत्पीड़न करते हैं। मृत्यु के पश्चात् ऐसे असुरों को सारमेयादन नामक नरक में रखा जाता है। उस नरक में सात सौ बीस कुत्ते हैं जिनके दाँत वज्र के समान कठोर हैं। ये कुत्ते यमराज के दूतों के आदेश पर ऐसे पापी जनों को तेजी से निगल जाते हैं।

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कंध में यह कहा गया है कि इस कलिकाल में प्रत्येक व्यक्ति तीन प्रकार की विपत्तियों से पीड़ित रहेगा—अतिवर्षा, दुर्भिक्ष तथा राज्य द्वारा अधिक कर वसूली। चूँकि मनुष्य अधिकाधिक पापी होते जा रहे हैं, इसलिए वर्षा का अभाव होगा जिससे कम अन्न उपजेगा। लोगों का कष्ट कम करने के बहाने सरकार व्यवसायी वर्ग पर विशेष रूप से भारी कर लगायेगी। इस श्लोक में कहा

गया है कि ऐसी सरकार के अधिकारी दस्यु अथवा चोर हैं। इनका मुख्य काम होगा लोगों की सम्पत्ति लूटना। चाहे वह राजमार्ग का लुटेरा हो या राजकीय चोर, ऐसे व्यक्ति को अगले जीवन में सारमेयादन नामक नरक में गिराकर दण्डित किया जायेगा जहाँ उसे नृशंस कुत्ते काटेंगे।

यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथञ्चित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधःशिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रायाद् गिरिमूर्ध्नः सम्पात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति ॥२८॥

यः=जो; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वा**=अथवा; **अनृताम्**=असत्य, झूठ; **वदति**=बोलता है; **साक्ष्ये**=साक्षी देने में; **द्रव्य-विनिमये**=द्रव्य के आदान-प्रदान में; **दाने**=दान देने में; **वा**=अथवा; =**कथञ्चित्**=किसी प्रकार; **सः**=वह व्यक्ति; **वै**=निस्संदेह; **प्रेत्य**=मरकर; **नरके**=नरक में; **अवीचिमति**=अवीचिमत् नामक (जिसमें जल नहीं है); **अधः-शिराः**=अधोमुख; **निरवकाशे**=आधारहीन; **योजन-शत**=आठ सौ मील का; **उच्छ्रायात्**=ऊँचाई वाला; **गिरि**=पर्वत का; **मूर्ध्नः**=चोटी से; **सम्पात्यते**=फेंक दिया जाता है; **यत्र**=जहाँ; **जलम् इव**=जलसदृश; **स्थलम्**=स्थल, भूमि; **अश्म-पृष्ठाम्**=पथरीली सतह वाले; **अवभासते**=प्रतीत होता है; **तत्**=वह; **अवीचिमत्**=बिना जल या लहरों वाला; **तिलशः**=तिल के बीजों सदृश सूक्ष्म खंडों में; **विशीर्यमाण**=फाड़ करके; **शरीरः**=देह; **न म्रियमाणः**=न मरने वाले; **पुनः**=फिर; **आरोपितः**=चोटी तक उठा हुआ; **निपतति**=गिरता है।

अनुवाद

इस जीवन में जो व्यक्ति किसी की झूठी गवाही देने, व्यापार करने अथवा दान देते समय किसी भी तरह का झूठ बोलता है वह मरने पर यमराज के दूतों द्वारा बुरी तरह से प्रताड़ित किया जाता है। ऐसा पापी व्यक्ति आठ सौ मील ऊँचे पर्वत की चोटी से मुँह के बल अवीचिमत् नामक नरक में नीचे फेंक दिया जाता है। इस नरक की पथरीली भूमि जल की लहरों के समान प्रतीत होती है, किन्तु इसमें जल नहीं है इसीलिए इसे अवीचिमत् (जलरहित) कहा गया है। वहाँ से बारम्बार गिराये जाने से उस पापी व्यक्ति के शरीर के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाने पर भी प्राण नहीं निकलते इसलिए उसे बारम्बार दण्ड सहना पड़ता है।

यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादतस्तेषां निरयं नीतानामुरसि पदाऽऽक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं कार्ष्णायसं निषिञ्चन्ति ॥२६॥

यः=जो; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=निस्संदेह; **विप्रः**=विद्वान् ब्राह्मण; **राजन्यः**=क्षत्रिय; **वैश्यः**=वैश्य; **वा**=अथवा; **सोमपीथः**=सोमरस पान करते हैं; **तत्**=उसकी; **कलत्र**=स्त्री; **वा**=अथवा; **सुराम्**=मदिरा; **व्रत-स्थः**=व्रत रखने वाला; **अपि**=निश्चय ही; **वा**=अथवा; **पिबति**=पीता है; **प्रमादतः**=मोहवश; **तेषाम्**=उन सबों को; **निरयम्**=नरक तक; **नीतानाम्**=लाया जाकर; **उरसि**=वक्षस्थल पर; **पदा**=पैर से; **आक्रम्य**=प्रहार कर; **अस्ये**=मुँह में; **वह्निना**=अग्नि से; **द्रवमाणम्**=पिघलाया; **कार्ष्णायसम्**=लोह; **निषिञ्चन्ति**=उड़ेलते हैं।

अनुवाद

जो ब्राह्मणी या ब्राह्मण मद्यपान करता है उसे यमराज के दूत अयःपान नामक नरक में ले जाते हैं। यदि कोई क्षत्रिय, वैश्य अथवा व्रत धारण करने वाला मोहवश सोमपान करता है तो उसे भी इस नरक की शरण लेनी पड़ती है। अयःपान नरक में यम के दूत उनकी छाती पर चढ़ कर उनके मुँह के भीतर तप्त पिघला लोहा उड़ेलते हैं।

तात्पर्य

मनुष्य को केवल नाम से ब्राह्मण नहीं होना चाहिए और न सभी प्रकार के पापकर्म, विशेष रूप से मद्यपान करना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जनों को चाहिए कि अपने वर्णानुसार आचरण करें। यदि वे पतित होकर मद्यपान के आदी शूद्र बन जाते हैं तो उन्हें यहाँ पर वर्णित विधि से दण्डित किया जायेगा।

अथ च यस्त्विह वा आत्मसम्भावनेन स्वयमधमो जन्मतपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरन्ता यातना ह्यश्नुते ॥३०॥

अथ=आगे; **च**=भी; **यः**=जो; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वा**=या; **आत्म-संभावनेन**=झूठी प्रतिष्ठा से; **स्वयम्**=स्वयं; **अधमः**=अत्यन्त नीच; **जन्म**=जन्म; **तपः**=तप; **विद्या**=ज्ञान; **आचार**=सद-आचरण; **वर्ण-आश्रम-वतः**=वर्णाश्रम के नियमों का कठोरता से पालन करते हुए; **वरीयसः**=अधिक आदरणीय

का; **न**=नहीं; **बहु**=अधिक; **मन्येत**=आदर करता है; **सः**=वह; **मृतकः**=मृत शरीर; **एव**=मात्र; **मृत्वा**=मरने के बाद; **क्षार-कर्दमे**=क्षारकर्दम नामक; **निरये**=नरक में; **अवाक्-शिरा**=अधोमुख; **निपातितः**=गिराया जाकर; **दुरन्ताः यातनाः**=अत्यन्त वेदनामयी स्थिति; **हि**=निस्संदेह; **अश्नुते**=भोगता है।

अनुवाद

जो निम्न जाति में उत्पन्न होकर इस जीवन में यह सोच कर झूठा गर्व करता है कि मैं महान् हूँ और उच्च जन्म, तप, शिक्षा, आचार, जाति अथवा आश्रम में अपने से बड़ों का उचित आदर नहीं करता वह इसी जीवन में मृत-तुल्य है और मृत्यु के पश्चात् क्षारकर्दम नरक में सिर के बल नीचे गिराया जाता है। वहाँ उसे यमदूत के हाथों से अत्यन्त कठिन यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।

तात्पर्य

मनुष्य को चाहिए कि वह झूठा गर्व न करे। उसे चाहिए अपने से जन्म, शिक्षा, आचरण, जाति अथवा आश्रम में उच्च व्यक्ति के प्रति आदरभाव दिखावे। यदि वह ऐसा नहीं करता और झूठा गर्व करता है तो उसे क्षारकर्दम नरक में दण्ड सहना पड़ता है।

ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशून् खादन्ति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तो रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनावदायासृक् पिबन्ति नृत्यन्ति च गायन्ति च हृष्यमाणा यथेह पुरुषादाः ॥३१॥

ये=जो; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=निस्संदेह; **पुरुषः**=व्यक्ति; **पुरुष-मेधेन**=नरबलि द्वारा; **यजन्ते**=आराधना (देवी काली या भद्रकाली की) करते हैं; **याः**=जो; **च**=तथा; **स्त्रियः**=स्त्रियाँ; **नृ-पशून**=बलि चढ़ाए जाने वाले मनुष्य; **खादन्ति**=खाते हैं; **तान्**=उनको; **च**=तथा; **ते**=वे; **पशव इव**=पशुओं के सदृश; **निहताः**=काटे हुए, बध किये हुए; **यम-सदने**=यमराज के घर में; **यातयन्तः**=दण्ड देते हुए; **रक्षोः-गणाः**=राक्षस होने से; **सौनिकाः**=मारने वाले; **इव**=सदृश; **स्वधितिना**=तलवार से; **अवदाय**=खण्ड-खण्ड करके; **असृक्**=रक्त; **पिबन्ति**=पीते हैं; **नृत्यन्ति**=नाचते हैं; **च**=तथा; **गायन्ति**=गाते हैं; **च**=भी; **हृष्यमाणाः**=प्रसन्न होकर; **यथा**=जिस प्रकार; **इह**=इस लोक में, **पुरुष-अदाः**=मनुष्य-भक्षी।

अनुवाद

इस संसार में ऐसे भी पुरुष तथा स्त्रियाँ हैं जो भैरव या भद्रकाली को नर-बलि चढ़ाकर उनका मांस खाते हैं। ऐसे यज्ञ करने वालों को मृत्यु के पश्चात् यमलोक में ले जाया जाता है जहाँ उनके शिकार (मारे गये व्यक्ति) राक्षस का रूप धारण करके उन्हें अपनी तेज तलवारों से टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। जिस प्रकार इस लोक में नर-भक्षकों ने नाचते गाते हुए अपने शिकार का रक्तपान किया था उसी तरह उनके शिकार अब अपने वध करने वालों का रक्तपान करके आनन्दित होते हैं।

ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भकैरुपसृतानुपविश्रम्भय्य जिजीविषून् शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयन्ति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यां चाभिहताः कङ्कवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुण्डैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरन्ति ॥३२॥

ये=जो; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वा**=अथवा; **अनागसः**=निर्दोष; **अरण्ये**=वन में; **ग्रामे**=गाँव में; **वा**=अथवा; **वैश्रम्भकैः**=श्रद्धा के द्वारा; **उपसृतान्**=पास लाये जाकर; **उपविश्रम्भय्य**=विश्वास के साथ प्रेरणा देकर; **जिजीविषून्**=जो रक्षित होना चाहते हैं; **शूल-सूत्र-आदिषु**=बर्छा; धागा आदि पर; **उपप्रोतान्**=लगा हुआ; **क्रीडनकतया**=गेंद के सदृश; **यातयन्ति**=पीड़ा पहुँचाते हैं; **ते**=वे पुरुष; **अपि**=निश्चय ही; **च**=तथा; **प्रेत्य**=मरने के पश्चात्; **यम-यातनासु**=यमराज की यातनाएँ; **शूल-आदिषु**=बर्छे आदि पर; **प्रोत-आत्मानः**=जिनके शरीर जड़ दिये गये हैं; **क्षुत-त्रिभ्याम्**=भूख तथा प्यास से; **च**=भी; **अभिहताः**=अभिभूत; **कंक-वट-आदिभिः**=बगुला तथा गीध जैसे पक्षियों द्वारा; **च**=तथा; **इतः-ततः**=इधर-उधर; **तिग्म-तुण्डैः**=तीखी चोंचों वाले; **आहन्य मानाः**=मारे जाकर; **आत्म-शमलम्**=अपने पाप कर्मों के; **स्मरन्ति**=स्मरण करते हैं।

अनुवाद

इस जीवन में कुछ व्यक्ति गाँव या वन में रक्षा के लिए आये हुए पशुओं तथा पक्षियों को शरण देते हैं और जब उन्हें अपनी सुरक्षा का विश्वास होता है तो ऐसे व्यक्ति उन्हें बर्छे या डोरे में फाँस कर उन्हें अति पीड़ा पहुँचाकर खिलौने जैसा खेलते हैं। ऐसे व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् यमराज के दूतों द्वारा शूलप्रोत नामक नरक में ले जाये जाते हैं जहाँ उनके शरीरों को तीक्ष्ण नुकीले भालों से छेदा जाता है। वे भूख तथा प्यास से तड़पते रहते हैं और उनके शरीरों को गीध तथा बगुले

जैसे तीक्ष्ण चोंच वाले पक्षी चारों ओर से नोंचते हैं। इस प्रकार से यातना पाकर उन्हें पूर्वजन्म में किये गये पाप-कर्मों का स्मरण होता है।

ये त्विह वै भूतान्युद्वेजयन्ति नरा उल्बणस्वभावा यथा दन्दशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दन्दशूकाख्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः पञ्चमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिलेशयान् ॥३३॥

ये=जो; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वै**=निस्संदेह; **भूतानि**=जीवात्माओं को; **उद्वेजयन्ति**=वृथा ही पीड़ा पहुँचाते हैं; **नराः**=मनुष्य; **उल्बण-स्वभावाः**=स्वभाव से क्रोधी; **यथा**=जिस प्रकार; **दन्दशूकाः**=सर्प, **ते**=वे; **अपि**=भी, **प्रेत्य**=मरने के बाद; **नरके**=नरक में; **दन्दशूक-आख्ये**=दन्दशूक नामक; **निपतन्ति**=गिरते हैं; **यत्र**=जहाँ; **नृप**=हे राजन्; **दन्दशूकाः**=सर्प; **पंच-मुख**=पाँच फन वाले; **सप्त-मुखाः**=सात फन वाले; **उपसृत्य**=ऊपर पहुँच कर; **ग्रसन्ति**=खा जाते हैं; **यथा**=के सदृश; **बिलेशयान्**=चूहे।

अनुवाद

जो पुरुष इस जीवन में सर्पों के समान क्रोधी स्वभाव वाले तथा अन्य जीवों को पीड़ा पहुँचाते हैं वे मृत्यु के पश्चात् दन्दशूक नामक नरक में गिरते हैं। हे राजन्! इस नरक में पाँच या सात फन वाले सर्प हैं जो इन पापात्माओं को उसी प्रकार खा जाते हैं जिस प्रकार चूहों को सर्प।

ये त्विह वा अन्धावटकुसूलगुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथामुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ॥३४॥

ये=जो पुरुष; **तु**=लेकिन; **इह**=इस जीवन में; **वा**=अथवा; **अंध-अवट**=अंधकूप; **कुसूल**=अन्न भण्डार, खत्ती; **गुह-आदिषु**=तथा गुफाओं आदि में; **भूतानि**=जीवात्माओं को; **निरुन्धन्ति**=रोके रखते हैं, बन्दी बना रखते हैं; **तथा**=उसी प्रकार; **अमुत्र**=अगले जीवन में; **तेषु**=उन-उन स्थानों में; **एव**=निश्चय ही; **उपवेश्य**=घुँटाकर; **सगरेण**=विषाक्त धुएँ से; **वह्निना**=अग्नि से; **धूमेन**=धुआँ से; **निरुन्धन्ति**=बन्दी बना रखते हैं।

अनुवाद

जो व्यक्ति इस जीवन में अन्य जीवों को अन्धे कुएँ, खत्ती या पर्वत की गुफा में बन्दी बनाकर रखते हैं वे मृत्यु के पश्चात् अवट-निरोधन नरक में रखे जाते हैं।

वहाँ वे स्वयं अंधे कुओं में धकेल दिये जाते हैं, जहाँ विषैले धुएँ से उनका दम घुटता है और घोर यातनाएँ उठाते हैं।

यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान् वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य चापि निरये पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्ककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयन्ति ॥३५॥

यः = जो व्यक्ति; **तु** = लेकिन; **इह** = इस जीवन में; **वा** = अथवा; **अतिथीन्** = अतिथियों को; **अभ्यागतान्** = अभ्यागतों (आने वालों) को; **वा** = अथवा; **गृह-पतिः** = गृहस्थ; **असकृत्** = अनेक बार; **उपगत** = प्राप्त करके; **मन्युः** = क्रोध; **दिधक्षुः** = जलाने का इच्छुक; **इव** = सदृश; **पापेन** = पापपूर्ण; **चक्षुषा** = नेत्रों द्वारा; **निरीक्षते** = दृष्टि डालता है; **तस्य** = उसका; **च** = तथा; **अपि** = निश्चय ही; **निरये** = नरक में; **पाप-दृष्टेः** = पापपूर्ण दृष्टि वाले की; **अक्षिणी** = आँखें, नेत्र; **वज्र-तुण्डाः** = वज्र के समान बलिष्ट चोंच वाले; **गृद्धाः** = गीध; **कंक** = कंक (बगुले); **काक** = कौवे; **वट-आदयः** = तथा अन्य पक्षी; **प्रसह्य** = आक्रामक रूप से; **उरु-बलात्** = अत्यन्त बलपूर्वक; **उत्पाटयन्ति** = बाहर निकाल लेते हैं।

अनुवाद

जो गृहस्थ अपने घर आये अतिथियों अथवा अभ्यागतों को क्रोध भरी कुटिल दृष्टि से देखता है मानों उन्हें भस्म कर देगा, उसे पर्यावर्तन नामक नरक में ले जाकर रखा जाता है जहाँ उसे वज्र चोंच वाले गीध, बगुले, कौवे तथा इसी प्रकार के अन्य पक्षी घूरते हैं और सहसा झपट कर तेजी से उसकी आँखें निकाल लेते हैं।

तात्पर्य

वैदिक शिष्टाचार के अनुसार, यदि गृहस्थ के घर उसका शत्रु भी पधारे तो ऐसी विनम्रता से मिलना चाहिए कि वह भूल जाय कि वह अपने शत्रु के घर आया है। घर आये अतिथि को विनम्रतापूर्वक लेना चाहिए। यदि वह अवांछित है तो गृहस्थ को चाहिए कि उसको घूरे नहीं क्योंकि जो ऐसा करता है वह मरने पर पर्यावर्तन नरक में रखा जाता है, जहाँ गृद्ध, कौवे जैसे भयानक पक्षी उस पर सहसा टूट पड़ते हैं और उसकी आँखें निकाल लेते हैं।

यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहङ्कृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशङ्की अर्थव्ययनाशचिन्तया परिशुष्यमाणहृदयवदनो निर्वृतिमनवगतो ग्रह

इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणसंरक्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायका इव सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥३६॥

यः=जो व्यक्ति; **तु**=लेकिन; **इह**=इस लोक में; **वा**=अथवा; **आढ्याभिमतिः**=सम्पत्ति के कारण गर्वीला; **अहंकृतिः**=अभिमानी; **तिर्यक्-प्रेक्षणः**=कुटिल दृष्टि वाला; **सर्वतः अभिविशङ्की**=सदैव अन्यों के द्वारा, यहाँ तक कि अपने से श्रेष्ठ जनों द्वारा ठगे जाने से सशंकित; **अर्थ-व्यय-नाश-चिन्तया**=व्यय तथा क्षति के विचार के कारण; **परिशुष्यमाण**=सूख गया है जो; **हृदय-वदनः**=उसका हृदय तथा मुख; **निर्वृत्तिम्**=प्रसन्नता; **अनवगतः**=न प्राप्त करके; **ग्रहः**=भूत; **इव**=सदृश; **अर्थम्**=सम्पत्ति; **अभिरक्षति**=रखवाली करता है; **सः**=वह; **च**=भी; **अपि**=निस्सन्देह; **प्रेत्य**=मरने के बाद; **तत्**=उस धन का; **उत्पादन**=आय का; **उत्कर्षण**=वृद्धि; **संरक्षण**=सुरक्षा; **शमल-ग्रहः**=पाप-कर्मों को स्वीकार करता हुआ; **सूचीमुखे**=सूचीमुख नामक; **नरके**=नरक में; **निपतति**=गिर जाता है; **यत्र**=जहाँ; **ह**=निस्संदेह; **वित्त-ग्रहम्**=धन हरने वाले भूत की तरह; **पाप-पुरुषम्**=अत्यन्त पापी मनुष्य; **धर्मराज-पुरुषाः**=धर्मराज के दूत; **वायकाः इव**=चतुर दर्जियों की भाँति; **सर्वतः**=सर्वत्र; **अंगेषु**=शरीर के अंगों पर; **सूत्रैः**=धागे के द्वारा; **परिवयन्ति**=सिलते हैं।

अनुवाद

जो व्यक्ति इस लोक में अथवा इस जीवन में अपनी सम्पत्ति पर गर्व करता है वह सदैव सोचता रहता है कि वही सबसे धनी है और कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता। उसकी नजर टेढ़ी हो जाती है और वह सदैव भयभीत रहता है कि कोई उसकी सम्पत्ति ले न ले। अपनी सम्पत्ति की हानि के विचार मात्र से उसके मुख तथा हृदय सूखने लगते हैं, अतः वह सदैव अतिदुष्ट मनुष्य की तरह लगता है। उसे वास्तविक सुख-लाभ नहीं हो पाता और वह यह नहीं जानता कि चिन्ता-मुक्त जीवन क्या है। धन अर्जित करने, उसको बढ़ाने तथा उसकी रक्षा के लिए वह जो पापकर्म करता है उससे उसे सूचीमुख नामक नरक में रखा जाता है जहाँ यमराज के दूत उसके सारे शरीर को दर्जियों की तरह धागे से सिल देते हैं।

तात्पर्य

जब किसी के पास आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति होती है तो वह निश्चय ही घमंडी बन जाता है। आधुनिक सभ्यता में मनुष्यों की यही स्थिति है। वैदिक संस्कृति में ब्राह्मणों के पास कुछ भी नहीं रहता था, जबकि क्षत्रियों के पास इतना धन रहता

था कि वे यज्ञ तथा अन्य उत्तम कार्य कर सकें। वैश्य भी कृषि, गोपालन तथा व्यापार से ईमानदारी के साथ धन कमाता है। किन्तु यदि शूद्र को धन प्राप्त हो जाता है तो वह उसका अपव्यय करता है या फिर संचय करता है जो उसके काम नहीं आता। चूँकि इस युग में सुपात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य नहीं हैं अतः प्रायः प्रत्येक व्यक्ति शूद्र है (**कलौ शूद्र-सम्भवः**)। फलस्वरूप शूद्र-मानसिकता से आधुनिक सभ्यता को भारी क्षति पहुँच रही है। शूद्र यह नहीं जानता कि भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति के लिए धन का किस प्रकार उपयोग किया जाय। धन को लक्ष्मी भी कहते हैं और लक्ष्मीजी सदैव नारायण की सेवा में संलग्न रहने वाली हैं। अतः जहाँ भी धन हो, उसे भगवान् नारायण की सेवा में लगाना चाहिए। प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि वह अपने धन का उपयोग श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रसार में लगाये। यदि वह धन का उपयोग इस कार्य के लिए नहीं करता और आवश्यकता से अधिक धन-संग्रह करता है तो अवैध सम्पत्ति के कारण उसे गर्व हो जाता है। यह धन वास्तव में श्रीकृष्ण का है जैसा कि भगवद्गीता (५.२९) में उन्होंने कहा है—**भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्**—"समस्त यज्ञों एवं तप का वास्तविक भोक्ता मैं हूँ और मैं ही समस्त लोकों का स्वामी भी हूँ।" अतः सब कुछ श्रीकृष्ण हैं और कुछ भी किसी का नहीं है। यदि किसी के पास आवश्यकता से अधिक धन है तो उसको श्रीकृष्ण के लिए खर्च करना चाहिए। मनुष्य यदि ऐसा नहीं करता तो वह अपनी झूठी सम्पत्ति के कारण गर्व से फूल उठता है अतः अगले जन्म में उसे दण्डित होना पड़ता है।

एवंविधा नरका यमालये सन्ति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे त उभयशेषाभ्यां निविशन्ति ॥३७॥

एवम्-विधाः=इस प्रकार के; **नरकाः**=अनेक नरक; **यम-आलये**=यमराज के लोक में; **सन्ति**=हैं; **शतशः**=सैंकड़ों; **सहस्रशः**=हजारों; **तेषु**=उन लोकों में; **सर्वेषु**=सबों में; **च**=भी; **सर्वे**=सभी; **एव**=निस्सन्देह; **अधर्म-वर्तिनः**=पुरुष जो वैदिक नियमों या विधि-विधानों का पालन नहीं करते; **ये केचित्**=जो भी; **इह**=यहाँ; **उदिता**=वर्णित; **अनुदिताः**=जिनका वर्णन नहीं हुआ है; **च**=तथा; **अवनि-पते**=हे राजन्; **पर्यायेण**=पापकर्मों के अनुसार; **विशन्ति**=प्रवेश करते हैं; **तथा एव**=उसी प्रकार; **धर्म-अनुवर्तिनः**=जो पवित्र हैं और वैदिक आदेशों के अनुसार कार्य करते हैं; **इतरत्र**=अन्यत्र; **इह**=इस लोक में; **तु**=लेकिन; **पुनः-भवे**=दूसरे जन्म

में; ते=वे सब; **उभय-शेषाभ्याम्**=पुण्यों अथवा पापों के फल के शेष भाग से; **निविशन्ति**=प्रवेश करते हैं।

अनुवाद

हे राजन्! यमलोक में इसी प्रकार के सैकड़ों-हजारों नरक हैं। मैंने जिन पापी मनुष्यों का वर्णन किया है और जिनका वहाँ उल्लेख नहीं हुआ—वे सब अपने पापों के अनुसार इन विभिन्न नरकों में प्रवेश करेंगे। किन्तु जो पुण्यात्मा हैं वे अन्य लोकों में, अर्थात् देवताओं के लोकों में जाते हैं। तो भी, अपने पुण्य पाप के फलों के क्षय होने पर पुण्यात्मा तथा पापी दोनों ही पुनः पृथ्वी पर लौट आते हैं।

तात्पर्य

इसी वर्णन से भगवद्गीता में श्रीकृष्ण के उपदेश प्रारम्भ होते हैं—**देहान्तर-प्राप्तिः**—इस भौतिक जगत् में प्रत्येक प्राणी विभिन्न लोकों में एक देह से दूसरे में परिवर्तित होने के लिए आया है। **ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था**—सतोगुणी लोग ऊर्ध्व-लोकों को प्राप्त होते हैं। **अधो गच्छन्ति तामसः**—इसी प्रकार जो तामसी हैं वे नरक लोकों में प्रवेश करते हैं। किन्तु ये दोनों प्रकार के प्राणी जन्म-मृत्यु के चक्कर में फँसे हैं। भगवद्गीता में कहा गया है कि पवित्रात्मा भी स्वर्गलोक में सुखोपभोग के पश्चात् पृथ्वी पर लौटते हैं (**क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति**)। अतः एक लोक से दूसरे में गमन करने से जीवन की समस्याओं का अन्त नहीं हो जाता। वे तो तभी हल हो सकती हैं जब हमें फिर यह भौतिक देह धारण न करना पड़े। ऐसा तभी सम्भव है जब कोई श्रीकृष्णभावनाभावित हो। जैसा कि स्वयं श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (४.९) में कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"हे अर्जुन! मेरा आविर्भाव तथा कर्म दिव्य है, इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्व से जानता है, वह देह को त्याग कर संसार में फिर से जन्म नहीं लेता वरन् मेरे सनातन धाम को प्राप्त होता है।" यही जीवन की सिद्धि और जीवन की समस्याओं का सही हल है। न तो हमें उच्चतर स्वर्गलोक में पहुँचने के लिए उत्सुक होना चाहिए, न ही ऐसा कर्म करना चाहिए कि नरक में पहुँच जायें। इस भौतिक जगत् का पूर्ण उद्देश्य तभी प्राप्त होगा जब हम अपने आत्मस्वरूप को प्राप्त करके भगवान् के धाम वापस जा सकें। ऐसा करने का सरलतम उपाय है श्रीभगवान् द्वारा निर्दिष्ट—**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**। मनुष्य को न तो पवित्र, न ही अपवित्र होना चाहिए। उसे भक्त होना चाहिए और श्रीकृष्ण के चरणकमलों में समर्पित

होना चाहिए। समर्पण की विधि भी सरल ही है। इसे एक बालक तक कर सकता है—**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।** मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव श्रीकृष्ण का ही चिन्तन "**हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे**" का कीर्तन करते हुए करे। मनुष्य को चाहिए कि वह श्रीकृष्ण का भक्त बने, उनकी आराधना करे और उन्हें नमस्कार करे। इस प्रकार उसे अपने जीवन के समस्त कार्यों को भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में अर्पित करना चाहिए।

निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः॥ एतावानेवाण्डकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत्तद्भगवतो नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥३८॥

निवृत्ति-लक्षण-मार्गः=मुक्ति का मार्ग; **आदौ**=प्रारम्भ में (द्वितीय तथा तृतीय स्कन्धों में); **एव**=निस्संदेह; **व्याख्यातः**=कहा जा चुका है; **एतावान्**=यह सब; **एव**=निश्चय ही; **अंड-कोशः**=यह ब्रह्माण्ड जो एक वृहद् अंडे के सदृश है; **यः**=जो; **चतुर्दश-धा**=चौदह खण्डों में; **पुराणेषु**=पुराणों में; **विकल्पितः**=विभक्त; **उपगीयते**=वर्णित है; **यत्**=जो; **तत्**=वह; **भगवतः**=श्रीभगवान् का; **नारायणस्य**=नारायण का; **साक्षात्**=प्रत्यक्ष; **महा-पुरुषस्य**=परम पुरुष का; **स्थविष्ठम्**=स्थूल; **रूपम्**=रूप; **आत्म-माया**=अपनी शक्ति का; **गुण**=गुणों का; **मयम्**=युक्त; **अनुवर्णितम्**=वर्णित; **आदृतः**=आदरपूर्वक; **पठति**=पढ़ता है; **शृणोति**=अथवा सुनता है; **श्रावयति**=अथवा व्याख्या करता है; **सः**=वह पुरुष; **उपगेयम्**=गीत; **भगवतः**=श्रीभगवान् का; **परमात्मनः**=परमात्मा का; **अग्राह्यम्**=जिसका समझ पाना कठिन है; **अपि**=यद्यपि; **श्रद्धा**=श्रद्धा से; **भक्ति**=तथा भक्ति; **विशुद्ध**=शुद्ध; **बुद्धिः**=जिसकी बुद्धि; **वेद**=जानती है।

अनुवाद

प्रारम्भ में (द्वितीय तथा तृतीय स्कंध में) मैं यह बता चुका हूँ कि मुक्तिमार्ग पर किस प्रकार अग्रसर हुआ जा सकता है। पुराणों में चौदह खण्डों में विभक्त अंड सदृश विशाल ब्रह्माण्ड की स्थिति का वर्णन किया गया है। यह विराट् रूप भगवान् का बाह्य शरीर माना जाता है जिसकी उत्पत्ति उनकी शक्ति और गुणों से हुई है। इसे ही सामान्यतः विराट् रूप कहते हैं। यदि कोई श्रद्धा सहित भगवान् के इस

बाह्यरूप का वर्णन पढ़ता है अथवा इसके विषय में सुनता या फिर अन्यों को भागवत धर्म अथवा श्रीकृष्णभावनामृत समझाता है तो आत्म-चेतना अथवा श्रीकृष्ण-भावनामृत में उसकी श्रद्धा तथा भक्ति क्रमशः बढ़ती जाती है। यद्यपि इस भावना को विकसित कर पाना कठिन है, किन्तु इस विधि से मनुष्य अपने को शुद्ध कर सकता है और धीरे-धीरे परम सत्य को जान सकता है।

तात्पर्य

श्रीकृष्णभावनामृत आन्दोलन द्वारा श्रीमद्भागवत-सन्देश का प्रकाशन आधुनिक सभ्य मानवों के लाभार्थ किया जा रहा है जिससे वह मूल भावना को जाग्रत कर सके। इस भावना के बिना पूर्ण अन्धकार दिखता है। मनुष्य चाहे स्वर्ग को जाये या नरक को, वह अपना समय नष्ट करता है। अतः उसे चाहिए कि श्रीमद्भागवत में वर्णित भगवान् के विराट् रूप के विषय में सुने। इससे वह अपने आपको बद्ध-जीवन से बचा सकेगा और क्रमशः मुक्तिमार्ग को प्राप्त कर सकेगा जिससे वह भगवान् के धाम को वापस जा सके।

श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः।
स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति॥३९॥

श्रुत्वा=सुनकर (गुरु परम्परा से); **स्थूलम्**=स्थूल; **तथा**=और; **सूक्ष्मम्**=सूक्ष्म; **रूपम्**=रूप; **भगवतः**=श्रीभगवान् का; **यतिः**=संन्यासी या भक्त; **स्थूले**=स्थूल रूप; **निर्जितम्**=विजित; **आत्मानम्**=मन; **शनैः**=धीरे-धीरे; **सूक्ष्मम्**=भगवान् का सूक्ष्म सत रूप; **धिया**=बुद्धि से; **नयेत्**=ले जाना चाहिए; **इति**=इस प्रकार।

अनुवाद

वह जो मुक्ति का इच्छुक है, मुक्ति के पथ को ग्रहण करता है तथा बद्धजीवन के प्रति आकृष्ट नहीं होता, यती या भक्त कहलाता है। ऐसे पुरुष को पहले भगवान् के स्थूल विराट् रूप का चिन्तन करते हुए मन को वश में करना चाहिए और तब धीरे-धीरे श्रीकृष्ण के सूक्ष्म रूप (सत्-चित्-आनन्द-विग्रह) का चिन्तन करना चाहिए। इस प्रकार उसका मन समाधि में स्थिर हो जाता है। भक्ति के द्वारा भगवान् के सूक्ष्म रूप का साक्षात्कार किया जा सकता है और यही भक्त का गन्तव्य है। इस प्रकार जीवन सफल बन जाता है।

तात्पर्य

कहा गया है कि—**महत्सेवां द्वारं आहुर्विमुक्तेः**—यदि कोई मुक्तिमार्ग पर आगे बढ़ना चाहता है तो उसे महात्माओं या मुक्त भक्तों की संगति करनी चाहिए, क्योंकि ऐसी संगति में श्रीभगवान् के नाम, रूप, गुण तथा वैशिष्ट्य के सम्बन्ध में श्रवण, वर्णन तथा कीर्तन का अवसर प्राप्त होता है जिन सबका वर्णन श्रीमद्भागवत में हुआ है। बन्धन पथ पर सदैव जन्म-मृत्यु का चक्कर लगा रहता है। जो इस बन्धन से मुक्ति चाहता है उसे अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ में सम्मिलित हो जाना चाहिए और भक्तों से श्रीमद्भागवत सुनने का लाभ उठाना चाहिए।

भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभःसमुद्र-
पातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ।
गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य
स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥४०॥

भू=पृथ्वीलोक; **द्वीप**=तथा अन्य लोक; **वर्ष**=भूभाग; **सरित्**=नदियाँ; **अद्रि**=पर्वत; **नभः**=आकाश; **समुद्र**=सागर; **पाताल**=नीचे के लोक, **दिक्**=दिशाएँ; **नरक**=समस्त नरक लोक, **भागण-लोक**=नक्षत्र तथा उच्तर लोक, **संस्था**=स्थिति, **गीता**=वर्णित, **मया**=मेरे द्वारा, **तव**=तुम्हारे लिए, **नृप**=हे राजन्!, **अद्भुत**=विचित्र, **ईश्वरस्य**=श्रीभगवान् का, **स्थूलम्**=स्थूल, **वपुः**=शरीर, **सकल-जीव-निकाय**=समस्त जीव समुदाय का, **धाम**=आवास।

अनुवाद

हे राजन्! अभी मैंने तुमसे इस पृथ्वीलोक, अन्य लोक तथा उनके वर्ष, नदी एवं पर्वत का वर्णन किया है। मैंने आकाश, समुद्र, अधोलोक, दिशाएँ, नरक, ग्रह तथा नक्षत्रों का भी वर्णन किया है। ये भगवान् के विराट् रूप के अवयव हैं, जिन पर समस्त जीवात्माएँ आश्रित हैं। इस प्रकार मैंने भगवान् के बाह्य शरीर के विस्तार की व्याख्या की है।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्त्र्यां भक्तिवेदान्त भाष्ये पञ्चमस्कन्धे नरकानुवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत पंचमस्कन्ध, "नारकीय लोकों का वर्णन" शीर्षक नामक छब्बीसवें अध्याय पर भक्तिवेदान्त भाष्य समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

—होनोलुलु के पंचतत्त्व मंदिर में दिनांक ५ जून, १९७५ को सम्पूर्ण हुआ।

गौड़ीय भाष्य में कृष्णकृपाश्रीमूर्ति भक्तिसिद्धान्त सरस्वती जी के द्वारा लिखी गई एक पूरक टिप्पणी है। उसका अनुवाद इस प्रकार है—

जिन विद्वानों को समस्त वैदिक शास्त्रों का ज्ञान है वे यह मानते हैं कि श्रीभगवान् के असंख्य अवतार हैं। इन अवतारों की दो श्रेणियाँ की गई हैं—**प्राभव तथा वैभव।** शास्त्रों के अनुसार प्राभव अवतारों की भी दो श्रेणियाँ हैं—अनन्त तथा अर्वाणित। श्रीमद्भागवत के पंचम स्कंध में तृतीय से लेकर षष्टम अध्याय तक ऋषभदेव का वर्णन है, किन्तु उनके सत् रूप का वर्णन नहीं हुआ है। अतः उन्हें प्राभव अवतारों में दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत (अर्वाणित) माना जाता है। श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध, अध्याय तीन, श्लोक तेरह में कहा गया है—

अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः।
दर्शयन् वर्त्म धीरानां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥

"भगवान् विष्णु आठवें अवतार में महाराज नाभि (आग्निध्र के पुत्र) तथा उनकी पत्नी मेरुदेवी के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने सिद्धि, जीवन की परमहंस अवस्था का मार्ग दिखलाया जिसकी उपासना वर्णाश्रम धर्म के पालन करने वालों द्वारा की जाती है।" ऋषभदेव श्रीभगवान् हैं और उनका शरीर सच्चिदानन्दविग्रह है। अतः यह पूछा जा सकता है कि वे मल मूत्र किस प्रकार विसर्जित करते होंगे? इस प्रश्न का उत्तर गौड़ीय वेदान्त आचार्य बलदेव विद्या-भूषण ने अपनी पुस्तक **सिद्धान्त रत्न** (प्रथम भाग मूलपाठ ६५-६८) में दिया है। जो पूर्ण ज्ञानी नहीं हैं वे अभक्तों का ध्यान ऋषभदेव द्वारा मलमूत्र विसर्जित करने की ओर आकर्षित करते हैं, क्योंकि वे दिव्य शरीर के सत्-चित्-आनन्द-विग्रह को नहीं समझ पाते। श्रीमद्भावगत के पंचम स्कंध (५.६.११) में मोहग्रस्त तथा भ्रमित स्थिति वाले इस युग के भौतिकवादियों का पूरी तरह वर्णन हुआ है। पंचम स्कंध में ही अन्यत्र (५.५.१९) में ऋषभदेव ने कहा है—**इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं,** "मेरा यह शरीर भौतिकवादियों के लिए अचिन्त्य है।" भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में भी (९.११) में इसकी पुष्टि की है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो ममभूतमहेश्वरम् ॥

"मेरे नराकार रूप में अवतरित होने पर मूर्ख मेरा उपहास करते हैं। वे मुझ परमेश्वर के दिव्य स्वभाव को नहीं जानते।" श्रीभगवान् के मानवीय रूप को समझ पाना अत्यन्त दुष्कर है और सामान्य व्यक्ति के लिए तो यह अचिन्त्य है। इसीलिए ऋषभदेव ने स्वतः बताया है कि उनका शरीर आत्ममय (सत्-चित्-आनन्द-विग्रह) है। इसीलिए वे मलमूत्र विसर्जित नहीं करते थे। यद्यपि वे ऊपर से मलमूत्र

विसर्जित करते प्रतीत होते थे, किन्तु वह भी दिव्य होने के कारण सामान्य मनुष्य द्वारा अनुकरणीय नहीं हैं। श्रीमद्भागवत में यह भी कहा गया है कि ऋषभदेव का मलमूत्र दिव्य सुगन्धि से युक्त था। भले ही कोई ऋषभदेव का अनुकरण कर ले, किन्तु वह सुगन्धित मल विसर्जित नहीं कर सकता।

अतः ऋषभदेव के कार्यकलाप उनके उन अनुयायियों के जिन्हें **अर्हत्** कहते हैं, कथनों की पुष्टि नहीं करते। वैदिक नियमों के प्रतिकूल कार्य करते हुए भला वे ऋषभदेव के अनुयायी कैसे हो सकते हैं। शुकदेव गोस्वामी ने वताया है कि भगवान् ऋषभदेव के लक्षणों को सुनने के वाद कोंक, वेंक तथा कुटक के राजा ने अर्हत् नामक धार्मिक नियमों की प्रणाली का सूत्रपात किया। ये नियम वैदिक नियमों के अनुकूल नहीं थे, अतः इन्हें **पाखंड धर्म** कहा गया। अर्हत् सम्प्रदाय के सदस्य ऋषभदेव के कार्यों को भौतिक मानते थे। किन्तु ऋषभदेव तो श्रीभगवान् के अवतार हैं, अतः वे अप्राकृत अवस्था पर हैं और उनकी समता कोई भी नहीं कर सकता।

स्वयं ऋषभदेव द्वारा श्रीभगवान् के कार्यों का प्राकट्य हुआ। जैसा कि श्रीमद्भागवत (५.६.४) में कहा गया है—**दावानलस्तद्वनमालेलिहानः सह तेन ददाह**—ऋषभदेव की लीलाओं की समाप्ति पर सम्पूर्ण वन तथा भगवान् का शरीर जलकर भस्म हो गया। इसी प्रकार ऋषभदेव ने लोगों की अविद्या को भस्म कर डाला। अपने पुत्रों को दिए गये उपदेशों में उन्होंने परमहंसों के लक्षणों का प्राकट्य किया। किन्तु अर्हत् सम्प्रदाय के नियमों का ऋषभदेव की शिक्षाओं से मेल नहीं खाता।

श्रील बलदेव विद्याभूषण की टिप्पणी है कि श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध में ऋषभदेव का अन्य विवरण भी प्राप्त होता है, किन्तु वे ऋषभदेव इस स्कंध में वर्णित ऋषभदेव से भिन्न हैं।

॥ इति पञ्चमः स्कन्धः समाप्तः ॥